अनादि अनिधन
जिनागम पंथ जयवंत हो

श्री मद् आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित रयणसार ग्रंथोपरि
प्रवचनवृत्ति

रयणोदय

(द्वितीय भाग)

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर मुनि

अहारजी के बड़े बाबा
देवाधिदेव 1008 श्री शान्तिनाथ भगवान

जिनागम पंथी वंदनीय आचार्य परंपरा
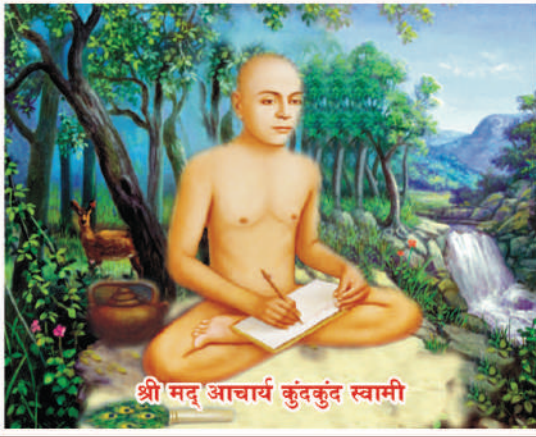
श्री मद् आचार्य कुंदकुंद स्वामी
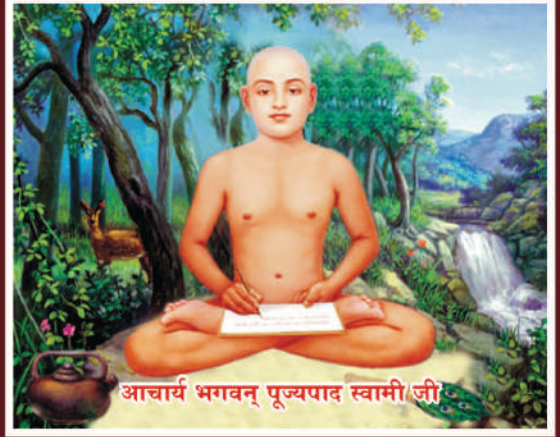
आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी जी
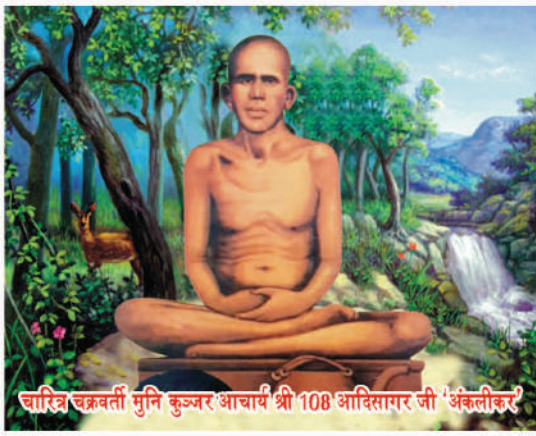
चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुञ्जर आचार्य श्री 108 आदिसागर जी 'अंकलीकर'
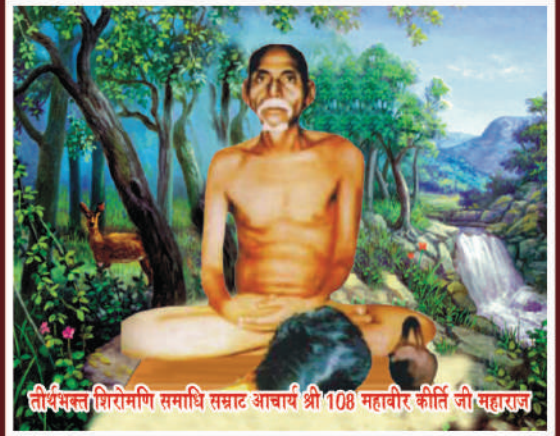
तीर्थभक्त शिरोमणि समाधि सम्राट आचार्य श्री 108 महावीर कीर्ति जी महाराज
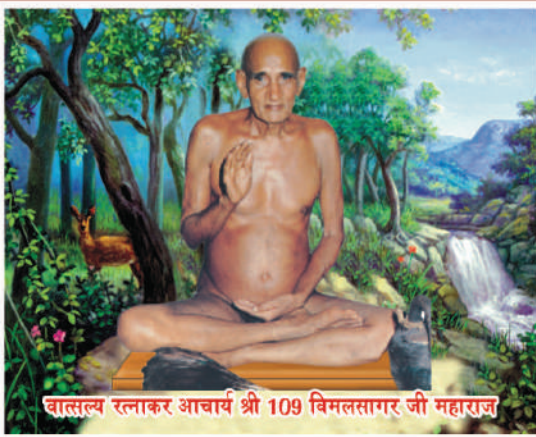
वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री 109 विमलसागर जी महाराज
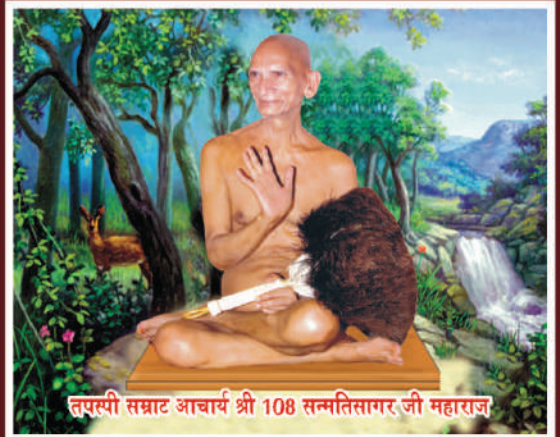
तपस्वी सम्राट आचार्य श्री 108 सन्मतिसागर जी महाराज
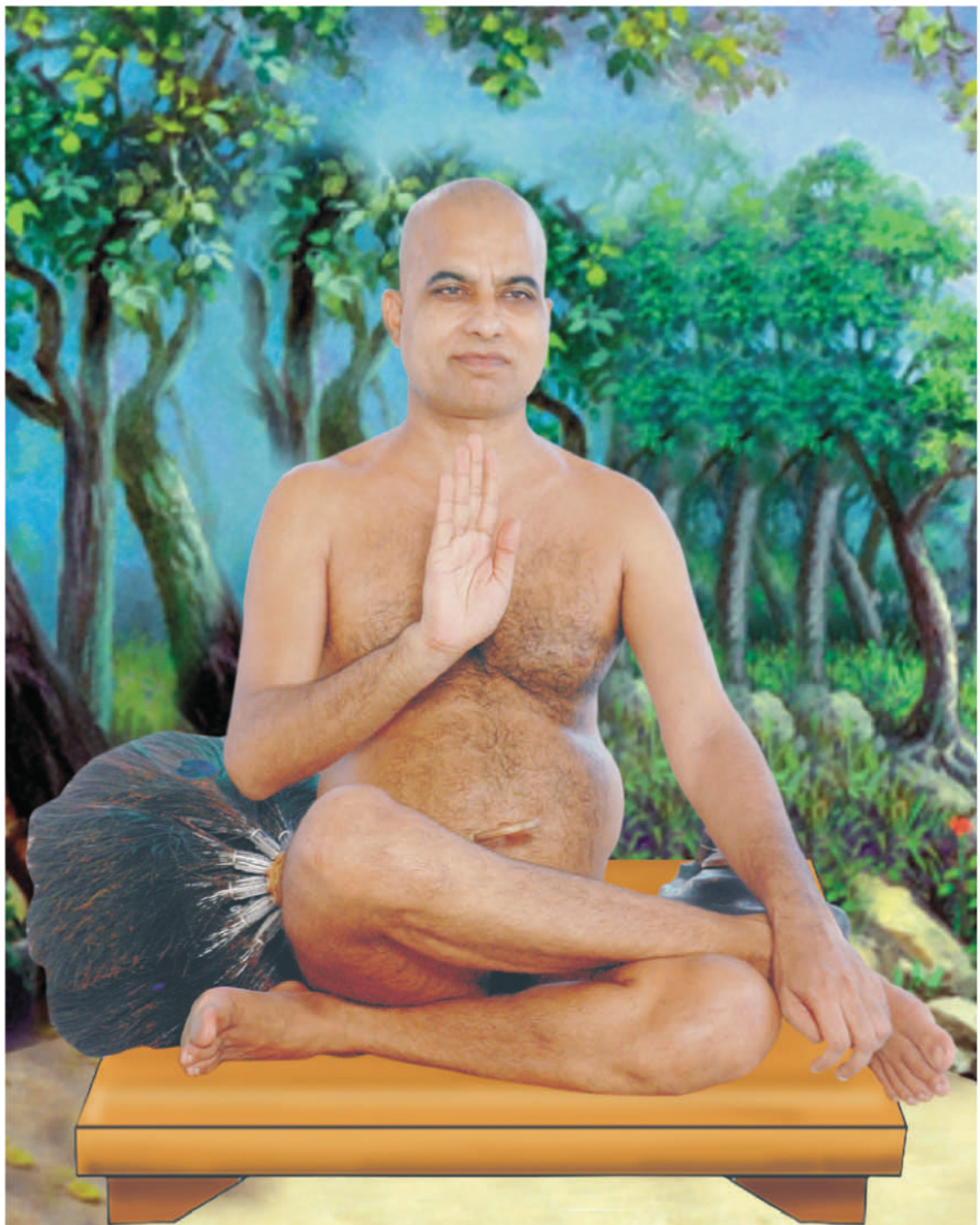
प. पू. राष्ट्रसंत सूरिगच्छाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज

जन्म : 02/05/1963 मुनि दीक्षा : 09/12/1983 आचार्य पद : 08/11/1992

जीवन है पानी की बूंद महाकाव्य के मूल रचियता, विमर्श लिपि के सृजेता, आदर्श महाकवि, राष्ट्रयोगी,

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज

जन्म : 15/11/1973 मुनि दीक्षा : 14/12/1998 आचार्य पद : 12/12/2010

भावलिंगी संत का जिनागम पंथी मुनि संघ

श्रमण श्री 108 विचिन्त्यसागर जी
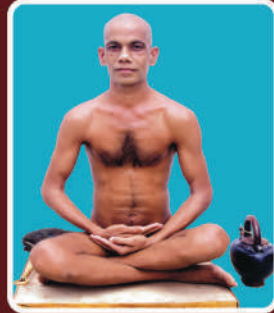
श्रमण श्री 108 विजेयसागर जी
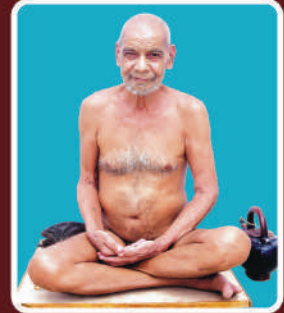
श्रमण श्री 108 विश्वार्यसागर जी

श्रमण श्री 108 विश्वार्थसागर जी

श्रमण श्री 108 विध्रुवसागर जी
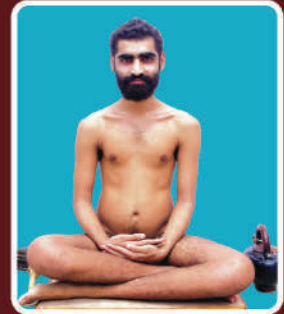
श्रमण श्री 108 विव्रतसागर जी
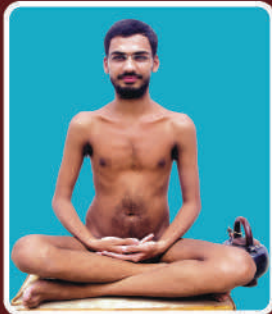
श्रमण श्री 108 विशुभ्रसागर जी

श्रमण श्री 108 विशमसागर जी
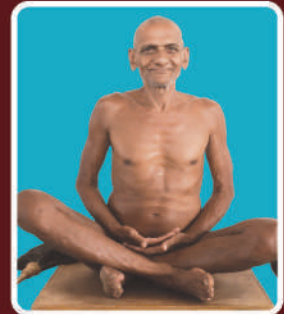
श्रमण श्री 108 विश्वांकसागर जी

श्रमण श्री 108 विश्वार्कसागर जी

श्रमण श्री 108 विश्वांशसागर जी

ऐलक श्री 105 विश्वज्ञसागर जी

क्षुल्लक श्री 105 विश्वाभसागर जी

भावलिंगी संत का जिनागम पंथी आर्यिका संघ

आर्यिका विद्यान्तश्री माताजी

आर्यिका विमलांतश्री माताजी

आर्यिका विक्रांतश्री माताजी

आर्यिका विश्वांतश्री माताजी

आर्यिका विध्यांतश्री माताजी

आर्यिका विजयांतश्री माताजी

आर्यिका विभ्रांतश्री माताजी

आर्यिका विनयांतश्री माताजी

आर्यिका विजितांतश्री माताजी

क्षुल्लिका विदेहांतश्री माताजी

बा.ब्र. विशु दीदी

बा. ब्र. नेहा दीदी

बा. ब्र. ज्योति दीदी

बा. ब्र. महिमा दीदी

बा. ब्र. सृष्टि दीदी

बा. ब्र. सोनाली दीदी

बा. ब्र. दीपा दीदी

बा. ब्र. रिया दीदी

बा. ब्र. गुंजन दीदी

श्रमण श्री 108 विव्रतसागर जी

श्रमण श्री 108 विश्वांशसागर जी

दुर्ग (छत्तीसगढ़) में 3 नवम्बर 2019 को त्रय दीक्षायें

बा.ब्र. अंकित भैया | ब्र. भगवती दीदी | ब्र. सुमन दीदी

ग्रंथ भेंटकर्ता परिवार

जिनागम पंथी परिवार

श्री राहुल जैन–श्रीमती प्रियंका जैन (दिल्ली)

ब्र. सुमन दीदी के दीक्षा प्रसंग पर जिनागम पंथ ग्रंथमाला से प्रकाशित

जिनागम पंथ ग्रंथमाला

स्तंभ शिरोमणि संरक्षक

- श्री महावीर प्रसाद जैन (बैंक वाले) जयपुर, राज.
- गुप्तदान, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

* * *

परम शिरोमणि संरक्षक

- श्री अनिल कुमार प्रमित कुमार जैन, आगरा (उ.प्र.)
- श्री चक्रेश जैन 'अनुज', जतारा
- ब्र. सुमन दीदी, राहुल जैन, दिल्ली
- श्री बाबूलाल पाटोदी, छिंदवाड़ा
- श्री माणिकचंद सचिन कुमार जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)
- श्री माणिकचंद संजीव कुमार कासलीवाल, भिलाई (छ.ग.)
- श्री विनोद मित्तल, रामगंजमंडी (राज.)
- श्री मुकेश जैन, एटा (उ.प्र.)

* * *

शिरोमणि संरक्षक

- श्री देवेन्द्र जैन–श्रीमती नेहा जैन, टीकमगढ़ (म.प्र.)

* * *

परम संरक्षक

- श्री राजेश जैन, टीकमगढ़ (म.प्र.)
- श्री चाँदमल शाह, संदीप शाह, विजयनगर (राज.)
- श्री नेमिचंद जैन, दुर्ग (छ.ग.)
- श्री धर्मेन्द्र जैन, डोंगरगाँव (छ.ग.)
- श्री मुकेश जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)
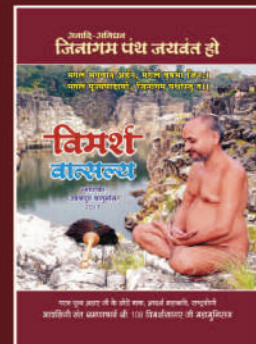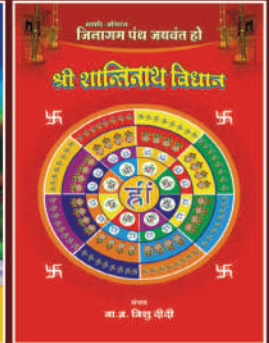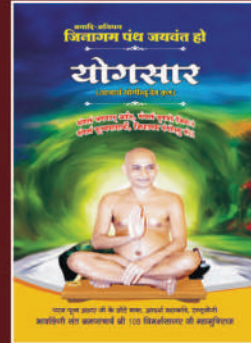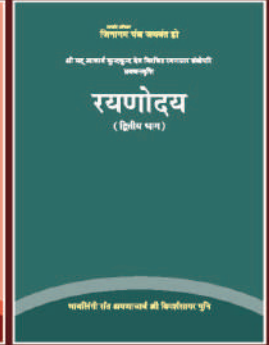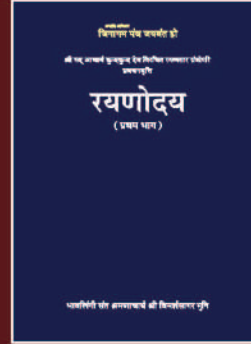
जिनागम पंथ जयवंत हो

ग्रंथ भेंटकर्ता परिवार

जिनागम पंथी परिवार

श्री माणिकचन्दजी गुणमालादेवी रवीन्द्रकुमार आरती देवी संजीव कुमार सपना देवी राकेश कुमार सुमन देवी, अलकेश रवीना रिया नैनिका जिनेश एवं भाविका कासलीवाल (भिलाई, दुर्ग)

राष्ट्रीय विमर्श जागृति मंच (रजि.)

के अंतर्गत

जिनागम पंथ ग्रंथमाला

उद्देश्य

मूल जिनागम का संरक्षण, प्रकाशन, प्रचार-प्रसार
एवं लोकोपयोगी, धार्मिक-नैतिक साहित्य का
निर्माण व प्रकाशन

शुभाशीष/प्रेरणा

प. पू. श्रमणाचार्य विमर्शसागर जी महाराज

स्थापना ग्रंथमाला : 15 नवम्बर 2018, विमर्श उत्सव

कार्यालय : 116, भूता कम्पाउण्ड, इटावा रोड़, भिण्ड (म.प्र.)

ज्ञानावरण कर्म के आस्रव का कारण

.. शास्त्र विक्रय.. ज्ञानावरणस्यास्रवाः श्रुतात्स्याच्छ्रुतकेवली।

शास्त्र विक्रय ज्ञानावरण कर्म के आस्रव का कारण है तथा शास्त्रदान से श्रुतकेवली होता है ऐसा आगम वाक्य है।

जिनागम पंथ ग्रंथमाला से प्रकाशित श्रुत साहित्य का विक्रय नहीं किया जाता। सभी स्वाध्यायी जीवों के लिए निःशुल्क उपलब्ध कराया जाता है।

जिनागम पंथ ग्रंथमाला : ग्रन्थांक – 4

श्री मद् आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित

रयणसार

(गाथा 8 से 25 तक)

प्रवचनवृत्ति

रयणोदय

(द्वितीय भाग)

प्रवचन वृत्तिकार
भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी मुनिराज

जिनागम पंथ, प्रकाशन

जिनागम पंथ ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक - 4

मूलग्रंथ : रयणसार (आचार्य कुन्दकुन्द देव)

शुभाशीष : सूरिगच्छाचार्य श्री विरागसागर जी मुनिराज

प्रवचनवृत्ति : रयणोदय (द्वितीय भाग)

प्रवचन वृत्तिकार : भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी

समावलोकन : मुनि श्री विचिन्त्यसागर जी

संचयन : आर्यिका विद्यान्त श्री माताजी
आर्यिका विमलांत श्री माताजी

प्रस्तुति : बा. ब्र. विशु दीदी

सम्पादन : डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर

संस्करण : 03 नवम्बर 2019 (वी.नि.सं. 2546)

प्रथमावृत्ति : 2000 प्रति

प्राप्ति स्थान :

जिनागम पंथ ग्रंथालय
श्री दिगम्बर जैन मंदिर, गुलाबरा
छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मो. : 9425146667

जिनागम पंथ ग्रंथालय
श्री दिगम्बर जैन मंदिर, श्रमणपुर,
लखनादौन, जिला सिवनी (म.प्र.)
मो.: 9425148167

राष्ट्रीय विमर्श जागृति मंच
भिण्ड (म.प्र.)
मो. : 9826217291

डॉ. विश्वजीत कोटिया
आगरा (उ.प्र.)
मो. : 9412163166

अरिन्जय जैन
दिल्ली
मो. : 9810099002

मुद्रक :
पारस एन्टरप्राइज़िज 'प्रिंस जैन', दिल्ली
फोन : 0120-4572108, 9811011018

परिचय की वीथियों में

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज

लौकिक यात्रा

पूर्व नाम : श्री राकेश कुमार जैन

पिता : श्री सनत कुमार जैन

माता : श्रीमती भगवती जैन

जन्म स्थान : जतारा, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

जन्म तिथि : मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी सं. 2030

जन्म दिनांक : 15 नवम्बर, 1973, दिन : गुरुवार

शिक्षा : बी.एस.सी. (बायलॉजी)

भ्राता : दो (अग्रज राजेश जैन, अनुज चक्रेश जैन)

भगिनी : दो – (कमला, प्रियंका)

विवाह : बाल ब्रह्मचारी

खेल : बैडमिंटन, शतरंज

(विशेषता–दोनों खेल जिनसे सीखे उन्हीं के साथ फाईनल खेलते हुए चैंपियन कप विजेता)

सामाजिक सेवा : मंत्री–श्री दिगम्बर जैन नवयुवक संघ, जतारा

रुचि : अध्ययन, संगीत, पेंटिंग

सांस्कृतिक रुचि : अनेक धार्मिक, सामाजिक नाट्य मंचन

परमार्थ यात्रा

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज के प्रथम बार जतारा नगर में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रयगजरथ महोत्सव में समाज की ओर से निवेदन (सन्-1995, स्थान-मोराजी सागर, म.प्र.)

त्याग के संस्कार :

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज की जतारा नगर में वैयावृत्ति के समय आजीवन आलू, प्याज एवं रात्रि भोजन के त्याग से गृह त्याग की भावना।

ब्रह्मचर्य व्रत :

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज ससंघ का विहार कराते हुए सिद्धक्षेत्र श्री अहार जी में भगवान शान्तिनाथ की चरणछाया में फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी, सोमवार संवत् 2051, 27 फरवरी 1995 को आचार्यश्री से दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।

सामायिक प्रतिमा :

आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज से पार्श्वनाथ मोक्ष सप्तमी के अवसर पर सामायिक प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। स्थान-ललितपुर क्षेत्रपाल जी, 3 अगस्त 1995, गुरुवार।

ऐलक दीक्षा :

फाल्गुन शुक्ला पंचमी, शुक्रवार, संवत् 2052, 23 फरवरी 1996 को देवेन्द्रनगर (पन्ना) में तपकल्याणक के दिन आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज से ऐलक दीक्षा ग्रहण की और नाम पाया ऐलक विमर्शसागर जी।

मुनि दीक्षा :

पौष कृष्णा 11, संवत् 2055, सोमवार दिनांक 14 दिसम्बर 1998 को अतिशय क्षेत्र बरासो (भिण्ड) में आचार्यश्री विरागसागरजी से मुनि दीक्षा ग्रहण की और मुनि विमर्शसागर नाम पाया।

आचार्य पद घोषित :

आचार्यश्री विरागसागरजी ने 2005 को कुन्थुगिरी पर गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी सहित 14 आचार्य एवं 200 पिच्छिओं के मध्य आचार्य पद घोषित किया।

आचार्य पद संस्कार :

मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी सं. 2067 रविवार दिनांक 12 दिसम्बर 2010 को बाँसवाड़ा, (राजस्थान) में आचार्यश्री विरागसागरजी ने आचार्य पद के संस्कार किये और नाम दिया आचार्य विमर्शसागर जी।

शान्ति भक्ति की सिद्धि

25 दिसम्बर 2015, सिद्धक्षेत्र अहार जी में भगवान श्री शान्तिनाथ स्वामी के अतिशयकारी पादमूल में, संघस्थ बा.ब्र. विशु दीदी की असाध्य बीमारी (रोग) से करुणान्वित हो पूज्य गुरुदेव ने जब लगभग 1400 वर्ष प्राचीन आचार्य पूज्यपाद स्वामी रचित शान्त्यष्टक का भावपूर्वक पाठ किया तो देखते ही देखते क्षणमात्र में दीदी असाध्य रोग से मुक्त हो गईं। तब क्षेत्र के यक्ष-यक्षणियों द्वारा गुरुदेव की महापूजा की गई और सूचित किया कि आपको अपनी निर्मल साधना से इस पंचमकाल में दुर्लभतम् शान्ति भक्ति की सहज ही सिद्धि प्राप्त हुई है। साथ ही पूज्य गुरुदेव को 'अहार जी के छोटे बाबा', 'भावलिंगी संत', 'शान्तिप्रभु के लघुनंदन' आदि संज्ञायें प्रदान की।

शब्दालंकार

रत्नत्रय के ऊर्जस्वी और तेजस्वी अलंकारों से जिनकी आत्मा का एक-एक प्रदेश अलंकृत है। सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् की दिव्य रश्मियों से आलोकित पूज्य गुरुवर विमर्शसागर जी महाराज का विराट व्यक्तित्व किन्हीं शब्दालंकारों का मोहताज नहीं है। फिर भी जगह-जगह की धर्मप्राण-समाजों, ओजस्वी संगठनों एवं यशस्वी व्यक्तियों ने नाना अवसरों पर अपने मनोभावों को शब्दों में समेटकर गुरुचरणों में कई शब्दालंकार प्रस्तुत किये हैं और अपना सौभाग्य माना है।

वात्सल्य शिरोमणि–संत के जीवन का सबसे प्रभावी गुण होता है उसका अकृत्रिम वात्सल्य भाव। पूज्य गुरुवर को यह वात्सल्य की अमूल्य सम्पदा, गुरु परम्परा से विरासत में ही प्राप्त हुई है। वर्षायोग 2008 के उपरान्त उ.प्र. के आगरा नगर में पंचकल्याणक के अवसर पर आगरा समाज ने आपके वात्सल्य से प्रभावित होकर आपको **''वात्सल्य शिरोमणि''** के अलंकार से विभूषित किया।

श्रमण गौरव–पूज्य गुरुवर विमर्शसागर जी महाराज की अनुशासन के सुडौल साँचे में ढली निर्दोष श्रमणचर्या वर्तमान में श्रमण जगत को गौरवान्वित करती है। पूज्य श्री की आगमानुसारी चर्या से प्रभावित होकर एटा वर्षायोग-2009 में शाकाहार परिषद ने आपको **''श्रमण गौरव''** की उपाधि से अलंकृत किया और अपना सौभाग्य बढ़ाया।

वात्सल्य सिन्धु–वात्सल्य और करुणा के दो पावन तटों के बीच प्रवाहित गुरुवर की जीवन मंदाकिनी जनमानस की सतह पर बिखरी घृणा, बैर, कटुता की कलुषता को सहज ही धो डालती है। पूज्यश्री के इसी गुण से अनुग्रहीत हो, एटा में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के अवसर पर राजेश जैन गीतकार आदि कवि समूह ने गुरुवर को **''वात्सल्य सिन्धु''** का भाव वंदन अर्पित कर सौभाग्य माना।

आचार्य पुंगव–संतवाद, पंथवाद और ग्रंथवाद की वैचारिक संकीर्णताओं से असम्पृक्त पूज्य श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज की सिर्फ चर्या ही अनुकरणीय नहीं, अपितु उनका 'चतुरानुयोग' का निर्मल ज्ञान भी ज्येष्ठ है। ऐसे ज्ञान और चर्या में श्रेष्ठ संत के महिमावंत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जतारा जैन समाज ने पंचकल्याणक 2012 के अवसर पर आपको **''आचार्य पुंगव''** की उपाधि से भूषितकर अपना मान बढ़ाया।

राष्ट्रयोगी–पूज्य गुरुवर का ''वैचारिक वैभव'' सिर्फ जैनों तक सीमित नहीं अपितु हर जाति का व्यक्ति उसे अपनी विरासत मानता है अतः विजयनगर वर्षायोग में राष्ट्रवादी संस्था 'भारत विकास परिषद्' द्वारा आयोजित 'दिव्य संस्कार प्रवचनमाला' में आपके राष्ट्रोन्नति से समृद्ध उपदेशों को सुनकर आपको **''राष्ट्रयोगी''** का अलंकार समर्पित किया।

सर्वोदयी संत—पूज्य आचार्यश्री की निर्भीक शैली जनमानस को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है तभी तो पूज्यवर के प्रवचनों में जैनों के साथ-साथ अजैन भी देशना को सुनकर आनंदित होते हैं। आपके उपदेशों में प्राणीमात्र के उत्थान की दिव्य चमक नजर आती है तभी तो विजयनगर दिगम्बर जैन समाज ने 2012 वर्षायोग में आपको ''**सर्वोदयी संत**'' की उपाधि से नवाजा।

प्रज्ञामनीषी—श्रुताराधना के अनुपम आराधक, जिनेन्द्रवाणी के गहन प्रचारक, वाणी और कलम के अनूठे जादूगर पूज्यश्री के तीक्ष्ण प्रज्ञा और निर्मल ज्ञान से प्रभावित होकर, अखिल भारतीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन विजयनगर-2012 में कविगण एवं भारत विकास परिषद द्वारा ''**प्रज्ञामनीषी**'' की उपाधि से विभूषित किया गया।

राष्ट्रहितैषी—उत्तरप्रदेश के एटा नगर में स्वामी विवेकानन्द की 150वीं जन्म जयंती के अवसर पर विश्व हिन्दू परिषद के तत्त्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय युवा सम्मेलन में पूज्य गुरुदेव के राष्ट्रहित में समर्पित देशोन्नति परक अमूल्य चिंतन से प्रभावित हो विश्व हिन्दू परिषद द्वारा आपको ''**राष्ट्रहितैषी**'' अलंकरण से अलंकृत किया गया।

आदर्श महाकवि—सम्प्रतिकाल में कुरल शैली के सैकड़ों विषयों को हृदयंगम करनेवाले अमर महाकाव्य ''**जीवन है पानी की बूँद**'' के शब्द शिल्पी, भजन, गजल, मुक्तक, कविता, नव कविता, पद्यानुवाद, सवैया आदि अनेक जटिल विधाओं पर साधिकार कलम चलानेवाले परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज के अपूर्व काव्यात्मक अवदान से प्रेरित हो, 14 नवम्बर 2016 को अखिल भारतीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन में, देश के ख्यातिलब्ध मूर्धन्य कवियों ने सुरेश 'पराग' के नेतृत्व में एवं पं. संकेत जी के मार्गदर्शन में सकल जैन समाज देवेन्द्रनगर की गरिमामयी अनुमोदना के संग पूज्यश्री को ''**आदर्श महाकवि**'' का अलंकरण भेंट कर निज सौभाग्य वर्धन किया।

साहित्यिक यात्रा

आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज यूँ तो शरीर से दुबले-पतले लेकिन गौरवर्ण, शुभ संस्थान, चौड़ा ललाट, दमकता मुखमण्डल, प्रशस्त मुद्रा, मधुर मुस्कान के धारी

हैं, ऐसे ही आचार्यश्री की लेखनी भी जनमानस के हृदय को छूनेवाली है। आचार्यश्री ने अनेक विषयों पर कलम चलाते हुए साहित्य सृजन किया है।

काव्य, पाठ संग्रह–

1. हे वन्दनीय गुरुवर (काव्य)
2. मानतुंग के मोती
3. विमर्शाञ्जलि (पूजा पाठ संग्रह)
4. गीताञ्जलि (भजन)
5. विरागाञ्जलि (श्रमण पाठ संग्रह)
6. जीवन है पानी की बूँद (भाग-1)
7. जीवन है पानी की बूँद (भाग-2)
8. जीवन है पानी की बूँद (समग्र)
9. जीवन चलती हुई घड़ी (काव्य)
10. खूबसूरत लाइनें (काव्य)
11. समर्पण के स्वर (काव्य)
12. आइना (काव्य)
13. सोचता हूँ कभी-कभी (काव्य)
14. मेरा प्रेम स्वीकार करो (काव्य)
15. वाह क्या खूब कही (काव्य)
16. करलो गुरु गुणगान (काव्य)
17. आओ सीखें जिनस्तोत्र
18. चटपटे प्रश्न-स्वादिष्ट उत्तर (पहेली)

प्रवचन :

1. रयणोदय (प्रथम भाग)
2. रयणोदय (द्वितीय भाग)
3. रयणोदय (तृतीय भाग)
4. गूँगी चीख
5. भरत जी घर में वैरागी
6. शब्द शब्द अमृत
7. शंका की एक रात
8. जनवरी विमर्श
9. जैन श्रावक और दीपावली पर्व

गज़ल संग्रह :

ज़ाहिद की ग़जलें

विधान :

- आचार्य विरागसागर विधान
- श्री एकीभाव विधान
- श्री भक्तामर विधान (3)
- श्री विषापहार विधान
- श्री कल्याण मंदिर विधान
- श्री श्रमण उपसर्ग निवारण विधान

चालीसा : गणधर चालीसा

टीका : योगसार प्राभृत (प्राकृत/हिन्दी) : अप्पोदया / विमर्शोदया

लिपि : विमर्श लिपि, विमर्श अंक लिपि

भाषा : विमर्श एम्बिसा

पद्यानुवाद :

1. सुप्रभात स्तोत्र
2. महावीराष्टक स्तोत्र
3. लघु स्वयंभू स्तोत्र
4. भक्तामर स्तोत्र (त्रय पद्यानुवाद)
5. गोम्मटेस स्तुति
6. द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ)
7. विषापहार स्तोत्र
8. एकीभाव स्तोत्र
9. पञ्चमहागुरुभक्ति
10. तीर्थंकर जिनस्तुति
11. गणधरवलय स्तोत्र
12. कल्याणमंदिर स्तोत्र
13. परमानंद स्तोत्र
13. अर्हत् स्तवन

बहुचर्चित भजन :

1. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य)
2. कर तू प्रभु का ध्यान
3. ऋण मुक्ति का वर दीजिये
4. शान्तिनाथ कीर्तन
5. देश और धर्म के लिये जिओ
6. माँ

प्रेरणा से प्रकाशन :

1. सिर्फ दो प्रवचन (आचार्य विरागसागरजी, सम्पादक-आचार्य विमर्शसागर जी)
2. हिन्दी साहित्य की सन्त परम्परा में आचार्य विरागसागर के कृतित्त्व का अनुशीलन (डॉ. लोकेश खरे)
3. समसामयिक आचार विद्वत् संगोष्ठी (कोटा)

4. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (शिवपुरी)
5. प्रज्ञाशील महामनीषी

प्रेरणा से स्थापित :

● आचार्य विरागसागर ग्रंथमाला

● जिनागम पंथ ग्रंथमाला

उद्देश्य : मूल जिनागम का संरक्षण, प्रकाशन

प्रचार-प्रसार एवं लोकोपयोगी धार्मिक, नैतिक साहित्य का निर्माण, प्रकाशन

विद्वत् संगोष्ठी :

1. समसामयिक आचार विद्वत् संगोष्ठी (कोटा-2006)
2. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (शिवपुरी-2007)
3. जैन दर्शन में कर्म सिद्धान्त राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (बड़ौत-2014)
4. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य) राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (बड़ा मलहरा-2016)
5. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य) राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (देवेन्द्रनगर-2016)
6. सम सामयिक राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी एवं जैन पत्रकार, संपादक सम्मेलन (जबलपुर-2017)
7. 'रयणोदय' ग्रंथ पर राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी एवं जैन पत्रकार, सम्पादक सम्मेलन (छिंदवाड़ा - 2018)
8. रयणोदय (भाग 1-2) पर राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (दुर्ग-2019)

संस्कार यात्रा

ऐतिहासिक पूजन प्रशिक्षण शिविर—आचार्यश्री के सानिध्य एवं निर्देशन में आयोजित पूजन प्रशिक्षण शिविर एक ऐसी प्रयोगशाला है जिसमें जैनधर्म के संस्कार

एवं शिक्षा का प्रयोग करना सिखाया जाता है। यदि चेतनतीर्थ स्वरूप उपासक संस्कारित नहीं, तो अचेतनतीर्थ स्वरूप जिनमंदिरों का महत्व नहीं जाना जा सकता। आचार्यश्री जब अपने मधुर कंठ से शिविर का यथायोग्य संचालन करते हैं तब हर श्रावक भक्ति में ऐसा लीन हो जाता है कि 4-5 घंटे का भी पता नहीं चलता। आचार्यश्री के निर्देशन में आयोजित इस शिविर के माध्यम से आज हजारों लोग जैनत्व के संस्कारों से जुड़े हैं। अभी तक 22 पूजन शिविर आयोजित हो चुके हैं–

1. महरौनी (उ.प्र.)
2. वरायठा (म.प्र.)
3. अंकुर कॉलौनी, सागर (म.प्र.)
4. सतना (म.प्र.)
5. अशोक नगर (म.प्र.)
6. रामगंजमण्डी (राज.)
7. भानपुरा (म.प्र.)
8. सिंगोली (म.प्र.)
9. कोटा (राज.)
10. शिवपुरी (म.प्र.)
11. आगरा (उ.प्र.)
12. एटा (उ.प्र.)
13. डूंगरपुर (राज.)
14. अशोकनगर (म.प्र.)
15. विजयनगर (राज.)
16. भिण्ड (म.प्र.)
17. बड़ौत (उ.प्र.)
18. टीकमगढ़ (म.प्र.)
19. देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
20. जबलपुर (म.प्र.)
21. छिंदवाड़ा (म.प्र.)
22. दुर्ग (छ.ग.)

पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सव :

1. नेमिनाथ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव-2002 (रजवांस-सागर, म.प्र.)
2. आदिनाथ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव-2003 (महरौनी, ललितपुर, उ.प्र.)
3. आदिनाथ पंचकल्याणक, रथ महोत्सव-2004 (बूँदी-राज.)
4. आदिनाथ पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सव-2007 (रामगंजमण्डी, राज.)
5. पार्श्वनाथ पंचकल्याणक, रथोत्सव-2007 (कोटा, राज.)
6. आदिनाथ पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सव-2008 (शिवपुरी, म.प्र.)

7. आदिनाथ पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सव-2009 (आगरा, उ.प्र.)
8. आदिनाथ पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सव-2010 (एटा, उ.प्र.)
9. आदिनाथ पंचकल्याणक, त्रय गजरथ महोत्सव-2012 (जतारा, म.प्र.)
10. आदिनाथ पंचकल्याणक, प्रतिष्ठा महोत्सव-2013 (तीर्थधाम आदीश्वरम् चंदेरी, म.प्र.)
11. आदिनाथ पंचकल्याणक, प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव-2015 (पृथ्वीपुर, म.प्र.)
12. आदिनाथ पंचकल्याणक, प्रतिष्ठा, गजरथ महोत्सव-2015 (टीकमगढ़, म.प्र.)
13. आदिनाथ पंचकल्याणक, प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव-2015 (बैरवार, जतारा, म.प्र.)
14. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, गजरथ महोत्सव-2018 (धनौरा, म.प्र.)

चातुर्मास :

1. मढ़ियाजी जबलपुर (म.प्र.) – 1996
2. भिण्ड (म.प्र.) – 1997
3. भिण्ड (म.प्र.) – 1998
4. भिण्ड (म.प्र.) – 1999
5. महरौनी (उ.प्र.) – 2000
6. अंकुर कॉलौनी (सागर, म.प्र.) – 2001
7. सतना (म.प्र.) – 2002
8. अशोकनगर (म.प्र.) – 2003
9. रामगंजमण्डी (राज.) – 2004
10. सिंगोली (म.प्र.) – 2005
11. कोटा (राज.) – 2006
12. शिवपुरी (म.प्र.) – 2007
13. आगरा (उ.प्र.) – 2008
14. एटा (उ.प्र.) – 2009
15. डूंगरपुर (राज.) – 2010
16. अशोकनगर (म.प्र.) – 2011
17. विजयनगर (राज.) – 2012
18. भिण्ड (म.प्र.) – 2013
19. बड़ौत (उ.प्र.) – 2014
20. टीकमगढ़ (म.प्र.) – 2015
21. देवेन्द्रनगर (म.प्र.) – 2016
22. जबलपुर (म.प्र.) – 2017
23. छिंदवाड़ा (म.प्र.) – 2018
24. दुर्ग (छ.ग.) - 2019

वर्तमान संत संस्था में आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज एक ऐसे श्रेष्ठ संत हैं जिनके पास ज्ञान संस्कार की चर्चा एवं चर्या देखने-सुनने को मिलती है। कम-बोलना लेकिन काम का बोलना आचार्यश्री की अपनी विशिष्ट शैली है। प्रवचनों में सकारात्मक चिंतन को परोसने वाले हित-मित प्रियभाषी **'जिनागम पंथ प्रवर्तक आचार्यश्री पंथ-संत जातिवाद की भी खूब खबर लेते हैं। सच्चे संतत्व को प्रकाशित करनेवाले आचार्यश्री कहते हैं, पंथ-संत-जातिवाद को बढ़ावा देनेवाले श्रमण एवं श्रावक जिनधर्म के विनाशक होंगे। आचार्यों की अपनी-अपनी आचार्य परम्परा से श्रावक साधुओं के प्रति अश्रद्धानी होंगे, साथ ही सामाजिक समरसता, एकता नष्ट होगी।** सचमुच आचार्यश्री का चिन्तन भविष्य की व्याख्या कर रहा है। आचार्यश्री का सरल-सौम्य व्यक्तित्व एवं पूर्वापर चिंतन ही आचार्यश्री की अलग पहचान है। ऐसे युगचेता संत के चरणों में हम बारम्बार नमन करते हैं।

श्रमण विचिन्त्यसागर
(संघस्थ)

पूज्य गुरुदेव से संबंधित अन्य साहित्य

जीवनी साहित्य :

1. राष्ट्रयोगी : लेखक – श्री सुरेश 'सरल' जबलपुर (म.प्र.)
2. आंगन की तुलसी : लेखक – प्राचार्य श्री निहाल चन्द जैन, बीना (म.प्र.)
3. जतारा का ध्रुवतारा : लेखक – श्री कपूर चंद जैन 'बंसल' जतारा (म.प्र.)
4. भावलिंगी संत (महाकाव्य) : लेखक – श्रमण विचिन्त्यसागर मुनि (संघस्थ)
5. विमर्श धाम (महाकाव्य) : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
6. सर्वोदयी संत (महाकाव्य) : लेखक – श्री ज्ञानचन्द जैन, 'दाऊ' सागर (म.प्र.)
7. विमर्श महाभाष्य : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
8. विमर्श वाटिका : लेखक – श्री कपूर चंद जैन 'बंसल' जतारा (म.प्र.)
9. विमर्श भक्ति शतक : लेखिका – श्रीमती स्मृति जैन 'भारत' अशोक नगर (म.प्र.)
10. विमर्श शतक 1, 2 : लेखक – पं. ब्रजेन्द्र जैन, देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
11. विमर्श वंदना : लेखक – कवि शशिकर 'खटका' राजस्थानी, विजयनगर (राज.)

विधान :

1. आचार्य विमर्शसागर विधान : लेखक – श्रमण विचिन्त्यसागर मुनि (संघस्थ)
2. संकट मोचन तारणहारे-गुरु विमर्श विधान : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र.)

स्मारिकायें :

1. विमर्श वारिधि (विजयनगर चातुर्मास 2012, स्मारिका)
2. विमर्श प्रवाह (बड़ौत चातुर्मास 2014, स्मारिका)
3. विमर्श गीतिका (टीकमगढ़ चातुर्मास 2015, स्मारिका)
4. विमर्शानुभूति (देवेन्द्रनगर चातुर्मास, 2016, स्मारिका)

मासिक पत्रिका :

विमर्श प्रवाह (मासिक)
प्रधान संपादक-डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (बड़ौत)
संपादिका-डॉ. अल्पना जैन (ग्वालियर)
प्रबंध संपादक-डॉ. विश्वजीत जैन (आगरा)
संपादक-पं. सर्वेश शास्त्री

पुरोवाक्

भारतीय दर्शनों में समस्त प्राणियों के कल्याण की मंगल कामना की गई है। जैन दर्शन में तो जनकल्याण की भावना करते हुए कहा गया है कि प्रत्येक भव्यजीव मोक्ष पद को प्राप्त कर सकता है अर्थात् स्वयं भगवान बन सकता है। जीवों के कल्याण हेतु अनादिकाल से सतत् निराबाध तीर्थंकर भगवन्तों की देशना प्रवाहमान होती रही है। इस सतत् प्रवाहमान देशना को निर्ग्रन्थ दिगम्बराचार्यों ने अत्यधिक, अनथक परिश्रम करके जनकल्याण के हेतु निबद्ध किया है। इसमें उनका निर्लोभभाव रहा है, यहाँ तक कि अपने नाम, परिचय आदि का उल्लेख नहीं किया है। इसी परम्परा में ईसा की प्रथम शताब्दी में अध्यात्म विद्या के महान ज्ञाता आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी हुए हैं।

आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी को अध्यात्म विद्या का हिमालय कहा जा सकता है। आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ऐसे समय में हुए जब श्वेताम्बर संप्रदाय अपनी जड़ें अच्छी तरह जमा चुका था और दिगम्बर संप्रदाय में मुनियों में शिथिलाचार धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। वे ऐसे महान पुरोधा थे कि उन्होंने अपनी आध्यात्मिक धारा के माध्यम से दोनों कार्य (दिगम्बर संप्रदाय की श्रेष्ठता एवं शिथिलाचार पर कठोर प्रहार) सफलतापूर्वक पूर्ण किये इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी को दिगम्बर जैन आम्नाय में सर्वाधिक महत्व दिया गया है। भगवान महावीर एवं गौतम गणधर के पश्चात् इन्हीं का स्मरण किया गया है।

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

आचार्य भगवन् ने स्व-पर कल्याण हेतु चौरासी पाहुड (ग्रन्थ) लिखे। वर्तमान में समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड, नियमसार, बारसाणुवेक्खा, रयणसार, दसभक्ति आदि उपलब्ध हैं। कुछ विद्वान मूलाचार ओर कुरलकाव्य को भी आपकी कृति मानते हैं। यह भी कहा जाता है कि षट्खंडागम के प्रथम तीन खंडों पर आपने परिकर्म नामक टीका लिखी थी, पर वर्तमान में वह उपलब्ध नहीं है।

परवर्ती आचार्यगण, आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं, क्योंकि उन्होंने उन्हीं के ग्रन्थों को आधार बनाकर ग्रन्थों, टीकाओं आदि की रचना की है। उनके तीन ग्रन्थ पंचास्तिकाय, प्रवचनसार एवं समयसार प्राभृतत्रय कहे जाते हैं। ये जैनों के

उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता कहे जा सकते हैं। समयसार ग्रन्थ दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानक इन तीनों आम्नायों में बड़े सम्मान तथा आदर के साथ पढ़ा जाता है।

'रयणसार' ग्रन्थ की गाथाओं की संख्या तथा पाठ में अन्तर दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तक की गाथाओं के क्रम में भी अन्तर परिलक्षित होता है। मध्य की कुछ गाथायें अपभ्रंश में हैं जो आचार्य भगवन् की प्रतीत नहीं होती हैं। इसमें जो भी कारण रहे हों पर रयणसार ग्रन्थ के रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ही हैं इसमें कोई संदेह नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि वे शिथिलाचार के घोर विरोधी थे। उन्हें शिथिलाचार न मुनियों में मान्य था, न श्रावकों में। वे इस विषय में कठोर प्रशासक के रूप में दिखते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी विगत दो हजार वर्षों से अपने ग्रन्थों के माध्यम से शिथिलाचार के विरुद्ध आवाज उठाकर मोक्षमार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के लिए आरोप लगता रहा है कि वे सदैव मुनियों की चर्चा करते हैं, श्रावकों के विषय में कुछ भी नहीं कहते हैं। ग्रन्थ रयणसार इन आरोपों को झुठलाता है। यह ग्रन्थ श्रावक व मुनिधर्म का आचार-विचार कैसा होना चाहिये इसका विस्तार से वर्णन करता है। जैसे गाड़ी में दो पहिये होते हैं, ऐसे ही श्रावक एवं मुनि धर्मरूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। दोनों पहिये अपने-अपने स्थान में रहते हुए चलते हैं तो गाड़ी बिना किसी बाधा के अच्छी तरह चलती है। आचार्य भगवन् ने श्रावक-मुनि धर्म का वर्णन करने के साथ-साथ निरन्तर कठोर अनुशासन में रहने की प्रेरणा दी है। जीवन के प्रत्येक क्षण में दोनों को जागरूक रहना चाहिए और ये विचार करना चाहिये कि हमारी बाह्य एवं अंतरंग प्रवृत्ति कैसी चल रही है।

श्रावकधर्म और मुनिधर्म की स्वतंत्र विवेचना करनेवाले कई ग्रन्थ हैं। जैसे श्रावकधर्म हेतु रत्नकरण्डक श्रावकाचार आदि 32 श्रावकाचार, सागार धर्मामृत, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय आदि एवं मुनिधर्म विवेचक मूलाचार, भगवती आराधना, अनगार धर्मामृत आदि हैं लेकिन 'रयणसार' एक ऐसा अनूठा ग्रन्थ है जो उभय धर्म की व्याख्या करता है। इस ग्रन्थ की शैली आगम और अध्यात्म का अनूठा समन्वय है।

पूज्य आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज जो देखने में दुबले-पतले गौरवर्ण के हैं भगवान महावीर के जिनागम में अटूट श्रद्धा के धारक हैं। वर्तमान हुंडावसर्पिणी काल के कारण शिथिलाचार में उत्तरोत्तर वृद्धि स्वाभाविक है पर इनका कथन है-**माना कि वर्तमान में संहनन हीन है, परन्तु श्रद्धान तो हीन नहीं होना चाहिए। शिथिलाचार**

को कालदोष बताते हुए विभिन्न पंथों में यथा–तेरापंथ, बीसपंथ, शुद्ध तेरापंथ, साढ़े सोलह पंथ, तारण पंथ, श्वेताम्बर पंथ आदि संज्ञाओं को प्रोत्साहन न देकर मात्र जिनागम पंथ का ही श्रद्धान करना चाहिए। नाना संज्ञा विभूषित पंथ 'सादि' हैं 'अनादि' नहीं। जो विभिन्न प्रकार के पंथ बने हैं वे कुछ व्यक्तियों ने अपने मान की पूर्ति के लिए ही बनाये हैं। वर्तमान में श्रावक और श्रमण में समन्वय के नाम पर, सुविधाओं के मोह में निरन्तर शिथिलाचार, पंथ परम्परा का पोषण होता चला जा रहा है।

पूज्य आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज पंथ परम्पराओं के घोर विरोधी हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान में समाज में जो बिखराव दिख रहा है, बढ़ रहा है यह पंथवाद की ही देन है, उसका ही प्रसाद है। उनका कथन है कि कालदोष के नाम पर पंथवाद का पोषण स्वीकार्य नहीं है। वे इसके साथ-साथ शिथिलाचार, अनुशासनहीनता के भी विरोधी हैं। वे संघ में किसी भी प्रकार की मर्यादा उल्लंघन को स्वीकार नहीं करते हैं।

आचार्यश्री के प्रवचनों में, साहित्य में नाना पंथों का विरोध एवं जिनागम पंथ का दृढ़ता से पालन सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। **पूज्य आचार्य श्री का कहना है कि नाना पंथ अनादिनिधन न होकर सादि–सान्त हैं जबकि जिनागम पंथ अनादिनिधन शाश्वत है, उनकी कथनी एवं करनी में कोई अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है।** आचार्य श्री की वक्तृत्व शैली अत्यंत मधुर, आकर्षक, हृदयग्राही है। वे आगम, सिद्धान्तों की बातों को इतनी सरल, मधुर भाषा में प्रस्तुत करते हैं कि वो कर्णपुटों के माध्यम से अमृत के समान हृदयग्राही हो जाती है। श्रोता उनके वचनों को सुनने को लालायित रहता है। मधुर, शिष्ट वचन एवं सौम्य, तेजोमय चेहरा दोनों का योग 'मणि–कांचन' के समान है जो श्रावक पर अमिट प्रभाव डालता है। उनकी जिनागम के अनुसार निर्दोष चर्या असंयमी को भी इतना प्रभावित करती है कि उसे लगता है कि वह कौन–सा सौभाग्यमय क्षण होगा जब हम इनके समान बन सकें। श्रेष्ठ वक्ता होने के साथ इनके कंठ में कविरूप में सरस्वती विराजती है। इनकी आगमयुक्त कवितायें जो जिनेन्द्र अर्चना के विभिन्न रूपों में यथा–पूजा, स्तुति, भजन, ग़ज़ल आदि के रूप में हैं, श्रोता पढ़कर सुनकर मंत्रमुग्ध हो जाता है। जीवन है पानी की बूँद... जो कविता से शुरु होकर महाकाव्य बन गया है सब श्रोता गुनगुनाते देखे जाते हैं। एक तरह से यह इनकी पहचान बन गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ रयणोदय भाग-2 में गाथा 8 से 25 तक रयणसार ग्रन्थ पर आधारित प्रवचन संकलित हैं। इन गाथाओं का भावार्थ शीर्षकों, पद्यानुवाद के माध्यम से बड़ी सुलभता, सहजता से हृदयंगम हो जाता है। विषय को अन्य ग्रन्थों के उद्धरण, कथानक आदि के माध्यम से जनसाधारण के लिए सरलता, सहजतापूर्वक ग्राह्य बनाने का सफल प्रयास किया गया है। प्रवचन के बीच-बीच में आगम-सिद्धान्तों का वर्णन भी किया गया है जो श्रोता / पाठक को जिनागम के रहस्य भी उजागर करता चलता है। इसकी अतिसंक्षिप्त बानगी नीचे प्रस्तुत है।

पूज्य आचार्यश्री सम्यग्दृष्टि श्रावक के 77 गुणों का वर्णन करने के साथ कह रहे हैं कि **गृहस्थ बनना सरल है श्रावक बनना पुरुषार्थ साध्य है क्योंकि जीव गृहस्थ बनकर जन्म लेता है, श्रावक बनकर नहीं।** श्रावक की महिमा बखान करते हुए कह रहे हैं कि गृहस्थ जीवन में रहते हुए श्रावक धर्म का पालन किया जाए तो जीव वैमानिक देवों तक में जन्म लेता है। **वर्तमान में साधु-साध्वियाँ भी पिच्छी आदि में राखी बँधवाने लगे हैं जो आगमानुकूल नहीं है। यह लोक क्रिया है धर्म क्रिया नहीं। इस पर श्रावक-साधुओं को विचार करना चाहिये।**

पूज्य आचार्य भगवन् 9वीं गाथा का विवेचन करते हुए कह रहे हैं कि जो मनुष्य देव-शास्त्र-गुरु के भक्त होने के साथ-साथ रत्नत्रयधारी होते हैं वही सच्चे सुख अर्थात् अतीन्द्रिय सुख को भोगनेवाले मोक्षसुख को प्राप्त करते हैं। परिवार की खुशहाली का मंत्र बताते हुए कह रहे हैं कि **''परस्पर निस्वार्थ प्रेमभाव ही परिवार को खुशहाल बनाता है।''** सच्चे सुख को पाने का मार्ग बताते हुए कह रहे हैं–**''पहले राग घटाओ, फिर राग हटाओ और वीतराग बन जाओ।''**

पूज्य आचार्य भगवन् 11वीं गाथा के प्रवचन में बता रहे हैं कि दान और पूजा श्रावक का मुख्य धर्म है और ध्यान तथा अध्ययन साधु का मुख्य धर्म है। **''साधु का काम तंत्र-मंत्र-यंत्र का प्रसाद बाँटना नहीं है साधु तो ज्ञान और ध्यान का प्रसाद देता है''।**

पूज्य आचार्य भगवन् 12वीं गाथा में बहिरात्मा जीव की पहचान का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि वह दान नहीं करता। लेना तो जानता है लेकिन देना उसके स्वभाव में नहीं है। आचार्यश्री दान और त्याग में अंतर बताते हुए कहते हैं–''दान परोपकार है और त्याग स्व उपकार है।

पूजा का फल बताते हुए कहते हैं शुद्ध मनवाला श्रावक पूजा के फल से तीनों लोकों में देवों से पूज्य होता है और दान देनेवाला इहलोक और परलोक में सुख को प्राप्त होता है।

पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जहाँ जिनलिंग दिख रहा है वहाँ पात्र-अपात्र का विचार करना अकर्त्तव्य है। श्रद्धा सदैव विकल्प रहित होती है। सुपात्रदान से परम्परा से मुक्ति की प्राप्ति होती है। श्रेष्ठ कर्म ही श्रेष्ठ फल देते हैं।

पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे हैं **आवश्यकताओं की पूर्ति तो न्यायपूर्वक हो सकती है लेकिन आसक्ति की पूर्ति न्यायपूर्वक नहीं हो सकती।** जैसा धन होता है वैसा मन हो जाता है। अपने बच्चों को पुरुष बनाइये अर्थात् पुरुषार्थ करना सिखाइये।

आचार्य महाराज वर्तमान स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कह रहे हैं कि उच्च, श्रेष्ठ, कुल, वंश, घर, परिवार के लोग निम्न कुलवालों के सम्मुख होते जा रहे हैं यह विचारणीय विषय है। आज के लोग शिक्षित होते हुए भी अशिक्षितों जैसा जीवन जी रहे हैं अर्थात् आचार-विचार हीन जीवन जी रहे हैं। **जिस व्यक्ति का आचरण अच्छा है वह सुरूप है और जो आचरणहीन है वह कुरूप है।**

आचार्यश्री कह रहे हैं कि साधु के योग्य जो उपकरण हैं मात्र वही उनको देना चाहिये, अन्य नहीं। अन्त में कह रहे हैं कि निर्जरा का कोई महामंत्र है तो वह साधु वैयावृत्ति ही है अन्य नहीं।

पूरा ग्रन्थ आत्महितकारी उपदेशों से परिपूर्ण है। उपरोक्त वाक्य तो बानगी मात्र हैं। आप पूरा ग्रन्थ पढ़कर ज्ञानगंगा में डुबकी लगाकर आत्मसुख प्राप्त करें। इसी मंगल भावना के साथ पूज्य आचार्य श्री 108 विमर्शसागर जी मुनिराज के चरणों में नमोस्तु।

इंजी. दिनेश जैन

अरिहन्त फर्नीचर
आजाद मार्केट, रिसाली
भिलाई-490006
जि. दुर्ग (छ.ग.)
मो. 9399844246
9303806982

सम्पादकीय

डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर

रयणोदय परमपूज्य श्रीमद् आचार्य कुन्दकुन्द देव द्वारा विरचित ग्रन्थ रयणसार पर श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज द्वारा किये गये प्रवचनों का संग्रह है। प्रकृत द्वितीय भाग में आठवीं गाथा से पच्चीसवीं गाथा तक कुल अट्ठारह गाथाओं पर आचार्यश्री द्वारा किये गये प्रवचन संग्रहीत हैं, जिसका प्रकाशन जिनागम पंथ ग्रन्थमाला से हो रहा है। श्रावकों एवं श्रमणों के लिए परम उपयोगी रयणसार ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र का विशिष्ट विवेचन हुआ है। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने उक्त रत्नत्रय का प्रतिपादन करते हुए तीनों के समुदित रूप को मोक्ष का कारण प्रतिपादित किया है। वे लिखते हैं–

'जह णाम कोवि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण।।
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण।।[1]

अर्थात् जैसे कोई धनार्थी पुरुष राजा को जानकर श्रद्धान करता है और फिर प्रयत्नपूर्वक अनुचरण करता है, उसी प्रकार मोक्ष के इच्छुक पुरुष को जीवरूपी राजा को जानना चाहिए, श्रद्धान करना चाहिए तथा फिर उसका अनुचरण करना चाहिए।

यद्यपि ज्ञान की सम्यक्ता सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होती है, तथापि सम्यग्दर्शन भी कथञ्चित् ज्ञानपूर्वक ही होता है, जैसा कि उक्त गाथाद्वय से स्पष्ट है। रयणसार में श्रावकों के लिए दान एवं पूजा की तथा श्रमणों के लिए ध्यान एवं अध्ययन (स्वाध्याय) की मुख्यता का कथन किया गया है–

''दाणं पूजामुक्खं सावय धम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं जइधम्मो तं विणा तहा सो वि।।[2]

अर्थात् श्रावक धर्म में दान और पूजा मुख्य है। उसके बिना श्रावक नहीं कहा जा सकता है। यति धर्म में ध्यान और अध्ययन मुख्य है। उनके बिना मुनि भी वैसा ही (व्यर्थ) है।

अष्टम गाथा में श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य ने श्रावक के 77 गुणों का कथन किया है। इसकी प्रवचनवृत्ति में आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज ने लाटी संहिता को उद्धृत करते हुए कहा है कि–**'क्रियावान् श्रावको मतः।'** अर्थात् जो क्रिया का धारक होता है, वही श्रावक माना गया है।[3] श्रावक के 77 गुणों का वर्णन करते हुए उन्होंने यशस्तिलकचम्पू, रत्नकरण्डश्रावकाचार, चारित्रसार, वसुनन्दिश्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अमितगतिश्रावकाचार, पंचाध्यायी, लाटी संहिता, सागार धर्मामृत आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों का सबहुमान उल्लेख किया है तथा जैनेतर महाभारत आदि ग्रन्थों से उनका समर्थन किया है। आचार्य श्री यदि इनका सन्दर्भ भी देते तो कथन की अधिक प्रामाणिकता सिद्ध होती। प्रचलित परम्परा को आचार्यश्री विवेकपूर्ण ढंग से मनाने की बात करते हैं। **रक्षाबन्धन के विषय में पूज्य श्री कहते हैं–''कलाई पर धागा बाँधकर आप कहते हो कि हम रक्षाबधन पर्व मनाते हैं। अरे यह कोई रक्षा करना है। जिनेन्द्र भगवान् ने यह अष्ट मूलगूण के नियम, व्रत रूप रक्षासूत्र दिये हैं। जो देह के साथ-साथ आत्मा की भी रक्षा करते हैं, सुरक्षा करते हैं। हम एक दूसरे के लिए धर्म के संस्कारों की राखी बाँधें। धर्म रक्षा का प्रण लें। यही सच्चा रक्षापर्व होगा।**

आजकल साधु-साध्वियाँ भी पिच्छी आदि में राखी बँधवाने लगे हैं, जो आगमानुकूल नहीं है। इस पर भी सोने-चाँदी की राखी वीतरागी सन्तों के उपकरण में बाँधना शायद सामायिक चारित्र का नाश करना ही है।''[4]

भक्ति का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि–''भक्ति में कितना भी विघ्न आये तो भी भक्तिवान् सम्यग्दृष्टि श्रावक कभी भी पंच परमेष्ठियों की भक्ति से विमुख नहीं होता है इसलिए निर्विघ्न भक्ति करनेवाला श्रावक कहा गया है''[5]

आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने रयणसार में लिखा है कि देव-शास्त्र-गुरु के भक्त, संसार-शरीर एवं भोग के परित्यागी तथा रत्नत्रयधारी मनुष्य ही शिवसुख को प्राप्त करते हैं।[6] इसके प्रवचन में आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज ने स्पष्ट कहा है–''जो

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की सच्चे हृदय से सच्ची भक्ति करता है, उस भक्ति का प्रभाव ही ऐसा है फल ही ऐसा है कि सब प्रकार की अनुकूलतायें, सुख-सामग्रियाँ प्राप्त होती ही हैं।''[7]

दसवीं और ग्यारहवीं गाथाओं पर प्रवचन करते हुए आचार्यश्री ने दान, पूजा, शील, उपवास, ध्यान, अध्ययन आदि का बड़ा ही चित्ताकर्षक विवेचन किया है तथा व्यवहाराभासियों एवं निश्चयाभासियों को जिनधर्म की समझ से हीन कहा है। वे कहते हैं–''बंधुओ! धर्म को समझना होगा। कुछ लोग व्यवहाराभासी हो जाते हैं और कुछ निश्चयाभासी हो जाते हैं। और अपने को मानते रहते हैं कि हम धर्मात्मा हैं ... व्यवहाराभासी जीव अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानता, शुद्धात्मा को नहीं पहचानता, शुद्धात्मा की रुचि नहीं रखता और निश्चयाभासी मात्र शुद्धात्मा की ही रुचि रखता है। दान, पूजा, शील आदि क्रियाओं से स्वच्छन्द हो जाता है। वह मान बैठता है कि इन पुण्य क्रियाओं से तो मेरा संसार बढ़ेगा।''[8] **पूज्य आचार्य श्री का स्पष्ट अभिमत है कि ''साधु का काम तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र का प्रसाद बाँटना नहीं है। साधु तो ज्ञान और ध्यान का प्रसाद देता है। जिसका फल अपूर्व सुख-शान्ति और हित की प्राप्ति है। ...क्योंकि ठगनेवाले लोग बहुत हैं दुनियाँ में, और सच्चा साधु मिलना बहुत दुर्लभ है।''**[9]

आचार्य कुन्दकुन्द देव का कथन है कि जो श्रावक दान नहीं देता है, धर्म नहीं पालता है, त्याग नहीं करता है, भोग भी नहीं भोगता है वह बहिरात्मा है। वह ऐसा पतंगा है जो लोभ कषायरूपी अग्नि में गिरकर मर जाता है।[10] इस कथन का आचार्यश्री विमर्शसागर जी ने अपने प्रवचन में विशद विमर्श किया है। वे कहते हैं–'सम्यग्दृष्टि हो जाये, अन्तरात्मा हो जाये और दान का भाव न आये ऐसा संभव ही नहीं है। नियम से उसकी आत्मा में दान के भाव उमड़ेंगे।

जब भी कोई श्रावक जिनमन्दिर आता है तो वह खाली हाथ नहीं आता, अपितु साथ में चढ़ाने हेतु सामग्री लाता है। क्यों लाता है वह चावल आदि अष्ट द्रव्य? इसलिए जिससे वह अपनी लोभ कषाय को जीत सके।[11]

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की रयणसार में स्पष्ट उद्घोषणा है कि जिनलिङ्ग को देखकर श्रावक धन्य हो जाता है। उसे पात्र-अपात्र का विचार करणीय नहीं है।

आचार्यश्री अपने प्रवचन में स्पष्ट करते हैं कि ''एक श्रावक जिनलिङ्ग और कुलिङ्ग का विचार तो करता है, किन्तु जिनलिङ्ग को देखने के बाद द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग का विचार नहीं करता है। क्यों? क्योंकि कोई भी श्रावक किसी के भी भावलिङ्ग को पहचान नहीं सकता।''[12] अत: किसी भी श्रावक को किसी को द्रव्यलिङ्गी / भावलिङ्गी कहने पर सावधानी रखना चाहिए। सुपात्र में दान देनेवाला व्यक्ति भोगभूमि एवं स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा क्रमश: निर्वाण-सुख को पाता है। जिनेन्द्रदेव की आज्ञा को न माननेवाला व्यक्ति शास्त्रों का कितना भी ज्ञाता क्यों न हो, वह मिथ्यादृष्टि है। उत्तम पात्र में दिया गया दान उत्तमफल को देनेवाला होता है। आचार्यश्री कहते हैं– ''बन्धुओ! ध्यान रखना, साधु के, उत्तमपात्र के हाथ में रखा गया सूखा ग्रास भी विपुल फल को देनेवाला होता है। ...आखिर कारण क्या है? दान दोनों ही जगह दिया जा रहा है, फिर अन्तर क्यों? तो इसका समाधान आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज तत्त्वार्थसूत्र जी ग्रन्थराज में देते हुए कहते हैं कि ''विधि-द्रव्य-दातृ-पात्रविशेषात्तद्विशेष:।''[13]

इक्कीसवीं गाथा की प्रवचनवृत्ति में आचार्यश्री ने नवधाभक्ति पर विचार किया है। अपनी-अपनी परम्परानुसार वस्त्रधारी की नवधाभक्ति करने पर संघों में मतभिन्नता दृष्टिगत होती है। आचार्यश्री का कहना है कि हमें कुरीतियाँ तो छोड़ना चाहिए पर मर्यादायें नहीं। इस प्रसंग में उन्होंने श्री पं. सदासुखदास का उल्लेख किया है, जिसमें उन्होंने कहा है कि ''पात्र को दान देनेवालों को मुनि तथा श्रावक का जैसा पद हो उसके अनुसार नवधा भक्तिपूर्वक दान देना चाहिए।''[14] सुपात्र को आहारदान के पश्चात् ही श्रावक को मुनिभुक्त अवशिष्ट भोजन करना चाहिए। यही श्रावक चर्या है। गाथा 22 के प्रवचन के अन्तिम उपसंहार में आचार्यश्री ने कहा है–

''जो भवि मुनि को दे आहार, फिर भोजन करता स्वीकार।
सारभूत भव सुख पाता, पाता मुक्ति सौख्य अपार।।''[15]

भोजनशाला में प्रवेश करने के बाद श्रावक मुनिराज को थाली में रखे आहार को इसलिए दिखलाता है कि कहीं कोई वस्तु ऐसी तो नहीं है, जिसका मुनिराज का त्याग हो। ऐसे समय में यदि श्रावक ने अत्यन्त सामान्य आहार बनाया हो तो भी मुनिराज को

विकल्प नहीं करना चाहिए। **आचार्यश्री कहते हैं–"चौके में श्रावक के थाली दिखाने के बाद यदि साधु के मन में यह भाव आये कि अरे इस श्रावक ने तो कुछ भी नहीं बनाया तो समझ लेना वह साधु उस समय साधु नहीं रहा, स्वादु हो गया है। साधु चौके में जाने के बाद कभी क्रोध नहीं करता कि कैसा श्रावक है, कुछ भी नहीं बनाया। साधु तो समता स्वभावी होता है, उसे शान्त और सहजभाव से स्वीकार करता है।"**[16]

आचार्यश्री साधु के उपकरणों के सम्बन्ध में श्रावकों से स्पष्ट रूप से कहते हैं– **"मुनिराज को मूलतः तो पिच्छी, कमण्डलु और शास्त्र देना चाहिए। ...ध्यान रखना, साधुजनों के लिए कभी लैपटॉप आदि मत देना। साधुजनों के लिए कभी दान में मोबाइल मत देना। ...यदि आप ऐसे उपकरण साधुजनों को दान में देते हो, तब ये दान तो होता ही नहीं। ...अगर साधु के पास लेपटॉप होगा तो वो क्या करेगा? दिनभर उसी का उपयोग करेगा। मोबाइल होगा तो क्या करेगा? जब देखो तब वार्ता में लगा रहेगा। और यदि उसके पास टी.वी. आदि है तो बैठा-बैठा आराम से टी.वी. देखता रहेगा। अब ये बताओ जो सामायिक आदि मुख्य क्रियायें हैं, वह कब करेगा?"**[17]

पच्चीसवीं गाथा के प्रवचन में आचार्यश्री ने साधु की वैयावृत्ति को निर्जरा का महामन्त्र प्रतिपादित करते हुए कहा है–"वैयावृत्ति करनेवाला श्रावक अनेक प्रकार के गुणों को अपने जीवन में प्रकट कर लेता है। ध्यान रखना, वैयावृत्ति छोटा धर्म नहीं है, वैयावृत्ति बहुत बड़ा धर्म है। इसका अर्थ है– अपने कर्मों की निर्जरा करना। अगर आपके पापकर्मों का उदय चल रहा है तो आप साधुजनों की वैयावृत्ति करना शुरू कर देना। कामना से, लोभ से वैयावृत्ति मत करना कि मैं महाराज की सेवा वैयावृत्ति करूँगा तो महाराज कोई मन्त्र दे देंगे। ध्यान रखना, साधु की वैयावृत्ति ही मन्त्र है, महामन्त्र है। जो निर्जरा आप एक मन्त्र से नहीं कर सकते, वह निर्जरा आप साधुजनों की वैयावृत्ति से कर सकते हैं।"[18]

प्रवचनवृत्ति के पश्चात् रयणसार का आचार्यश्री विमर्शसागर कृत हिन्दी पद्यानुवाद अत्यन्त सुबोध, सरल एवं प्रभावक है, जो सहज ही पाठकों को रयणसार का हार्द

समझाने में सर्वथा समर्थ है। अन्त में प्रदत्त सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची अनुसंधित्सुओं को उपयोगी सिद्ध होगी।

इस तरह रयणसार की गाथा 8 से 25 पर किया गया पूज्य आचार्यश्री का यह प्रवचन श्रावकों को तो दिशाबोधक है ही, श्रमणों को भी पठनीय है। लोकोपकारी इन प्रवचनों की शृंखला समाज में फैलीं मिथ्या धारणाओं के निरसन में समर्थ हो, सन्मार्गदर्शक बने इस पवित्र भावना से मैं पूज्यश्री के चरणकमलों में कोटिश: नमोस्तु निवेदन करता हुआ कामना करता हूँ कि मैं उनके द्वारा निर्दिष्ट श्रावकोचित चर्या के पालन में अग्रसर होकर आत्मकल्याण कर सकूँ।

जैनं जयतु शासनम्।

दिनांक
12.10.2019

• संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष श्री अ.भा. दि. जैन विद्वत्परिषद्
पूर्व महामन्त्री एवं कार्याध्यक्ष श्री अ.भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद्
429, पटेल नगर, नई मण्डी मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

संदर्भ–

1. समयसार, गाथा 17-18
2. रयणसार गाथा 11
3. रयणोदय (द्वितीय भाग) पृष्ठ 8
4. रयणोदय (द्वितीय भाग) पृष्ठ 25
5. वही, पृष्ठ 26
6. रयणसार गाथा 9
7. रयणोदय (द्वितीय भाग) पृष्ठ 38
8. वही, पृष्ठ 65
9. रयणोदय (द्वितीय भाग) पृष्ठ 90
10. रयणसार, गाथा 12
11. रयणोदय (द्वितीय भाग) पृष्ठ 106
12. वही, पृष्ठ 154
13. वही, पृष्ठ 202
14. रयणोदय (द्वितीय भाग) पृष्ठ 290
15. वही, पृष्ठ 326
16. वही, पृष्ठ 332
17. वही, पृष्ठ 351
18. रयणोदय (द्वितीय भाग) पृष्ठ 358

●●●

रयणोदय दर्शन

जानें, क्या है जिनागम पंथ

—भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज

'जिनागम पंथ' अनादि-अनिधन, विश्व मैत्री, प्रेम, एकता का परम पावन संदेश है, जो तीर्थंकर भगवंत, केवली अरिहन्त, गणधर संत, आचार्य-उपाध्याय-निर्ग्रंथ के मुख से अतीतकाल में कहा गया, वर्तमान में कहा जा रहा है और भविष्यकाल में कहा जायेगा।

अहो! तीर्थंकर जिन की वाणी यानि जिनवाणी, जिनश्रुत, जिनागम और इसमें वर्णित आत्महितकारी पंथ, मार्ग। यही है जिनागम पंथ।

अहो! जिनागम में कथित पंथ अर्थात् मार्ग, यही सच्चा था सच्चा है और सच्चा रहेगा। तीर्थंकर सर्वज्ञ जिन की वाणी ही जिनागम है। और जिनागम में कथित श्रमण-श्रावक धर्म यह पंथ अर्थात् मार्ग है। जो श्रमण-श्रावक धर्म के मार्ग पर चल रहा है वह जिनागम पंथ का पथिक 'जिनागम पंथी' है।

सचमुच जिनागम पंथ शाश्वत था, शाश्वत है, शाश्वत रहेगा। जो जिनागम पंथ का पथिक है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक अथवा श्रमण संज्ञा को प्राप्त जिनागम पंथी है। जो जिनागम पंथ की श्रद्धा से रहित है वह मिथ्यादृष्टि है।

अहो! विदेह क्षेत्र में विराजित, विद्यमान बीस तीर्थंकरों के मुख से, गणधरादि परमेष्ठी भगवंतों के द्वारा आज भी जिनवाणी, जिनश्रुत, जिनागम प्रगट हो रहा है।

धन्य हैं! वे भव्य जीव जो जिनागम कथित समीचीन पंथ अर्थात् जिनागम पंथ को स्वीकार कर अनादि मोह, राग-द्वेष की परम्परा का विच्छेदन कर आत्मकल्याण कर रहे हैं। अहो! जिनागम पंथ के अलावा अन्य कोई कल्याण का मार्ग नहीं है। जिनागम पंथ के अलावा अन्य पंथ उन्मार्ग हैं, अकल्याणकारी हैं।

जयदु जिणागम पंथो, रागो-दोसो य णासगो सेयो।
पंथो तेरह-बीसो, रागादि-वड्ढिओ असेयो।।

जो रागद्वेष का नाश करनेवाला है, कल्याणकारी है, ऐसा 'जिनागम पंथ जयवंत हो'। इसके अलावा तेरह पंथ, बीसपंथ आदि पंथ, रागद्वेष को बढ़ानेवाले हैं, अकल्याणकारी हैं।

अहो! कालदोष के कारण कतिपय विद्वानों ने तीर्थंकर जिनदेव के मुख से भाषित अर्थात् सर्वांग से खिरनेवाली दिव्यध्वनि में कथित जिनागम पंथ से बाह्य तेरहपंथ, बीसपंथ, शुद्ध तेरह पंथ आदि नाना पंथों की संज्ञाएँ रखकर परस्पर रागद्वेष को जन्म दिया है। कुछ विद्वान एवं श्रमण संज्ञा से भूषित जीवों ने भी ख्याति-पूजा-लाभ के लिए नये-नये पंथ गढ़कर भव्य जीवों का महान् अहित किया है।

अहो! अज्ञानता, आज ये जीव इन नाना संज्ञाओं से पंथों का पोषणकर जिनागम पंथ से दूर खड़े हो गये हैं। और कल्पित पंथों का पोषणकर अपना आत्म पतन ही कर रहे हैं। तेरह-बीस आदि संज्ञाएँ जिनेन्द्र देव की वाणी से बाह्य हैं। ये जिनागम पंथ से बाह्य पंथ ही वर्तमान में राग-द्वेष का कारण बने हुए हैं। चारों तरफ समाज में विघटन, मंदिरों में खींचतान, इन कल्पित तेरह-बीस आदि पंथों की ही देन है। जिनागम पंथ सभी को एक सूत्र में बाँधकर मैत्री-प्रेम-वात्सल्य का संदेश देता है।

अहो! आज भी यदि स्वकल्पित पंथों का दुराग्रह छोड़कर सब जीव जिनेन्द्र देव की वाणी यानि जिनवाणी जिनागम में श्रद्धा रखें, और जिनागम वर्णित पंथ यानि 'जिनागम पंथ' को सच्ची श्रद्धा से स्वीकारें, तो सर्व समाज में आज भी एकता का सूत्रपात हो सकता है। आपस के रागद्वेष मिट सकते हैं और जिनशासन गौरवान्वित हो सकता है।

'जयदु जिणागम पंथो।'
'जिनागम पंथ जयवंत हो।'

❑

रयणोदय

(द्वितीय भाग)
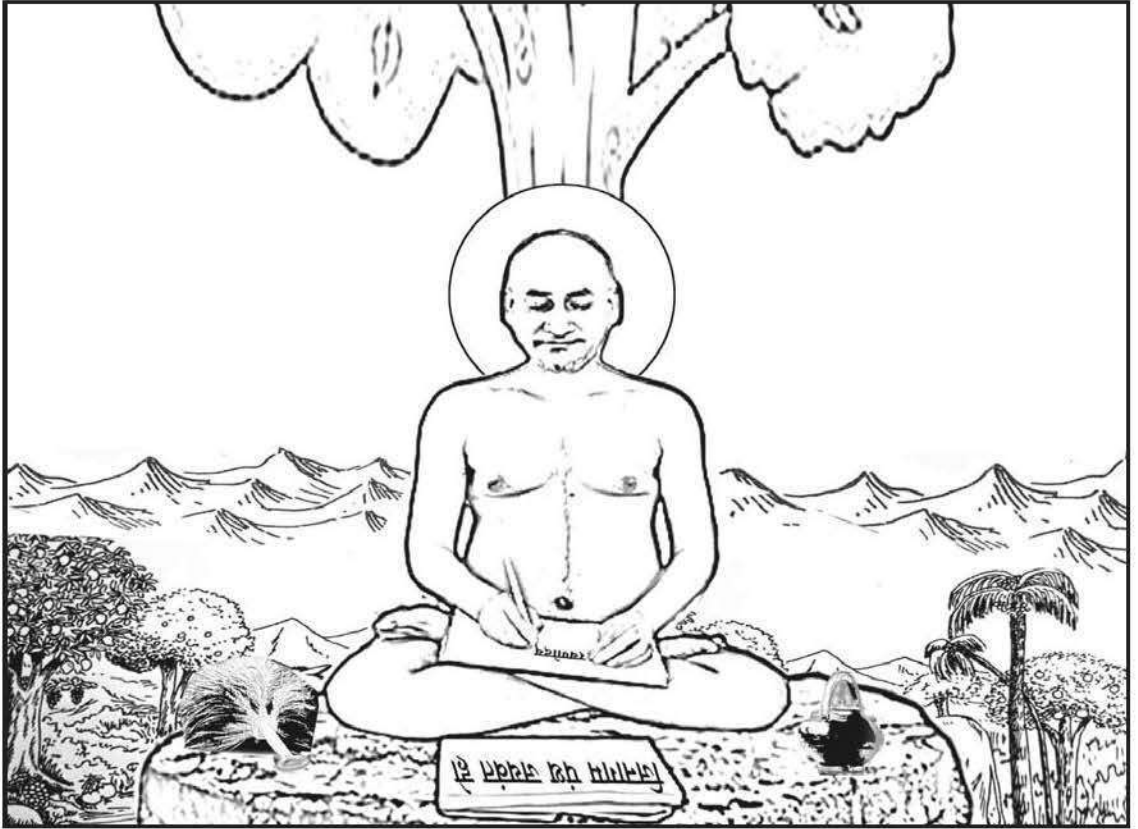
भावलिंगी संत श्रीमद् आचार्य विमर्शसागर मुनिराज

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

ओंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।1।।

अविरल-शब्द-घनौघ-प्रक्षालित सकल-भूतल-मल-कलंका।
मुनिभि-रुपासित-तीर्था-सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।2।।

अज्ञान-तिमिरान्धानां, ज्ञानांजन-शलाकया।
चक्षु-रुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः।।3।।

श्री परम गुरवे नमः, परम्पराचार्य-गुरवे नमः। सकल-कलुष-विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसंबंधकं, भव्यजीव-मनः प्रतिबोध-कारकं, इदं शास्त्रं 'श्री रयणसार' नामधेयं, अस्य मूलग्रंथ-कर्तारः श्री सर्वज्ञदेवाः तत् उत्तरग्रंथ-कर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधर-देवाः तेषां वचनोनुसार- मासाद्य श्री कुन्दकुन्द-आचार्येण विरचितं, तस्य 'रयणोदय' प्रवचनवृत्तिं भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागरेण जिनागम-पंथानुसारं विरचितम्।

''सर्वश्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु।''

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन-धर्मोऽस्तु मंगलं।।

मंगलं भगवान् अर्हन्, मंगलं वृषभो जिनः।
मंगलं पूज्यपादार्यो जिनागम-पंथोस्तु तं।।

सर्वमंगल मांगल्यं, सर्व कल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्व-धर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।

ग्रंथ मंगलाचरण

णमिदूण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं सायारणयार - धम्मीणं।।

जयदु जिणागम पंथो
जिनागम पंथ जयवंत हो।

गाथा - 8

(प्रवचन)

●

पीछी में राखी बाँधना-बँधवाना आगमानुकूल नहीं

21.08.2013

भिण्ड

(77 गुणों सहित सम्यग्दृष्टि श्रावक)

उहयगुणवसण-भयमल- वेरग्गादी वाभत्तिविग्घं वा।
एदे सत्तत्तरिया, दंसण-सावय-गुणा भणिदा।।8।।

* अन्वयार्थ *

(**उहयगुण**) दोनों गुण (**वसण-भय-मल-वेरग्गादी-वा**) सातव्यसन, भय, मल दोष से रहित, वैराग्ययुक्त अर्थात् द्वादश अनुप्रेक्षा सहित अतिचार रहित (**वा**) और (**भत्तिविग्घं**) निर्विघ्न भक्ति (**एदे**) ये (**सत्तत्तरिया**) सत्तत्तर (**दंसण-सावय-गुणा**) सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण (**भणिदा**) कहे गये हैं।

अर्थ-आठ मूलगुण, बारह उत्तरगुण ऐसे दोनों गुण, सात व्यसन, सात भय, पच्चीस मल-दोष से रहित, वैराग्य युक्त, अतिचार रहित और देव-शास्त्र-गुरु में निर्विघ्न भक्ति ये सत्तत्तर सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण कहे गये हैं।

अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनिराजों पर उपसर्ग
जलांजलि पूर्वक प्रतिज्ञा लेता राजा बलि
मुनि विष्णुकुमार से क्षमा याचना करता राजा बलि
रक्षाबंधन पर्व मनाते भाई-बहिन
पिच्छी में राखी बाँधने आये श्रावक
भो जिनागम पंथी उपासको! श्रमणों की पिच्छी में राखी बाँधना आगमानुकूल नहीं है। राखी बाँधना लोक क्रिया है धर्म क्रिया नहीं।
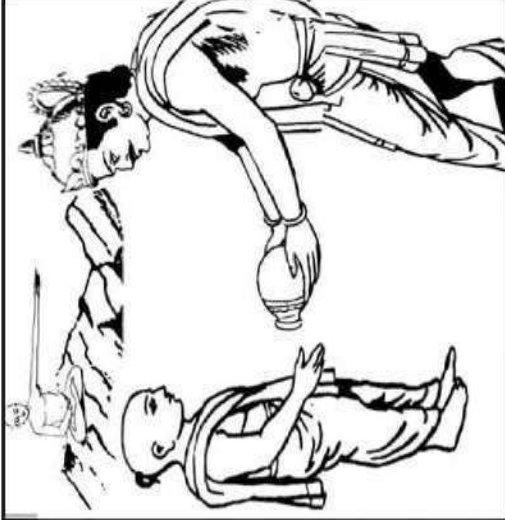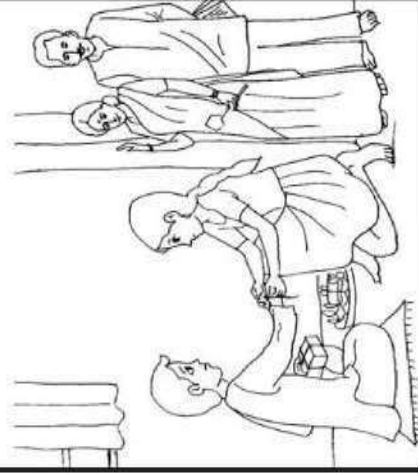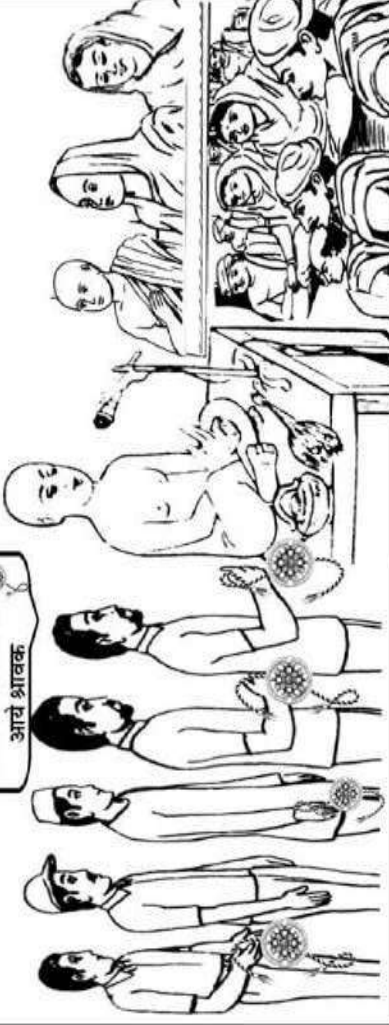
18

रयणोदय

जो श्रावक गुण अपनाये, भक्ति भावना को भाये।
रत्नत्रय को प्राप्त करे, तभी मोक्षसुख को पाये।।
भव-भव का बंधन, हो-हो-2, शिवमार्ग नशाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है, जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

एक वन में हाथियों का समूह विचरण करता था। सरोवर में पानी पीकर वे अपनी प्यास बुझाते थे। एक दिन की बात है जोरों से बारिश हुई। चारों तरफ दलदल और कीचड़ हो गया। वह हाथियों का समूह वर्षा थमने पर पुनः विचरण करता हुआ आया। एक स्थान पर बहुत अधिक कीचड़ होने के कारण एक हाथी उस सरोवर के निकट कीचड़ में फँस गया। वह हाथी जितना-जितना कीचड़ से निकलने का प्रयास करता उतना-उतना धँसता जाता।

ऐसा ही गृहस्थ का जीवन होता है। वह संसाररूपी वन में विचरण करता है और परिवाररूपी सरोवर में निरंतर अपनी प्यास बुझाने, अपने कष्ट-दुख दूर करने के लिये उसका आश्रय लेता है लेकिन जब उसे बोध होता है कि मैं गार्हस्थिक पापों के दलदल में फँस गया हूँ तब वह उस दलदल से निकलने का जितना प्रयास करता है, सम्यक् पुरुषार्थ के अभाव में उतना-उतना उसमें धँसता चला जाता है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं श्रावक बनो। जो भी जन्म लेता है वह गृहस्थ बनकर जन्म लेता है। श्रावक बनकर जन्म नहीं लेता। श्रावकपना तो हमें प्रगट करना पड़ता है। इसलिये **गृहस्थ बनना सरल है श्रावक बनना पुरुषार्थ साध्य है।**

वह हाथी सरोवर के निकट कीचड़ में फँसा हुआ है। बहुत हैरान, बहुत परेशान, बहुत दुखी है। करे तो क्या करे? तभी पास से साथी हाथियों का समूह गुजरा। उन्होंने देखा—ओह! हमारा एक साथी कीचड़ में फँस गया है। उन्होंने सावधानी बरती, अपनी सूँड से उस कीचड़ में फँसे हुए हाथी की सूँड को पकड़ा और उसे खींचना प्रारंभ कर दिया। जैसे ही उस फँसे हुए हाथी के लिये साथी हाथी का संयोग मिला, सहारा मिला, कीचड़ में फँसा हुआ वह हाथी कीचड़ से बाहर आने लगा। थोड़ी ही देर में उन हाथियों ने अपने साथी को कीचड़ से बाहर निकाल लिया।

ऐसे ही इस संसार में गार्हस्थिक जीवन जीते हुए इन संसारी प्राणियों को गृहस्थी के कीचड़ में फँसे हुए देखकर कोई निर्ग्रंथ वैरागीजन उनको अपने आत्मा के बल से इस कीचड़ से निकालने का प्रयास करते हैं और जब तक ऐसे साधकजन का हमें सहारा सहयोग नहीं मिलता तब तक इस गृहस्थी रूपी कीचड़ से निकलना संभव नहीं हो पाता। क्यों? क्योंकि जितना-जितना निकलने का प्रयास करता है उतना-उतना ही फँसता चला जाता है।

बंधुओ! हम सभी आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कृत श्री रयणसार जी ग्रंथ के माध्यम से अपने आत्मा के हित का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। यह जानने का प्रयास कर रहे हैं कि हम गृहस्थ से श्रावक कैसे बनें? **जो गृहस्थ होता है वह गृहस्थी की चिंता में इतना आकंठ डूबा रहता है कि उसे अपनी गृहस्थी गृहजाल के अलावा और कुछ चिंतन, विचार करने का अवसर ही नहीं मिल पाता।**

आचार्य भगवन् शुभचंद्र स्वामी ज्ञानार्णव ग्रंथ में कहते हैं—

प्रतिक्षणं द्वन्द्वशतार्त चेतसां नृणां दुराशाग्रह - पीठितात्मनाम्।
नितम्बिनी-लोचनचौर-संकटे गृहाश्रमे नश्यति पारमार्थिकम्।।11-4।।

अर्थात् स्त्रियों के नेत्र रूप चोरों से विषम (भयानक) उस गृहाश्रम में, गृहनिवास में मनुष्यों का मन सैकड़ों झंझटों से व्यथित तथा दुष्ट तृष्णारूप पिशाच से पीड़ित रहा करता है इसलिए गृह के भीतर रहते हुए मनुष्यों की परमार्थता, संयम वा मुक्ति का भाव नष्ट हो जाता है।

जब किसी का पुत्र संगति ठीक न मिल पाने के कारण बिगड़ जाये। माता-पिता उसे खूब समझायें। कहें—बेटा! बुरी आदतें छोड़ो। अच्छा आचरण, अच्छे संस्कार अपनाओ तो तुम्हारा जीवन अच्छा बन जायेगा। फिर भी जब बालक अपने माता-पिता की बात नहीं सुनता, नहीं मानता है तो फिर समझदार माता-पिता क्या करते हैं? वे कहते हैं अब इसकी शादी कर दो। विवाह हो जायेगा तो अपने आप नमक, तेल, खटाई के भाव पता चल जायेंगे। अभी तो इसे कुछ पता ही नहीं है। सिर पर जब जिम्मेदारी आयेगी तब अपने आप अपने दायित्वों को समझने लग जायेगा।

और जब शादी हो जाती है तो 24 घंटे निरंतर एक ही तैयारी होती रहती है—आज नमक नहीं है, आज सिलेण्डर (Cylinder) खत्म हो गया है, आज शक्कर नहीं है, आप बाजार तो गये थे सब्जी लेकर नहीं आये। घर पर मेहमान आनेवाले हैं सब्जी तो आ गई है लेकिन अभी टमाटर नहीं आये हैं। आप सुबह से लेकर शाम तक उसी गृहस्थी के जाल में फँसते चले जाते हैं। निरंतर उसी की चिंता बनी रहती है यहाँ तक कि दिनभर गृहस्थी के कार्य करते यदि रात को आदमी सो भी जाता है तो स्वप्न में भी अपनी घर गृहस्थी ही नजर आती है। कई बार रात को सोते-सोते चौंककर उठ बैठता है। अरे फलाना काम रह गया है यानि आदमी ढंग से सो भी नहीं पाता। उसकी हालत कैसी हो जाती है? मैंने लिखा है—

दो पल को भी सुकूँ नहीं, कोल्हू का बैल है।
लगता है जिंदगी को ढो रहा है आदमी।। ज़ाहिद की ग़ज़लें।।

ऐसा होता है गृहस्थ का जीवन। जिसे आप जी रहे हैं। एक बार इस गृहस्थी के जाल में फँस गये, अब आप देख लीजिएगा निकलना कितना मुश्किल होता है। निकलना तो दूर की बात है गृहस्थी में फँसे हुए व्यक्ति को 'मैं इस गृहस्थी के जाल में फँसा हुआ हूँ' ऐसा ज्ञान होना, निर्णय होना ही दुर्लभ है। वह क्या सोचता है मैं तो अच्छा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

विचार करना! एक तोता है जो पिंजरे के अंदर बंद है उसके लिए सोने की कटोरी में शक्कर मिला हुआ दूध और रोटी खिलायी जाये तो क्या उस तोते के लिये उस रोटी में मिठास लगती है? वह भले ही अपने प्राणों को धारण करने के लिए अपनी भूख मिटाने के लिए आपकी दी उस रोटी को ग्रहण कर ले, लेकिन वह तोता परतंत्र है पिंजरे के अंदर बंद है इसलिये बहुत दुखी रहता है। वह खुले आसमान में उड़ने के लिये बेचैन रहता है। क्यों? क्योंकि जो आनंद स्वतंत्रता में है वह परतंत्रता में नहीं है। कहाँ वह स्वतंत्र रूप से जंगल में आकाश में उड़नेवाला और कहाँ परतंत्र बना हुआ है पिंजरे में फँसा हुआ है। खाने के लिये सब कुछ है उसकी हर प्रकार से सेवा-सुश्रुषा की जा रही है तो भी उसे अपने जीवन में शांति नहीं मिलती।

एक तोते को पिंजरे में शांति नहीं मिलती और भिण्ड के तुम सब तोतों को कितना सुख अनुभव में आता है? तुम सब अपने को सुखी मानते हो। कहते हो, महाराज श्री! मेरा जीवन तो अच्छा सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा है। गाड़ी फँसी हुई है और तुम उसी अवस्था में सुख का अनुभव करते हो, सुख मानते हो।

विचार करना! अगर तुम ट्रेन (Train) से सफर कर रहे हो और बीच जंगल में ट्रेन (Train) रुक जाये। बहुत समय हो गया ट्रेन (Train) को रुके हुए, तब आपको कैसा लगेगा? आप सोचोगे कि कहाँ फँस गये? 2, 4, 5, 8 घंटे के लिये ट्रेन (Train) जंगल में खड़ी हो गई तो सोचने लग जाते हो, कि कहाँ फँस गये? और तुम मनुष्यगति के प्लेटफॉर्म (Platform) पर 60, 70, 80, साल तक अपनी ट्रेन (Train) को रोके हुए हो फिर भी नहीं सोचते कि कहाँ फँस गये? फिर भी भाव नहीं आता है कि मैं कहाँ फँसा हुआ हूँ?

अरे भाई! गृहस्थ जीवन एक ऐसा जीवन है जिसमें व्यक्ति अगर एक बार फँस गया तो निकलना मुश्किल हो जाता है। यदि ट्रेन (Train) में बैठे हो तो फिर भी उससे बाहर निकल सकते हो लेकिन गृहस्थी की ट्रेन (Train) में यदि एक बार बैठ गये तो निकलना बहुत मुश्किल होता है।

इसलिये एक ऐसा वीर, स्वतंत्र, स्वाधीन, साधक, साधु पुरुष चाहिये जो तुम्हें गृहस्थी के उस कीचड़ में से अपना हाथ देकर बाहर निकाल ले। हाथी को हाथी ही निकाल सकता है। अगर 10, 20, 50, 100 चूहे मिल जायें और कहें कि हे हाथी महाराज! हम आपको अभी निकालते हैं तो क्या चूहे मिलकर हाथी को निकाल सकते हैं नहीं निकाल सकते। ध्यान रखना! चूहे कभी हाथी को कीचड़ से बाहर नहीं कर सकते। ऐसे ही तुम्हारे घर में जितने भी चूहे रहते हैं न, ये तुम्हें कभी कीचड़ से बाहर नहीं कर सकते। इसके लिये तो कोई हाथी यानि वैरागी साधक पुरुष ही चाहिये जो तुम्हारे मिथ्यात्व को सम्यक्त्व में बदल सके। जो तुम्हारे मिथ्याज्ञान को सम्यग्ज्ञान में बदल सके। ऐसा श्रेष्ठ, वैरागी, साधक पुरुष तुम्हारे लिये उस कीचड़ से निकालने में निमित्त बन सकता है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि यह संसारी जीव गृहस्थ बनकर जीता रहता है। कोई-कोई विरले जीव होते हैं जो गृहस्थी में रहते हुए भी श्रावक की संज्ञा को प्राप्त कर पाते हैं। श्रावक पद को उपलब्ध हो पाते हैं। किसी भव्य ने पूछा, भगवन्! वह सम्यग्दृष्टि श्रावक कैसा होता है? आचार्य भगवन् इस प्रश्न का समाधान इस आठवीं गाथा में कर रहे हैं—

उहयगुण-वसण-भय-मल-वेरग्गादी वा भत्तिविग्घं वा।
एदे सत्तत्तरिया, दंसण-सावय-गुणा भणिदा।।8।।

यहाँ पर सम्यग्दृष्टि जीव के सतत्तर (77) गुणों की व्याख्या आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कर रहे हैं। वे कहते हैं **उहय गुण**- जो सम्यग्दृष्टि श्रावक है वह उभय गुण से युक्त होता है। उभय गुण का तात्पर्य जो श्रावक के मूलगुण और उत्तरगुण हैं उनसे युक्त होता है। तब उसे श्रावक ऐसी संज्ञा प्राप्त होती है। और कैसा होता है? तो कहते हैं **वसण** यानि सप्त व्यसनों से। **भय** यानि सप्त भयों से। **मल** अर्थात् पच्चीस मल दोषों से रहित होता है। और **वेरग्ग**-

वैराग्य भावना से भरा हुआ अर्थात् द्वादश अनुप्रेक्षा के चिंतन सहित तथा **अदीयार**-अतिचारों से रहित होता है। **भत्ति विग्घं वा**- और विघ्नरहित भक्ति करनेवाला होता है। इसप्रकार इन सतत्तर गुणों से सहित वह सम्यग्दृष्टि श्रावक होता है।

बंधुओ! हम सभी के जीवन की शुरुआत कहाँ से हो? हम अपने जीवन में धर्म की शुरुआत कहाँ से करें? तो आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कहते हैं गृहस्थ जीवन में रहते हुए श्रावक को सर्वप्रथम अष्ट मूलगुणों को धारण करना चाहिये।

'क्रियावान् श्रावको-मतः'

अर्थात् जो क्रिया का धारक होता है वही श्रावक माना गया है। लाटी संहिता के इस कथन के अनुसार राग, द्वेष, मोह आदि की तीव्रता के कारण भावों में त्यागरूप वैराग्यरूप भाव न बन पाये तो गृहस्थ को घर में रहते हुए अपने परम्परागत जैन कुलाचार का पालन अवश्य करना चाहिये। भगवान जिनेन्द्र के द्वारा श्रावकों के लिये जो क्रियायें जिसरूप जिस तरह करने को कही हैं विवेकी श्रावकों को उन क्रियाओं का पालन उसीप्रकार करना चाहिए।

अष्ट मूलगुण धारण करने की जो योग्यता मनुष्य पर्याय में है वह 8 वर्ष अन्तर्मुहूर्त की है। जब बालक 8 वर्ष का हो जाता है तब माता-पिता उसे निर्ग्रंथ मुनिराज के पास ले जाते हैं और कहते हैं—'गुरुदेव हमारे बालक को धर्म के संस्कार दीजिए।'

यद्यपि जब बालक का जन्म होता है तब माता-पिता उसे एक माह के बाद अथवा पैंतालीस दिन बाद श्री जिनमंदिर जी लाते हैं। उस समय वे अपने बालक के योग्य आचार-विचार निर्ग्रंथ गुरु अथवा गृहस्थाचार्य से पूछते हैं। उस बालक के लिये सबसे पहले णमोकार महामंत्र सुनाया जाता है फिर अन्य क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं। इसप्रकार उसे धर्म के योग्य बनाया जाता है और अष्ट मूलगुण धारण कराकर कुलाचार से जैन बनाया जाता है।

आठ वर्ष की अवस्था तक माता-पिता बालक के लिये अष्ट मूलगुणों का पालन करवाते हैं क्योंकि उस अवस्था तक बालक को व्रतों का विचार-विवेक, ज्ञान नहीं होता इसलिये आठ

वर्ष तक मद्य, माँस, मधु, पंच उदुम्बर फल आदि से दूर रखने की जिम्मेदारी माता-पिता संरक्षकों की होती है। यदि अष्ट मूलगुणों का पालन नहीं कराया गया तो उसके माता-पिता, संरक्षक ही उस पाप के भागी बनेंगे। अत: माता-पिता का यह कर्तव्य होता है कि वे बालक को इतनी धार्मिक शिक्षायें अवश्य दें, ऐसे संस्कारों का रोपण करें कि जब वह समझदार हो जाये तो कम से कम अपने जैनकुल के अनुकूल प्रवृत्ति करे।

आठ वर्ष की उम्र में बालक के लिये यदि यह नियम कराया जाता है कि बेटा! अब तुम्हें अष्टमूलगुणों का पालन करना है। यदि उस बालक में परिवार द्वारा दिये गये धार्मिक संस्कार होंगे तो वह स्वत: ही अपने नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करता चला जायेगा। विचार करेगा, मद्य-माँस-मधु, पंच उदुम्बर फल, रात्रिभोजन करना यह हमारे कुल का आचार नहीं है। इनका सेवन निंदनीय मानकर वह स्वत: ही उनसे दूर रहेगा। यदि बालक के लिये धार्मिक शिक्षा, संस्कार न दिये जायेंगे तो वह सही ज्ञान, सही दिशा न मिल पाने के कारण बाह्य वातावरण से प्रभावित होकर बुरी आदतों को अपना लेगा और धीरे-धीरे गलत रास्ते पर जाकर अपना जीवन बरबाद कर लेगा। पाप प्रवृत्ति के कारण खोटी गति को प्राप्त होगा। इसका जिम्मेदार कौन होगा? उस बालक के माता-पिता, उसके संरक्षक, इस दोष के भागी होंगे।

गृहस्थ जीवन में रहते हुए यदि श्रावक धर्म का पालन किया जाये तो जीव वैमानिक देवों तक जन्म लेता है। यहाँ तक कि श्रावक धर्म का धारी तिर्यञ्च भी वैमानिक देवपद को प्राप्त हो जाता है इसलिये यह श्रावकपना भी सामान्य बात नहीं है। आठ वर्ष की अवस्था में बालक को जिनधर्म में दीक्षित किया जाता है। जिनका पालन वह गृहस्थ अवस्था में रहकर करता है वह श्रावक के अष्ट मूलगुण कौन-कौन से होते हैं? ऐसा पूछने पर कहते हैं—

अष्ट मूलगुणों के विषय में अलग अलग आचार्यों की अलग अलग मान्यताएँ हैं। 'श्री चारित्रसार में चामुण्डराय जी कहते हैं—

हिंसाऽसत्यस्तेया - दब्रह्म - परिग्रहाश्च बादर भेदात्।
द्यूतान्मांसान्मद्याद् विरति गृहिणोऽष्ट सन्त्यमी मूलगुणाः।। 30-3 ।।

अर्थात् स्थूल हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह इन पाँच पापों और द्यूत अर्थात् जुआ खेलना, माँस खाना, एवं मदिरा पीने के त्याग को श्रावक के आठ मूलगुण मानते हैं। आचार्य भगवन् ने मधु को माँस के अन्तर्गत गर्भित करके द्यूत को इन अष्ट मूलगुणों में ग्रहण किया है।

आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं-

मद्य-मांस-मधु-त्यागैः सहाणुव्रत-पञ्चकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहु-र्गृहिणां श्रमणोत्तमाः।। 66।।

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान मद्य, माँस, मधु त्याग के साथ पाँच अणुव्रतों के पालन को गृहस्थों के अष्ट मूलगुण कहते हैं।

इसप्रकार 'श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार' एवं 'श्री चारित्रसार' आदि ग्रंथों में अहिंसादि पाँच अणुव्रतों को मूलगुणों में शामिल किया है।

वहीं श्री यशस्तिलक चम्पू ग्रंथ में सप्तम आश्वास में श्री सोमदेव सूरि कहते हैं-

मद्य-माँस-मधु-त्यागः सहोदुम्बर-पंचकैः।
अष्टावेते गृहस्थाना-मुक्ता मूलगुणाः श्रुते।।1-7।।

मद्य, माँस, मधु का त्याग, पाँच उदुम्बर फलों का त्याग करना ये गृहस्थों के लिये जिनागम में आठ मूलगुण कहे गये हैं। श्री वसुनंदि श्रावकाचार में आचार्य वसुनंदि, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय में श्री अमृतचन्द्र सूरि, अमितगति श्रावकाचार में आचार्य भगवन् अमितगति व पंचाध्यायी, लाटी संहिता, उपासकाचार आदि ग्रंथों में जिनमें श्रावक धर्म का उपदेश दिया गया है इन सभी में आचार्य भगवंतों ने, विद्वानों ने अष्ट मूलगुणों में पंचाणुव्रतों के स्थान पर पंच उदुम्बर फलों को प्रथम स्थान दिया है।

सभी आचार्य भगवंतों के मत हमारे लिये मान्य हैं। इस विषय में पं. श्री आशाधर जी कहते हैं 'कि प्रतिपाद्य के अनुरोध से अर्थात् जो श्रावक जैसे मूलगुणों को धारण करने की योग्यता रखते हों, उनको वैसा ही उपदेश है और उनमें सूत्र से वा आगम से कोई भी विरोध नहीं है क्योंकि सभी के द्वारा उसी वस्तु का त्याग कराया है जो हेय है छोड़ने योग्य है।'

तीन मकार का त्याग तथा पंच अणुव्रतों के पालन रूप अष्ट मूलगुण तो उत्कृष्टता की अपेक्षा से हैं उनके स्वरूप का ज्ञान होना निरतिचार पालन करना तो आगे की अवस्था है किंतु पूर्व अवस्था में बालक को वह अष्ट मूलगुण धारण कराये जाते हैं जो जैनों का मूल कुलाचार है और जिनका पालन हर जैनी के लिये अनिवार्य है। माता-पिता के द्वारा अपनी संतान के लिये जिनका पालन सुगमता व सरलता से करवाया जा सकता है।

वे अष्ट मूलगुण कौन-कौन से हैं तो पंडित श्री आशाधर जी 'श्री सागार धर्मामृत' ग्रंथ में कहते हैं।

मद्य-पल-मधु-निशाशन पंचफलीविरति-पंचफलकाप्तनुति।
जीवदया जलगालनमिति च क्वचिदष्ट मूलगुणाः।।18-2।।

अर्थात् मद्य, माँस, मधु त्याग, रात्रिभोजन त्याग, पंच उदुम्बर फलों का त्याग, पंचपरमेष्ठी की स्तुति अर्थात् देवदर्शन, जीवदया पालन और पानी छानकर पीना ये अष्ट मूलगुण हैं।

जो माता-पिता धर्मात्मा हैं अपनी संतान का भला चाहते हैं उनके उज्ज्वल भविष्य की अच्छे जीवन की कामना करते हैं वे अपने बच्चों के लिये बाल्यावस्था में ही मद्य, माँस, मधु का त्याग करवा देते हैं। उन्हें सिखाते हैं कि अब उनको कभी भी शराब का सेवन नहीं करना है। मधु यानि शहद और माँस इनका भी सेवन नहीं करना है।

आप देखिएगा, जैन समाज सबसे ज्यादा शिक्षित, सभ्य और संस्कारित समाज कहलाती है। क्यों? क्योंकि जैनबंधु आचार-विचार का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। पाप से निरंतर भयभीत रहते हैं, डरते हैं और छोटी उम्र में ही इन मूलगुणों का पालन करनेवाले होते हैं।

आप समाज में रहते हो तो आपको समाज के प्रति अपने दायित्व को भी समझना चाहिये। परिवार में रहते हो तो परिवार के प्रति दायित्वों का भी आपको बोध होना चाहिये। जो परिवार में रहता हुआ परिवार के प्रति अपने दायित्वों को, कर्तव्यों को नहीं समझता, नहीं जानता वह परिवार में रहने के योग्य नहीं होता। इसलिये जो समाज में रहते हैं उन्हें समाज के प्रति अपने कर्तव्यों-दायित्वों का बोध अवश्य होना चाहिये। समाज की स्थिति परिस्थिति का यथार्थ बोध होना चाहिये कि हमारी समाज आज किस दिशा में जा रही है।

अगर आपके घर में नल से पानी भरा जाता है। कदाचित् नल में पानी आना बंद हो जाये तो आप हाथ पे हाथ धरे बैठे रहते हो क्या? कि नल के सामने हाथ पे हाथ धरकर बैठ जायें और देखते रहें, सोचते रहें कि पानी आता था अब नहीं आ रहा है। ऐसा करते हो क्या? नहीं ना। तो फिर क्या करते हो? किसी जानकार को बुलाते हो। लाइन (Line) ठीक कराते हो। कहाँ से लीकेज (Leakage) प्रारंभ हो गया है? पानी क्यूँ नहीं आ रहा है? आप तुरंत उसे ठीक कराते हो और नल में पानी आना पुन: शुरु हो जाता है।

ऐसे ही परिवार में समाज में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है दायित्व है कि समाज में रहते हुए कोई अपने संस्कारों से विमुख तो नहीं होने लगा है। अगर कोई अपने धर्म संस्कारों से विमुख हो रहा है तो उसे पुन: ठीक करके अर्थात् सन्मार्ग में लगाकर उसे उसके उत्तरदायित्वों को समझाने का प्रयास करना चाहिये।

बंधुओ, विचार करना! इस संसार में समस्त संसारी जीवों के एक सौ साढ़े निन्यानवे लाख करोड़ कुल कोटि हैं। इन समस्त कुलों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य जैनकुल है। आपने जैनकुल में जन्म पाया, जैनी बने तो जैनियों का कुलाचार क्या है इसका बोध अवश्य होना चाहिये। बंधुओ! जैनकुल में कभी भी मद्य यानि शराब, माँस और शहद इनका सेवन नहीं किया जाता। यह क्या है? जैन कुलाचार है अर्थात् जैनकुल का आचार-विचार है।

पहला-दूसरा मूलगुण है—मद्य-माँस का त्याग।

यदि कोई शराब आदि का सेवन करने लग जाये तो वह जैन समाज में रहने के योग्य नहीं रहता। **शराब आदि का सेवन करनेवाला भगवान जिनेन्द्र का अभिषेक आदि क्रिया करने के योग्य नहीं होता।** माँस तो नहीं खाते लेकिन कभी-कभी अण्डे का सेवन कर लेते हैं। **विचार करना, अण्डा भी माँस का पिण्ड है। अण्डे का सेवन करनेवाला भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमा का स्पर्श करने योग्य नहीं रहता।**

आपको पता होगा, यदि जैनकुल में रहनेवाले व्यक्ति के घर पर कोई ऐसा मेहमान आया जिसके बारे में ज्ञात ही नहीं था कि यह व्यक्ति शाकाहारी है अथवा माँसाहारी। कदाचित् वह व्यक्ति माँसाहारी था और उसने घर के गिलास में पानी पिया। अशुद्ध बर्तन तो राख से माँजने

पर शुद्ध हो जाते थे किंतु माँसाहारी व्यक्ति के द्वारा स्पर्शित हो जाने के कारण अब उस अशुद्ध बर्तन को कैसे शुद्ध करें? इस विषय में जैन कुलाचार यह कहता है कि अब ये बर्तन राख से शुद्ध नहीं हो सकता इसे तो अग्नि से तपाकर शुद्ध करना होगा। विचार करना, अगर कोई गिलास मात्र को छू लेता था तो इतना दोष माना जाता था।

किंतु धीरे-धीरे हम अपने जैनधर्म के आचार-विचार को भूलने लगे। जैनकुल के संस्कारों को भूलने लगे। धर्म के संस्कारों को हमने बाह्य क्रिया कहकर, उनका उपहास करना प्रारंभ कर दिया। अरे! ये तो बाह्य क्रियायें, बाह्य आचरण मात्र हैं धर्म नहीं हैं। अरे भाई! अगर तूने इन बाह्य क्रियाओं, धार्मिक आचरण को भुला दिया और कुसंगति कुसंस्कारों में फँस गया। जैनकुल का आचार-विचार भूल गया, तो तू धर्म को आत्मा के स्वरूप को कैसे पहचानेगा? जैसे कोई शराब पीने के बाद मस्त होकर कहे कि अब मैं धर्मध्यान करता हूँ, आत्मा का ध्यान करता हूँ। क्या उस व्यक्ति के लिये आत्मा का ज्ञान-ध्यान हो सकता है? नहीं, आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि उसकी बुद्धि, उसका विवेक, सदाचरण सब कुछ नष्ट हो चुका है। इसलिये अपने इहलोक और परलोक के हित के लिये, आत्मा के हित के लिये, इन बाह्य क्रिया रूप धार्मिक संस्कारों को अपनाना आवश्यक है, अनिवार्य है।

सम्पूर्ण जगत् भगवान जिनेन्द्र व निर्ग्रंथ साधकों की साधना, तप-त्याग से उनके महान आचार-विचार से प्रभावित होकर जैनियों को अर्थात् जिनेन्द्र देव के अनुयायियों को बड़े ही आदर व सम्मान की दृष्टि से देखता है। भगवान् जिनेन्द्र और उनके अहिंसादि सिद्धान्तों को महान मानता है। निर्ग्रंथ साधकों की कठोर तपस्या के आगे नतमस्तक होता है। लेकिन हम लोगों ने ही अपने इस पवित्र कुल के आचार-विचार का उपहास करना शुरु कर दिया है। अब क्या कहने लगे, अरे! आलू प्याज आदि के त्याग करने से क्या होता है? ये कोई धर्म थोड़े ही है। अरे भाई! इतने जीवों की हिंसा कर आनंद मनायें और फिर भी कहें, अरे! इनका त्याग करने से धर्म थोड़े ही होता है। थोड़ा सोचो! वे सब सूक्ष्म जीव हैं इसलिये तुम्हें इन चर्म की आँखों से दिखायी नहीं दे रहे हैं। यदि तुम्हारा पूरा परिवार हो और कोई व्यक्ति पूरे कुटुंब परिवार पर बुल्डोजर (Bulldozer) चला दे फिर उस समय कहना कि ये आदमी पापी नहीं है कह सकोगे क्या? अरे! जब तुम देखोगे कि मेरा परिवार नष्ट हो रहा है तब तुम कहोगे—

रे पापी! थोड़ा तो दया धर्म अपना ले। तू इतने जीवों को मार रहा है क्या तुझे पाप से डर नहीं लगता? इन जीवों ने तेरा क्या बिगाड़ा है आदि-आदि। इस तरह तुम कहने लगोगे। परिवार में 4, 5 सदस्य हैं उनके ऊपर किसी ने बुल्डोजर (Bulldozer) चढ़ाया तो उसे पापी कह दिया और एक आलू में रहनेवाले अनंत जीवों की तू विराधना करता है अब तू स्वयं समझ ले कि तू कौन है? कैसा है? लेकिन फिर भी धर्म भ्रष्ट जीव क्या कहता है कि इनके त्याग से धर्म थोड़े ही होता है।

अरे! भगवान अरिहंत देव ने समवशरण सभा में बैठकर अपने उपदेश में कहा कि भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक रखो। यह व्यवहार धर्म है और जब तक इस व्यवहार धर्म का ज्ञान नहीं होगा, विवेक नहीं होगा, तब तक कषाय परिणामों में मंदता नहीं हो सकती।

इसलिये बंधुओ! इस बाह्य आचरण का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। तुम्हारा बेटा बाहर पढ़ने के लिये जा रहा हो तो तुम उसे क्या समझाओगे? यह कि बेटा! बाहर जाकर तुम शराब पी सकते हो, माँस भक्षण कर सकते हो, अण्डे आदि का सेवन कर सकते हो, समझाओगे क्या? अगर इनका त्याग नहीं है तो समझाकर भेजो कि बेटा! ये सब तुम कर सकते हो। ऐसा समझाओगे क्या? नहीं समझाओगे। फिर यदि तुम्हें यह लगे कि हमारे शास्त्रों में जो कहा है वही अकाट्य सत्य है। ऐसी श्रद्धा तुम्हारी आत्मा में पैदा हुई हो तो समझाकर भेजना कि बेटा! जिस कुलाचार का पालन तुमने घर में रहकर किया है बाहर जाने के बाद उस जैन कुलाचार को कलंकित मत कर देना। तुम भले ही बहुत उत्कृष्ट धर्म कर पाओ, न कर पाओ। अगर तुम्हें इतना भी कुलाचार का ध्यान रहा, विवेक रहा, तो बेटा! तुम्हारी दुर्गति नहीं होगी, यह जिनधर्म कहता है।

इसलिये आठ वर्ष के बालक के लिये माता-पिता सबसे पहले यह संस्कार दिलाते हैं कि शराब, अण्डे, माँस का सेवन मत करना। क्यों? क्योंकि आचार्य भगवन् सोमदेव सूरि श्री यशस्तिलक चम्पू ग्रंथ में कहते हैं-

माँसादिषु दयानास्ति न सत्यं मद्यपायिषु।। 24-7।।

जो जीव माँसादि का भक्षण करता है वह जीवदया से रहित होता है और जो जीव शराब का सेवन करता है उसके जीवन में सत्य धर्म नहीं।

और जहाँ दया नहीं, सत्य नहीं, वहाँ धर्म नहीं। क्यों? क्योंकि आचार्य भगवंतों ने दया को धर्म का मूल कहा है, जड़ कहा है।

धर्मस्य मूलं दया।

जिसके जीवन में दयाधर्म नहीं, उसके जीवन में कभी सुख और शांति नहीं हो सकती। उस जीव का कभी आत्महित नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि इस संसार में एकमात्र धर्म ही है जो हमारे जीवन को सुखमय बनाता है। हमारे लिये लौकिक व पारलौकिक सुखों की प्राप्ति कराता है। भगवन् गौतम स्वामी कहते हैं-**'धर्मः सर्व सुखाकरो'**।

इसलिये बंधुओ! यदि अपने जीवन में सुख और शांति चाहते हो, दुखों से मुक्ति चाहते हो, तो दयाधर्म का पालन करो। **मद्य-माँस सेवन जैसी क्रूर अमानवीय क्रियाओं को अपना स्टेटस सिंबल (Status Symbol) मत बनाना, अपितु ऐसी बुराईयाँ यदि घर परिवार में आने लगी हों, तो उन्हें सुधारने का प्रयास करना। अन्यथा तुम्हारा ये उच्चकुल एक दिन नीचकुल बन जायेगा** और इसका जिम्मेदार कोई दूसरा नहीं होगा, इसके जिम्मेदार आप ही होंगे।

बच्चे कोमल होते हैं उन्हें आप जिस दिशा में मोड़ना चाहें मोड़ सकते हैं लेकिन आपको उनके साथ थोड़ा सा श्रम-परिश्रम करना पड़ेगा। उन्हें अच्छे-बुरे का ज्ञान कराना होगा। अगर बचपन में आपने बच्चों के लिये अच्छे संस्कार दे दिये, तो उनके बड़े होने पर तुम्हें कोई चिंता नहीं करनी पड़ेगी। उनके उज्ज्वल भविष्य के प्रति तुम निश्चिंत रहोगे। तुम छाती ठोककर कहोगे कि हमारे बच्चे बहुत संस्कारित हैं वे कहीं भी चले जायें, हमें उनकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं रहती। क्यों? क्योंकि तुमने अपने बच्चों को अच्छा संस्कारित बचपन दिया है।

तीसरा मूलगुण है—मधु का त्याग।

मद्य और माँस त्याग के साथ उन्हें कभी मधु का सेवन भी नहीं कराना चाहिये अपितु उनके लिये उसमें होनेवाली हिंसा का बोध कराकर उसका भी त्याग करा देना चाहिये। भगवान जिनेन्द्र ने बतलाया कि शहद की एक बूँद में असंख्यात जीव होते हैं जो हमें खाली आँख से दिखायी नहीं देते। आचार्य भगवंत कहते हैं कि सात गाँव जलाने पर जितनी हिंसा का पाप

लगता है उतना पाप एक बूँद शहद के सेवन में लगता है। जिसका उल्लेख जैनेतर ग्रंथ महाभारत में भी मिलता है-

सप्त-ग्रामेषु दग्धेषु यत्पापं-जायते नृणात्।
तत्पापं जायते तेषांमधु विन्द्वेक भक्षणात्।।

इसलिये बच्चों को कभी औषधि देना पड़े और डॉक्टर (Doctor) भी कहे कि यह औषधि शहद के साथ ही सेवन करानी है तो कह देना कि मैं तो शक्कर की चाशनी बनाकर बच्चे को चटा दूँगी लेकिन शहद नहीं चटाऊँगी। शहद का सेवन नहीं कराऊँगी। क्यों? क्योंकि यह काम तो शक्कर की चाशनी में भी हो सकता है। लेकिन इतना बड़ा पाप न तो मैं बाधूँगी न अपने बच्चे को बँधवाऊँगी। ऐसा कौन कहता है? एक समझदार जैन श्रावक कहता है। क्योंकि वह जानता है कि यह जैनकुल का आचार-विचार है श्रावकों का संविधान है आचार संहिता है।

चौथा मूलगुण है—पाँच उदुम्बर फल का त्याग। अष्टमूलगुणों का धारी श्रावक इन तुच्छ फलों का भी त्यागी होता है। बड़, पीपर, पाकर, ऊमर और अंजीर। इन अंजीर आदि में अनेक त्रस जीव भरे रहते हैं। आजकल अंजीर की बनी मिठाईयाँ शादी-विवाह के आयोजनों में खूब चलती हैं लेकिन विचार करना, कई बार शादी-विवाह में भाग लेनेवाले, भोजन करनेवाले लोगों के हाजमें स्वास्थ्य आदि क्यों बिगड़ जाते हैं? ऐसा क्या कारण है कि आदमी साल भर भोजन कर रहा है, तो भी उसका स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता और किसी शादी-विवाह, प्रीतिभोज, किसी पार्टी (Party) में चला गया और वहाँ भोजन कर लिया तो उसका स्वास्थ्य खराब हो गया। इसका कारण यह है कि उसने ऐसे भोज्य पदार्थों का सेवन किया है, जिसमें शरीर को हानि पहुँचाने वाले तत्त्व मिले हुए थे जो स्वास्थ्य को खराब करनेवाले होते हैं।

इसलिये बंधुओ! इन बड़ आदि पाँच उदुम्बर फलों का त्याग कर देना चाहिये। सभ्य पुरुषों के द्वारा कभी भी इनका सेवन नहीं किया जाता है। आप स्वयं देखिएगा, बरगद के वृक्ष के नीचे पड़ा हुआ जो फल होता है उस फल के अंदर अनेकों त्रस जीव भरे हुए होते हैं जो इन आँखों से स्पष्ट दिखायी देते हैं। जैसे ही उस फल को तोड़ते हैं उसके अंदर से अनेक जीव उड़ते हुए दिखायी देने लगते हैं इसलिये आचार्य भगवंतों ने कहा कि ये तुच्छ फल हैं इनका सेवन नहीं करना चाहिये।

मैं जब स्कूल (School) में पढ़ता था। बहुत छोटा था। स्कूल (School) के पास एक बहुत बड़ा तालाब था। जब इंटरवल (Interval) होता था तो हम लोग तालाब पर चले जाते थे और थोड़ी देर वहाँ बैठकर वापस आ जाते थे। वहाँ एक वृक्ष लगा हुआ था। उसके नीचे ऊमर पड़े रहते थे। मेरा एक मित्र था, वह उन फलों को उठाकर साबुत खा लेता था। मैं तो उस समय जानता भी नहीं था कि यह क्या चीज है। वह एक दिन मुझसे बोला—लो तुम भी यह फल खाओ। तो मैंने कहा कि मैं तो जानता ही नहीं हूँ इसे। पता नहीं क्या चीज है यह? किसका फल है? कैसा फल है? मैंने कहा- 'मैं तो नहीं खाऊँगा।' वह बोला-ये बहुत अच्छा होता है। इसमें विटामिन (Vitamin) भरा रहता है और इसे बिना फोड़े खाते हैं। अगर इसको फोड़ते हैं तो इसका सारा विटामिन (Vitamin) बाहर निकल जाता है। दिखाऊँ तुम्हें? उसने मुझे उस फल को तोड़कर दिखाया। टूटते ही उस फल में से तो जीव निकलकर उड़ने लगे। मैंने कहा- पागल! तू इसको खाता है इसमें से तो कितने जीव निकल रहे हैं। वह बोला- नहीं, ये तो विटामिन (Vitamin) है। अहो अज्ञानी! निम्नकुल में जन्म लेनेवाले लोग, जिन्हें आचार- विचार का ज्ञान नहीं होता ऐसे लोग इन तुच्छ फलों का सेवन करते हैं।

इसलिये जिनवाणी माता जिनगुरु कहते हैं कि ऐसे तुच्छ फलों का सेवन कभी नहीं करना चाहिये। अरे सेवन करने के लिये बहुत फल हैं। अच्छे-अच्छे फल हैं। उन फलों का सेवन करो। लेकिन इन पाँच उदुम्बर फलों का तो दूर से ही त्याग कर देना चाहिये। कभी अंजीर से बनी मिठाई नहीं खाना। उसमें बहुत से त्रस जीवों की हिंसा होती है। श्रावक के आठ मूलगुणों में से चार का कथन हो चुका है।

पाँचवाँ मूलगुण है- नित्य देवदर्शन करना। इस नियम का पालन करना। जैनकुल में जन्में प्रत्येक व्यक्ति का यह मूलगुण है मूलाचार है प्रतिदिन देवदर्शन करना।

आज आपके साथ बच्चे मंदिर आयेंगे तो कल उनके अंदर स्वत: ही प्रश्न पैदा होंगे कि ये भगवान हैं, तो ये भगवान कैसे बने? इन्हें भगवान क्यों कहते हैं? ये हाथ पे हाथ रखकर क्यों बैठे हैं? बच्चों के अंदर स्वत: ही ऐसी जिज्ञासाएँ उठने लगेंगी। वे आपसे बार-बार ऐसे प्रश्न पूछेंगे, तब आपका यह कर्त्तव्य है कि आप विवेकपूर्वक उनकी जिज्ञासाओं का समाधान करें। वे जब आपसे पूछें कि ये कौन हैं? ये भगवान कौन होते हैं? तब आप कहें कि बेटा!

इन्होंने अपने समस्त कर्मों का क्षय कर दिया है इसलिए ये भगवान हैं। वे आपसे पुन: पूछेंगे कि ये कर्म क्या होते हैं? आप उन्हें प्रेम से बतायें कि बेटा कर्म दो प्रकार के होते हैं शुभ कर्म और अशुभ कर्म। शुभ कर्म का फल शुभ होता है अशुभ कर्मों का फल अशुभ होता है। जब बच्चों को इन बातों का ज्ञान होगा तो वे स्वत: पाप से बचेंगे और धर्म के कार्य करेंगे।

यदि माता-पिता ने अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया। सुबह के समय माताएँ अपने बच्चे को सोता देख प्रसन्न होती हैं। निश्चिंत होकर अपने काम में लगी रहती हैं। लेकिन ध्यान रखना, जब आप कल को अशक्त अवस्था को प्राप्त होओगे। आपके मन में भगवान के दर्शन करने के भाव उठेंगे तो आपकी वह संतान क्या उस समय आपके काम आ पायेगी? उनके भी मन में वही भाव आ जायेगा **'लो खाओ ये गोली, चैन की नींद सोओ'** और हमें हमारा काम करने दो। इसलिये आवश्यकता है अपने संस्कारों के माहात्म्य को जानने की। स्वयं संस्कारित माता-पिता ही संतान को संस्कार दे सकते हैं। निर्ग्रंथ गुरु जो हमें संस्कारों का पाठ पढ़ाते हैं वे जब पूछते हैं—क्यों बेटा! रोज मंदिर जाते हो? तब आप लोग ही बहाने बनाने लगते हो कि 'महाराज श्री! वह सुबह से स्कूल (School) जाता है इसलिये मंदिर नहीं जा सकता है।'

स्कूल (School) जाने के लिये उसके पास 6 घंटे हैं और मंदिर जाने के लिये उसके पास 6 मिनट भी नहीं हैं। ये तुम्हारा कैसा विवेक है? आप 10 मिनट पहले उसे तैयार कर दीजिये। मंदिर जी में मात्र एक वेदी का दर्शन उसे करा दीजिए। क्योंकि बच्चे की सारी जिम्मेदारी आपकी है। जिस प्रकार गृहस्थी के सारे कार्य आप बड़ी जिम्मेदारी के साथ करते हो। किस भाव से कि यह हमारा कर्तव्य है ऐसा हमें करना है, उसीप्रकार अपने जैन कुलाचार के प्रति हमें सजग होना चाहिये। यह भाव होना चाहिये कि ये हमारा कर्तव्य है हमारी अनिवार्य क्रियायें हैं जिनका पालन हमें अवश्य ही करना है। एक बार अन्य कार्य छूट जायें लेकिन हमारा व्यवहार धर्म न छूटे। क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि जो गृहस्थ प्रतिदिन भगवान जिनेन्द्र के दर्शन, स्तुति, पूजन नहीं करते, पात्रों के लिये दान नहीं देते, उनका गृहस्थाश्रम में रहना पत्थर की नाव के समान है। वे गृहस्थ शीघ्र ही अत्यंत दुखमय व भयंकर संसार सागर में डूब जाते हैं। आचार्य भगवन् पद्मनंदी स्वामी उपासक संस्कार में कहते हैं-

ये जिनेन्द्रं न पश्यंति पूजयंति स्तुवंति न।
निष्फलं जीवनं तेषां तेषां धिक् च गृहाश्रमम्।। 15।।

अगर आप में इतना भी विवेक विचार नहीं कि आप बच्चों को नित्य देवदर्शन करा सकें तो आपके द्वारा उसे दिलायी जानेवाली शिक्षा उसे बुद्धिमान भले ही बना दे लेकिन उसे संस्कारवान श्रेष्ठ इंसान नहीं बना सकती। **शिक्षा से मात्र आर्थिक स्थिति सुधर सकती है लेकिन संस्कारों से भव-भव सुधर जाते हैं।** शिक्षा यहीं छूट जाती है और संस्कार की छाप भवों-भवों तक बनी रह जाती है। अपने जैन कुलाचार के प्रति हमें गर्व होना चाहिये।

मैं भले ही अनपढ़ रह जाऊँ लेकिन अपने कुलाचार के प्रति उपेक्षा का भाव नहीं रख सकता। जैसे आपका बेटा भले ही पढ़ता लिखता न हो लेकिन उसे भोजन कराना तो आवश्यक ही है। भोजन तो तुम कराओगे ही कराओगे। चाहे पढ़े लिखे, चाहे न पढ़े लिखे। चाहे मस्ती करे खेले कूदे। फिर भी तुम कहोगे कि बेटा समय हो गया है पहले भोजन कर लो। इसीतरह ये अष्ट मूलगुण हैं जिनका पालन अवश्य होना चाहिये। बच्चे को 10 मिनट पहले तैयार करके एक वेदी का दर्शन कराके स्कूल (School) भेज दीजिए। बच्चे को स्कूल (School) अवश्य भेजें लेकिन बच्चे को मंदिर भी अवश्य भेजें।

आज के ये संस्कार उनके भावी जीवन को उज्जवल बनायेंगे। घड़ा अगर पक जाये तो फिर कुम्हार उसे अपने मन चाहे रूप में मोड़ नहीं सकता। उसीप्रकार जब बच्चे युवा हो जाते हैं तब आप उनसे कहें कि बेटा! मंदिर जाया करो तो वे आपसे पूछेंगे—मंदिर जाने से क्या होता है? इस तरह के तर्क-वितर्क करने लगेंगे। क्यों? क्योंकि उनकी बुद्धि बाह्य भौतिक वातावरण के अनुरूप ढल चुकी है। उनकी विपरीत सोच व प्रवृत्तियों को सुधारने के लिये आप उनसे बार-बार कहें कि बेटा मंदिर जाया करो तो वे यही पूछेंगे कि मंदिर जाने से क्या होता है मम्मी? और उस समय तुम उन्हें चाहकर भी न समझा पाओगे।

मैं एक जगह चातुर्मास कर रहा था वहाँ का नाम नहीं ले रहा हूँ। वहाँ एक दिन पड़गाहन के बाद चौके में पहुँचा। आहार चर्या शुरु हो गयी। वहीं 18-20 साल की एक बालिका थी जिसे एक कटोरी पकड़ा दी गई। उसमें अभी इतना भी संस्कार नहीं था कि वह मुनिराज को आहार दे सके। उसे यह संस्कार वह ज्ञान नहीं मिला। वह मम्मी से पूछने लगी, मम्मी-मम्मी

मैं क्या करूँ? मम्मी ने कहा—बेटा! एक चम्मच दाल लेकर इसको महाराज श्री की अंजुली में देना चाहिये। मैं सोचने लगा, काश इस बालिका के माता-पिता ने इसके लिये धार्मिक संस्कार बचपन में ही दिये होते तो आज इस बच्ची को इतनी बड़ी उम्र में ये पूछना नहीं पड़ता कि मम्मी मैं इसका क्या करूँ?

ये वो संस्कार हैं जो परिवार से मिलते हैं माता-पिता से मिलते हैं। यह आपका दायित्व है। अगर आप इन दायित्वों का निर्वहन नहीं करेंगे तो आपके बच्चे भटक जायेंगे। वे अपनी कुल की प्रतिष्ठा के अनुरूप प्रवृत्तियों को नहीं अपना पायेंगे। क्योंकि उन्हें वह ज्ञान वह शिक्षा ही नहीं मिली। इसलिये यह आपका काम है कि आप अपने बच्चों को संस्कार दें।

छटवाँ मूलगुण है—जीवदया का पालन करना। गृहस्थ जीवन में रहते हुए जितनी संभव हो सकती है आप उतनी जीवदया पालें। जीवदया का भाव लायें। जीवदया का पालन करना आप स्वयं सीखें और अपने बच्चों को सिखायें।

सातवाँ मूलगुण है-पानी छानकर पीना। भगवान जिनेन्द्र देव कहते हैं कि जल की एक बूँद में असंख्यात जीव पाये जाते हैं जो खाली आँख से दिखायी नहीं देते। इस बात की पुष्टि वैज्ञानिक भी करते हैं। उनके अनुसार जल की एक बूँद में 36450 जीव पाये जाते हैं इसी कारण डॉक्टर (Doctor) पहले इंजेक्शन (Injection) लगाते थे तो गर्म पानी रखते थे। जिससे कि कोई इन्फेक्शन (Infection) न फैले। आजकल तो सिरिंज (Syringe) चलती हैं। यूज एंड थ्रो (Use & Throw)।

आजकल डॉक्टर (Doctor) भी कहते हैं कि पानी गर्म करके पीना। क्यों? क्योंकि पानी में सूक्ष्म जीव होते हैं अगर वे तुम्हारी देह में चले गये तो तुम्हारे स्वास्थ्य को खराब कर सकते हैं। अब आप कहोगे कि हमें आँख से तो दिखते नहीं हैं। जो चीज आँख से दिखती हो वही श्रद्धा योग्य नहीं होती अपितु जो आँख से नहीं दिखती है उसका भी श्रद्धान किया जाता है। हवा आँख से दिखती है क्या? नहीं दिखती लेकिन होती तो है। इसलिये जो चीज आँख से दिखायी देती है मैं उसी का श्रद्धान करूँ ऐसी बात नहीं है। वे भले ही खाली आँख से दिखायी नहीं देते लेकिन उनमें जीव होते हैं।

पानी छानकर पीना यह जैनियों का कुलाचार है। पहले के जैनी अपने साथ में छन्ना लेकर चलते थे और पहनते थे धोती दुपट्टा। अब आजकल तो जीन्स (Jeans) चलता है कई जीन्स (Jeans) में ऊपर से लेकर नीचे तक जेबें होती हैं। आप तो किसी भी जेब में एक छन्ना रख लो आपके नियम का पालन हो जायेगा। पहले के लोग रूमाल रखें या न रखें लेकिन पानी छानने का छन्ना अवश्य रखते थे और आज आदमी की जेब में रूमाल तो मिल जायेगा लेकिन पानी छानने के लिये छन्ना नहीं मिलेगा। क्यों? क्योंकि जैनकुल का संस्कार खो गया। जबकि आप चाहें तो एक कपड़ा अपने साथ रख सकते हैं।

इसलिये घर-परिवार में पानी छानकर पीने का महत्व समझाना चाहिये। जब घर में कोई रोगी-बीमार पड़ जायेगा और डॉक्टर (Doctor) समझाने आयेगा तब समझोगे क्या? यह जैनों का आचार-विचार है पानी छानकर ही पीना।

और कहा भी है-

> **पानी पीवो छानकर, जीव जंतु बच जाय।**
> **जीवदया अति पुण्य है, रोग निकट नहीं आय।।**

क्योंकि-

> **जल के एक ही बिंदु में, रहते जीव असंख्य।**
> **बिन छाने मत बापरो, होवें पाप निसंख्य।।**
>
> **बिन छाना जल जो पीवे, वे नर पापी होय।**
> **त्रस हिंसा के पाप से, जावे नरके सोय।।**
>
> **जीते रहो जीने दो, जीते ही सुख होय।**
> **जीने में बाधा करे, ते नर पापी होय।।**
>
> **बर्तन मुख से तीगुना, छत्तीस चौबीस होय।**
> **पानी उससे छानिये, जीव घात नहीं होय।।**

इसलिये आगमोक्त विधि अनुसार अत्यंत गाढ़े (मोटे) जिसमें से सूर्य की किरणें न निकल सकें ऐसे दोहरे छन्ने के द्वारा छाना हुआ अथवा छानकर प्रासुक किया गया जल प्रयोग में लाना चाहिये और छाने हुए जल के द्वारा ही अन्य क्रियायें स्नान वस्त्रादि धोना आदि कार्य करने चाहिये। क्योंकि एक बार पीने में तो थोड़ा ही पानी खर्च होता है लेकिन स्नान आदि अन्य कार्यों में तो बहुत जल का दुरुपयोग किया जा सकता है।

जिनशास्त्र श्लोकार्णव में कहा है—

अगालितं जलं येन पीत-मंजलि मात्रकम्।
सप्तग्राम दाहोद्भुतं पापं तस्य प्रजायते।।136।।

अर्थात् जिसने एक अंजुलि प्रमाण भी बिना छना जल पिया है उसे सात गाँव के जलाने के बराबर पाप लगता है।

अनछने जल के संग्रह प्रयोग करने पर कितना पाप लगता है इसका वर्णन जैनेत्तर ग्रंथ उत्तर मीमांसा में भी मिलता है यथा-

संवत्सरेण यत्पापं कुरुते मत्स्य-वेधकः।
तत्पापं जात्यते नित्यं अपूतजल संगृहीत्।।

अर्थात् मछली मारनेवाला धीवर एक वर्ष में जितना पाप करता है उतना पाप बिना छने हुए जल को काम लेनेवाले को एक दिन में होता है।

इसलिये पापभीरू श्रावक अपने जैन कुलाचार का पूर्णरूपेण पालन तत्परता के साथ करते हैं, अर्थात् छानकर पानी उपयोग में लाते हैं।

आठवाँ मूलगुण है—रात्रिभोजन का त्याग। श्रावक कुल में जैनकुल में आठ वर्ष की उम्र से बालकों के लिये रात्रिभोजन का त्याग करा दिया जाता था। रात्रिभोजन करना सबसे बड़ा पाप माना गया है नरक का द्वार कहा गया है।

पद्मपुराण में एक उदाहरण आता है लक्ष्मण और वनमाला का। जब रामचन्द्र जी सीता व लक्ष्मण के साथ वनवास के समय वन में विचरण करते थे तो वे एक स्थान पर रात्रि विश्राम

के लिये रुके। जब राम और सीता सो जाते तब लक्ष्मण अपने कर्तव्य का निर्वाह करते। रात्रि में कोई हिंसक जानवर न आ जाये इसलिये रात्रि में जागते रहते। चारों तरफ घूम-घूम कर देखते रहते थे। एक बार लक्ष्मण के लिये किसी स्त्री के कुछ शब्द सुनायी दिये। किसी के रोने जैसी आवाजें सुनायी दीं। लक्ष्मण को आश्चर्य हुआ। वे सोच में पड़ गये कि इतने घने जंगल में कौन स्त्री रात्रि में दुखभरी कष्टभरी आवाज में बोल रही है। वे उसी दिशा में आगे बढ़ने लगे। थोड़ा सा आगे बढ़े ही थे कि उन्होंने देखा एक सुंदर कन्या फाँसी का फंदा लगाकर मृत्यु चाहती है।

लक्ष्मण ने पूछा—आप कौन हैं देवी? उस कन्या ने अपना परिचय दिया कि मैं राजपुत्री हूँ मेरा नाम वनमाला है। लक्ष्मण ने पूछा—तुम सम्राट की पुत्री होकर भी मरना चाहती हो? ऐसी क्या कमी हो गई तुम्हारे जीवन में।

वनमाला बोली—मैंने राजा दशरथ के पुत्र लक्ष्मण के बारे में बहुत कुछ सुन रखा है और जबसे मैंने उनके विषय में सुना है तबसे मैंने अपने मन में संकल्प कर लिया कि मैं अपना विवाह लक्ष्मण के साथ ही करूँगी अन्य किसी के साथ नहीं। लेकिन मुझे सखियों से पता चला कि लक्ष्मण अपने बड़े भाई के साथ वन को चले गये। अब मेरा विवाह लक्ष्मण के साथ नहीं हो सकता और उनके बिना मेरे प्राण धारण करने का कोई प्रयोजन ही न रहा इसलिये अब मैं मृत्यु को उपलब्ध होना चाहती हूँ।

लक्ष्मण ने उसकी बात सुनकर मुस्कुराते हुए कहा- अच्छा! ऐसी बात है क्या? फिर लक्ष्मण ने उसके लिये अपना परिचय दिया। वनमाला लक्ष्मण को अपने सामने देखकर अत्यंत हर्षित आनंदित हो उठी। लक्ष्मण ने वनमाला को राम और सीता से मिलवाया और कुछ समय पश्चात् योग्य मुहूर्त में उन दोनों का विवाह हो गया। कुछ समय बीतने के पश्चात् रामजी के साथ लक्ष्मण पुन: आगे बढ़ने लगे, यह देख वनमाला बोली-मैं भी आपके साथ चलूँगी। लक्ष्मण ने उसे समझाया कि तुम मेरे साथ नहीं चल सकती। जब मैं वनवास का काल पूरा करके वापस लौटूँगा तब तुम्हें अपने साथ नगर अयोध्या ले चलूँगा। उतने समय तक तुम्हें घर में रहकर ही धर्मपालन करना होगा।

वनमाला ने कहा- बड़ी मुश्किल से तो आप मुझे मिले। मेरा पुण्य था जो आप से संयोग हुआ और अब आप मुझे छोड़कर के जा रहे हो। कैसे विश्वास करूँ कि आप मुझे पुन: याद करोगे? मैं कैसे विश्वास करूँ कि आप मुझे लेने आओगे?

लक्ष्मण ने कहा—यदि वनवास के बाद मैं तुम्हें लेने न आऊँ तो मुझे रात्रिभोजन करने का पाप लगे। वनमाला ने जब लक्ष्मण की ऐसी प्रतिज्ञा सुनी तो वह संतुष्ट हो गई। क्योंकि रात्रि भोजन करना महा पापकर्म के बंध का कारण है।

बंधुओ! यह जैन कुलाचार है। रात्रि में भोजन करनेवाला हिंसक माना गया है। लौकिक ग्रंथ महाभारत में नरक के चार द्वार कहे गये हैं। उन चार द्वारों में से एक द्वार रात्रिभोजन करने को कहा गया है। बहुत सारे कथावाचक महाभारत जैसे ग्रंथों पर प्रवचन तो करते हैं लेकिन शायद ऐसी गाथाओं को नहीं पढ़ते।

नरकद्वाराणि चत्वारि प्रथमं रात्रि भोजनम्।
परस्त्रीगमनं चैव सन्धानानन्त-कायिके।। महाभारत।।

अर्थात् नरक जाने के चार द्वार हैं, प्रथम रात्रिभोजन, दूसरा परस्त्री गमन, तीसरा सन्धान अर्थात् अचार सेवन, और चौथा अनंतकायिक जमीकंद आदि।

जैनधर्म में 'रात्रि भोजन त्याग' अष्ट मूलगुणों के अंतर्गत रखा गया है। जिसका पालन स्वयं बालक के द्वारा आठ वर्ष की अवस्था से शुरु हो जाता है। जो भी खाना हो, जितना भी खाना हो। अच्छे से अच्छा, मीठे से मीठा। सुस्वादु, स्वास्थ्य के लिये अनुकूल। आपको जितना भी भोजन करना हो आप दिन में कर लीजिए। जिनधर्म यह मना नहीं करता कि आप भोजन न करें। आप खूब अनुकूल भोजन कीजिए लेकिन रात्रि में मत कीजिए। डॉक्टर (Doctor) भी कहते हैं कि सोने से तीन-चार घंटे पूर्व भोजन कर लेना चाहिये। अगर आप डॉक्टर (Doctor) की बात भी मानें तो जैनधर्म के अनुसार भोजन का जो समय बताया गया है आप उसी समय भोजन कर सकेंगे।

नीतिकार कहते हैं-

Early to bed and early to rise.

'जल्दी सोयें और जल्दी जागें'। अब आप अपनी दिनचर्या देखें। आप न जल्दी सोते हैं न जल्दी जागते हैं। और अपने साथ दूसरों को भी जगाते रहते हो। वैयावृत्ति के समय पर क्या कहते हो—महाराज श्री! अभी समय नहीं हुआ। थोड़ा और-थोड़ा और करते हो। अरे

भाई हमें तो साढ़े तीन बजे उठना ही है तुम्हारी भोर तो जब होगी तब होगी लेकिन हमें तो अपनी दिनचर्या का पालन करना है।

कहने का तात्पर्य यह है कि अगर आप नीतिकारों की इन सूक्तियों का भी पालन करने लगें, तो भी आप सुख से जी सकते हैं। आज के समय में बच्चों से लेकर बूढ़े तक चिंताग्रस्त नजर आते हैं। अगर जीवन जीना ही है तो अच्छे से जिओ। डेल कारनेगी की एक पुस्तक है—

'चिंता छोड़ो सुख से जिओ'

कम से कम सुख से तो जिओ। क्या तुम इतना भी नहीं कर सकते। इसलिये समय पर सोयें समय पर जागें। अगर आप समय पर सोना सीख गये तो समय पर भोजन करना अपने आप सीख जायेंगे।

जब आदमी देर रात तक जागता रहता है तब उसे भूख सताती है। और इतनी कन्ट्रोलिंग पावर (Controlling power) तो है नहीं। इसलिये भूख लगी और तुरंत भोजन कर लिया। जैन कुलाचार कहता है कि सूर्यास्त होते ही आपकी रसोई पर ताला लग जाना चाहिये। **श्रावक को सूर्योदय से दो घड़ी बाद और सूर्यास्त के दो घड़ी पहले तक भोजन करने की आज्ञा है।** यदि यह आचार आपके जीवन में आ गया तो आपका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा और धर्म का पालन भी होगा। इसलोक में सुख से जियेंगे और परलोक में सुख से रहेंगे।

कहने का तात्पर्य यह है कि अष्टमूलगुण श्रावक का धर्म है जिसका पालन अवश्य करना चाहिये। बच्चों को ये संस्कार अवश्य देने चाहिये जिससे उनका भी जीवन अच्छा बने।

कलाई पर धागा बाँधकर आप कहते हो कि हम रक्षाबंधन पर्व मनाते हैं। अरे यह कोई रक्षा करना है। जिनेन्द्र भगवान ने यह अष्टमूलगुण के नियम-व्रत रूप रक्षा सूत्र दिये हैं। जो देह के साथ-साथ आत्मा की भी रक्षा करते हैं सुरक्षा करते हैं। हम एक-दूसरे के लिये धर्म के संस्कारों की राखी बाँधें। धर्मरक्षा का प्रण लें। यही सच्चा रक्षापर्व होगा।

आजकल साधु-साध्वियाँ भी पिच्छी आदि में राखी बँधवाने लगे हैं जो आगमानुकूल नहीं है। इस पर भी सोने-चाँदी की राखी वीतरागी संतों के उपकरण में बाँधना शायद सामायिक चारित्र का नाश करना ही है। यह लोक क्रिया है धर्म क्रिया नहीं। साधु परमेष्ठी

इन लोक क्रियाओं के त्यागी होते हैं। क्या श्रावक एवं साधु इस पर विचार करेंगे? अहो! आत्मा से आत्मा की रक्षा का पर्व ही सच्चा रक्षाबंधन पर्व है।

इसलिये इन अष्टमूलगुणों का पालन करना चाहिये। श्रावकों के बारह उत्तरगुण होते हैं पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। सात व्यसन, सात भय, पच्चीस मल दोषों से रहित, बारह अनुप्रेक्षा रूप वैराग्य से सहित, अतिचार रहित, विघ्नरहित भक्ति होना ये श्रावक के गुण होते हैं।

जो सच्चा श्रावक है वह भक्ति अवश्य करेगा। वह भी निर्विघ्न भक्ति अर्थात् विघ्न बाधा भी आ जाये तो भी उसकी भक्ति में अंतर नहीं आयेगा। तुम दूसरे के सामने से उसकी थाली हटा सकते हो लेकिन उसके भक्तिभाव को नहीं हटा सकते। इसलिये ध्यान रखना, **भक्ति में कितना भी विघ्न आये तो भी भक्तिवान सम्यग्दृष्टि श्रावक कभी भी पंचपरमेष्ठियों की भक्ति से विमुख नहीं होता है।** इसलिए निर्विघ्न भक्ति करनेवाला श्रावक कहा गया है।

बंधुओ! इन गुणों को आप अपनी आत्मा में प्रगट करें और इस पर्याय को सार्थक करें। गृहस्थ ही न बने रहें श्रावक बनने का प्रयास करें। क्योंकि एक श्रावक भी शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष को प्राप्त करनेवाला होता है। आप निर्ग्रंथ मुनि बनें यह बहुत अच्छी बात है। कदाचित् अभी वह बनने की योग्यता नहीं जुटा पाये तो कम से कम सच्चे श्रावक अवश्य बन जाना। क्यों? क्योंकि श्रावक भी मोक्ष को प्राप्त होगा। वह भी मोक्षमार्गी है। एक दिन निर्ग्रंथ बन निर्वाण को अवश्य प्राप्त करेगा। दुखों से मुक्त होगा। इसलिये ध्यान रखना है '**गृहस्थ नहीं श्रावक बनें।**'

जो श्रावक गुण अपनाये, भक्ति भावना को भाये।
रत्नत्रय को प्राप्त करे, तभी मोक्षसुख को पाये।।
भव-भव का बंधन, हो-हो-2, शिवमार्ग नशाये रे.....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

(मुक्ति सुख का पात्र कौन)

देव-गुरु-समय-भत्ता, संसार-सरीर-भोग-परिचत्ता।
रयणत्तय-संजुत्ता, ते मणुया सिवसुहं पत्ता।।9।।

* अन्वयार्थ *

(देव-गुरु-समय-भत्ता) जो मनुष्य देव-गुरु-शास्त्र के भक्त होते हैं। **(संसार-सरीर-भोग)** संसार, शरीर व भोगों के **(परिचत्ता)** परित्यागी होते हैं **(रणयत्तय-संजुत्ता)** रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं **(ते)** वे **(मणुया)** मनुष्य **(सिवसुहं)** शिवसुख को **(पत्ता)** प्राप्त करते हैं।

अर्थ- जो मनुष्य जिनेन्द्र देव, निर्ग्रंथ गुरु और जिनेन्द्र देव कथित जिनागम-सच्चे शास्त्रों में भक्ति रखते हैं, इनके भक्त हैं, संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हैं, और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र, रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं, वे मनुष्य मुक्तिसुख को प्राप्त करते हैं।

गाथा - 9

(प्रवचन)

●

सच्चा सुख-अतीन्द्रिय सुख

22.08.2013

भिण्ड

आत्म चिंतन लीन सम्यग्दृष्टि श्रावक।
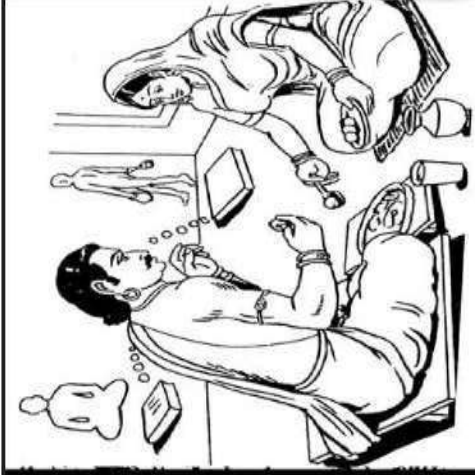
भोजन करते हुये भी देव,शास्त्र,गुरु का चिंतन करता श्रावक।

विरक्त हो मुनिराज से आत्महित का उपाय पूछता श्रावक।
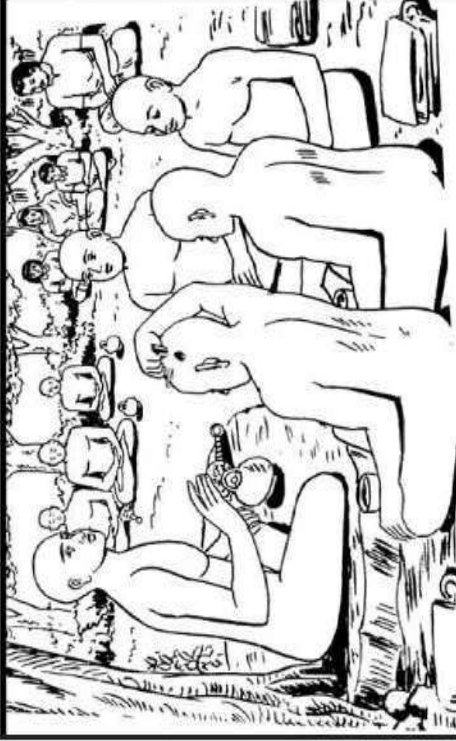
आचार्य श्री से दीक्षा ग्रहण करता वैराग्य भाव को प्राप्त श्रावक।

सच्चे भावलिंगी संत का सिद्धालय की ओर गमन।

19

रयणोदय

देव-शास्त्र-गुरु-भक्त कहा, भव तन भोग विरक्त अहा।
रत्नत्रय संयुक्त कहा, शिवसुख में अनुरक्त अहा।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, सच्चा सुख पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

किसी नगर में एक निर्ग्रंथ योगिराज का आगमन हुआ। संत के आगमन का शुभ समाचार सर्वत्र फैल गया। जिन्होंने भी सुना मन में भाव जगा, संतों का दर्शन, संतों का वंदन और संतों का उपदेश प्राणिमात्र के लिये कल्याणकारी होता है हितकारी होता है इसलिये हम सभी के लिये संत की वंदना, उनके उपदेश का श्रवण अवश्य करना चाहिये। नगरवासी अपने अंतस्

में पवित्र भावना को समाये हुए संत के दर्शन-वंदन और उनके उपदेश का श्रवण करने के लिये चल पड़े।

निर्ग्रंथ योगिराज, निस्पृह भाव के धनी, परम वीतरागता का अनुभव करनेवाले, प्राणीमात्र के प्रति करुणाभाव को हृदय में समाहित करनेवाले थे। उन योगिराज साधु-महात्मा जी का नगरवासियों ने सश्रद्धा भाव से दर्शन किया और उनके चरणों में बैठकर उनकी प्रशांत मुखमुद्रा को निहारने लगे। विचार करने लगे, अहो! धन्य हैं ये योगिराज! धन्य हैं ये महात्मा! जिन्होंने ऐसा सुंदर रूप और स्वरूप पाया है फिर भी इन्होंने अपने जीवन को इस तपस्या के मार्ग पर साधना के मार्ग पर अग्रसर किया है।

उन निर्ग्रंथ योगिराज ने उन सब भव्य जीवात्माओं को सद्धर्मवृद्धि का आशीर्वाद प्रदान किया। उन भव्य जीवों के सविनय अनुरोध पर उन निर्ग्रंथ योगिराज ने धर्म का उपदेश सुनाया और बतलाया कि इस संसार में यदि कोई सच्चा सुख है तो वह है आत्मा का अतीन्द्रिय सुख, मोक्ष सुख। जो भव्य अपनी आत्मा को पूर्ण सुखी, अनंत सुखी बनाना चाहता है, हमेशा-हमेशा के लिये सुख में लीन रखना चाहता है उसे निरंतर मोक्षसुख प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये।

यह जीव अनादिकाल से आज तक इस संसार में रहते हुए जन्म-मरण धारणकर एकमात्र दुखों को भोगता रहा। विचार करना! इस संसार में जन्म लेने के बाद तुमने कितने परिवार बनाये? इसकी आप गणना भी नहीं कर सकते। अपने अनेक जन्मों में आपने अनेक परिवारों का सृजन किया। रिश्ते-नातों का जाल फैलाया और मृत्यु के समय वह परिवार तो छूटा वह जाल तो छूटा लेकिन जाल बुनने की तुम्हारी वह प्रवृत्ति न छूटी, तुम्हारा मोह न टूटा।

संसार के इन संबंधों के प्रति हमारी आत्मा में यदि सम्यग्ज्ञान हुआ होता। इन संबंधों के यथार्थस्वरूप का बोध हुआ होता। हमने यदि उस समय अथवा अंत समय में इन संबंधों के प्रति रागद्वेष मोह का परित्याग कर दिया होता, तो शायद आत्मा अनंतसुख प्राप्त करने के मार्ग पर होता।

मेरी पंक्तियाँ हैं—

पत्तों को सींचने से, नहीं फूल खिलेंगे।
रिश्तों को सींचने से, न महावीर मिलेंगे।।

आया अकेला आके, क्यों घरद्वार बसाया।
जायेगा भी अकेला, न कोई साथ चलेंगे।। ज़ाहिद की ग़ज़लें।।

संसार अवस्था में जीव परिवार बनाता है और मोह के कारण संसार (दुख) बढ़ाता है। अनेक भव में न जाने किस-किस को अपने परिवार का सदस्य बनाया। इस संसार में अनंत जीव हैं और उनमें से प्रत्येक जीव के साथ हम हर रिश्ता बना चुके हैं हर रिश्ता निभा चुके हैं। जो आज इस पर्याय में तुम्हारा पुत्र है कभी तुम उसके भी पुत्र रह चुके होगे। जो तुम्हारी माता है वह कभी तुम्हारी पुत्री भी रह चुकी होगी। जो तुम्हारा भाई है वह कल तुम्हारा शत्रु भी हो सकता है। और आज जो तुम्हारा शत्रु है वह कल तुम्हारा मित्र भी हो सकता है। ये संसार के संबंध हैं। इन संबंधों का सृजन अपने-अपने कर्मों के अनुसार सहज ही होता रहता है और यह अज्ञानी जीव उन्हीं को अपना मानता रहता है उनमें ममत्व भाव रखकर उन्हीं संबंधों के पालन पोषण में अपना पूरा जीवन गँवा देता है। क्यों? क्योंकि वह नहीं जानता कि आज मैं जिनका पालन-पोषण कर रहा हूँ अपना सारा जीवन दाँव पर लगा रहा हूँ वह मेरे प्राणों के घात में, मृत्यु में निमित्त कारण बन सकते हैं। हम शायद इसको पहचान नहीं पाते। ये वो संबंध हैं जिन संबंधों के व्यापार में हर व्यक्ति सिर्फ ठगा जाता है। इस व्यापार से कभी कोई उपलब्धि प्राप्त नहीं होती।

और हमें ऐसा महसूस होता है कि शायद ये संबंध हमारे जीवन में हमारे लिये बहुत कुछ उपलब्धियाँ प्रदान करेंगे। लेकिन इन मूढ़ कल्पनाओं से कभी किसी को कुछ मिलता नहीं है। मैंने कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं-

राजभोग पाकर न भूलिये यहाँ,
मौत कभी आयेगी न भूलिये यहाँ।
फूलना व भूलना ही भूल है बड़ी,
भूल को न कभी दोहराना चाहिये।। आइना।।

बंधुओ! एक वृद्ध पुरुष, जिसने अपने जीवन में सभी संबंधों को जीकर देख लिया उससे पूछा जाये कि आप अपने जीवन के अनुभव बताइए, आपका परिवार के साथ रहने का क्या अनुभव रहा? रिश्तेदारों की संगति से आपको क्या अनुभव हुआ? अपनी घनिष्ठ मित्र मण्डली

के साथ रहने का क्या अनुभव रहा? आपके व्यापारिक जीवन का कैसा अनुभव रहा? आपने अपने जीवन में जितने भी संबंध बनाये, उन संबंधों से आपके लिये क्या उपलब्धि हुई?

ध्यान रखना! अगर वह वास्तविक अनुभवी व्यक्ति होगा तो यही कहेगा-

कोई अपना नहीं दिखता, हमें दुनिया के मेले में।
वही कहते हैं जो खुद से, मिला करते अकेले में।।

कयामत की यहाँ रातें, कयामत के यहाँ दिन हैं।
नहीं दिन रात उनको चैन, जो हैं इस झमेले में।।

हजारों कसमें तोड़ी हैं, हजारों रिश्ते तोड़े हैं।
यहाँ दो भाई देखे लड़ते, इक मिट्टी के ढेले में।।

चला करते सभी काँटों पे, किन्तु मानते गुल सा।
सितम सहते सभी आदम, यहाँ रिश्तों के मेले में।।

(ज़ाहिद की ग़ज़लें)

वह कहता है कि

कल की भूलें रुला रहीं हमको,
पाया न कुछ भी क्या बतायें तुमको।

होते अपने पराये एक सभी,
इस तन ने छोड़ा तन्हा जब हमको।। ज़ाहिद की ग़ज़लें।।

इन सभी रिश्तों का सफर तय करते-करते मैंने मात्र बैचेनी और अंत में तन्हाई ही पाई। मैंने अपना चैन खोया, सुकून खोया, सुख शांति खोई। आज तक का पूरा जीवन खोया। दु:खों का भार ढोते-ढोते मैंने सिर्फ खोया ही खोया है पाया कुछ भी नहीं। और इस समय जो अभी दृष्टिगोचर हो रहा है वह भी मेरा खो जायेगा उपलब्धि कुछ नहीं होगी।

बंधुओ! श्रावकों के लिये उपदेश दिया, कहा—सच्चा सुख, सच्ची शांति तो अपनी आत्मा में है। जो व्यक्ति अपनी आत्मा के सन्मुख हो जाता है वही अपने जीवन में सच्ची शांति

का अनुभव कर पाता है। और जो व्यक्ति बाह्य जगत में अपने उपयोग को उलझाकर रखता है उसके जीवन में कभी शांति नहीं रहती। वह सदा अशांति का अनुभव करता रहता है।

इसलिये हमें इन समस्त संबंधों के प्रति सजग हो जाना चाहिये। इनके प्रति सम्यग्ज्ञान (यथार्थ बोध) रखना चाहिये और अपनी आत्मा के हित के लिये, मोक्ष की प्राप्ति के लिये रत्नत्रय का मार्ग प्राप्त करना चाहिये। उन निर्ग्रंथ योगिराज का महा मांगलिक उपदेश सभी भव्य जीवात्माओं ने सुना और सुनकर ऐसा लगा मानो आत्मा को आज कोई विशेष उपलब्धि हुई हो।

बंधुओ! यदि आपके लिये किसी विषय में सही ज्ञान प्राप्त हो जाये तो आप अपने ज्ञान से जान सकते हैं कि आज किस तरह का एक अद्भुत आनंद का अनुभव हो रहा है। अगर आपको किसी विषय में सही ज्ञान न हो तो आप चिंतित रह सकते हैं लेकिन सही ज्ञान मिल जाये तो स्वयमेव अंदर से उल्लास पैदा होने लग जाता है। आनंद की अनुभूति होने लग जाती है। जैसे भीतर कोई शीतल बयार का झौंका आया और हमारी संतप्त आत्मा को शांति प्राप्त हो गई। निर्ग्रंथ गुरु का उपदेश सुनकर भव्य जीवात्माओं को अभूतपूर्व शांति का अनुभव हुआ और सभी ने अपनी-अपनी योग्यतानुसार मुनिराज से यम-नियम संकल्प को उत्साहपूर्वक धारण किया। मन में विचार किया, भगवन्! कभी हम भी ऐसे ही अतीन्द्रिय सुख, सच्चे सुख, अविनाशी सुख को प्राप्त करने का सफल पुरुषार्थ कर सकें।

जब सभी लोग निर्ग्रंथ गुरुराज का उपदेश सुनकर अपने-अपने गृह की ओर चले गए तब वहाँ एक भव्य जीव बैठा-बैठा गुरु के उपदेश का मन में स्मरण कर रहा था। विचार कर रहा था कि इन मुनिराज ने जो सच्चा सुख, शाश्वत सुख, आत्मसुख या मोक्षसुख कहा है उस सुख की प्राप्ति का उपाय क्या है?

ध्यान रखना! श्रोता तो बहुत होते हैं बहुत प्रकार के होते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो श्रवण करके अपने भीतर किसी जिज्ञासा को जन्म नहीं दे पाते, और कुछ ऐसे होते हैं जो हित की बात सुनने के बाद उस हितकारी कार्य को साधने का उपाय क्या है? मार्ग क्या है? रास्ता क्या है? उस को जानने के प्रति जिज्ञासु हो जाते हैं, उत्सुक, लालायित हो जाते हैं।

बंधुओ! आपने अपने बेटे से कहा—बेटा! तुम्हें इस योग्य पद पर पहुँचना है। अगर बालक जिज्ञासु होगा तो कहेगा—पिताजी इस योग्य पद पर पहुँचने का मार्ग क्या है? रास्ता क्या है? क्योंकि जब तक जीव को मार्ग नहीं मिलता तब तक मंजिल भी नहीं मिलती। जब तक कारण की प्राप्ति नहीं, तब तक कार्य की उपलब्धि नहीं। इसलिये जिज्ञासु होना आवश्यक है।

वह भव्य जीव निर्ग्रंथ योगिराज की ओर हाथ जोड़कर बैठा हुआ था। मुनिराज ने कहा- बेटा! क्या सोच रहे हो? क्या चिंतन कर रहे हो? उस भव्य ने कहा- स्वामिन्! मैं यह सोच रहा हूँ कि जिस सच्चे सुख का आपने उपदेश दिया है वह सच्चा सुख मुझे कैसे प्राप्त हो? उस सच्चे सुख को प्राप्त करने के लिए मुझे क्या उपाय करना होगा? मुनिराज ने उसके इस प्रश्न को, अंतस की जिज्ञासा को सुनने के बाद विचार किया, अहो! यह निश्चित ही निकट भव्य जीव है जो यह जानना चाहता है कि हमारा सच्चा हित क्या है? उसका उपाय क्या है? उन निर्ग्रंथ योगिराज ने उसे सच्चे सुख का जो उपाय बताया। वही उपाय आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव हम सभी भव्य जीवों के लिये यहाँ बता रहे हैं। हम सभी नवमी गाथा को यहाँ पर देखते हैं-

देवगुरुसमय भत्ता, संसार-सरीर-भोग परिचत्ता।
रयणत्तयसंजुत्ता, ते मणुया सिवसुहं पत्ता।। ९।।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव यहाँ बताते हैं कि '**ते मणुया सिवसुहं पत्ता**' वे मनुष्य सच्चे सुख, शिवसुख को प्राप्त करते हैं जो '**देवगुरुसमयभत्ता**' जो सच्चेदेव, सच्चे शास्त्र, और सच्चे गुरु के भक्त होते हैं। '**संसार सरीर भोग परिचत्ता**' जो संसार, शरीर और भोग इनके परित्यागी होते हैं अर्थात् इनसे विरक्त होते हैं और '**रयणत्तय संजुत्ता**' जो रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं वे ही मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

भो भव्य आत्माओ! आज इस गाथा को ध्यान से सुनना और अपने जीवन में अवधारित करना। यदि कोई आपसे पूछे कि मोक्षसुख कौन प्राप्त करता है तो आपको पता होना चाहिये कि मोक्षसुख प्राप्त करनेवाला कौन, और कैसा होता है? जो देव, शास्त्र और गुरु का भक्त होता है। संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ऐसे रत्नत्रय से संयुक्त होता है वह मनुष्य मोक्ष सुख में अनुरक्त होता है अर्थात् मोक्षसुख को प्राप्त करनेवाला होता है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने मोक्षसुख प्राप्त करनेवाले भव्यात्मा के लिए यह उपादेयता बताई कि सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु का भक्त होना चाहिये। देव सच्चे हैं, शास्त्र सच्चे हैं, गुरु सच्चे हैं लेकिन अगर भक्त सच्चा नहीं है तो वह सच्चे देवशास्त्रगुरु का भक्त नहीं कहला सकता। भक्त तो दुनियाँ में बहुत हैं भक्तों की कमी नहीं है लेकिन सच्चे भक्त बहुत विरले होते हैं। जैसे विवाह तो बहुत से लोग करते हैं। वैवाहिक, पारिवारिक, दाम्पत्य जीवन दुनिया में बहुत सारे लोग जीते हैं। लेकिन निस्वार्थ भाव से दाम्पत्य जीवन जीनेवाले कोई विरले ही होते हैं।

राम वनवास की ओर चलने को हुए तो उनकी धर्मपत्नी सीता कहती है कि **'आप जंगल में रहें, वन में दुख सहें और मैं राजसुख भोगूँ, हे स्वामिन्! मेरे साथ ऐसा अन्याय मत कीजिए।'** ध्यान से सुनना, सीता क्या कहती है धर्मपत्नी क्या कहती है? आप जंगल में रहें, वन में विचरण करें और मैं यहाँ महलों में रहकर राजसुख भोगूँ। हे स्वामिन्! मुझ पर ऐसा अन्याय मत कीजिए। एक सच्ची धर्मपत्नी को पति के द्वारा महलों में राजसुखों के बीच छोड़ना भी अन्याय प्रतीत हो रहा है और एक वह भी पत्नी हो सकती है जो यह कह दे कि आपको अगर जंगल जाना है तो चले जाइये, निश्चिंत होकर वन को जाइये, मैं यहाँ रहकर आपका इंतजार करूँगी। मैं आपके साथ कहाँ घूमती फिरूँगी? और आप कहाँ तक हमारी व्यवस्था बनाते फिरोगे? इसलिये मैं आपके लिये बाधा नहीं बनना चाहती। आप निश्चिंत होकर जाइये। मैं भी यहाँ निश्चिंत रहूँगी। ध्यान रखना, निस्वार्थभाव से दाम्पत्य जीवन जीनेवाला परिवार विरला ही होता है। उँगलियों पर गिनने लायक ही होते हैं। ऐसी सीता ही थी। ऐसे वे राम ही थे। ऐसे राम-सीता कितने हुए?

राम-सीता राजमहलों को छोड़कर वनवास हेतु जंगल की ओर जा रहे थे। चलते-चलते एक नदी मिली। कहते हैं कि राम ने वहाँ बैठे एक नाविक केवट से कहा कि मुझे नदी पार करा दो। केवट का अहोभाग्य था। राजपुत्र राम के लिये नदी पार कराने का अवसर जो मिला था। केवट तो आनंदित हो उठा। उसके पास अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिये शब्द ही न थे। उसने अपनी नाव में राम, सीता, लक्ष्मण को बैठाया और चल दिया नदी पार कराने। राम ने जैसे ही देखा कि किनारा आनेवाला है। हम नदी के उस पार पहुँचने वाले हैं। विचार करने लगे कि केवट ने मुझे नदी पार करायी है मैं केवट को क्या दूँ? इतने में सीता की दृष्टि राम पर

पड़ी और राम के चिंतित मुखमुद्रा को पहचानने में उसे देर न लगी। **ध्यान रखना, सेवाभावी धर्मपत्नियाँ अपने पति के निश्चिंत और चिंतित मुख को क्षणमात्र में पहचान लेती हैं।** सीता ने राम की ओर देखा और धीरे से पूछ लिया, क्या हुआ? क्या बात है? आप इतने चिंतित क्यों लग रहे हैं?

राम ने सीता की ओर देखा और धीरे से कहा-केवट ने हमें नदी पार कराई है उसने इतना श्रम-परिश्रम किया है उसे उसका पारिश्रमिक अवश्य मिलना चाहिये। लेकिन मैं यह सोच रहा हूँ कि इसे क्या दूँ? सीता ने धीरे से अपने हाथ की अनामिका अँगुली से अँगूठी निकाली और राम की हथेली पर रख दी। कहने लगी- नाथ! आपको केवट के समक्ष लज्जित नहीं होने दूँगी। आप यह अँगूठी रखिये और जब केवट अपना पारिश्रमिक माँगे, अपना पारितोषिक माँगे तो आप इस अँगूठी का उपयोग कर लीजिएगा। इससे आपको केवट के सामने अपनी आँखें नहीं झुकानी पड़ेंगी। आप इस अँगूठी को स्वीकार कीजिये।

राम ने सीता की ओर सम्मान भरी दृष्टि से देखा और कहने लगे, भो सीते! यह तो वही अँगूठी है जो हमने तुम्हारे लिए बड़े प्रेमभाव से पहनायी थी। यह वो अनमोल तोहफा है जिसे कोई कभी किसी दूसरे को प्रदान नहीं करना चाहता। सीता ने कहा-स्वामी! मेरे पास तो साक्षात् आप हैं। आपका प्रेमभाव ही मेरे लिये असली सौगात है। आपकी निर्मल कीर्ति और सम्मान के लिये आपके श्री चरणों में आपकी ही वस्तु समर्पित करती हूँ क्योंकि मेरा सब कुछ आपका ही तो है नाथ!

राम ने कहा-भो सीते! तुम्हारा यह समर्पण, यह निस्वार्थ सेवाभाव देखकर मैं बहुत आनंदित हूँ। राम ने अँगूठी को रख लिया और जैसे ही नदी पार पहुँचे, राम स्वयं आगे होकर बोले-भो केवट भैया! आपने हमारे लिये यह नदी पार करायी है आपने बहुत बड़ा परिश्रम किया है आप अपने इस पारिश्रमिक को स्वीकार करो।

केवट भी बहुत विवेकी था। वह बोला-भो राम! मैं दिनभर श्रम करता हूँ और अपने पारिश्रमिक को हर किसी से प्राप्त करता हूँ लेकिन आप मुझे जो दे रहे हैं मैं जानता हूँ वह आपका नहीं है। राम आश्चर्य में पड़ गये। अरे! यह सब कुछ कैसे जान गया? उस वृद्ध अनुभवी केवट ने कहा- भो राम! जो दशरथ की बेटी है वह मेरी भी बेटी है और मैं अपनी बेटी का यह आभूषण पारिश्रमिक के रूप में नहीं ले सकता।

राम केवट के उस शुभ्र परिणाम को देखते ही रह गये। विचारने लगे, अहो! धन्य है इसकी स्वामी परायणता। केवट ने पुनः राम से कहा- भो राम! मैंने तुम्हें नदी पार कराई है मुझे इसका मात्र इतना पारिश्रमिक देना कि एक न एक दिन मुझे इस भवसागर से पार करा देना।

कहने का तात्पर्य यह है कि संसार में ऐसे परिवार मिलना बहुत दुर्लभ हैं जहाँ निस्वार्थ प्रेम होता है। **परस्पर निस्वार्थ प्रेमभाव ही परिवार को खुशहाल बनाता है।** अन्यथा दुनिया में परिवार भी बहुत बसते हैं और संबंध भी बहुत बनते हैं। इसी तरह सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे गुरु के भक्त तो बहुत होते हैं लेकिन सच्चा समर्पित भक्त मिलना दुर्लभ है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं अगर मोक्ष सुख प्राप्त करना है तो सच्चे देवशास्त्रगुरु का भक्त बनना होगा। सच्चा भक्त किसे कहते हैं? जो भव्य भक्ति करना तो जानता है लेकिन भक्ति के बदले कोई अपेक्षा नहीं रखता। कोई चाह, कोई कामना नहीं रखता। वह सिर्फ इतना जानता है कि भक्ति करना मेरा कर्तव्य है। सच्चे भक्त के हृदय में कभी भी देवशास्त्रगुरु से कोई भी लौकिक सांसारिक सुख-साधन की चाहना कामना नहीं होती और यदि उनके चरणों में बैठकर अभिलाषा भी करता है तो-

'दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।'

हे परमपिता परमात्मा! हे जिनवाणी माता! हे मेरे परम उपकारी गुरुदेव! आपकी निर्मल भक्ति से यदि मुझे कुछ मिले, तो यह कि मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधिलाभ हो, सुगति गमन हो, समाधिपूर्वक मरण हो, हे जिनेन्द्रदेव! मुझे आप जैसे गुणों की प्राप्ति हो। जैसे गुण आपने अपनी आत्मा में प्रगट किये हैं वैसे ही गुण मेरी आत्मा में भी प्रगट हों।

एक बात बताना, जिस सच्चे भक्त ने भगवान जिनेन्द्र से उनके जैसे ही गुणों को पाने की चाहना की हो, भावना की हो, फिर इस संसार का ऐसा कौन सा पदार्थ है जो उनके लिये दुर्लभ हो। यही बात आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी श्री इष्टोपदेश ग्रंथ में कहते हैं—

यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौ कियद् दूरवर्तिनी।।4।।

अर्थात् जिन भावों के द्वारा इस जीव के लिये शिवसुख, मोक्षसुख, अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है उन भावों के द्वारा सांसारिक अभ्युदय सुखों की प्राप्ति स्वत: ही हो जाये तो इसमें कौन सी बड़ी बात है?

अत: सच्चे-देव-शास्त्र-गुरु के भक्त बनना। कैसे भक्त बनना? सच्चे भक्त बनना। लौकिक सुख-साधन, भोगों की इच्छा आकांक्षा लेकर उनके द्वारे मत जाना। उनसे कोई अपेक्षा कामना मत करना कि मैं आपकी भक्ति करूँ तो मुझे ऐसे-ऐसे फलों की प्राप्ति हो। ध्यान रखना, जब कोई व्यक्ति जल से स्नान करेगा तो शीतलता तो उसे मिलेगी ही। क्यों? क्योंकि जल का स्वभाव शीतलता प्रदान करने का है। यदि कोई मूढ़ अज्ञानी जीव जल को बाल्टी में रखकर बैठा हुआ हो और कामना कर रहा हो कि हे जलदेवता! आप मुझे शीतलता प्रदान कर देना। तो आप उससे क्या कहोगे? यही कहोगे ना कि अरे भाई! तू इतनी कामना क्यों करता है। तू जैसे ही अपनी देह पर जल डालेगा तुझे शीतलता स्वयमेव मिलेगी।

ऐसे ही जो सच्चे-देव-शास्त्र-गुरु की सच्चे हृदय से सच्ची भक्ति करता है उस भक्ति का प्रभाव ही ऐसा है फल ही ऐसा है कि सब प्रकार की अनुकूलताएँ, सुख, सामग्रियाँ प्राप्त होती ही हैं। जिन्हें देवशास्त्रगुरु के प्रति भक्ति तो होती है लेकिन सच्ची भक्ति नहीं होती। जो भक्त तो होते हैं लेकिन सच्चे भक्त नहीं होते, वे कभी-कभी संशय शंका को प्राप्त हो जाते हैं सोचने लग जाते हैं क्या पता भइया यहाँ कुछ काम बना नहीं बना, चलो कहीं दूसरी जगह भी अपनी अर्जी लगा आयें, घूम आयें। घूम आने में, जाने में क्या बिगड़ता है।

ऐसे जीवों को संबोधित करते हुए मैंने पंक्तियाँ लिखी थीं-

लख ले, लख ले, रे नादान, निज घट में बैठा भगवान-3
घूमत - घूमत, फिरते - फिरते, पाँव पड़ गये छाले।
प्रभु की मूरत कहती तुझसे, रिश्ता स्वयं बना ले।।
लख ले, लख ले, रे नादान, निज घट में बैठा भगवान।। गीताञ्जलि।।

सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु की सच्ची भक्ति, सच्चे भक्त को सच्चा फल अवश्य देती है। **जिसके मन में यह संशय, विकल्प, शंका, संदेह बना हुआ है कि पता नहीं देवशास्त्रगुरु**

की भक्ति से कुछ होगा कि नहीं होगा तो आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि वह जीव अभी सम्यग्दृष्टि नहीं है। अभी उसे सच्चे देवशास्त्रगुरु का सच्चा श्रद्धान नहीं है।

एक व्यक्ति संकट में पड़ गया। जंगल में रास्ता भूल गया और सामने से सिंह आता हुआ दिखायी दिया। अब सोचिये, उस आदमी की क्या स्थिति हुई होगी? अगर सामने से कोई भौंकता हुआ कुत्ता भी आ जाये तो आदमी की क्या स्थिति हो जाती है फिर वहाँ तो सामने साक्षात् सिंह आ गया था। वह आदमी घबराया, फिर उसने सोचा संकट की घड़ी आ खड़ी है। जाऊँ तो कहाँ जाऊँ? रास्ता भी भटका हुआ हूँ। अब क्या करूँ? वह सोचने लगा, ऐसे समय में भगवान ही रक्षा करते हैं। आकर प्राण बचाते हैं। चमत्कार दिखलाते हैं। उसने सोचा, अब तो बस प्रभु को पुकारो। वे ही आयेंगे दौड़े-दौड़े अपना संकट दूर करने। ऐसा मैंने असलियत में तो नहीं लेकिन पिक्चर्स (Pictures) में टी.वी. (T.V.) में देखा है।

उसने भगवान को पुकारना, स्मरण करना, शुरु किया। बोला- हे भगवान महावीर! अंतर्यामी भगवन्! आपका चिन्ह शेर है हमारे सामने भी शेर है। मैं तो कभी केवल घर का शेर हुआ करता था लेकिन ये तो सवासेर है। इसलिये भगवन्! अब आप ही बचाओ। भगवन्! देर मत लगाना। जरा जल्दी आना। वह आँख बंद करके थोड़ी देर भगवान को याद करता है। थर-थर काँपता जाता है। वह तुरंत आँखें खोलकर देखने लगा कि शायद अब तो भगवान महावीर आ गये होंगे। लेकिन भगवान नहीं आये। उसने सोचा गड़बड़ है। लगता है भगवान महावीर किसी दूसरे की सेवा में गये हैं। आदमी तो एक ही है कहाँ-कहाँ जायेगा?

उसने सोचा, चलो भगवान महावीर न सही हम भगवान राम को याद करते हैं। उसने सुन रखा था कि भगवान राम ने न जाने कितनों के संकट निवारे हैं वे तो कृपालु हैं हमारा भी संकट अवश्य दूर करेंगे। वह कहने लगा-हे भगवान राम! इस सिंह ने छीना मेरा आराम। अब आप ही मुझ जैसे दीन, गरीब, अनाथ, असहाय, की रक्षा करो। आपके अलावा मेरा कोई भी नहीं है। उसने राम का ध्यान लगाया। आँखें खोलकर देखा अभी तक कोई नहीं आया। वह बोला—लगता है ये भी कहीं व्यस्त हैं। जब दुनिया वाले इतने व्यस्त हैं। सभी के व्यस्त कार्यक्रम चलते हैं। घर, समाज, परिवार के बीच परस्पर में प्रेम, सहयोग, मैत्री और आत्मीयता जैसे भावों को व्यक्त करने का, सुनने का, किसी के पास अब समय ही नहीं है। किसी से भी

पूछ लेना, आपके पास थोड़ा सा समय है क्या? क्या कहेगा वह आदमी? वह कहेगा बहुत व्यस्त हूँ भाईसाहब। समय तो नहीं है मेरे पास। आप और कुछ चाहते हों तो मैं दे सकता हूँ लेकिन समय नहीं दे सकता। अरे! आप कहें तो मैं आपके लिए अपने प्राण भी दे सकता हूँ लेकिन समय नहीं दे सकता। क्या कहता है वह आदमी, प्राण दे सकता हूँ लेकिन समय मत माँगो।

तो वह आदमी सोचने लगा, लगता है रामजी भी व्यस्त हैं। उसने सोचा राम न सही, बजरंगबली हनुमान सही। हनुमान तो बहुत बली हैं। संकटमोचन कहलाते हैं। वह हनुमान को पुकारने लगा। करुण स्वर में कहने लगा— हे हनुमान! आप पधारो, बहुत कष्ट पीड़ा संकट में आ पड़ा हूँ। तुमने तो अनेकों की रक्षा की है। मेरी रक्षा को तुम ही पधार जाओ। आँखें बंदकर हनुमान हनुमान जपने लगा। आँख खोलकर देखा तो हनुमान तो न आये लेकिन सिंह जरूर पास आता जा रहा था। वह बोला—लगता है दुनिया के सारे देवी-देवता भी अब बहुत व्यस्त हो गये। और बिना बुलाये ये सिंह महाराज मुझे दर्शन देने आ पहुँचे हैं। हे सिंह महाराज! आप भी कहीं व्यस्त हो जाओ।

उसने हनुमान को पुकारा। हनुमान न आये। फिर उसने सोचा, अब तो शंकर जी को पुकारो। शायद यहीं कहीं घूम रहे होंगे नादिया पर बैठे। उसने सोचा, शायद शिवजी उपलब्ध हो सकते हैं सरलता से मिल सकते हैं तो उसने शिवजी को पुकार लगायी। जो शिवजी तक शायद पहुँच न पायी। लेकिन उसने पुकारना जारी रखा। पास से दो फूलपत्ती तोड़ी और कहने लगा कि अगर आओगे तो ये भेंट आपको समर्पित करूँगा। इसलिए हे शिवजी! आप शीघ्रता कीजिए। देर मत लगाइए। हे पार्वती माता! उन्हें जल्दी भेज दीजिये। मेरी सिफारिश लगाइए। उसने आँख खोलकर देखा। अरे! शिवजी भी न सुन पाये मेरी पुकार। लगता है वे भी कहीं व्यस्त हैं। कभी-कभी जब व्यक्ति मोबाइल (Mobile) लगाता है तो नेटवर्क (Network) व्यस्त आता है ऐसे ही इन सबके मोबाइल (Mobile) व्यस्त हैं नेटवर्क (Network) व्यस्त है अब कोई रक्षा करनेवाला नहीं है।

उसने सोचा, अब तो अपनी रक्षा स्वयं करो। अपनी बुद्धि लगाओ। वहीं सामने एक वृक्ष था। उसने सोचा क्यों न इसी पर छलांग लगाकर चढ़ जाऊँ क्योंकि अगर सिंह आ जायेगा तो

खा जायेगा। बाकी सब तो व्यस्त हैं। एक यही मेरे लिए खाली है। तो वह फटाफट सामने एक वृक्ष था उस पर जाकर बैठ गया। तब तक सिंह आ पहुँचा और वृक्ष की ओर देखने लगा। वह व्यक्ति भी सिंह की ओर देखने लगा और कहने लगा—भैया! अब तुम भी कहीं व्यस्त हो जाओ क्योंकि मैं यहाँ अपनी रक्षा में व्यस्त हूँ। सिंह थोड़ी देर तो इंतजार करता रहा फिर वहाँ से चला गया।

सिंह के जाने के बाद उसने देखा कि हनुमान जी चले आ रहे हैं। शिवजी और रामजी भी चले आ रहे हैं। सब चले आ रहे हैं। अब जिनेन्द्र भगवान तो आते नहीं हैं क्योंकि वे जानते हैं जब हमारे यहाँ बैठे-बैठे ही काम हो जाता है तो भक्त के पास जाने की क्या आवश्यकता है इसलिये वे कहते हैं बेटा! भक्ति कर। भक्ति का फल तुझे अवश्यमेव मिलेगा।

जब उसने देखा रामजी आ गये। हनुमान जी आ गये। शिवजी आ गये। और जिन जिन को पुकारा था वे सब आ गये। वह वृक्ष पर चढ़ा हुआ था और वृक्ष के नीचे सारे देवी-देवता खड़े हुए थे। उसने पूछा—आप लोग अब क्यों आये? शिवजी ने कहा—तू कह रहा था फूल पत्तियाँ चढ़ाऊँगा। कहाँ हैं तेरी फूल पत्ती? बोला—नेटवर्क (Network) व्यस्त है अभी मैं बहुत व्यस्त हूँ। फिर उसने पूछा—जब मैं तुम्हें पुकार रहा था तब तुम सब क्यों नहीं आये? रामजी ने कहा—जब तेरी पुकार सुनी तो मैं आने को हुआ, तब तक तू हनुमान को पुकारने लगा, तो मैंने सोचा अब मैं क्यों जाऊँ? हनुमान जी जायेंगे। हनुमान बोले—तेरी पुकार सुनकर मैंने सोचा चलूँ लेकिन इतने में तू शिवजी को पुकारने लगा। यद्यपि यह दृष्टान्त काल्पनिक है वास्तविक नहीं सिर्फ समझने के लिए है, तो जिनेन्द्र भगवान के भक्त देवगण आये, वे कहने लगे-

घूमत-घूमत फिरते-फिरते, पाँव पड़ गये छाले।
प्रभु की मूरत कहती तुझसे, रिश्ता स्वयं बना ले...
लख ले लख ले रे नादान, निज घट में बैठा भगवान।। गीतांजलि।।

इसलिये ध्यान रखना! सच्चेदेव, सच्चे शास्त्र, सच्चे गुरु की सच्ची भक्ति करनेवाला सिर्फ इतना जानता है कि मैं आपकी भक्ति कर रहा हूँ आपको मुझे बचाना हो तो बचा लो। तारना है तो तार दो। सब आपके हाथ में है। मैंने तो अपना समर्पण आपके लिये कर दिया है

इसलिये अब मैं किसी और को आवाज नहीं लगाऊँगा। किसी अन्य की शरण में नहीं जाऊँगा। अब तो एकमात्र आप ही मेरे आराध्य हो और मैं आपका आराधक। दो के बीच में अगर तीसरा आ जाये तो शोभा नहीं देता। ऐसे ही जहाँ भक्त और भगवान के बीच भक्ति का रिश्ता बन गया अब वहाँ और किसी की जरूरत नहीं रहती।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं जिसे शिवसुख मोक्षसुख प्राप्त करना है तो उसकी सबसे पहली शर्त है सच्चेदेव- शास्त्र-गुरु का सच्चा भक्त होना चाहिये। सच्ची श्रद्धा, भक्ति, समर्पण के भावों से भरा होना चाहिये। जिनागम में भगवान की वाणी में आया है कि संसार, शरीर और भोग ये जीव के लिये दुख के कारण हैं। यदि भव्य जीव सच्चा भक्त है तो प्रभु की बात को अवश्य स्वीकार करेगा, मानेगा और कहेगा कि हे स्वामिन्! आप जो भी कहते हैं वह बिल्कुल सत्य है। भक्त के हृदय में संतों की वाणी, अरिहंतों की वाणी के प्रति ऐसी अकाट्य श्रद्धा होती है।

जिनवाणी माँ यह कहती है कि संसार, शरीर और भोग यह जीव के लिये सुख के नहीं अपितु दुख के साधन हैं इसलिये इनका यथार्थ स्वरूप जानकर इनसे विरक्त होना चाहिये। अपना हित चाहते हो तो जैसे कमल जल में रहता है वैसे ही असम्पृक्त होने का अभ्यास करो। क्या करो? **पहले राग घटाओ, फिर राग हटाओ और वीतराग बन जाओ।**

बंधुओ! संसार, शरीर और भोग, इनका जब यथार्थ स्वरूप ज्ञान में आ जाता है उसी रूप सम्यक् श्रद्धान हो जाता है तो फिर जीव को ये बिल्कुल भी रुचिकर मालूम नहीं पड़ते। इनके प्रति उदासीनता प्रगट होने लगती है। ऐसा उदासीन व्यक्ति क्या करे? आचार्य कुंदकुंददेव कहते हैं— ऐसे उदासीन व्यक्ति के लिये अपनी आत्मा को रत्नत्रय से संयुक्त करना चाहिये अर्थात् आत्मा में रत्नत्रय गुण प्रगट करना चाहिये। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति आत्महितकारी है। संसार, शरीर और भोगों में रुचि अहितकारी है। यह जो उपदेश है, इसके प्रति सच्ची श्रद्धा होना ही सम्यग्दर्शन है। यथार्थ रूप से जानना सम्यग्ज्ञान है। और इनसे विरक्त होकर अपनी आत्मा में स्थिर हो जाना सम्यक्चारित्र है। दौलतराम जी कहते हैं-

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रूप को जानपना सो सम्यग्ज्ञान कला है।।
आप रूप में लीन रहे थिर सम्यक्चारित्र सोइ।

इसलिये ऐसे रत्नत्रय को आत्मा में प्रगट करना चाहिये।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं जो तीन पर श्रद्धा करता है तीन से विरक्त होता है और तीन को प्राप्त होता है वही एक दिन सच्चेसुख को प्राप्त कर पाता है अर्थात् जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धा करता है यानि तीन पर श्रद्धा करता है। तीन से विरक्त होता है यानि संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है। और तीन को प्रगट करता है अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन को प्रगट करता है वह एक दिन आत्मा के अविनाशी अतीन्द्रिय सुख को उपलब्ध हो जाता है। आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी श्री सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में इसी बात का समर्थन करते हुए कहते हैं-

'सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः। तत्प्राप्त्युपायो मार्गः।...सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमित्येतत् त्रितयं समुदितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः।'

अर्थात् सब कर्मों का जुदा होना मोक्ष है और उसकी प्राप्ति का उपाय मार्ग है।..........और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का साक्षात् मार्ग हैं ऐसा जानना चाहिये।

बंधुओ! अगर मोक्ष सुख चाहिये। सच्चा सुख चाहिये। आत्मा को अगर अनंत दुखों से मुक्ति और अनंत शाश्वत आत्मीय सुख को प्राप्त करना है तो हमें आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव के द्वारा दिया हुआ यह उपदेश स्वीकार करना होगा।

वह भव्यजीव निर्ग्रंथ गुरु के मुख से ऐसा धर्मामृत का पानकर मन में विचार करने लगा, अहो! मैंने अपना कितना जीवन इन संसार, शरीर, भोगों और संबंधों में व्यर्थ ही व्यतीत कर दिया। जिनसे मुझे एकमात्र कर्मबंधन की ही प्राप्ति हुई, दुख की प्राप्ति हुई अर्थात् मेरा यह संसार और वृद्धि को प्राप्त हो गया।

अब मुझे सच्चे गुरु के द्वारा इस धर्मरूपी अमृत का रसास्वादन करने के बाद अपनी आत्मा के हित का यह समीचीन उपाय करना ही है।

वह भव्य जीवात्मा गुरुदेव से बोला- हे स्वामिन्! आप मुझ बालक पर भी कृपादृष्टि कीजिए। मुझे भी रत्नत्रय प्रदान कर पवित्र कीजिये। मुझे स्वीकार कीजिये और भगवती

जिनदीक्षा देकर मुझे भी मोक्षमार्गी बनाइये जिससे मैं भी इस भवसागर से पार हो सकूँ। संसार सागर को पार करने का एक यही मार्ग है सुख-शांति का मार्ग है

आप सभी के जीवन में श्रेष्ठ जिनधर्म की उपलब्धि हो। आत्मधर्म की उपलब्धि हो। जिस उपलब्धि को प्राप्त करने के बाद आत्मा स्वयं परमात्मा बन जाता है। लेकिन बंधुओ! सर्वप्रथम आवश्यक है देवशास्त्रगुरु के प्रति सच्ची भक्ति का होना। आत्मस्वरूप का निर्णय होना। क्या करना? सच्ची भक्ति करना। अन्यथा तुम दर-दर, द्वारे-द्वारे टेर लगाओ कि ये हमारा दुख दूर करने आ जायेंगे तो ये पंचमकाल है। इस पंचमकाल में कोई भी देवी-देवता तुम्हें बचाने आनेवाले नहीं हैं। यह कलिकाल है, पंचमकाल है, कलयुग है।

और यह तो भगवान जिनेन्द्र का मार्ग है। इस मार्ग में कोई रुष्ट-तुष्ट होने का, मारने-बचाने का चक्कर ही नहीं है। भगवान जिनेन्द्र की भक्ति से प्राप्त उत्कृष्ट पुण्योदय से अपने आप ही जीव के समस्त दुख दर्द समाप्त हो जाते हैं। इसलिये आप सभी अपने जीवन में इस सच्चेसुख के मार्ग को स्वीकार करें और अपने आत्मा का हित करें।

देवशास्त्रगुरु भक्त कहा, भव तन भोग विरक्त अहा।
रत्नत्रय संयुक्त कहा, शिवसुख में अनुरक्त अहा।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, सच्चा सुख पाये रे......
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 10
(प्रवचन)

●

व्यवहाराभासी और निश्चयाभासी

23.08.2013

भिण्ड

(सम्यग्दर्शन के बिना दीर्घ संसार)

दाणं-पूया-सीलं, उववासं बहुविहं पि खवणं पि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं, सम्मविणा दीह-संसारं।। 10।।

* अन्वयार्थ *

(**सम्मजुदं**) सम्यग्दर्शन से युक्त (**दाणं-पूया-सीलं**) दान, पूजा, शील (**बहुविहं पि**) अनेक प्रकार के (**उववासं**) उपवास (**खवणं पि**) कर्मक्षय में कारणभूत व्रत आदि [संयमादि-मुनिलिंग, श्रावक के एकदेश व्रत] (**मोक्खसुहं**) सर्व मोक्षसुख के कारण हैं और (**सम्मविणा**) सम्यग्दर्शन के बिना ये ही (**दीह-संसारं**) दीर्घ संसार के कारणभूत हैं।

अर्थ-सम्यग्दर्शन से सहित जीव का दान-पूजा-शील, अनेक प्रकार के उपवास, कर्मक्षय में कारणभूत व्रत-संयमादि-मुनिलिंग, श्रावक के एकदेश व्रत आदि सर्व मोक्षसुख के हेतु हैं और सम्यग्दर्शन के बिना वे ही व्रत-तप-पूजा-दान-संयम-उपवासादि संसार को बढ़ानेवाले हैं।

व्यवहाराभासी की मात्र दान-पूजा से मुक्ति की मान्यता

निश्चयाभासी की मान्यता 'दान-पूजा सर्वथा हेय है' एवं 'मैं सिद्ध समान शुद्धात्मा हूँ'

20

रयणोदय

दान शील पूजा उपवास, व्रत से होता कर्म विनाश।
सम्यग्दर्शन पास अगर, तभी मोक्ष सुख होता पास।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो - हो-2, संसार बढ़ाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

बंधुओ! संसार में रहनेवाला प्रत्येक प्राणी यह सोचता है कि हमारे दुखों का शीघ्रातिशीघ्र नाश हो। अगर किसी के लिये बुखार आ जाये तो वह सोचता है हमारा यह बुखार जल्दी से जल्दी ठीक हो जाये। वह अपनी माँ से पूछता है माँ इस बुखार को ठीक करने का क्या उपाय है? जो हमेशा हित की बात बतलाये वही सच्ची माता होती है। माँ ने कहा—बेटा! चलो

चलकर वैद्य जी को दिखाते हैं। वैद्य ने नब्ज देखी, बोला—आपको तो बहुत तेज बुखार है। आपको इन चीजों से परहेज करना होगा और इस औषधि का सेवन नियमित रूप से निर्देशानुसार करना होगा। तभी आप शीघ्र स्वस्थ हो पायेंगे।

संसार में रहनेवाले संसारी प्राणी अज्ञानता के कारण अपनी बीमारी को, अपने रोग को, पहचान नहीं पाते, जान नहीं पाते, मान नहीं पाते। किंतु जब उसे अपने अनादिकालीन रोग का ज्ञान हो जाता है बोध हो जाता है तो फिर वह उस रोग से छूटने का उपाय करता है। बहुत विरले जीव होते हैं जो आत्मा के रोग को पहचानते हैं। शरीर के रोगों को तो जीव सरलता से जान लेता है लेकिन आत्मा रोगी है आत्मा दुखी है यह बात बहुत विरले जीव ही जान पाते हैं मान पाते हैं। देह का रोग मिटने पर क्षणिक सुख मिलता है लेकिन जब आत्मा का रोग मिट जाता है तब आत्मा अनंत सुखी हो जाता है परमानंद की अनुभूति करता है अतीन्द्रिय सुख को भोगता है।

एक ओर क्षणिक सुख है और एक ओर अनंत सुख। ज्ञानी जीव निर्णय करता है कि मुझे यह क्षणिक सुख नहीं मुझे तो अनंत सुख चाहिये। शरीर स्वस्थ होगा तो क्षणिक सुख मिलेगा। यदि आत्मा स्वस्थ निरोगी होगा तो अनंत सुख मिलेगा, प्राप्त होगा। इसलिये उस आत्मा को स्वस्थ करने का निरोगी बनाने का पुरुषार्थ हम सभी के लिये अवश्य करना चाहिये।

वह सच्चा अविनाशी अतीन्द्रिय सुख इस जीव को कैसे प्राप्त होता है? इसकी प्राप्ति का उपाय आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने कल नौवीं गाथा में बताया था कि सच्चा मोक्षार्थी जीव सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु का भक्त होता है। अगर रोग बीमारी हुई है तो डॉक्टर (Doctor) के पास दिखाने तो जाना ही पड़ेगा। वही बतायेंगे कि रोग की स्थिति क्या है? इसकी औषधि क्या है?

एक अस्वस्थ व्यक्ति डॉक्टर (Doctor) के पास दिखाने पहुँचा। डॉक्टर (Doctor) ने कहा—आपको डायबिटीज (Diabetes) हो गई है। इसलिये अब आपको शक्कर मिष्ठान आदि का सेवन नहीं करना है। अगर वह डॉक्टर (Doctor) पर, डॉक्टर (Doctor) की वाणी पर विश्वास करनेवाला होगा और अपने जीवन की परवाह करता होगा तो अवश्य ही उस वस्तु का परित्याग कर देगा। और यदि उसे डॉक्टर (Doctor) पर, डॉक्टर (Doctor) की वाणी पर, भरोसा नहीं होगा, तो वह जानते समझते हुए भी वस्तु का त्याग नहीं कर पायेगा। क्या कहने लगेगा, अरे डॉक्टर (Doctor) का तो काम है कहना।

सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे गुरु बताते हैं कि आत्मा जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से पीड़ित है इन रोगों से छूटने मुक्त होने के लिए कुछ परहेज करना होगा। संसार, शरीर और भोगों का त्याग करना होगा। अगर वह सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा, सच्ची आस्था रखनेवाला होगा तो उनके कहे अनुसार प्रवृत्ति अवश्य करेगा। त्याग के विषय में अवश्य चिंतन करेगा, भोगों से परहेज करेगा। ऐसा जीव अवश्य ही रोगमुक्त होगा। और यदि उसे अपने जीवन की कोई परवाह नहीं होगी, सच्चे सुख के प्रति आकांक्षावान् नहीं होगा तो सोचेगा— महाराज ने कहा तो है लेकिन अब थोड़ा बहुत तो चलता ही है। ध्यान रखना! डायबेटिक (Diabetic) अगर शुगर (Sugar) का सेवन करने लग जाये और कहे कि थोड़ा बहुत तो चलता है तो उससे उसी का रोग, परेशानी बढ़ेगी। ऐसे ही जो संसार, शरीर और भोग इनको स्वीकारते हैं उनका संसार बढ़ता चला जाता है। इसलिये सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु पर सच्ची श्रद्धा रखनेवाला जीव ही इन संसार, शरीर और भोगों से मुक्त हो पाता है।

आगे आचार्य भगवन् कहते हैं जो रत्नत्रय से संयुक्त होता है अपनी आत्मा के आश्रय से रत्नत्रय गुण को प्रगट करता हुआ अपनी आत्मा का अनुभव करता है वही मोक्ष सुख को प्राप्त होता है।

बंधुओ! सच्चा सुख निर्वाण सुख प्राप्त करना है तो हमें रत्नत्रय की प्राप्ति करनी होगी। निर्वाण सुख के लिये देवशास्त्रगुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा, भक्ति और संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति आवश्यक है क्योंकि क्या कहा गया है-

'भोग बुरे भव रोग बढ़ावैं'

विषय भोगों की अनुरक्ति आसक्ति भवरोग को बढ़ानेवाली है।

अगर कोई जीव रत्नत्रय से सहित है तो क्या वह मोक्ष सुख को प्राप्त करता है आचार्य भगवन् गाथा दसवीं में हम सभी को बतलाते हुए कहते हैं-

दाणं पूया सीलं उववासं बहुविहं पि खवणं पि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं सम्मविणा दीहसंसारं।।10।।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं कि '**सम्मजुदं**' सम्यग्दर्शन के साथ किये गये। '**दाणं**' दान। '**पूया**' पूजा। '**सीलं**' शील। '**बहुविहं पि उववासं**' और बहुत प्रकार के उपवास। '**खवणं पि**' और कर्मक्षय में निमित्तभूत ऐसे व्रत आदि। '**मोक्खसुहं**' मोक्ष सुख में कारण हैं। '**सम्मविणा**' और यदि सम्यग्दर्शन से रहित हैं तो ये दान, पूजा, शील, उपवास भी। '**दीह संसारं**' दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

पूर्व गाथा में आचार्य भगवन् ने कहा था कि रत्नत्रय से संयुक्त आत्मा मोक्षसुख को प्राप्त करता है। वह रत्नत्रय दो प्रकार का होता है व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय।

आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी में धर्म की परिभाषा बतलाते हुए कहते हैं-

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।।3।।

तीर्थंकर भगवान् ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को धर्म कहा है। श्री जीवंधर चम्पू में महाकवि हरिचन्द्र ने रत्नत्रय धर्म की महिमा बतलाते हुए उसी की आराधना करने का उल्लेख किया है—

भज रत्नत्रयं प्रत्नं भव्य लोकैकभूषणम्।
तोषणं मुक्तिकान्तायाः पूषणं ध्वान्तसन्ततेः।।6।।

अर्थात् जो भव्यजीवों का अद्वितीय आभूषण है, मुक्ति स्त्री को संतुष्ट करनेवाला है तथा अज्ञानान्धकार की संतति को नष्ट करने के लिए सूर्य है उस श्रेष्ठ रत्नत्रय की उपासना करो।

इस रत्नत्रय का मूल आधार सम्यग्दर्शन है। यदि सम्यग्दर्शन नहीं होगा तो रत्नत्रय नहीं हो सकता, इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव यहाँ सम्यक्त्व की महिमा बता रहे हैं। यदि किसी ने अपनी आत्मा में सम्यक्त्व गुण प्रगट किया है और व्यवहार में वह सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा रखता है और सम्यग्दर्शन के साथ अपने चार कर्तव्यों का पालन करता है। श्री जयधवल जी में श्रावक के जिन चार कर्तव्यों का कथन किया गया है वे ही चार कर्तव्य आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने भी कहे हैं। श्रावक दान करता है, पूजा करता है, शील और व्रत उपवास आदि का भी पालन करता है लेकिन इन सभी कर्तव्यों का पालन सम्यक्त्व के साथ होता है

तो मोक्षसुख में कारण बनते हैं। अन्यथा सम्यक्त्व रहित अवस्था में ये पुण्यबंध के कारण तो हैं परन्तु मोक्ष में कारण नहीं होते, सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह में कहा है-

शीलानि दानानि तपांसि पूजाः, सम्यक्त्व पूर्वाणि महाफलानि।
सत्पुण्यसंवर्तन कारणानि, चतुर्विधानीति वदन्ति तज्ज्ञाः।। 107 ।।

अर्थात् शील, दान, तप और पूजा ये समीचीन पुण्योपार्जन के जो चार कारण हैं, वे सम्यक्त्व पूर्वक ही महान फल को देनेवाले होते हैं ऐसा तत्वज्ञ कहते हैं।

इसलिये महत्ता सम्यग्दर्शन की है। जो दान कर रहे हैं पूजा कर रहे हैं शीलपालन, व्रत उपवास आदि कर रहे हैं तो वह किस निमित्त से कर रहे हैं? इन सभी क्रियाओं के पीछे आपका उद्देश्य, लक्ष्य, चिंतन, विचार क्या है? क्योंकि एक व्यक्ति वह होता है जो यह सोचता है कि इन दान, पूजा, शील, उपवास आदि का पालन मैं इसलिए कर रहा हूँ जिससे हमारे पुण्य की वृद्धि हो। देव पर्याय की प्राप्ति हो।

वहीं दूसरा व्यक्ति जो सम्यग्दर्शन से सहित है अगर उससे पूछा जाये कि आप दान, पूजा, शील, उपवास क्यों धारण किये हुये हो, क्यों कर रहे हो? तो वह कहेगा मैं इनका पालन अपने कर्मों का क्षय करने के लिये कर रहा हूँ। हमारे समस्त कर्मों का क्षय हो इस भावना से कर रहा हूँ। वह कहेगा, भैया! मेरी भावना तो बस इतनी है-

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अब देखिएगा, दोनों व्यक्ति एक जैसे कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं किंतु एक वह है जो दान, पूजा, व्रत, उपवास के बदले में पुण्य चाहता है। यद्यपि दान-पूजा करेगा, शील पालन करेगा, उपवास आदि करेगा तो पुण्य तो बढ़ेगा ही। फिर भी वह आकांक्षा करता है कि हमारे पुण्य की वृद्धि हो। पुण्य फलों की प्राप्ति हो। इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं जो इन व्रतादिक के पालन से मात्र पुण्य चाहता है वह जीव सम्यग्दृष्टि नहीं है।

ज्ञान में ऐसा निर्णय करना, कोई जीव इन दान, पूजा, शील, व्रतादि का पालन करता हो और अन्तरंग में यह चाह रखता हो कि इनके पालन से मुझे ऐसे-ऐसे पुण्यफलों की प्राप्ति हो

तो वह जीव सम्यग्दृष्टि नहीं है, आया न समझ में। जबकि ये सभी पुण्यवर्धिनी क्रियायें हैं किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य को नहीं चाहता। अगर सम्यग्दृष्टि जीव होगा तो वह इन समस्त कर्तव्यों का पालन निष्कांक्ष भाव से करेगा अर्थात् इहलोक, परलोक संबंधी सुखों की चाह नहीं करेगा। क्यों? क्योंकि **सम्यग्दृष्टि जीव निष्कांक्ष वृत्तिवाला होता है।** वह जानता है कि कांक्षा से सम्यग्दर्शन का घात होता है। इसलिये उससे अगर पूछा जाये कि आप इन कर्तव्यों का पालन क्यों करते हो? तो वह कहेगा, मैं इन कर्तव्यों का पालन कर्मक्षय के लिये करता हूँ। मोक्ष पाने के हेतु कर रहा हूँ।

दोनों के चिंतन में अंतर है एक कर्मक्षय के लिये कर्तव्यपालन करता है और दूसरा पुण्य प्राप्ति के लिये कर रहा है। एक मोक्ष प्राप्त करने के लिये कर रहा है और एक संसार बढ़ाने के लिये कर रहा है।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है—क्या दान, पूजा, शील, व्रत, उपवास आदि का पालन करने से कर्म का क्षय होता है? क्योंकि यदि पुण्य की वृद्धि हो रही है तो कर्म का क्षय कैसे माना जा सकता है? ध्यान रखना! दान, पूजा, शील, उपवास को धारण करने से भले ही पुण्य की वृद्धि होती हो लेकिन पुण्य की वृद्धि हो रही है तो यह बात बिल्कुल यथार्थ है कि उस समय पापकर्म का क्षय हो रहा है। क्योंकि दो कर्मों में से एक कर्म कोई भी प्राप्त हो सकता है। इसलिये यदि पुण्य बढ़ रहा है तो किसका क्षय हो रहा है? पापकर्म का क्षय हो रहा है। इसलिये ध्यान रखना, पुण्य पाप में अंतर होता है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव श्री समयसार जी में कहते हैं कि कदाचित् 'पुण्य और पाप दोनों समान हैं।'

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चादि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि।। 145 ।।
सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं।। 146 ।।

अर्थात् अशुभ कर्म तो पापस्वभाव है और शुभकर्म पुण्यस्वभाव है ऐसा जगत जानता है परंतु परमार्थदृष्टि से कहते हैं कि जो कर्म प्राणी को संसार में प्रवेश कराता है वह कर्म अच्छा

कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। जैसे लोहे की बेड़ी पुरुष को बाँधती है और स्वर्ण की बेड़ी भी बाँधती है इसी प्रकार जीव के द्वारा किया गया शुभाशुभ कर्म उसे बाँधता ही है।

इसलिए जो पुण्य और पाप दोनों को समान नहीं मानता आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव की दृष्टि में वह जीव मिथ्यादृष्टि है।

जो पुण्य-पाप दोनों को समान नहीं मानता है वह मिथ्यादृष्टि है और जो दोनों को सर्वथा समान मानता है वह भी मिथ्यादृष्टि है। यह जैनधर्म है यहाँ दोनों प्रकार की बात अपेक्षा से कह दी गई है। जहाँ आचार्य भगवन् कहते हैं कि पुण्य और पाप दोनों समान वहाँ कर्मजाति की अपेक्षा है क्योंकि पुण्य भी कर्म है और पाप भी कर्म है इसलिये दोनों ही संसार को देनेवाले हैं। कहते हैं एक सोने की बेड़ी है एक लोहे की बेड़ी है लेकिन बेड़ी तो बेड़ी होती है।

यदि सोने की बेड़ी से बाँध दिया जाये तो शांति मिलेगी या लोहे की बेड़ी से बाँधने पर शांति मिलेगी? लोहे की बेड़ी तो वैसे ही दुख देनेवाली है लेकिन सोने की बेड़ी से क्या शांति मिल जायेगी? नहीं मिलेगी। क्यों? क्योंकि बेड़ी तो बेड़ी है। साँकल तो साँकल है।

और यदि दोनों को सर्वथा समान माना जाये तो आप लोग लोक व्यवहार तो निर्वाह करते ही हैं। जब किसी के विवाह की बात आप पक्की करते हो। सगाई, शादी-विवाह करते हो तो उस समय क्या पहनाया जाता है सोने की जंजीर, सोने की अँगूठी। अब एक काम करना, उस समय के लिये लोहे की अँगूठी, लोहे की चेन, लोहे के आभूषण आदि बनवाकर ले जाना। कोई कहे कि अरे, ये तुम क्या ले आये तो कहना तुमने समयसार नहीं पढ़ा, पुण्य और पाप दोनों समान हैं। लोहे की बेड़ी और सोने की बेड़ी दोनों समान हैं। इसलिये जब दोनों समान हैं तो इसको पहनने में क्या परेशानी है।

ध्यान रखना! जैसे लोहे और सोने के मूल्य में प्रकृति में अंतर रहता है ऐसे ही पाप और पुण्य के फलों में अंतर होता है। पापकर्म का बंध तीव्र कषाय में होता है और पुण्यकर्म का बंध नियम से मंद कषाय में होता है इसलिये दोनों में अंतर है। जिस समय यह जीव पुण्य का कार्य करता है उस समय उस जीव की कषाय मंदता को प्राप्त होती है।

कषाय का मंद होना ही पुण्य है और कषाय का तीव्र होना ही पाप है। जब जीव तीव्र कषायी होता है तब न अपने पुत्र को देखता है न पिता को। मरने-मारने पर उतारु हो जाता है। और जब कषाय मंद हो जाती है तब वही पिता अपने पुत्र की रक्षा के लिये गाँव-गाँव, नगर-नगर दौड़ता फिरता है कि मेरा बेटा बच जाये, ठीक हो जाये। अहिंसा का, रक्षा करने का भाव आता है। **कषाय की मंदता में दया का और कषाय की तीव्रता में हिंसा का परिणाम आता है** इसलिए बंधुओ! कर्म जाति की अपेक्षा समान हैं किंतु दोनों में अंतर भी है।

अगर पुण्य और पाप में अंतर नहीं होता तो कभी परिवार की रचना नहीं हो पाती। एक परिवार कैसे चलता है? पाप से या पुण्य से? परिवार में एक दूसरे के प्रति परस्पर में रक्षा का, दया का भाव होता है सहयोग की भावना होती है हित का परिणाम होता है। ये परिणाम कौन से हैं? ध्यान रखना! ये कषाय की मंदता में होनेवाले परिणाम हैं। और जहाँ कषाय की तीव्रता होती है वहाँ परिवार, परिवार नहीं रह पाता। वहाँ संघर्ष, विघटन, बिखराव पैदा हो जाता है। इसलिये जो इन पुण्य-पाप को समान नहीं मानता वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता और जो दोनों को सर्वथा समान मानता है वह भी सम्यग्दृष्टि नहीं होता। ऐसा आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव समयसार जी में कहते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव कैसा होता है ? सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य और पाप दोनों को समान मानता है इसलिये वह पुण्यादि क्रियायें करता हुआ भी अपने कर्मों के क्षय की भावना रखता है। और दोनों को भिन्न भी मानता है इसी कारण वह पाप क्रियाओं से बचता है पुण्य क्रियायें करता है और उन पुण्य क्रियाओं का फल वह पुण्य रूप नहीं चाहता अपितु कर्मों का क्षय ही चाहता है।

बंधुओ! जो सम्यग्दृष्टि जीव है वह अभी पुण्य-पाप से रहित नहीं हुआ है। अभी तो उसने मात्र पुण्य-पाप से रहित आत्मा का स्वरूप जाना है और अपने उस शुद्ध आत्मस्वरूप को पाने के लिये इन दोनों से रहित होने का पुरुषार्थ करना है ऐसा उसका निर्णय हुआ है लेकिन अभी वह पुण्य और पाप से रहित नहीं हुआ है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं वह सम्यग्दृष्टि जीव पाप से बचने के लिये दान, पूजा, शील, उपवास इनका पालन करता है इनको धारण करता है, यही कारण है कि आचार्य

भगवन् कहते हैं जो सम्यग्दर्शन से युक्त होकर दान करता है इसका तात्पर्य यह हुआ कि सम्यग्दृष्टि दान करता होगा तभी तो सम्यग्दर्शन से युक्त दान कहा है। सम्यग्दर्शन सहित पूजा करता है इसका तात्पर्य यह हुआ कि सम्यग्दृष्टि जीव पूजा करता होगा, तभी तो सम्यग्दर्शन से सहित पूजा कही गयी है। सम्यग्दर्शन से सहित शील, व्रत उपवास यानि सम्यग्दृष्टि जीव शील धारण करता होगा, व्रत, उपवास करता होगा, तभी तो सम्यग्दर्शन से सहित शील, व्रत-उपवास की व्याख्या की गई है।

बंधुओ! ध्यान रखना। कहीं ऐसे सम्यग्दृष्टि मत बन जाना कि सम्यग्दृष्टि बनते ही न दान का प्रयोजन, न पूजा से प्रयोजन, न शील पालन से मतलब, न व्रत उपवास से कोई सरोकार। कहने लग जाओ कि इनसे क्या होता है ये कोई धर्म थोड़े ही हैं। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि ये कर्मक्षय में विशेषता लाते हैं। इन क्रियाओं के आश्रय से आत्मा कर्मों का क्षय करता है। आत्मा को निर्मल पवित्र बनाता है इसलिये इन कर्तव्यों का पालन आवश्यक है। और जो ऐसा नहीं मानता है आचार्य देव कहते हैं कि वह जीव मिथ्यादृष्टि है। अभी सम्यग्दृष्टि नहीं हुआ है।

सम्यग्दृष्टि जीव की आत्मा में उत्कृष्ट दान के भाव सहज होते ही हैं अन्यथा सम्यग्दर्शन हो जाये और जीव के अंदर दान के परिणाम न आयें ऐसा कभी होता नहीं है। सम्यग्दर्शन हो जाये और देवशास्त्र गुरु इनके प्रति श्रद्धा, भक्ति, पूजन का भाव न आये सम्यग्दृष्टि के ऐसे परिणाम ही नहीं होते अर्थात् उसकी आत्मा में तो अवश्य ही उनकी पूजा भक्ति के भाव सहजरूप से ही प्रगट हो जाते हैं।

क्यों? क्योंकि उस जीव की कषाय मंद है। वह जानता है कि मुझे अपने कर्मों का क्षय करना है इसलिये वह इन क्रियाओं का पालन अवश्य करता है। और यदि कोई ऐसा उपदेश करे कि सम्यग्दृष्टि जीव को दान- पूजा इनसे कोई प्रयोजन नहीं है, समझ लेना इस जीव को अभी कर्मक्षय से भी कोई प्रयोजन नहीं है।

स्कूल (School) में पढ़ने से ज्ञान बढ़ता है अज्ञान दूर होता है ऐसा तुम्हें विश्वास हुआ है लेकिन ज्ञान पाने के लिये पुस्तक आदि भी आवश्यक है। केवल स्कूल (School) में पढ़ने से ज्ञान बढ़ता है ऐसी श्रद्धा मात्र करने से ज्ञान नहीं बढ़ता। ज्ञान बढ़ाने में निमित्त उस पुस्तक

का भी आश्रय करना होगा। जैसे पुस्तक ज्ञानवृद्धि में निमित्त है वैसे ही दान, पूजा, शील, उपवास कर्मक्षय में निमित्तभूत हैं। जैसे विद्यार्थी सालभर पुस्तक के आश्रय से ज्ञान प्राप्त करता है अपने विषय को जानता, समझता, याद करता है लेकिन जब परीक्षा देने हेतु परीक्षा हॉल में जाता है तो पुस्तक को साथ नहीं ले जाता। अन्य कोई विकल्प भी नहीं ले जाता। क्योंकि परीक्षक के द्वारा वह ले ली जायेगी। ऐसे ही आत्मध्यान की अवस्था में सम्यग्दृष्टि का इन कर्तव्यों से कोई प्रयोजन नहीं रहता।

आत्मध्यान के काल में वह इन कर्तव्यों के विकल्पों को अपनी आत्मा में साथ लेकर नहीं जा सकता। जैसे परीक्षा की घड़ी में परीक्षा हॉल में पुस्तक नहीं ले जा सकते। लेकिन जब तक आत्मा में स्थिर नहीं हुआ, आत्मलीनता की स्थिति नहीं बनी है तब तक इन कर्तव्यों का आश्रय उतना ही आवश्यक है जितना पढ़नेवाले विद्यार्थी के लिये पुस्तक, पेन (Pen), कापी (Copy) आदि की आवश्यकता होती है। क्यों? क्योंकि जब तक जीव कषाय की मंदता का उपाय नहीं करेगा, तब तक इस जीव का हित होनेवाला नहीं है।

इसलिये **बंधुओ! सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाये और दान, पूजा, शील, उपवास का भाव आत्मा में न आये तो समझ लेना कि अभी आत्मा में सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हुआ है।** जैसे स्वच्छ काँच से युक्त एक लालटेन है उस लालटेन में यदि ज्योति जला दी जाये और उसका प्रकाश बाहर न फैले ऐसा संभव ही नहीं है। यदि अंदर प्रकाश प्रगट हुआ है तो बाहर उजाला होगा ही। ऐसे ही यदि आत्मा में सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है तो बाह्य आचरण में दान, पूजा, शील, उपवास के भाव अवश्य आयेंगे। ऐसा हो नहीं सकता कि ये परिणाम उत्पन्न न हों।

यदि किसी जीव ने सम्यग्दर्शन धारण नहीं किया, और वह दान पूजादि कर्तव्यों का पालन करता है तो आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि वह इन सबको पालन करते हुए, धारण करते हुए भी, मोक्षसुख को प्राप्त नहीं होता अपितु संसार की ही वृद्धि करता है। किस कारण? सम्यग्दर्शन प्राप्त न होने के कारण। यानि कर्मक्षय में प्रधान निमित्त कौन है? सम्यग्दर्शन है। इसलिये सम्यग्दर्शन से सहित यदि बाह्य चारित्र होता है तो वह भी मोक्ष को देनेवाला होता है। संसार बढ़ानेवाला नहीं होता। मोक्ष में बाधक नहीं होता अपितु परंपरा से मोक्ष का ही कारण कहा जाता है।

इस पंचमकाल में साक्षात् मोक्ष तो अब मिलनेवाला है नहीं। इस काल में तो परंपरा से ही मोक्ष मिलेगा अर्थात् यदि जीव सम्यग्दर्शन के साथ धर्म क्रियाओं का, चारित्र का पालन करेगा तो आगामी भवों में वह शीघ्रातिशीघ्र परंपरा से मोक्षसुख को प्राप्त कर सकेगा। अब कोई यह कह दे कि भैया! पंचमकाल में तो मोक्ष का अभाव है। इसलिये धर्म करने से, धर्म क्रियायें पालने से क्या प्रयोजन? और ऐसा कहकर पुण्य क्रियाओं को छोड़ बैठें तो उसे क्या मिलेगा? भाई पुण्य क्रियायें नहीं होंगी लेकिन क्रिया तो होगी ये तो पक्का है। कोई ये न सोच बैठे कि ऐसा करने से मैं क्रिया रहित हो जाऊँगा। क्रियारहित तो एकमात्र सिद्ध भगवान हैं और कथंचित् अरिहंत भगवान भी हैं क्योंकि उनकी जितनी भी क्रियायें हैं वे सब क्षायिक भाव की तरह हैं उनसे कर्मबंध नहीं होता। इसलिए वे क्रियारहित कहे जा सकते हैं। लेकिन इस अवस्था से पूर्व कोई भी क्रियारहित नहीं हो सकता।

और यदि धर्म का, पुण्य क्रियाओं का, आश्रय नहीं करेगा तो फिर स्वत: ही पाप क्रियाओं में रत रहेगा। क्योंकि पाप क्रियाओं में लगने के लिये कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। पाप क्रिया तो अनादिकालीन संस्कारों के कारण अपने आप प्रारंभ हो जाती है। जबकि पुण्य क्रियायें करने के लिये आपको पुरुषार्थ करना होता है। जैसे पानी जब भी बहेगा स्वत: नीचे की ओर ही बहेगा। उसे ऊपर की ओर ले जाने के लिए पुरुषार्थ करना पड़ता है।

आप यदि कोई भी पुण्य क्रिया नहीं कर रहे हो तो प्रमाद तो चल ही रहा है। और आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज श्री तत्त्वार्थ सूत्र जी में कहते हैं-

प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा।। 13-7 ।।

अर्थात् प्रमाद के योग से प्राणों का जो घात होता है वह हिंसा कहलाती है।

हमारे आचार्य भगवंतों ने कहा कि एक निर्ग्रंथ मुनिराज यत्नपूर्वक देखभाल करके किसी एक स्थान पर बैठ गये। उनकी यह क्रिया कैसी हुई? समितिपूर्वक प्रमादरहित हुई। अब कदाचित् अगर किसी जीव की विराधना भी हो जाये तो भी वे मुनिराज हिंसक नहीं कहलायेंगे। उन्हें हिंसा का दोष नहीं लगेगा। क्यों? क्योंकि उन्होंने प्रमादरहित होकर समितिपूर्वक आचरण किया है। उनकी आत्मा में यत्नपूर्वक प्रवृत्ति का परिणाम बना हुआ है।

और एक कोई गृहस्थ श्रावक है जिसने देखभाल कर बैठने का प्रयास नहीं किया। वह तो सहजता में बैठ गया। कदाचित् उसके द्वारा किसी भी जीव की विराधना नहीं हुई तो भी वह जीव प्रमादसहित होने के कारण प्रमादयुक्त चर्या के कारण हिंसक कहलायेगा। हिंसा दोष का भागी कहलायेगा।

इसलिये मैंने कहा- पाप करने के लिये कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती। अगर आप सहजता से बैठे हुए हैं तो भी प्रमाद सहित होने के कारण आपको हिंसा का दोष लगेगा। और एक वे हैं जो यत्नाचारपूर्वक अपनी क्रिया का ध्यान रखते हैं उन्हें यह पाप नहीं लगता।

पुण्य करने के लिये सम्यक् पुरुषार्थ चाहिये। पाप करने के लिये यह जरूरी नहीं कि कोई विशेष पुरुषार्थ करना पड़े। कोई व्यक्ति दुकान पर खाली बैठा हुआ है तो वह बैठे-बैठे पुण्य कमा रहा होगा यह कोई जरुरी नहीं है। हो सकता है बाहर से वह हमें खाली बैठा दिखायी दे रहा है लेकिन भीतर ही भीतर कौन सा व्यापार चल रहा है यह वही जान सकता है। हो सकता है वह ऐसे परिणाम करने में लगा हो कि देखो जितने भी ग्राहक आते हैं सब बगलवाले की दुकान पर चले जाते हैं। मेरी दुकान की ओर कोई देखता तक नहीं। जरूर इस आदमी ने कुछ कर दिया है। मेरी दुकान को नजर से बाँध दिया है। टोना कर दिया है टोटका कर दिया है। अब देखो तो लगे नींबू मिर्च लटकाने। लगता है यहाँ भिंड में बहुत ज्यादा है ये टोना-टोटका। किसी भी दुकान के बाहर से निकलो तो नींबू मिर्ची, न जाने क्या-क्या पड़ा रहता है।

कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि जो आदमी बाहर से शांत बैठा हुआ है वह भी शांत नहीं है पाप कमा रहा है क्योंकि उसके अंदर यत्नाचार नहीं है। पुण्य करने के लिये कुछ करना पड़ता है पाप करने के लिये कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। खड़ा हुआ वृक्ष भी पाप कमा लेता है वह फल दे रहा है धूप, सर्दी, आँधी, तूफान, वर्षा सब सहता है खड़े-खड़े छाया दे रहा है किसी का क्या बिगाड़ रहा है। लेकिन केवल खड़ा है तो भी अन्तरंग के प्रमादपूर्ण परिणामों के द्वारा पापबंध कर रहा है और मुनिराज चल फिर रहे हैं तो भी पुण्य कमा रहे हैं लेकिन दृष्टि कहाँ है उनकी पुण्य पर दृष्टि नहीं है दृष्टि तो कर्मक्षय पर है।

इसलिये यदि जीव सम्यग्दृष्टि है तो उसे इन दान, पूजा, शील, उपवास आदि शुभ क्रियाओं को अवश्य करते रहना चाहिये। जिससे वह संसार की कारणभूत पाप क्रियाओं से

बच सके और यदि उसने कषाय की मंदता के लिये पुरुषार्थ नहीं किया, कषाय तीव्र होती चली गई तो एक समय ऐसा आयेगा कि संक्लेषता के कारण वह सम्यक्त्व से नीचे गिर जायेगा।

आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थ सूत्र जी में साम्परायिक आस्रव के भेद बतलाते हुए पच्चीस क्रियाओं का वर्णन किया है जिसमें दो प्रकार की क्रियायें कही हैं एक सम्यक्त्ववर्धिनी और दूसरी मिथ्यात्ववर्धिनी क्रिया। **आचार्य भगवन् ने दान, पूजा, शील, उपवास, व्रतादिक का पालन, यम, नियम, संयम का पालन, धर्मानुष्ठान आदि को सम्यक्त्ववर्धिनी क्रियायें कहा है।** अर्थात् इनके पालन से सम्यक्त्व में और अधिक विशुद्धि बढ़ती जाती है, सम्यक्त्व और अधिक दृढ़ होता जाता है और **यदि कोई इन सम्यक्त्ववर्धिनी क्रियाओं को छोड़ देता है तो संक्लेषता और कषायों के बढ़ते जाने के कारण वह जीव सम्यक्त्व से नीचे चला जाता है।**

बंधुओ! जब जीव को सम्यग्दर्शन होता है तो वह इन धार्मिक क्रियाओं का पालन अवश्य ही करता है। तब कोई उससे कहे कि भैया! आप तो बड़े धर्मात्मा बन गये हो, खूब पुण्य बढ़ा रहे हो, आप तो स्वर्गों में खूब सुख भोगोगे। तब वह सम्यग्दृष्टि जीव जो निष्कांक्षित अंग का धारी होता है सांसारिक सुख भोगों के प्रति जिसकी हेय रूप श्रद्धा होती है, वह यही कहेगा—

भोगि पुण्यफल हो इक इन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली।। बा.भा.।।

वह कहेगा, बंधुओ! मेरी भावना तो समस्त कर्मों से मुक्त होकर अपने शुद्ध आत्मस्वरूप में लीन रहने की है। उस अनंत सुख को, शाश्वत सुख को प्राप्त करने की है। उस अतीन्द्रिय सुख को, उस अनंत गुणरूप वैभव को पाने की है, भोगने की है, जिसका मैं स्वयं स्वामी था, हूँ और अनंतकाल तक रहूँगा। इसलिये सर्वज्ञ प्रणीत धर्म का पालन भव्यजीव इस उद्देश्य के साथ करते हैं कि–

मोह कर्म को नाश, मेंटकर सब जग की आशा।
निज पद में थिर होय, लोक के शीश करो वासा।। बा.भा.।।

सम्यग्दृष्टि जीव इन धर्मक्रियाओं का पालन अवश्य करता है। और कदाचित् कोई इन धार्मिक क्रियाओं को करता था। दान, पूजा करता था। शील, उपवास, व्रतादि धारण करता था।

परन्तु अब जो मुझे सम्यग्दर्शन हो गया है अब मुझे इन क्रियाओं से क्या प्रयोजन? ऐसा मानकर उन्हें छोड़ देता है और स्वच्छंद प्रवृत्तिवाला हो जाता है उसे सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। क्षायोपशमिक ज्ञान बढ़ने के कारण उसे भ्रम हो गया है कि मुझे सम्यग्दर्शन हो गया है।

अरे भाई! सम्यग्दर्शन होने पर तो इन क्रियाओं में और अधिक विशुद्धि बनती है। इसप्रकार आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने बता दिया कि ये क्रियायें अगर सम्यग्दर्शन से रहित हों तो दीर्घ संसार का कारण होती हैं। मात्र पुण्य संचय, पुण्यवृद्धि होती है और उस पुण्य के उदय में वह अनेक प्रकार के लौकिक सुखों को प्राप्त होता है लेकिन सम्यक्त्व सहित न होने के कारण वह पुण्य उसे पुण्य के फलों में ही आसक्त बनाये रखता है। और उस आसक्ति के कारण उसे खोटे कर्मों का बंध होता है जिसके कारण उसे खोटी गतियों में जाना पड़ता है। सम्यक्त्व के बिना दशा दुर्दशा में बदल जाती है।

'भोगि पुण्य फल हो इक इन्द्री'

एक समय ऐसा था जब अनेकों पुण्यात्मा जीव सम्राट बनते थे। राजा बनते थे। राजपाट का भोग करते थे। और राज्य वैभव भोगने के बाद विरक्त हो जाते थे। निर्ग्रंथ दीक्षा अंगीकार कर लेते थे। ये वे जीव होते थे जिन्होंने पूर्व पर्याय में सम्यग्दर्शन के साथ सातिशय पुण्यबंध किया था। इसलिये पुण्य के फल से राज वैभव को भी भोगा और सम्यग्दर्शन के प्रताप से वह पुण्य उनके संसार में नहीं अपितु वैराग्य में कारण बना।

और कुछ ऐसे जीव होते हैं जिन्होंने मिथ्यात्व की अवस्था में दान, पूजादि कार्यों को किया। शील, उपवास आदि का पालन भी किया। जिससे पुण्यबंध भी हुआ। लेकिन वह पुण्य कैसा है? सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण निरतिशय पुण्य का बंध हुआ। पुण्योदय से भोगों की प्राप्ति हुई और सम्राट आदि की पर्यायों में उन भोगों को भोगते-भोगते ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। इसलिये आदिनाथ जिनपूजा में कहा है-

भोग की गहन वितृष्णा में, कहाँ जाना जीवन अनमोल।
भोग सेवन में लगते इष्ट, किंतु परिपाक समय विष घोल।।

इसतरह वे मृत्यु को प्राप्त हो गये किन्तु अपनी आत्मा के हित का विचार न कर पाये, उपाय न कर सके।

इसलिए बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने यहाँ पर हम सभी के लिये यह सच्चा मार्ग दिखाया है कि सम्यग्दर्शन से युक्त होकर हमें इन क्रियाओं का पालन अवश्य करना चाहिए। क्या ये क्रियायें संसार परिभ्रमण का कारण हैं? तो आचार्य भगवन् समाधान देते हुए कहते हैं कि '**मोक्खसुहं**' मोक्षसुख को देनेवाली हैं।

यदि कोई व्यक्ति 50 किलो का भार सिर पर रखे हो और उसे ऊँचे पहाड़ पर चढ़कर जाना हो, तो क्या वह अपनी मंजिल तक पहुँच सकता है? नहीं। क्यों? क्योंकि 50 किलो का भार और इधर पहाड़ की सीधी चढ़ाई। कैसे चढ़े? चढ़ना मुश्किल है। और यदि 50 किलो में से 50 ग्राम भार रह जाये तो 50 ग्राम का भार लेकर वह आसानी से चढ़ सकता है। ऐसे ही पाप का भार बहुत भारी होता है। जिसे लेकर जीव कभी-भी मोक्षमार्ग रूपी पर्वत पर चढ़ने में समर्थ नहीं हो सकता। यदि पुण्यवान हुआ तो पुण्य हल्का होने के कारण वह आसानी से सुगमता के साथ पहाड़ चढ़ सकता है और आगे चलकर समस्त कर्मों के भार से रहित होकर एक दिन निर्वाण रूपी मंजिल को प्राप्त कर सकता है।

इसलिये बंधुओ! अपने जीवन में सबसे पहले कषाय की मंदता का विचार करना। क्योंकि बिना कषाय को मंद किए धर्म रूचता नहीं, अच्छा नहीं लगता अपितु संसार ही सुहाता है भाता है। जो व्यक्ति मिथ्यादृष्टि है वह कदाचित् गुरुमुख से उपदेश सुनकर, जिनागम से दान, पूजा, शील आदि की महिमा को जानकर यह विचार करने लग जाता है कि मैं ये दान, पूजा, शील, उपवास आदि धारण करूँगा तो मेरे पुण्य की वृद्धि होगी और मृत्यु के उपरांत उस पुण्य के फल से मैं स्वर्ग में जन्म लूँगा। स्वर्ग में अनेक ऋद्धियों का धारी देव बनकर देवों के अनुपम सुखों को भोगूँगा। ऐसी श्रद्धा किसकी होती है? मिथ्यादृष्टि जीव की। वह स्वर्ग के वैभव को भोगना चाहता है इसलिये वह दान, पूजा, व्रत, शील, उपवास आदि को धारण करता है।

बंधुओ! शास्त्रों में दान, पूजा, शील, उपवास आदि रूप जो शुभोपयोग है उसकी बड़ी महिमा बताई गयी है और कहा गया कि इनके द्वारा स्वर्ग-मोक्ष सुखों की प्राप्ति होती है।

जिनपूजा तैं स्वर्ग विमान, अनुक्रम तैं पावे निर्वाण।

शास्त्रों में मिलता है कि जिनपूजा करने से स्वर्गों में वैमानिक देव बनते हैं। स्वर्ग विमानों में उत्पन्न होते हैं। इतना मात्र पढ़कर, सुनकर सम्यग्दर्शन से रहित वह जीव मुझे भी स्वर्ग विमान मिलेंगे। मैं भी स्वर्ग में अनेक ऋद्धिवाला देव होऊँगा। वैभव होगा, सुंदर शरीर होगा, हमारी अनेक अप्सराएँ होंगी इत्यादिक विचारकर वह दान, पूजा, शील, उपवास, संयम को धारण कर लेता है। श्रावक के व्रतों को धारण कर लेता है। लेकिन किसलिये धारण करता है? स्वर्गीय भोगों के लिए।

आचार्य भगवन् कहते हैं ऐसा जीव अपने संसार को ही बढ़ा रहा है। इसने संसार घटाने का कार्य नहीं किया। और एक जीव ऐसा है, जिसने श्रावक के व्रत अंगीकार किए। मुनिव्रत अंगीकार किये। लेकिन इनके फलों से मैं स्वर्गों में उत्पन्न होऊँ ऐसी उसकी कोई भावना नहीं रहती। उससे अगर पूछें, कि आप किसलिये महाराज बन गये? तो वह कहेगा—मैं मोक्षसुख चाहता हूँ। कर्मों की संवर-निर्जरा करके निर्वाण प्राप्त करूँ इसलिये मैंने यह निर्ग्रंथ दीक्षा अंगीकार की है। ऐसे जीव को भले ही वर्तमान में मोक्ष मिलता हो न मिलता हो, लेकिन स्वर्ग तो प्राप्त होगा ही होगा। क्योंकि आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि-

यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौ कियद् दूरवर्तिनी।। 4।।

अर्थात् जिन भावों के द्वारा जीव को मोक्षसुख की प्राप्ति होती हो उनके द्वारा स्वर्ग के सुखों की प्राप्ति होना क्या दूर की बात है? अर्थात् नहीं वह तो सहजता से ही प्राप्त हो जाते हैं।

बाह्य इन्द्रिय सुख तो सब जीवों को प्राप्त हो रहे हैं। चाहे वह सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि। लेकिन सम्यगदृष्टि जीव **'अनुक्रम तैं पावे निर्वाण'** उसे अनुक्रम से निर्वाण प्राप्त होता है और मिथ्यादृष्टि जीव स्वर्ग में जाने के बाद भी।

'भोगि पुण्यफल हो इक इन्द्री'

इन्द्रिय सुखों को भोगकर वहाँ से चयकर स्थावर एक इन्द्रियों की पर्यायों में चला जाता है। सभी देव स्वर्ग से च्युत होकर स्थावर की पर्यायों में जाते हों ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टि स्थावर की पर्यायों में जन्म नहीं लेता। **'अनुक्रम तैं पावे निर्वाण'**

सम्यग्दृष्टि जीव तो स्वर्ग से आने के बाद सम्राटों के महलों में जन्म लेते हैं और सम्यक्त्व के प्रभाव से सुखपूर्वक सांसारिक जीवन भोगते हुये पश्चात् जिनदीक्षा को अंगीकार करके मोक्षसुख को प्राप्त होते हैं निर्वाण प्राप्त करते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव स्वर्ग से आने के बाद खोटी गतियों में भटकते हुये पंच परावर्तनों में ही फँसे रहते हैं।

तहँ तैं चय थावर तन धरे यों परिवर्तन पूरे करे।। छ.ढा.।।

इसलिए बंधुओ! सच्ची श्रद्धापूर्वक अगर धर्माचरण का पालन किया जाता है तो वह जीव नियम से निर्वाण को प्राप्त होता है। वह धर्माचरण, पुण्य क्रियाओं का आचरण उस जीव के लिये संसार बढ़ानेवाला नहीं अपितु निर्वाण देनेवाला ही कहा गया है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि यह दान, पूजा, शील, उपवास रूप जो धर्माचरण है वह जीव को कब करना चाहिये? जब यह जीवात्मा अपने आत्मध्यान में समर्थ न हो तो कम से कम इन पुण्य क्रियाओं को करता रहे। और यदि आत्मा के ध्यान में समर्थ हो, तब इन पुण्य क्रियाओं को हेय मानकर छोड़ देना चाहिये। आत्मध्यान में लीन हो जाना चाहिये। तब कर्मक्षय का ही उपाय करना चाहिये।

परमात्मप्रकाश ग्रंथ में आचार्य भगवन् योगीन्दुदेव ने और आचार्य भगवन् ब्रह्मदेव सूरि ने जो टीका लिखी है उसमें उन्होंने कहा कि चक्रवर्ती भरत, सगर, राम, पांडव आदि निज शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी श्रद्धा से निश्चय सम्यक्त्व को धारण करते थे लेकिन वे भी जब आत्मा के ध्यान में अपने को असमर्थ पाते थे उस समय दान, व्रत, संयम आदि क्रियाओं का पालन अवश्य करते थे। क्यों? क्योंकि यदि इन पुण्य क्रियाओं को छोड़ दिया और पाप का अभी त्याग नहीं किया, तो परिणति किस रूप हो जायेगी? पापरूप हो जायेगी।

इसलिये सम्यग्दृष्टि क्या पुण्य-पाप का त्यागी होता है? ध्यान रखना, सम्यग्दृष्टि जीव यह जानता है कि ये पुण्य-पाप हमारी आत्मा के स्वभाव नहीं हैं इन पुण्य-पाप भावों के कारण ही मैं अनंतकाल से संसार को बढ़ाने में लगा हुआ हूँ। इसलिये अब मुझे इन पुण्य-पाप को नाश करने का उपाय करना है। वह ऐसी श्रद्धा करता है लेकिन पुण्य-पाप का त्यागी होता नहीं है। वह सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम पाप त्याग करने का उपाय करता है। गुणस्थानों को बढ़ाता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँच पापों का यथाशक्ति त्याग करता है। अगर एकदेश त्याग करता है तो पाँचवें गुणस्थान में पहुँच जाता है और सर्वदेश त्याग करता है तो छठवें-

सातवें गुणस्थान को प्राप्त हो जाता है। वह इन पापों को त्यागने के लिये निरंतर तत्पर रहता है। अब विचार करो, जिस सम्यग्दृष्टि जीव ने अभी पाप का त्याग ही नहीं किया, क्या वह पुण्य का त्यागी हो सकता है? और अगर वह पुण्य क्रियाओं का त्यागी बनता है तो उसका यह कार्य उचित है या अनुचित?

जीव पाप का त्यागी तो हुआ नहीं और पुण्य को छोड़ने लगा, इसका तात्पर्य यह हुआ कि इस जीव ने पुण्य और पाप दोनों समान हैं ऐसा जिनोपदेश तो सुना है जाना है माना है लेकिन पुण्य और पाप दोनों में भेद भी है ऐसा नहीं सुना। जो इस भेद को नहीं मानता वह कैसा है ? मिथ्यादृष्टि है। ऐसा उपदेश शायद सुना नहीं है, इसलिये अज्ञानता में पड़ जाने के कारण 'मैं सम्यग्दृष्टि हूँ' इसलिये इन पुण्य क्रियाओं का त्याग करता हूँ ऐसा मानकर स्वच्छंद हो जाता है।

आचार्य भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी ऐसे जीव के लिये पञ्चास्तिकाय में निश्चयाभासी कहते हैं। और जो जीव अपने आत्मा का निर्णय न करके, सम्यक्त्व को धारण न करके मात्र दान, पूजा, शील, उपवास इन व्यवहार व्रत धर्म के द्वारा ही निर्वाण होगा, सुख होगा ऐसी मान्यता करता है ऐसे जीव को आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी पञ्चास्तिकाय की टीका में व्यवहाराभासी की संज्ञा देते हैं।

पं. टोडरमल जी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी निश्चयाभासी की प्रवृत्ति कही है—

कितने ही जीव निश्चय को न जानते हुए निश्चयाभास के श्रद्धानी होकर अपने को मोक्षमार्गी मानते हैं, अपने आत्मा को सिद्ध समान अनुभव करते हैं, जबकि आप प्रत्यक्ष संसारी हैं। भ्रम से अपने को सिद्ध मानते हैं सो मिथ्यादृष्टि हैं। शास्त्रों में जो आत्मा को सिद्ध समान कहा है वह द्रव्यदृष्टि से कहा है, पर्याय अपेक्षा सिद्ध समान नहीं है। जैसे— राजा और रंक मनुष्यपने की अपेक्षा समान हैं, परन्तु राजापने और रंकपने की अपेक्षा से तो समान नहीं है। उसीप्रकार सिद्ध और संसारी जीवत्वपने की अपेक्षा समान हैं परन्तु सिद्धपने और संसारीपने की अपेक्षा तो समान नहीं हैं तथापि ये तो जैसे सिद्ध शुद्ध हैं वैसा ही अपने को शुद्ध मानते हैं परन्तु वह शुद्ध-अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्याय अपेक्षा समानता मानी जाये तो यही मिथ्यादृष्टि है।

...तथा वह पूजनादि कार्य को शुभास्रव जानकर हेय मानता है, सो यह सत्य ही है परन्तु यदि इन कार्यों को छोड़कर शुद्धोपयोग रूप हो तो भला ही है और विषय-कषायरूप अशुभरूप प्रवर्ते तो अपना बुरा ही किया। शुभोपयोग से स्वर्गादि हों अथवा भली वासना से या भले निमित्त से कर्म के स्थिति-अनुभाग घट जायें तो सम्यक्त्वादि की भी प्राप्ति हो जाये, और अशुभोपयोग से नरक-निगोदादि हों अथवा बुरी वासना से या बुरे निमित्त से कर्म के स्थिति-अनुभाग बढ़ जायें तो सम्यक्त्वादिक महा दुर्लभ हो जायें। तथा शुभोपयोग से कषाय मन्द होती है और अशुभोपयोग से तीव्र होती है सो मंदकषाय का कार्य छोड़कर तीव्रकषाय का कार्य करना तो ऐसा है जैसे कड़वी वस्तु न खाना और विष खाना, सो यह अज्ञानता है।

यहीं व्यवहाराभासी का स्वरूप भी कहा है-

तथा कितने ही जीव अणुव्रत-महाव्रत आदिरूप यथार्थ आचरण करते हैं और आचरण के अनुसार ही परिणाम हैं कोई माया-लोभादिक का अभिप्राय नहीं है, उन्हें धर्म जानकर मोक्ष के अर्थ उनका साधन करते हैं किन्हीं स्वर्गादिक के भोगों की भी इच्छा नहीं रखते, परन्तु तत्त्वज्ञान पहले नहीं हुआ, इसलिए आप तो जानते हैं कि मैं मोक्ष का साधन कर रहा हूँ परन्तु जो मोक्ष का साधन है उसे जानते भी नहीं, केवल स्वर्गादिक का ही साधन करते हैं।

बंधुओ। धर्म को समझना होगा। कुछ लोग व्यवहाराभासी हो जाते हैं और कुछ निश्चयाभासी हो जाते हैं। और अपने को मानते रहते हैं कि हम भी धर्मात्मा हैं। कहते हैं कि हम भी धर्मात्मा हैं। और धर्मात्मा को भी अगर ये कहना पड़े कि हम भी धर्मात्मा हैं इसका तात्पर्य यह है कि वो धर्मात्मा है ही नहीं।

जैनदर्शन तो अनेकान्त और स्याद्वाद को लिये हुए है। संवाद को पैदा करता है कभी विवाद पैदा नहीं करता। और विवाद खड़ा कर दिया जाये तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि अभी जिनधर्म की समझ आयी ही नहीं है। **एक जीव निश्चयाभासी है, एक जीव व्यवहाराभासी है। व्यवहाराभासी जीव अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानता, शुद्धात्मा को नहीं पहचानता, शुद्धात्मा की रुचि नहीं रखता और निश्चयाभासी मात्र शुद्धात्मा की रुचि रखता है दान, पूजा, शील आदि क्रियाओं से स्वच्छंद हो जाता है। वह सर्वथा मान बैठता है कि इन पुण्य क्रियाओं से तो मेरा संसार बढ़ेगा।**

अरे भाई ! पहले पाप क्रियाओं का त्याग करो, फिर पुण्य क्रियाओं का त्याग तो सहज ही हो जाता है क्योंकि जिसे सम्यग्दर्शन है उसकी श्रद्धा में पुण्य और पाप दोनों ही हेय हैं ऐसा निर्णय पड़ा हुआ है। इसलिए पाप क्रियाओं का त्याग करके पुण्य क्रियाओं यानि व्रतादि को ग्रहण करता है और जिस समय शुद्धोपयोग स्वरूप निज भगवान आत्मा में लीन होता है शुद्धोपयोगी होता है उस समय सविकल्प पुण्य क्रियायें स्वयमेव छूट जाती हैं।

बंधुओ ! कहने का तात्पर्य यह है कि **सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव मात्र निर्णय को प्राप्त हुआ है अभी त्यागी नहीं हुआ। पुण्य-पाप का त्यागी नहीं बना।** श्रद्धान में तो वह दोनों का त्यागी है पुण्य भी नहीं चाहता पाप भी नहीं चाहता लेकिन अभी वह इस अवस्था में है कि पाप करना नहीं चाहता फिर भी पाप बंध होगा ही क्योंकि पाप ऐसी विशेषता वाला है कि कुछ पाप न भी करो तो भी होता है इसलिए पाप क्रियाओं से बचने के लिये वह पुण्य क्रियाओं को करता है। सम्यग्दर्शन सहित होने के कारण सातिशय पुण्य का बंध करता है जो पुण्य एक न एक दिन विरक्ति में, वैराग्य में कारण बनता है और अनुक्रम से निर्वाण सुख पाता है।

बंधुओ ! यहाँ पर आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने जो बात बताई है उसे ठीक तरह से समझ लेना चाहिये और जिनवाणी का श्रवण करके, आगम को जानकर, अपने भीतर की अज्ञानता को दूर करना चाहिये। अपनी आत्मा में शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त करना और दान-पूजादि क्रियायें पापकर्म का क्षय करनेवाली हैं संवर करनेवाली हैं ऐसा जानकर अपनी आत्मा के हित में लगने का प्रयास करना।

बंधुओ ! सम्यग्दर्शन के बिना आज तक इस जीव ने अपना अनंत संसार बढ़ाया, दुख पाया और इसके बिना बढ़ाता ही रहेगा। यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया तो संसार मार्ग अवश्य ही नाश को प्राप्त होगा और नियम से निर्वाण सुख प्राप्त करेगा। सम्यग्दर्शन की ऐसी महिमा अरहंत भगवंतों ने समवशरण सभा में बैठकर गाई है।

सम्यग्दर्शन के साथ चारित्र को भी जीवन में धारण करने का प्रयास करना। आचार्य भगवन् ने कहा—जो रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं वे ही मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं। निश्चय रत्नत्रय को धारण करने के लिए व्यवहार रत्नत्रय का पालन करना अनिवार्य है। क्यों? क्योंकि

जब तक कषाय तीव्र रहेगी तब तक आत्मा में उपयोग जा नहीं सकता। कषाय तीव्र बनी रहे और आपका उपयोग आत्मा में चला जाये यह संभव नहीं है। कषायों को मंद करने का उपाय व्यवहार रत्नत्रय के द्वारा ही साध्य होता है। और जब कषाय मंद हो जाती है तब यह जीवात्मा अपने निज शुद्धात्मा का आश्रय करके स्वरूप का अनुभव करता हुआ, उपयोग की शुद्धि करता हुआ, शुद्ध उपयोग को प्राप्त होता हुआ, समस्त कर्मों का क्षय करके निर्वाण को प्राप्त कर लेता है ऐसा आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव का यह मांगलिक उपदेश आप सभी अपनी आत्मा में अवधारित करें। राग को घटायें, पुनः राग हटायें वीतराग बन जायें। इस भावना के साथ आप सभी का हित हो, कल्याण हो।

दान शील पूजा उपवास, व्रत से होता कर्म विनाश।
सम्यग्दर्शन साथ अगर, तभी मोक्ष सुख होता पास।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, संसार बढ़ाये रे......
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

ये कार्य अपने हाथ से ही करें

धर्मेषु स्वामि सेवायां पुत्रोत्पतौ श्रुतोद्यमे।
भैषज्ये भोजने दाने, प्रतिहस्तं न करयेत्।।दा.शा.पृ.187।।

अर्थ— धर्म कार्य में, स्वामी सेवा में, पुत्रोत्पत्ति में शास्त्र स्वाध्याय में, औषध ग्रहण में, भोजन में व दान में प्रतिहस्त व्यवहार नहीं करना चाहिए अर्थात् इन कार्यों में अपने बदले दूसरों से कार्य कराने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। ये कार्य स्वयं ही करने योग्य हैं।

सम्राट चंद्रगुप्त के सोलह स्वप्न और उनका फल

स्वप्न	फल
1. **सूर्यमंडल अस्त होते हुए देखा।**	पंचम काल में अंग, पूर्व के धारी मुनि कोई नहीं रहेंगे
2. **कल्पवृक्ष की शाखा टूटी हुई देखी**	अब से कोई क्षत्रिय राजा जिनदीक्षा नहीं धारण करेंगे
3. **सीमा उल्लंघन किये हुए समुद्र को देखा**	राजा लोग अन्यायी होंगे, उनको पर धन हरण की इच्छा होगी।
4. **बारह फणों का सर्प देखा**	बारह वर्षों तक अकाल (दुष्काल) पड़ेगा
5. **देव विमान को वापिस लौटते देखा**	पंचम काल में यहाँ देव नहीं आएँगे, चारण मुनि व विद्याधर नीचे नहीं आएँगे
6. **ऊँट पर राजकुमार बैठा देखा**	राजा लोग दया धर्म नहीं पालेंगे, हिंसा करेंगे
7. **दो काले हाथी लडते देखे**	समय पर पानी नहीं बरसेगा व निर्ग्रंथ मुनि सग्रंथ होंगे
8. **महारथ में गोवत्स जुडे देखे**	युवावस्था में ही कदाचित कोई दीक्षा धारण करेगा, वृद्धावस्था में दीक्षा नहीं पालेंगे
9. **नग्न स्त्रियाँ नाच रही हैं**	दिगम्बर नग्न मुनि होंगे परंतु वे कपटी-पाखंडी होंगे
10. **सुवर्ण पात्र में कुत्ता खीर रहा है**	उत्तम कुल वालों में से लक्ष्मी पाखंडी मध्यम कुलवालों के यहाँ चली जाएगी
11. **जुगुनू चमकते देखा**	जैनधर्म का विस्तार बहुत थोड़ा, अन्य धर्म का विस्तार बहुत ज्यादा होगा
12. **सूखा हुआ सरोवर में दक्षिण दिशा में थोड़ा सा जल देखा**	जहाँ पंचकल्याणक हुए उन स्थानों में धर्म की हानि होगी, जिनधर्म रहेगा तो दक्षिण में रहेगा
13. **रज में कमल खिला हुआ देखा**	ब्राह्मण व क्षत्रिय अन्य धर्म से चलेंगे, वैश्य लोग जैनधर्म पालेंगे, धनवान होंगे
14. **छिद्र सहित चंद्रमा देखा**	जिनधर्म शासन में अनेक भेद-प्रभेद होंगे
15. **हाथी पर बंदर बैठा हुआ देखा**	क्षत्रिय लोग सेवक होंगे, नीच लोग राज करेंगे
16. **रत्नराशि रज में देखी**	मुनियों में परस्पर फूट होगी, आपस में स्नेह भाव नहीं रहेगा

गाथा - 11

(प्रवचन)

●

साधु का कार्य तंत्र-मंत्र का प्रसाद बाँटना नहीं

24.08.2013

भिण्ड

(श्रावक व मुनि-धर्म में मुख्य क्या ?)

दाणंपूया-मुक्खं, सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं, जदिधम्मे तं विणा तहा सो वि।।11।।

* अन्वयार्थ *

(**सावयधम्मे**) श्रावक धर्म में (**दाणं-पूया**) दान और पूजा (**मुक्खं**) मुख्य हैं (**तेण**) उसके (**विणा**) बिना (**सावय**) श्रावक (**ण**) नहीं होता है। (**झाणज्झयणं**) ध्यान और अध्ययन (**जदिधम्मे**) यति धर्म में (**मुक्खं**) मुख्य हैं (**तं विणा**) उस ध्यान और अध्ययन के बिना (**सो वि**) वह मुनि धर्म भी (**तहा**) वैसा ही व्यर्थ है।

अर्थ-श्रावक धर्म में दान और पूजा के बिना श्रावक का धर्म व्यर्थ है, वह श्रावक, श्रावक नहीं कहलाता तथा मुनि धर्म में ध्यान और अध्ययन मुनि के मुख्य कर्त्तव्य हैं। ध्यान और अध्ययन के बिना मुनिधर्म भी वैसा ही व्यर्थ है।
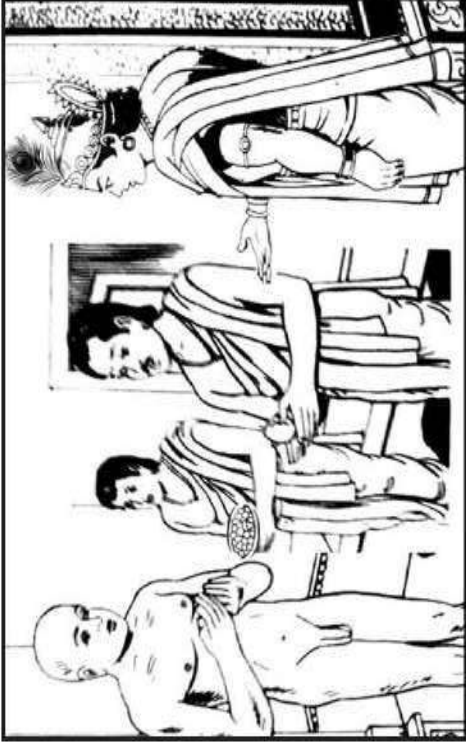
मुनिराज को औषधि युक्त लड्डू चलवाते श्री कृष्ण

शास्त्रदान से कोंडेश ग्वाला बना आचार्य कुंदकुंद

अभयदान (सम्राट के समक्ष अमरचंद दीवान शेर को जलेबी खिलाते हुये)

वज्रजंघ एवं श्रीमति युगल मुनिराज को आहारदान देते हुये।

21

रयणोदय

श्रावक पूजा दान करे, साधु अध्ययन ध्यान करे।
कर्तव्यों का पालन कर, सुख का अनुसंधान करे।।
इस बिन न श्रावक, हो-हो-2, न साधु कहाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

इस संसार में प्राणीमात्र के लिए कल्याणी माँ जिनवाणी है जिसमें जीवन निर्माण से निर्वाण तक की कहानी है। इस धरा पर अरिहंतों की निशानी है। धर्म पिपासुओं के लिये निर्मल शीतल पानी है। श्रुताराधक आचार्य भगवंतों के मुख से जिसकी महिमा जानी है। ऐसी माँ जिनवाणी के आराधक, शुद्धात्म तत्त्व के साधक, महान तत्त्ववेत्ता, मोक्षमार्ग के नेता आचार्य

भगवन् कुंदकुंदस्वामी भव्य जीवों के लिये हितकारी मार्ग का उपदेश दे रहे हैं। एक ऐसा मार्ग, जिसे प्राप्त कर लेने पर जीवन में कभी दुख नहीं आता, कष्ट नहीं आता। वह मार्ग है सच्चे सुख का मार्ग, मोक्षमार्ग।

कल हम सभी ने देखा था कि सम्यग्दृष्टि दान, पूजा, शील और उपवास इनका पालन करनेवाला, धारण करनेवाला होता है। वह मानता है कि-

'मग्गो मोक्खउवाओ'।। 2-नि.सा.।।

यह मार्ग ही मोक्ष का उपाय है सच्चे सुख का कारण है। अनंत सुख की प्राप्ति में निमित्तभूत है। ऐसे मोक्षाभिलाषी साधु और श्रावक के क्या कर्तव्य हैं? यह बतलाने के लिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव यहाँ ग्यारहवीं गाथा कहते हैं हम सभी पहले गाथा पढ़ लेते हैं-

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं जदिधम्मे तं विणा तहा सो वि।। 11 ।।

आचार्य भगवन् कुंदकुंदस्वामी कह रहे हैं कि **'दाणं पूया मुक्खं सावय धम्मे'** श्रावक धर्म में दान और पूजा यह मुख्य धर्म है। **'ण सावया तेण विणा'** और इस मुख्यधर्म के पालन किये बिना वह श्रावक नहीं होता, नहीं कहा जाता है। इसीप्रकार **'झाणज्झयणंमुक्खं जदिधम्मे'** ध्यान और अध्ययन यह साधु का मुख्य धर्म है। **'तं विणा तहा सो वि'** इनके बिना साधु मुनिधर्म का वैसा ही पालन नहीं कर सकता है।

इस गाथा में आचार्य कुंदकुंददेव ने श्रावक और साधु के कर्तव्यों का बोध कराया है। जीवन में कर्तव्य किए बिना सफलता नहीं मिलती। यदि आप अपने जीवन में कोई उपलब्धि पाना चाहते हैं श्रेष्ठ महान बनना चाहते हैं तो आपको कर्तव्यशील बनना पड़ेगा। आज तक दुनिया में जितने भी महापुरुष हुए उन्होंने कर्तव्यशील बनकर ही अपने जीवन में महानता को उद्घाटित किया। कर्तव्यपालन से ही जीवन महान बनता है इसलिए आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि **कर्तव्य बोध प्रत्येक जीवात्मा को होना आवश्यक है चाहे वह परिवार में रहनेवाला गृहस्थ हो अथवा गृहत्यागी साधु।**

अगर परिवार में रहनेवाले व्यक्ति के लिए कर्तव्यपालन का बोध नहीं है तो वह परिवार का सुखद संचालन नहीं कर सकता। इसीप्रकार कोई व्यक्ति व्यापार करता है उसे यह बोध ही नहीं कि मुझे करने योग्य क्या है? तो वह व्यापार में कभी सफल नहीं हो सकता। उसीप्रकार धर्म के क्षेत्र में भी हमें अपने कर्तव्यों का ज्ञान होना आवश्यक है।

एक वृद्धा माँ थी। उसने बहुत मेहनत, श्रम-परिश्रम करके एक सुंदर बगीचा लगाया। उसका एक बेटा था जो छोटा था। वह माँ बगीचे के पेड़- पौधों का अपने बच्चे की तरह पालन पोषण करती थी और अपना अधिकांश समय वहीं व्यतीत करती थी। किसी कारणवशात् वह वृद्धा माँ बीमार पड़ गई तब उसे अपने बगीचे की चिंता हुई कि अब उन पेड़-पौधों की देखभाल कौन करेगा। एक वृक्ष लगाना भी बहुत कठिन काम होता है यद्यपि वृक्ष को लगाना तो सरल है लेकिन लगाने के बाद उसकी सँभाल करना बहुत श्रमकारक है।

जबकि उस माँ ने पूरा श्रम करके बहुत सुंदर बगीचा लगाया था। वह रोज सुबह समय पर पानी देती खाद डालती और अपना हरा-भरा बगीचा देखकर हर्ष और आनंद की अनुभूति करती कि मैंने इतना सुंदर बगीचा लगाया है।

अब, जब वह बीमार पड़ गई तब उसे बगीचे की सँभाल देखभाल कौन करेगा यह चिंता सताने लगी? जब बेटे ने माँ को इसतरह दुखी, परेशान देखा, तो पूछा-माँ! तुम इतनी परेशान चिंतित क्यों लग रही हो? माँ ने कहा—बेटा! मैंने बहुत श्रम करके वह बगीचा लगाया। अब मैं बीमार पड़ गई हूँ, उठने की सामर्थ्य नहीं है। अब बगीचे की सँभाल कौन करेगा? मैं यही सोच-सोचकर परेशान हो रही हूँ।

बेटा बोला-माँ! आप चिंता मत करो। आप मुझे बता दो, जो भी करना होगा मैं कर दिया करूँगा।

माँ ने कहा-बेटा! ज्यादा कुछ नहीं करना है बगीचे के प्रत्येक पेड़-पौधे के लिये नियमित समयानुसार सुबह-शाम रोज पानी देना है।

बेटा बोला-ठीक है माँ! मैं यह काम नियमित रूप से रोज कर दिया करूँगा। आप निश्चिंत रहिए। खटिया पर आराम से विश्राम करिये स्वास्थ्य लाभ लीजिये।

यह सुन माँ निश्चिंत हो गई। बेटा रोज सुबह उठता। माँ के कहे अनुसार पानी लेकर जाता और बगीचे के हर पेड़-पौधे को खूब पानी देता। इस तरह पाँच-सात दिन गुजर गये। हफ्ते भर बाद जब माँ ठीक हुई, शरीर को पुनः ऊर्जा शक्ति प्राप्त हुई तो उसने सबसे पहले अपने प्रिय बगीचे को देखने की भावना व्यक्त की। क्योंकि जो सबसे ज्यादा प्रिय होता है सबसे ज्यादा ख्याल भी उसी का आता है तो माँ चल दी बगीचे की ओर। जैसे ही बगीचे में खुशी-खुशी प्रवेश किया, उसने देखा कि बगीचे के सब वृक्ष, फूल-पत्ती आदि मुरझा रहे थे। यह देख उसका चेहरा भी मुरझा गया। वह सोचने लगी- ओ हो! मैंने बेटे से कहा था कि बेटा बगीचे में रोज पानी दे दिया करना। लगता है उसने पानी नहीं दिया, तभी तो पूरा बगीचा मुरझा रहा है। माँ वापस लौटकर आ गई। उसकी आँखों में आँसू थे और चेहरे से पीड़ा झलक रही थी। जैसे ही बेटे ने माँ को इस हाल में देखा, वह भी व्यथित हो उठा। तुरंत पूछने लगा- माँ! क्या हो गया? आप ठीक तो हैं।

माँ बोली-बेटा! मेरी सारी मेहनत बेकार हो गई। तुमने मुझसे कहा था कि मैं बगीचे की देखभाल करूँगा। समय से पानी दूँगा। फिर तुमने ऐसा क्यों नहीं किया।

बेटा बोला- नहीं माँ! मैं तो रोज सुबह-शाम समय से वहाँ पानी देने जाता था। आप स्वयं चलकर के देख लीजिए।

बेटा, माँ को साथ लेकर बगीचे में पहुँचा। देखा, तो वास्तव में फूल पत्ती मुरझा रहे थे। पीले पड़ते जा रहे थे।

माँ ने कहा- बेटा! तुम्हारे पानी न देने के कारण आज ये सारा बगीचा मुरझा रहा है।

बेटे ने कहा- माँ! मैं तो रोज पानी देता था। माँ ने कहा—अगर रोज पानी देते थे तो ये कैसे मुरझा गये बेटा। माँ! अगर आपको विश्वास नहीं होता तो देखो, मैं अभी पानी देता हूँ। उसने पानी लिया और एक-एक वृक्ष पर पानी छिड़कने लगा। उसने फूलों को पानी दिया। पत्तियों को पानी दिया। माँ ने जैसे ही देखा, बोली-बेटा! तुम ये क्या कर रहे हो? फूलों को पानी दे रहे हो। पत्तों को पानी दे रहे हो लेकिन जहाँ देना चाहिये वहाँ तो तुम दे ही नहीं रहे हो। फूल पत्तों को पानी देने से वृक्ष हरे-भरे नहीं रहते। जड़ को पानी देने से वृक्ष हरे-भरे रहा करते हैं।

माँ बोली– बेटा! शायद तुम्हें ज्ञान नहीं कि वृक्षों में पानी कहाँ दिया जाता है? इसकारण तुमने पानी तो दिया, मेहनत की किंतु पानी देने के बावजूद इतना परिश्रम करने के बावजूद भी बगीचा सूखने लगा मुरझाने लगा। बालक को बोध हुआ कि अगर वृक्षों को, पेड़-पौधों को पानी देना है तो जड़ों में देना चाहिए। जड़ में पानी देने से ही सब कुछ हरा-भरा रह सकता है। अन्यथा सब कुछ सूख जायेगा।

ऐसे ही श्रावक का धर्म है। जैसे वृक्ष को हरा-भरा रखने के लिये उसकी मूल में जल डाला जाता है ऐसे ही श्रावक को अपने धर्मरूपी वृक्ष को हरा-भरा बनाये रखने के लिये उस वृक्ष के मूल में कर्तव्यपालन रूप जल डालना होता है तभी वह वृक्ष हरा-भरा रह सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि धर्म की मूल क्या है? जड़ क्या है? इसका उत्तर आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी दंसणपाहुड में देते हुए कहते हैं कि–

दंसण मूलो धम्मो।। 2।।

सम्यग्दर्शन धर्म का मूल अर्थात् जड़ है। आचार्य भगवन् ने मात्र सम्यग्दर्शन को धर्म नहीं कहा। सम्यग्दर्शन धर्म नहीं है सम्यग्दर्शन तो धर्म की मूल है जड़ है। जैसे—जब तक जड़ नहीं होती तब तक वृक्ष नहीं होता है वैसे ही जब तक सम्यग्दर्शन रूपी जड़ नहीं होती तब तक धर्मरूपी वृक्ष भी नहीं होता है।

एक बात ध्यान रखना, जड़ मात्र का नाम धर्म नहीं है। अगर किसी को जड़ मात्र मिल जाये और वह यह सोचने लग जाये कि मुझे तो वृक्ष की प्राप्ति हो गई तो वह अभी भूल में, मूढ़ता में जी रहा है। ऐसे ही अगर किसी को धर्म की मूल (जड़) मिल जाये यानि सम्यग्दर्शन मिल जाये। और वह मान ले कि मुझे तो धर्म की प्राप्ति हो गई है तो वह भी अभी भूल में जी रहा है।

'दंसणमूलो धम्मो' सम्यग्दर्शन को धर्म की जड़ अर्थात् मूल कहा है। इसलिए बंधुओ! मूल भी आवश्यक है और फल-फूल भी आवश्यक है। मूल के बिना फूल नहीं होते, और मूल को ही फूल नहीं कहते। मूल मिल गई तो वृक्ष के अभाव में क्या फूल मिल जायेंगे? मूल को

फल नहीं कहते और जो मूलमात्र का फल होता है उसे जैनी श्रावक अभक्ष्य कहता है। वह भक्षण योग्य नहीं होते हैं। मूल से भूमि के अंदर से निकलनेवाले फल कंदमूल कहलाते हैं। जमीकंद गड़ंत कहा जाता है। जैनी श्रावक ये कंदमूल नहीं खाते।

आलू आदि का त्याग क्यों किया जाता है? क्योंकि वह जमीन के अंदर होता है। **जैनी श्रावक आलू, शकरकंद, अरबी, गाजर, मूली आदि नहीं खाता क्योंकि ये सब जमीकंद होते हैं। इनमें अनंत जीव होते हैं। इनको खानेवाला जीव धर्मात्मा नहीं कहलाता। इनको त्याग किये बिना धर्म का पालन नहीं होता, तप नहीं होता, साधना, व्रत, उपवास नहीं होते।**

जो यह सोचते हैं कि इनको खाते हुए भी हम धर्म करते हैं पूजा करते हैं उपवास तप करते हैं उनके सब तप निरर्थक हैं। जिनके सेवन से अनंत जीवों का घात होता हो किंतु रसना इन्द्रिय का लोलुपी जीव उन कंदमूलों के सेवन में ही आसक्त रहता हो ऐसे जीव की तप-त्याग, साधना आत्मा के हित के लिये नहीं हो सकती इसलिये भगवान जिनेन्द्र ने प्रत्येक जैनी श्रावक को दयाधर्म पालन करने को कहा। कंदमूल का त्याग करने को कहा। सेवनीय नहीं कहा।

महाभारत में नरक के चार द्वार बताये हैं। उनमें पहला रात्रिभोजन करना और चौथा द्वार है अनंतकाय का सेवन करना। अब अनंतकायिक क्या चीज होती है? लोग इसे जानते नहीं हैं। इसका ज्ञान न होने के कारण बहुत लोग अज्ञानतावशात् ऐसी अभक्ष्य वस्तुओं का सेवन करते रहते हैं जो तप साधना को नष्ट करनेवाले हैं। अनंतकायिक का तात्पर्य उस वनस्पति से है जिसमें एक शरीर एक काय के अनेक जीव स्वामी होते हैं ऐसे आलू, मूली, गाजर, शकरकंद आदि इन्हीं को अनंतकायिक की संज्ञा दी है। इनमें अतिसूक्ष्म जीव पाये जाते हैं जो खाली आँख से दिखायी नहीं देते। इसलिये दयालु प्राणी धर्मात्मा प्राणी इनका सेवन नहीं करते हैं।

कोई कह सकता है कि महाराज श्री! जमीन के अंदर तो हल्दी भी होती है अदरक भी होता है तो इनका सेवन करना चाहिये या नहीं? ध्यान रखना, हल्दी, अदरक जब तक गीले रहते हैं तब तक ये सेवन करने योग्य नहीं होते। जब अदरक सूख जाता है तब सौंठ बन जाता है। वह सौंठ तो सेवनीय है किंतु गीला अदरक सेवन करने योग्य नहीं है अभक्ष्य ही है।

अब आप कह सकते हैं कि महाराज श्री! जब अदरक को सुखाकर खाया जा सकता है तो आलू को भी तो सुखाकर खाया जा सकता है? क्योंकि आप लोग रास्ते निकालना जानते हो। किसी भी तरह से हमारी जिह्वा इन्द्रिय तृप्त बनी रहे इसका स्वाद बना रहे। तो आप कह सकते हो कि जब अदरक को सुखाकर सौंठ का उपयोग किया जा सकता है तो फिर आलू को सुखाकर क्यों नहीं खाया जा सकता?

आप एक काम करना, अदरक और आलू दोनों को अपनी छत पर सुखाने के लिये रख देना। फिर देखना अदरक सूख जायेगा और आलू सड़ जायेगा। आलू सूखेगा नहीं सड़ जायेगा जबकि अदरक सूख जायेगा। इसलिए अदरक जब सूख जाता है तब उसे काष्ठ वनस्पति कहते हैं। अगर आप उसको कूटोगे तो उसमें से रेशे टाइप (Type) के निकल आयेंगे। लेकिन आलू सूखेगा नहीं। उसे जितना सुखायेंगे वह उतना ही सड़ता चला जायेगा। फिर आलू काष्ठ वनस्पति नहीं होता इसलिए अभक्ष्य है। वह सूखने सुखाने पर भी खाने योग्य नहीं होता।

अत: महाभारत में आया कि अनंतकाय का भक्षण नरक का द्वार है। जिन्हें इन अनंतकायिक के विषय में कुछ ज्ञान नहीं वे तो यही सोचते होंगे कि होगी कोई वस्तु अथवा वनस्पति जिसका सेवन नहीं करना चाहिये। लेकिन ध्यान रखना, अनंतकाय आलू आदि कंदमूल को कहते हैं क्योंकि इनमें अनंत सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। जो इनका सेवन करता है वह उन अनंत जीवों की हिंसा, विराधना करता है इसलिये जैनी श्रावकों को हित का मार्ग दिखाते हुए अरहंतदेव ने कहा कि उन्हें इन कंदमूलों का सेवन नहीं करना चाहिये।

मूल के बिना फल-फूल नहीं होते, और मूल में ही फल आ जाये तो जैनी श्रावक, दयालु धर्मात्मा प्राणी, उनका सेवन नहीं करता है। उसे अभक्ष्य मानता है।

ऐसे ही मूलमात्र के रहते हुए जो फल मिलता है धर्मात्मा मोक्षाभिलाषी भव्य जीव उस फल को भी नहीं चाहता। यहाँ मूल यानि सम्यग्दर्शन। आचार्य भगवन् ने धर्म का मूल सम्यग्दर्शन को कहा है। सम्यग्दर्शन यानि सच्ची श्रद्धा, सच्चा विश्वास। अगर किसी को मात्र सम्यग्दर्शन है और रागादि भाव का त्याग नहीं है। तो सम्यग्दर्शन के होने पर और रागादि भावों के रहते हुए वह जीव मरकर कहाँ जाता है? स्वर्ग जाता है।

सम्यक्त्वं च।।21-6।।

आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज तत्त्वार्थ सूत्र जी में कहते हैं कि **सम्यक्त्व भी देवायु के आस्रव का कारण है अर्थात् सम्यग्दर्शन सहित राग देवायु की प्राप्ति में कारण है लेकिन जैसे मूल का फल अभक्ष्य है वैसे ही सम्यक्त्व के फलस्वरूप जो देवायु रूप फल प्राप्त है वह भी सच्चे धर्मात्मा श्रावक के लिये अयोग्य अवांछनीय है।**

सम्यग्दृष्टि जीव क्या चाहता है? स्वर्ग या मोक्ष। अहो! वह मोक्षाकांक्षी तो होता है किंतु भोगाकांक्षी नहीं होता। क्यों? क्योंकि वह जानता है कि स्वर्गों के दिव्यभोग भी उसे एक दिन छोड़ना ही पड़ेंगे। आयु पूरी होने के बाद पुनः जन्म धारण करना पड़ेगा। पुनः संसार में आना पड़ेगा। फिर वही कुयोनियों में, खोटी गतियों में भटकना पड़ेगा। न जाने किन-किन पर्यायों में जाना पड़े? इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव क्या चाहता है? मोक्ष। मुझे स्वर्गवासी नहीं सिद्धालय वासी बनना है। सच्चे देवत्व को पाना है, ऐसा चिंतन करता है।

कल मैंने कहा था, मिथ्यादृष्टि जीव दानादि व्यवहार धर्म का पालन भोगों की आकांक्षापूर्वक करता है और सम्यग्दृष्टि धर्म का पालन आत्महित के लिये, मोक्षसुख के लिये करता है। उसे न स्वर्ग चाहिये न भोग। वह तो शीघ्रातिशीघ्र इन पुण्य-पाप रूप समस्त कर्मों का क्षय चाहता है इनसे मुक्ति चाहता है। जिससे संसार में ही जन्म-मरण न करना पड़े।

किसी सज्जन ने पूछा, महाराज श्री! सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्ग जाता है तो क्या मिथ्यादृष्टि जीव भी स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं? आचार्य भगवन् कहते हैं— सम्यग्दृष्टि जीव भी स्वर्ग जाता है। मिथ्यादृष्टि भी स्वर्ग जा सकता है। क्यों? क्योंकि जब जीव की कषायें मंद होती हैं तब उसे पुण्य का बंध होता है और पुण्य का बंध होने के कारण देवायु आदि का बंध कर सकता है स्वर्ग में जाकर देव बन सकता है। लेकिन स्वर्ग में जाकर देव बन जाना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। ये कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है। स्वर्ग का देव अपनी तरह ही सुख-दुख को भोगता है। ऐसा नहीं है कि वह भगवान बन गया हो। वह भगवान नहीं बना अपितु चार गतियों में से एक गति में अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए गया है। चार गति कौन-कौन सी होती हैं-

1. देवगति 2. मनुष्यगति 3. तिर्यञ्चगति 4. नरकगति। जो इन चारों गतियों से छूट जाता है वह भगवान बन जाता है।

इसलिये मिथ्यादृष्टि देव जिसे धर्म की श्रद्धा नहीं होती कदाचित् सरल परिणामों के कारण, दया, करुणा, परोपकार रूप परिणामों के कारण, बाल तप आदि के कारण, देवगति में जा सकता है। आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज श्री तत्त्वार्थ सूत्र जी में देवायु के आस्रव के कारण बतलाते हुए कहते हैं कि–

सरागसंयम संयमासंयमाकामनिर्जरा बाल–तपांसि देवस्य।। 20।।

सराग संयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बाल तप ये देवायु के आस्रव के कारण हैं।

तो भले ही जीव देवायु को प्राप्त हो जाये, लेकिन–

तहँ तैं चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करे।

वहाँ से (देवगति से) आने के बाद पुनः संसार में ही भ्रमण करता रहता है। पंच परावर्तन के चक्रव्यूह में ही फँसा रहता है।

जो जीव सम्यग्दृष्टि होता है वह मोक्ष पाने के लिये धर्म धारण करता है। धर्म किसे कहते हैं? इसका समाधान देते हुए आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी कहते हैं–**'चारित्तं खलु धम्मो'** चारित्र ही निश्चय से धर्म है और **'दंसण मूलो धम्मो'** उस धर्म का मूल सम्यग्दर्शन को कहा है इसलिये यह जीव चारित्ररूपी धर्म को प्राप्त कर मोक्षमार्गी बनता है और मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। लेकिन **जब तक चारित्ररूपी धर्म की प्राप्ति नहीं होती मात्र सम्यग्दर्शन प्रगट रहता है तब तक इस जीव के लिये देव आदि उत्तम पर्यायों को प्राप्त करना पड़ता है।** अन्यत्र कोई गति नहीं है। तो क्या उसने सम्यग्दर्शन को स्वर्ग में जाने के लिये प्राप्त किया था? नहीं।

मैंने कहा, जैसे जड़ में रहनेवाले फल को जैनी श्रावक अभक्ष्य मानता है ऐसे ही सम्यक्त्व रूपी मूल के साथ मिलनेवाले जो स्वर्ग आदि के फल हैं धर्मात्मा जीव उन की आसक्ति नहीं रखता अपितु सच्चे निर्वाण महाफल को पाने की भावना से भरा होता है।

इसलिए कहीं ऐसा न हो जाये कि हम इस भ्रान्ति में पड़ जायें कि हमें तो अब सम्यग्दर्शन मिल गया यानि धर्म ही मिल गया। अहो आत्मन्? अभी तुझे धर्म नहीं मिला। अभी तो तेरे हाथ में धर्म की मूल आयी है मूल को तू धर्म मत मान लेना। सम्यग्दर्शन को मोक्षमहल की नींव कहा है। नींव के ऊपर ही महल खड़ा होता है। नींव के बिना महल खड़ा नहीं होता। अगर कोई बिना नींव के महल खड़ा करना चाहे तो वह एक झौंके में ही धराशायी हो जायेगा। और अगर नींव मजबूत है तो उसके ऊपर खड़ा किया भवन धराशायी नहीं होगा। बस, नींव मजबूत होनी चाहिये।

अब जिसकी नींव मजबूत है किन्तु भवन नहीं बनाया फिर भी कहे कि मेरे पास भवन है, तो भाई! नींव का नाम तो भवन नहीं है। किसी ने अपने मकान की नींव भर ली और कहने लग जाये कि मैंने तो अपना भवन बना लिया है। तो उससे पूछ लेना 'अगर तुमने अपना भवन बना लिया है तो अब तुम्हारा गृह प्रवेश कब है?'

पूछ लेना कब है तुम्हारा गृह प्रवेश? मैं जरूर पधारूँगा। तो नींव मात्र बना लेने से गृह प्रवेश हो सकता है क्या? गृह का निर्माण हो गया क्या? नहीं ना। ध्यान रखना! अभी तो मात्र नींव तैयार हुई है मकान बनना तो अभी बाकी है। अगर कोई नींव को ही मकान मान बैठे, जड़ को वृक्ष मान बैठे, सम्यग्दर्शन मात्र को ही धर्म मान बैठे, तो वह अभी भूल में है। इसलिये बंधुओ! नींव का नाम भवन नहीं, मूल का नाम फल-फूल, वृक्ष नहीं और सम्यग्दर्शन मात्र का नाम धर्म नहीं है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने श्री प्रवचनसार जी में कहा—**'चारित्तं खलु धम्मो'** निश्चय से चारित्र ही धर्म है। क्यों? क्योंकि जहाँ भवन होगा वहाँ नींव तो होगी ही। उसके बिना तो भवन बनता ही नहीं है। ऐसे ही जहाँ सम्यक्चारित्र है वहाँ सम्यग्दर्शन अवश्य ही होगा और जहाँ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों हों उसे आचार्य भगवंतों ने धर्म कहा है। यथा—आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी में धर्म की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि-

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।। 3 ।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धर्म के ईश्वर सर्वज्ञदेव के द्वारा धर्म कहा गया है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों की एकता का नाम धर्म है। यदि कोई ऐसा विचार करे मैं तो चारित्र का पालन करता हूँ। तप, नियम, व्रत को धारण करता हूँ इसलिये मैं धर्मात्मा हूँ।

लोकदृष्टि में, बाह्यदृष्टि में आपको धर्मात्मा कहा जा सकता है लेकिन वास्तव में देखा जाये तो अभी आप धर्मात्मा नहीं हैं क्योंकि आपने जो चारित्ररूपी भवन बनाया है वह बिना नींव का है। सम्यग्दर्शन से, सच्ची श्रद्धा से रहित है। व्यक्ति दान-पूजा करे और सम्यक्त्व न हो, तो वह पुण्यकर्म तो कर रहा है लेकिन मोक्षमार्ग में कारणभूत धर्म उसे अभी प्राप्त नहीं हुआ है। और यदि कोई गृहस्थ सम्यग्दर्शन को प्राप्त करले किन्तु दान-पूजादि कर्तव्यों का पालन न करे तो भी क्या सम्यक्त्व रहेगा? नहीं।

दान-पूजादि को श्रावक का धर्म कहा गया है। धर्म यानि चारित्र। यह सम्यग्दृष्टि श्रावक का धर्माचरण है इसे सम्यक्त्वाचरण कहा गया है। सम्यग्दर्शन के साथ होनेवाला जो धर्म है वह सम्यक्त्वाचरण कहलाता है। इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव इस गाथा में बतला रहे हैं कि श्रावक का धर्म क्या है? यहाँ आचार्य भगवन् ने श्रावक कह दिया है माने सम्यग्दृष्टि की बात चल रही है? क्योंकि जिनागम में श्रावक किसे कहा गया? आचार्य भगवन् उमास्वामी 'उमास्वामि श्रावकाचार' में इसका समाधान करते हुए कहते हैं-

सप्तव्यसन निर्मुक्ता जिनपूजा समुद्यताः।
सम्यग्दर्शन संयुक्तास्ते धन्याः श्रावकाः मताः।। 92।।

अर्थात् जो सप्त व्यसनों से रहित होते हैं, जिनपूजा में उद्यत रहते हैं तथा सम्यग्दर्शन से सहित हैं वे धन्य भाग्यशाली जीव श्रावक माने गये हैं।

ऐसे श्रावक यानि सम्यग्दृष्टि जीव के लिए क्या करना योग्य है? आचार्य भगवन् कहते हैं कि धर्म का पालन करना योग्य है। '**सावय धम्मे दाणं पूया मुक्खं**' और उस श्रावक धर्म में दान-पूजा धर्म मुख्य कर्तव्य है। कर्तव्य किसे कहते हैं? '**अवश्यमेव कर्तव्यं**' जो अवश्य ही करने योग्य होता है उसका नाम कर्तव्य है। जिसको किये बिना रहा नहीं जा सकता उसे

कर्तव्य कहते हैं। और श्रावक का कर्तव्य क्या है? दान करना, पूजा करना यह श्रावक का मुख्य कर्तव्य है जिसका पालन करता हुआ वह चारित्रमोहनीय को जीतने का पुरुषार्थ करता है।

इसलिये बंधुओ! सम्यग्दर्शन मात्र को धर्म नहीं कहा है। मूल को वृक्ष नहीं कहा है। नींव को भवन नहीं कहा है। यदि कोई नींव मात्र को, मूल मात्र को, धर्म मानता है। कैसे? कारण में कार्य का उपचार करके। उसे उपचार से स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में स्वीकार नहीं किया जा सकता। उपचार से अर्थात् आज अगर मूल है तो कल वृक्ष तो होगा ही होगा। इसप्रकार जो कार्य आगे होनेवाला है उस कार्य का कारण में उपचार कर दिया गया है।

ध्यान रखना, उपचार कथन बहुत होता है जैसे किसी माँ ने गर्भ धारण किया है लेकिन अभी संतान को जन्म नहीं दिया तो भी उसे माता कहते हैं। कोई व्यक्ति अभी एम.बी.बी.एस (MBBS) कर रहा है अभी डॉक्टर (Doctor) बना नहीं है फिर भी उसे डॉक्टर (Doctor) कह देना। वह आगे चलकर डॉक्टर (Doctor) बनेगा अभी थोड़े ही बना है लेकिन जो आगे भविष्य में होनेवाला कार्य है उस कार्य को कारण में उपचार करके कह दिया जाये तो उसको भी प्राप्त हुआ माना जाता है। और वह कथन लोक में मान्य होता है इन सबको उपचार कथन कहा जाता है।

इसलिये श्रावक का धर्म, सम्यग्दृष्टि जीव का मुख्य धर्म, दान-पूजा कहा गया है। सच्चा धर्मी श्रावक इनका पालन नितप्रति करता है। दान चार प्रकार के कहे गये हैं—

'औषध, शास्त्र, अभय, आहारा।'

औषधि दान, शास्त्रदान (ज्ञान दान), अभयदान और आहारदान। ये चार प्रकार के दान श्रावक के लिये मुख्यता से बताये गये हैं।

पहला है औषधिदान। अगर कोई रोगी, बीमार, पीड़ित, दुखी जीव है और आप सम्यग्दृष्टि जीव हैं तो आपकी आत्मा में उसके रोग को, पीड़ा-कष्ट को मिटाने के लिये उचित औषधि के दान का भाव अवश्य आयेगा। ऐसा हो ही नहीं सकता कि आपकी आत्मा में यह भाव न आये।

श्री कृष्ण ने अपनी नगरी में एक मुनिराज को देखा। उन मुनिराज के लिये कोई रोग बीमारी थी। दिगंबर जैन साधु अपनी रोग बीमारी किसी के लिये कभी बताते नहीं है। यह श्रावक का कर्तव्य होता है धर्म होता है कि वह मुनिराज के पास जाकर उनका कुशलक्षेम अवश्य पूछे। सविनय उनके चरणों में नमोस्तु निवेदित करे और फिर हाथ जोड़कर कहे— गुरुदेव! आपका रत्नत्रय कुशल है? आपका स्वास्थ्य कुशल है? भगवन्! आपकी संयम की साधना ठीक चल रही है? आपका आहार निरंतराय हुआ? यह श्रावक का कर्तव्य है कि वह पात्रजनों से स्वयं बुद्धि विवेकपूर्वक बातों ही बातों में सारी बातें पूछले।

मुनिराज स्वयं यह नहीं कहेंगे कि हमको यह बीमारी हो गई है। आप लोग हमें किसी डॉक्टर (Doctor) या वैद्य को दिखा दो। वे ऐसा नहीं कहेंगे। यह श्रावक का कर्तव्य है कि वह जाकर पूछले महाराजश्री! रत्नत्रय अनुकूल है? सब ठीक है? बातों-बातों में जब वह पूछता है तो मुनिराज के उत्तरों से उसे यह आभास हो जाता है कि ओह लगता है मुनिराज का स्वास्थ्य कुशल नहीं है उनकी संयम साधना में विघ्न आ रहा है। हमारा कर्तव्य है हम इनके विघ्नों को दूर करें।

श्रीकृष्ण के लिए मुनिराज का दर्शन प्राप्त हुआ। वे महान् पुरुष थे। अपने कर्तव्यों को समझते थे। उन्होंने मुनिराज की अभिवंदना की पूजा की और बातों-बातों में उनके स्वास्थ्य की पूरी जानकारी ले ली। श्रीकृष्ण वापिस अपनी द्वारिका नगरी आये। अगले दिन उन्होंने लड्डू बनवाये और उनमें औषधि मिलवा दी। क्यों? क्योंकि मुनिराज का तो कुछ भी निश्चित नहीं है कि वे किस गृह में आहार करने जायेंगे। दिगंबर जैन साधु का किस गृह में आहार होना है कोई निश्चित नहीं रहता। वह अपनी प्रतिज्ञा लेकर जाते हैं हमारी आज यह प्रतिज्ञा मिलेगी तो आहार करूँगा अगर नहीं मिलेगी तो नहीं करूँगा। और किस घर में प्रतिज्ञा मिले कुछ भी पता नहीं रहता है।

श्रीकृष्ण यह जानते थे। उन्होंने लड्डू में औषधि रखी और पूरे नगर में लड्डू पहुँचा दिये। इस प्रयोजन से कि जहाँ भी मुनिराज जायें, उन्हें आहार में लड्डू अवश्य दिया जाये। जिससे उन्हें औषधि चल जाये और उनकी रोग बीमारी ठीक हो जाये। धर्मात्मा जीव का विवेक देखो,

जो औषधदान देता है वह कितना विवेक रखता है। कहा जाता है दवा हमेशा दबाकर देना चाहिये। चार लोगों को पता भी न चलने पाये कि औषधि दे दी गई है। ये थोड़े ही कहते रहते हैं कि महाराज श्री! औषधि है औषधि। अरे! श्रावक विवेकी होता है दवा को दबाकर देता है। किसी को पता ही नहीं चल पाता कि औषधि दे दी गई है। श्री कृष्ण यह जानते थे इसलिए उन्होंने लड्डू में औषधि रखवायी। जिससे किसी को क्या मुनिराज तक को यह ज्ञात न हो कि औषधि चल गई। उन्हें तो यही पता है कि लड्डू चल रहा है।

विचार करना भिण्ड के श्रावको! जीवन में विवेक के साथ साधु वैयावृत्ति के भाव होना चाहिये। साधु की चर्या को पराधीन चर्या कहा गया है इसलिये उनकी मोक्षमार्ग की साधना में साधक बनना, सहयोगी बनना। श्रावकों के लिये कहा गया कि '**धर्मी सों गौ वच्छ प्रीति सम कर जिनधर्म दिपावै।**' जिसप्रकार गाय की अपने बछड़े में प्रीति होती है उसीप्रकार जब निर्ग्रंथ तपोधन नगर में पधारें, तो उनके प्रति धर्मात्मा जीव गौ-वत्स के समान प्रीति, प्रेम, वात्सल्य का भाव रखते हैं। उनकी अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि देखते हुए आवश्यक सेवा वैयावृत्ति धर्म का पालन करते हैं। जब वे आहारचर्या को निकलते हैं तो जिसतरह माता अपने बच्चों का ध्यान रखती है उसीतरह वे विवेकपूर्वक संयम में साधक बनकर प्रासुक शुद्ध अनुकूल आहारचर्या सम्पन्न कराते हैं। कहा जाता है यदि मुनिराज अस्सी साल के भी हों और आहार देती हुई बालिका आठ साल की हो, तो भी उस बालिका को माँ और मुनिराज को उस समय पुत्र की उपमा दी जाती है। ऐसा प्रेम-वात्सल्य भाव धर्मात्मा श्रावकों के अंदर पाया जाता है। विवेकी श्रावक स्वबुद्धि विवेक से उनकी अनुकूलता-प्रतिकूलता पहचान जाते हैं। आचार्य भगवंतों ने कहा कि चौके में श्रावक साधुजनों को आहारदान मात्र नहीं देता अपितु उनके लिये संयम दान करता है। क्यों? क्योंकि तन-मन के अनुकूल रहने पर संयम की साधना भी अनुकूल चलती रहती है। इस तरह धर्मात्मा श्रावक मोक्षमार्ग की प्रभावना करते हुए, मोक्षमार्गियों की साधना में साधक बनते हुए, स्वयं अपने मोक्षमार्ग को प्रशस्त करता है।

दूसरा है शास्त्रदान। कहीं-कहीं उपकरण दान में ही शास्त्रदान को सम्मिलित कर लिया गया है। शास्त्रदान जिसमें चतुर्विध संघ के साधकों की ज्ञान वृद्धि के लिये शास्त्र समर्पित किये जाते हैं। जब सामान्य जनों के लिए शास्त्र भेंट करने का विशेष फल कहा गया है तो संयमी आत्मसाधक जनों के करकमलों में शास्त्र समर्पित करने का कितना माहात्म्य होता होगा?

इस संबंध में कथानक आता है—एक ग्वाला था जिसका नाम कौण्डेश था। वह ग्वाला नितप्रति जंगल में अपनी गाय चराने जाता था। एक दिन उस जंगल में आग लग गई। सारा जंगल जल गया किंतु एक वृक्ष यथावत् हरा-भरा खड़ा हुआ था। वह ग्वाला जब अपनी गायों के साथ जंगल पहुँचा तो उसने देखा कि जंगल में सब कुछ जलकर राख हो चुका है किंतु यह एक वृक्ष बिल्कुल हरा-भरा है? जैसे कुछ हुआ ही न हो। वह ग्वाला आश्चर्य से भरा हुआ उस वृक्ष के पास पहुँचा। उसने देखा कि वृक्ष की कोटर में एक ग्रंथ रखा हुआ है। उसने यह सब उस ग्रंथ का माहात्म्य जाना। वह उस ग्रंथ को लेकर अपने घर आ गया और रोज भक्ति विनय पूर्वक उस ग्रंथ की पूजा करने लगा।

किसी दिन उस ग्वाले के लिये एक निर्ग्रंथ मुनिराज के दर्शन प्राप्त हुए। उसने विचार किया कि क्यों न मैं वह ग्रंथ ऐसे महान तपस्वी साधु महाराज के लिये समर्पित कर दूँ? उस ग्वाले ने विनयपूर्वक वह ग्रंथ बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उन मुनिराज के लिए समर्पित कर दिया। अगले भव में यही ग्वाला शास्त्रदान के प्रभाव से इस युग के एक महान आचार्य हुये 'आचार्य भगवन् कुंदकुंदस्वामी'। शास्त्रदान के फल से अपूर्व आत्मज्ञान व श्रुतज्ञान के धारी हुये।

श्रावकों के द्वारा, साधुजनों की ज्ञान-ध्यान की आराधना निर्विघ्न रूप से चलती रहे और हम भी अपने मोक्षमार्ग को प्रशस्त कर सकें, उत्तम आत्महितकारी श्रुतज्ञान को आत्मज्ञान को प्राप्त हो सकें, इस भावना से यह शास्त्रदान अत्यंत श्रद्धा-भक्तिपूर्वक किया जाता है।

इसके अतिरिक्त संयम धर्म की रक्षा हेतु पिच्छिका और शौच उपकरण के रूप में कमण्डलु आदि भी समर्पित किये जाते हैं।

तीसरा है अभयदान। एक सच्चा धर्मात्मा श्रावक वह है जो अभयदान को अपना कर्तव्य समझता है। कोई भी प्राणी जिससे भयभीत नहीं होता। हिंसक पशु भी चरणों का दास बन जाता है। जानते हो, एक हुए अमरचन्द्र दीवान। वे जयपुर निवासी थे। वहाँ का जो सम्राट था वह शिकार खेलने के लिए जाता था और अमरचन्द अहिंसक प्रवृत्तिवाले थे, जैनधर्म के अनुयायी थे, जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों पर दृढ़ आस्था रखते हुए उनका पालन करते थे। लेकिन वे सम्राट के बहुत निकट थे। उनकी कर्तव्यपरायणता देखकर सम्राट उन पर बहुत विश्वास करता था। उनकी यह निकटता अन्य दरबारियों के लिये ईर्ष्या का कारण थी। एक दिन कुछ

ईर्ष्यालु दरबारियों ने अमरचन्द्र दीवान के विषय में कहा कि हे राजन्! ये जो अमरचन्द दीवान हैं ये आपके साथ हमेशा सहयोगी बनकर नहीं रह सकता। आप स्वयं देख लें, जब-जब आप शिकार पर जाते हैं ये उस समय कोई न कोई बहाना बनाकर पहले ही खिसक जाता है।

वह राजा शिकार प्रेमी था। अन्य दरबारियों की बातों में आकर उसने अमरचन्द्र दीवान के लिये आदेश दिया कि दीवान जी! आज हम शिकार खेलने जंगल जायेंगे और उससमय आपको हमारे साथ चलना है।

राजाज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता है? अमरचन्द्र दीवान रथ पर सवार होकर जंगल की ओर राजा के साथ चल दिये। सम्राट का रथ दौड़ रहा है और आगे-आगे भयभीत हुए हिरण घबराकर भय से इधर-उधर भाग रहे हैं, दौड़ रहे हैं। सम्राट हाथ में तीरकमान लिए हुए उन हिरणों का शिकार करने के लिये तत्पर हुआ। बेचारे हिरन तीरकमान देख इधर-उधर भागते जा रहे हैं घबरा रहे हैं। उधर शिकार न कर पाने के कारण सम्राट क्रोधित हो रहा है।

तभी अचानक अमरचन्द दीवान ने जोर से कहा-भो असहाय हिरणो! जब रक्षक ही भक्षक बना हुआ है तो तुम भयभीत होकर दौड़-भागकर कहाँ जा सकते हो? इसलिये ठहर जाओ।

अमरचन्द दीवान ने इतने शब्द कहे और दौड़ते-भागते हुए हिरण एकदम से रुक गये। ठहर गये।

यह दृश्य सम्राट ने देखा। वह आश्चर्य में पड़ गया। सोचने लगा—मैं इतनी देर से परेशान हो रहा था। कोई भी हिरण ठहर नहीं रहा था सब भाग रहे थे दौड़ रहे थे। और दीवान जी के इतना कहते ही सभी हिरण कैसे ठहर गये? सम्राट ने पूछा- भो अमरचन्द दीवान! ये क्या है? अमरचन्द दीवान बोले—राजन्! हिंसक व्यक्ति से हर कोई भयभीत रहता है और अहिंसक व्यक्ति के सामने हर जीव अभय को प्राप्त हो जाता है निर्भय हो जाता है।

अभयदान धर्मात्मा जीव का लक्षण है। सम्राट के लिये यह घटना बहुत आश्चर्यकारी लगी। सम्राट वापिस लौटकर आया और समस्त राजसभा के मध्य यह वृतांत सुनाया। तभी एक दरबारी बोला—राजन्! हम दीवान अमरचन्द के इस अहिंसक भाव को तब जानेगें जब

वह आपके सिंह के लिए भोजन कराये। अब सिंह तो माँस खाता है यह सुन अमरचन्द दीवान के लिये सम्राट ने सिंह की रक्षा का भार सौंप दिया और कहा कि आप हमारी इच्छा पूरी करें। आज से हमारे सिंह की रक्षा का भार स्वीकारें, रक्षा करें।

अगर कोई क्रूर अपराधी होता था तो सम्राट उसे सिंह के सामने भेज देता था। ऐसे क्रूर सिंह के लिये दीवान अमरचन्द भोजन कराने पहुँचे। वह सिंह पिंजरे के अंदर बंद था। चारों ओर भीड़ लगी हुई है। सभी दरबारी देखते हैं अब क्या होता है? यह अहिंसा धर्म का अनुयायी कैसे अपने अहिंसा धर्म की रक्षा करता है? अमरचंद दीवान हाथ में जलेबियों का थाल लेकर णमोकार मंत्र पढ़ते हुए सिंह के पिंजरे के पास पहुँचे। सब दरबारी देख रहे हैं कि अब देखो क्या होता है? ये महानुभाव सिंह को जलेबी खिलायेंगे।

अमरचंद दीवान जलेबी का थाल लिये पिंजरे के पास पहुँचे और णमोकार मंत्र बोलते हुए कहते हैं कि भो मृगराज! यदि आपको भोजन करना है तो मैं आपके लिये शुद्ध भोजन लाया हूँ। मेरा धर्म है कि मैं कभी किसी जीव के लिये दुख नहीं दे सकता, कष्ट नहीं दे सकता, मार नहीं सकता। इसलिए मैं आपको माँस नहीं खिला सकता, लेकिन मैं आपके लिये ये जलेबी का थाल लेकर आया हूँ आप इन्हें स्वीकार कीजिये। और यदि आपको माँस ही प्रिय हो तो दीवान अमरचंद आपके सामने खड़ा है। आप इसे स्वीकार कर लेना। इतना कहकर के अमरचंद दीवान ने उस क्रूर सिंह के पिंजरे का दरवाजा खोल दिया। और मात्र पिंजरा ही नहीं खोला अपितु पिंजरे के अंदर जलेबियों का थाल लेकर प्रवेश कर गये। सारे दरबारी स्तब्ध खड़े हुए हैं विचार में पड़े हुए हैं देखते हैं अब क्या होता है?

अमरचंद दीवान ने थाल में से जलेबी उठाई और सिंह का मुख मीठा करा दिया। सिंह ने भी चाव से जलेबियाँ खाना स्वीकार कर लिया और अमरचंद दीवान को कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचाया। क्यों? क्योंकि अमरचन्द दीवान की आत्मा में अभयदान का भाव था। मैं अभयदान देता हूँ। जीवों की जैसी भावनाएँ होती हैं उनके शरीर से वैसी ही वर्गणाएँ निकलती हैं जिसे विज्ञान में औरा (Aura) कहते हैं। आभामण्डल, प्रभामण्डल, भामण्डल इसी के पर्यायवाची नाम हैं। अपने अपने परिणामानुसार जीवों के शरीर के चारों ओर एक आभामण्डल निर्मित हो जाता है। जो व्यक्ति क्रूर होता है उसके चारों ओर काला आभामण्डल निर्मित होता है और

उसके आभामण्डल में कोई व्यक्ति आ जाये तो उसके अंदर अपने आप ही क्रोध का क्रूरता का भाव पैदा हो जाता है। यदि कोई धर्मात्मा जीव हो और उसके आभामण्डल में कोई जीव आ जाये तो क्रूर से क्रूर व्यक्ति के परिणाम भी शांत हो जाते हैं।

इसलिये आप लोगों ने देखा होगा कि महापुरुषों के सिर के चारों ओर श्वेत अथवा पीत रंग का आभामण्डल बना रहता है यह प्रतीक होता है उनके धर्मात्मापने का। अमरचंद दीवान ने शेर को जलेबी खिलाई और थाल खाली करके बाहर ले आये। पिंजरा बंद कर दिया। सारे लोग देखते रह गये। खुशी, उल्लास के साथ जय-जयकार के नारे लगाने लगे। अहिंसा धर्म की जय हो—अभयदान की जय हो। अहो! जिनागम पंथ जयवंत हो।

चौथा है आहारदान। सम्यग्दृष्टि श्रावक, पात्र के लिये आहारदान देने का भाव अवश्य रखता है और आहारदान करके अपने धर्म का पालन करता है। आप जानते ही होंगे, राजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती ने जंगल में युगल मुनिराज के लिए आहारदान दिया और उस समय उनके इतने पवित्र भाव रहे होंगे कि भवान्तर में एक प्रथम धर्मतीर्थ प्रवर्तक बना तो दूसरा दान तीर्थ प्रवर्तक अर्थात् भगवान आदिनाथ और राजा श्रेयांस बने, जो उसी भव से मोक्ष पधारे।

राजा श्रेयांस द्वारा प्रवर्तित आहारदान की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए धर्मात्मा सुधी श्रावकगण आज भी उसका निर्बाध पालन करते हैं। वे सुपात्रों को आज भी अपने हृदय में आत्मकल्याण की भावना संजोकर अपने घर बुलाते हैं और भाव रखते हैं-

गुरु आये मंदिर बना, मेरा ये घर द्वार।
भक्ति विनय स्वीकार कर, जीवन दिया सँवार।।

इसलिए जो सम्यग्दृष्टि जीव होता है वह पात्र के लिये आहारदान का भाव अवश्य रखता है साथ अपने हितमार्ग को प्रशस्त करते हुए किन-किन फलों को प्राप्त होता है तो कहते हैं-

सद्दृष्टिः पात्रदानेन लभते नाकिनां पदं।
ततो नरेन्द्रतां प्राप्य लभते पदमक्षयम्।। सर्वो. श्लोक।।

अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव दान से स्वर्ग को प्राप्त होता है और वहाँ से आकर राज्यपद प्राप्तकर अविनाशी मोक्षपद को प्राप्त करता है।

'दाणं पूया मुक्खं सावय धम्मे'

श्रावक का मुख्य कर्तव्य दान करना और सच्चे देवशास्त्रगुरु की पूजा करना कहा गया है। श्रावक इनकी भक्ति पूजन क्यों करता है? क्योंकि उसके अंतस में उनके प्रति बहुमान आता है। इनके द्वारा मुझे सन्मार्ग मिला हित का मार्ग मिला। नीतिकार कहते हैं कि **जिस व्यक्ति के द्वारा किसी को एक अक्षर का भी ज्ञान दिया जाता है तो वह उस व्यक्ति के उपकार को जन्मों-जन्मों तक नहीं चुका सकता फिर जिसने आत्मा के हित का, सच्चे सुख का, रत्नत्रय का मार्ग दिखाया हो उनके उपकारों को हम कैसे भूल सकते हैं? इसलिए श्रावक अपनी कषायहीनता के लिये, अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये, भगवान जिनेन्द्र की पूजा करता है। आराधना, उपासना करता है अपना अहोभाग्य मानता है।** और नितप्रति भावना करता है कि हे प्रभो! जैसा आपका यह स्वरूप है ऐसा ही स्वरूप मेरी आत्मा में समाया हुआ है। मैं आप जैसा बनने के लिए आपकी भक्ति आराधना करता हूँ।

'दाणं पूया मुक्खं सावय धम्मे ण सावया तेण विणा'

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि दान और पूजा श्रावक के इन दो मुख्य आधारभूत कर्तव्यों का पालन यदि कोई नहीं करता है तो वह श्रावक नहीं होता। इस आधार पर आप निर्णय कर सकते हैं कि ये श्रावक हैं अथवा नहीं हैं। इसलिए बंधुओ! गृहस्थ मत बने रहना, श्रावक बनने का प्रयास करना। गृहस्थ बनकर जीनेवाले और मरनेवाले तो दुनिया में बहुत हैं। भले ही कोई गृहस्थ बनकर संसार में आया हो लेकिन श्रावक बनकर संसार से जाता है तो धर्म का पालन करने से, धर्म के प्रभाव से, वह उत्तम फलों को प्राप्त होता है। आचार्य भगवन् ऐसे महान धर्म की महिमा बतलाते हुए 'श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी' में कहते हैं कि-

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसार दुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।। 2।।

मैं उस धर्म का सच्चे धर्म का प्रतिपादन करूँगा जो कर्मों का विनाश करनेवाला है वे कर्म जो इस जीव को दुखमय संसार में डुबाने में कारण हैं। और कैसा है? जो समस्त प्राणियों को संसार के दुखों से निकालकर स्वर्ग-मोक्ष आदि के उत्तम सुखों को प्राप्त कराता है दिलवाता है।

इसलिये बंधुओ! आप अपने इस उत्तम धर्म को समझना।

'झाणज्झयणं जदि धम्मे'

यति का धर्म क्या है? मुनिराज, दिगंबर साधुओं का धर्म क्या है? तो आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं **'झाणज्झयणं'** ध्यान और अध्ययन करना ये साधु का धर्म है। **अगर कोई निर्ग्रंथ साधु, कोई मुनिराज, अध्ययन करते हुए मिल जायें तो समझ लेना पंचमकाल में भी चतुर्थकालीन साधु का दर्शन हो गया।** क्यों? क्योंकि साधुधर्म में स्थित एक साधु का दर्शन हो जाये तो समझना कि हम धन्य हो गये। जो एक निर्ग्रंथ योगिराज का दर्शन हो गया।

बंधुओ! साधु का धर्म क्या है? अध्ययन करना और ध्यान करना। इसलिए साधुजन इन दो कार्यों में लगे रहते हैं। एक तो आत्मा के ज्ञान में दूसरा आत्मा के ध्यान में। उनका ज्ञान ज्ञान में रहता है यानि अध्ययन और ध्यान में। इन दो के अलावा साधु का अन्य जगह ध्यान जाता ही नहीं है। और इनके अलावा अन्य कार्य साधुजनों को शोभा नहीं देते हैं। साधुजन क्या करते कराते हैं? ज्ञान और ध्यान। इस समय आपको ज्ञान मिल रहा है और अगर आप पूरी एकाग्रता के साथ इस ज्ञान को ले रहे हैं तो आपको ध्यान भी मिल रहा है इस तरह साधु ज्ञान-ध्यान में ही रहता है और ज्ञान-ध्यान का ही प्रसाद बाँटता है। इससे साधु का हित तो होता ही है साथ ही श्रावक का भी भला होता है।

इसलिए बंधुओ! हमारे पास कोई तंत्र-मंत्र-यंत्र लेने मत आ जाना। क्योंकि साधु का काम ज्ञान और ध्यान है। **साधु का काम तंत्र-मंत्र-यंत्र का प्रसाद बाँटना नहीं है। साधु तो ज्ञान और ध्यान का प्रसाद देता है। जिसका फल अपूर्व सुख शांति और हित की प्राप्ति है।** ध्यान रखना, रयणसार जी के अंदर साधु का और क्या धर्म है? यह आगे की गाथाओं में आचार्य भगवन् बतायेंगे। क्योंकि ठगनेवाले लोग बहुत हैं दुनिया में, और सच्चा साधु मिलना बहुत दुर्लभ है। जैसे चिंतामणि रत्न मिलना दुर्लभ है वैसे ही सच्चा साधु मिलना अत्यंत दुर्लभ जानना। सांसारिक कार्यों में उलझे हुए साधु तो बहुत मिल जायेंगे लेकिन ज्ञान और ध्यान में लीन रहनेवाला साधु मिल जाये तो समझना कि साक्षात् चतुर्थकाल आ गया है और मैं चतुर्थकाल का अनुभव कर रहा हूँ। अहोभाग्य! जो मुझे ऐसे योगी की चरण शरण प्राप्त हुई।

कर्तव्यशील श्रावक ही सच्चा श्रावक और कर्तव्यशील श्रमण ही सच्चा श्रमण है। जो कर्तव्यहीन और प्रमादी है समझना वह श्रावक, श्रावक नहीं है और साधु होते हुए भी वह साधु नहीं है। क्यों? क्योंकि भेष बदलने का नाम साधुपना नहीं है अपितु भीतर से भीतर का परिवेश बदलना चाहिये। जो श्रावक का धर्म है उस धर्म का पालन करनेवाले श्रावक भी दुर्लभ हैं और ऐसे साधु भी दुर्लभ हैं और अगर कोई ऐसे श्रावक मिल जायें तो वे भी अभिवादन के योग्य हैं। कहना अहोभाग्य, धन्य हैं आप जैसे श्रावक जो निरंतर श्रावक धर्म का पालन करते हैं और कराते हैं।

बंधुओ! पाषाण बहुत मिल सकते हैं लेकिन रत्न का मिलना दुर्लभ है। गृहस्थ बहुत हैं दुनिया में, लेकिन श्रावक का मिलना दुर्लभ है। भेष बदलनेवाले बहुत हैं दुनिया में, लेकिन सच्चा साधु मिलना दुर्लभ है। इसलिए बंधुओ! पहचान करना, निर्णय करना। किससे? श्रावक की पहचान दान-पूजा से करना। यदि वह ये दो कर्तव्य पालन करता हो तो कहना श्रावक है। और ज्ञान ध्यान में लीन साधु मिल जाये तो कहना ये श्रमण हैं साधु हैं हमारे आराध्य हैं निर्ग्रंथ तपोधन हैं।

लोग कहते हैं, महाराज श्री! जब भी आपके पास आते हैं जब देखो तब क्लासेस (Classes) ही चलती रहती हैं। इसमें मैं क्या करूँ भैया। मैंने ऐसी यूनिवर्सिटी (University) से शिक्षा प्राप्त की है जहाँ क्लास (Class) के अलावा और कुछ चलता ही नहीं है। और वह यूनिवर्सिटी (University) है श्री विराग यूनिवर्सिटी (Virag University)। मैंने ऐसे विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की है, जहाँ मात्र कर्तव्यपालन सिखाया जाता है किया जाता है और मुझमें भी वही संस्कार आये हैं इसलिए भिण्ड वालो! यहाँ तो क्या मिलेगा? ज्ञान चाहिये ज्ञान मिलेगा। ध्यान चाहिये, ध्यान मिलेगा। आपको क्या चाहिये? अरे ज्ञान चाहिये, इसलिये तो तुम रोज लेने आते हो।

आप सभी पुण्यात्मा श्रावक हो जो आचार्य भगवन् कुंदकुंद की वाणी को रुचिपूर्वक सुन रहे हो। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव की यह वाणी एक न एक दिन तुम्हें भी अवश्य ही आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव जैसा बनाये ऐसी मेरी आपके प्रति सद्भावना है।

श्रावक पूजा दान करे, साधु अध्ययन ध्यान करे।
कर्तव्यों का पालन कर, सुख का अनुसंधान करे।
इस बिन न श्रावक, हो-हो-2, न साधु कहाये रे......
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

अकाल मरण

विसवेयण रत्तक्खय-भय सत्थग्गहण संकिलेसेण।
आहारुस्सा साणं णिरोहणा, खिज्जए आऊ।।
हिम जलण सलिल-गुरुयर पव्वय तरु रुहण पडण भंगेहि।
रस विज्जजोय धारण अणय पसंगेहिं विविहेहिं।।
इय तिरिय मणुय जम्मे, सुइरं, उववज्जिऊण बहुवारं।
अवमिच्चु महादुक्खं तिव्वं पत्तोसि तं मित्त।।

(भा.प्रा. 25-27)

अर्थ— विष, पीड़ा, रक्त क्षय, (खून का बहुत अधिक निकल जाना), डर और शस्त्र घात के संक्लेश से, आहार और श्वासोच्छ्वास के रुकने से, बर्फ, अग्नि और पानी में गिरने से, महान् पर्वत और ऊँचे वृक्ष पर चढ़ते समय गिर जाने से, पारे के विकार से, बिजली गिर जाने तक योग के धारण आदि अनेक अनीतिपूर्ण घटनाओं के द्वारा आयु का क्षय हो जाता है। इस प्रकार हे मित्र! तूने तिर्यंच और मनुष्य गति में चिरकाल तक जन्म लेकर अनेक बार अकाल मरण का कठोर महादुःख भोगा है।

निगोद में एक अंतर्मुहूर्त में जन्म-मरण

छत्तीसं तिण्णिसया छावट्ठिसहस्स वार मरणाणि।
अंतो मुहुत मज्झे पत्तोसि णिगोयवासम्मि।।भा.प्रा. 28।।

अर्थ—हे जीव! निगोद में रहते हुए तू एक अन्तर्मुहूर्त काल में छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार मरा है।

(बहिरात्मा की परिणति पतंगे के समान)

दाण ण धम्म ण चाग ण, भोग ण बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोहकसायग्गिमुहे, पडिदो मरिदो ण संदेहो।।12।।

* अन्वयार्थ *

(जो) जो श्रावक **(दाण)** दान **(ण)** नहीं देता **(धम्म ण)** धर्म-पालन नहीं करता **(चाग ण)** त्याग नहीं करता **(भोग ण)** न्यायपूर्वक भोग नहीं करता **(सो)** वह **(बहिरप्प)** बहिरात्मा **(पयंगो)** पतंगा है **(लोह-कसायग्गि-मुहे)** लोभकषाय रूपी अग्नि के मुख में **(पडिदो)** पड़ा हुआ **(मरिदो)** मर जाता है **(संदेहो)** इसमें संदेह **(ण)** नहीं है।

अर्थ-जो श्रावक सुपात्र को दान नहीं देता है। अष्टमूलगुण, व्रत, संयम, पूजा आदि अपने योग्य धर्म का पालन नहीं करता है। न्यायनीतिपूर्वक भोग नहीं भोगता है; वह बहिरात्मा है-मिथ्यादृष्टि है। वह ऐसा पतंगा है जो लोभकषायरूपी अग्नि के मुख में पड़ा हुआ मर जाता है। इसमें संदेह नहीं है।

गाथा - 12
(प्रवचन)

●

दान परोपकार-त्याग स्व उपकार

25.08.2013

भिण्ड
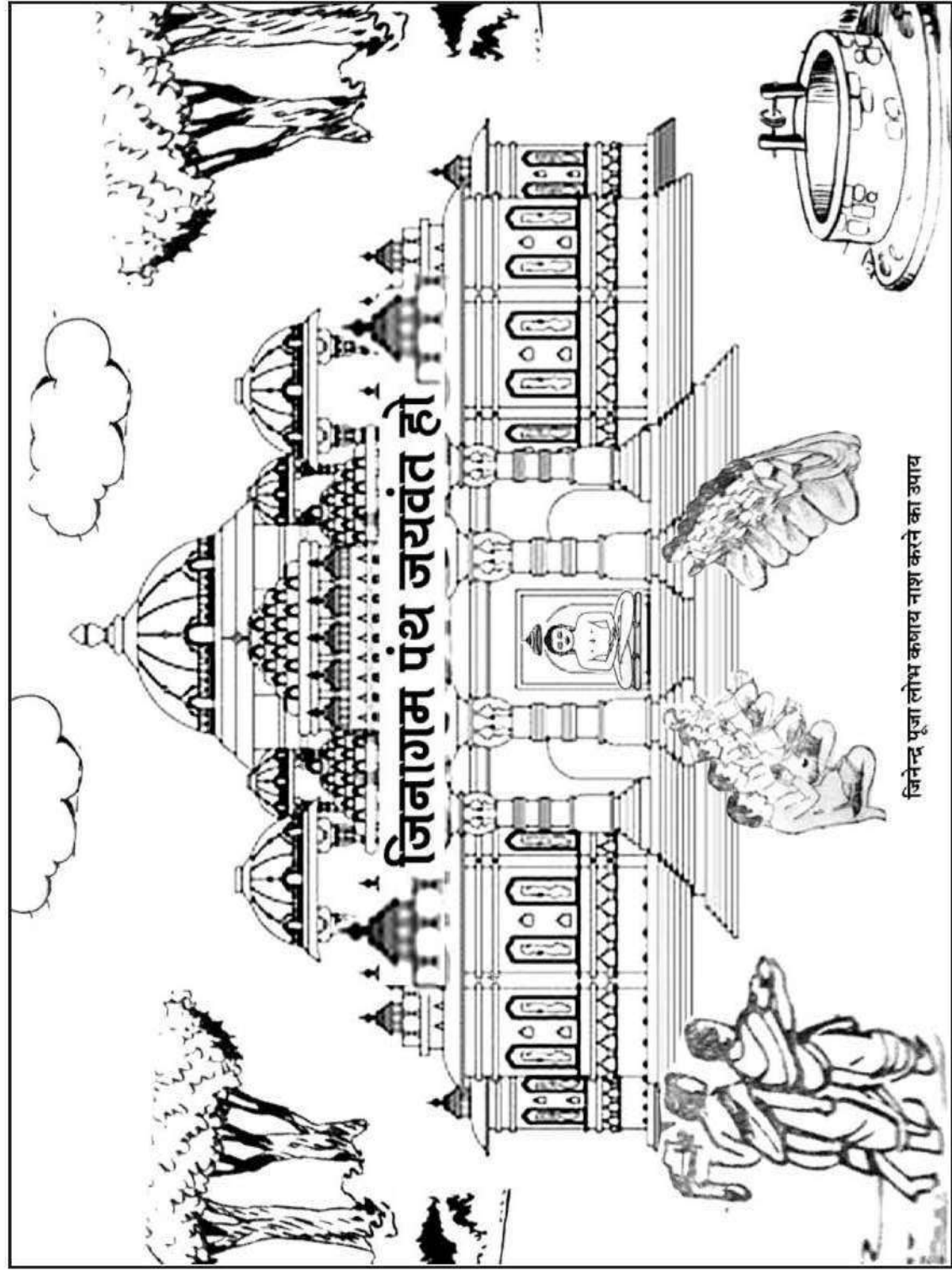
जिनेन्द्र पूजा लोभ कषाय नाश करने का उपाय

22

रयणोदय

श्रावक होकर दान नहीं, हृदय धर्म सम्मान नहीं।
न्यायपूर्वक भोग नहीं, त्याग नहीं बहिरात्म वहीं।।
लोभी पतंगा, हो-हो-2, अग्नि दुख पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव हम सभी को 'श्री रयणसार जी' ग्रंथ के माध्यम से अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने की कला सिखा रहे हैं। हमारा जीवन अच्छा बन सके, हम जीवन में श्रेष्ठ बन सकें उसके लिये हमें, अरिहंतों के द्वारा आचार्य भगवंतों के द्वारा बतलाये गये अच्छे और सच्चे उपायों को करना होगा।

अच्छा तो हर कोई बनना चाहता है लेकिन जब तक अच्छा मार्ग नहीं होगा, उपाय अच्छे नहीं होंगे तब तक जीवन में अच्छाई नहीं आ सकती। श्रावक यदि लोभ में जीता है तो उसके जीवन में कभी अच्छाईयाँ नहीं आ सकती। क्यों? क्योंकि लोभी व्यक्ति सभीप्रकार के पाप किया करता है और खोटे कर्मों के द्वारा अपने जीवन को दुखमय बनाता रहता है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव यहाँ 12वीं गाथा में हमें यह बता रहे हैं कि जो श्रावक लोभी है वह बहिरात्मा है। आचार्य भगवन् कुंदकुंदस्वामी ने आत्मा के तीन भेद बतलाये हैं। श्री मोक्षप्राभृत में आचार्य भगवन् कहते हैं-

तिपयारो सो अप्पा परभिंतर बाहिरो।। 4।।

वह आत्मा तीन प्रकार का है बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। आचार्य भगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी श्री समाधितंत्र ग्रंथ में बहिरात्मा का लक्षण बतलाते हुए कहते हैं कि-

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिः ।।

बहिरात्मा का अर्थ है जो अपने आत्मा के हित का कोई विचार नहीं करता। आत्मा का हित क्या है इस विषय में विचार नहीं करता? जिसका उपयोग बाह्य में होता है। जो शरीर, स्त्री, पुत्र, धन, संपदा आदि को अपने आत्मा का मानता है ऐसा जीव बहिरात्मा कहलाता है अर्थात् पर पदार्थों में 'मैं और मेरेपन' की कामना रखता है कि यह बाह्य पदार्थ मैं हूँ, शरीर मैं हूँ और शरीर के अलावा जितने भी सांसारिक लौकिक बाह्य पदार्थ हैं सभी मेरे हैं ऐसी मान्यता जिसके अंदर रहती है वह जीव बहिरात्मा कहलाता है।

अनंतकाल से यह आत्मा बहिरात्मा ही बना रहा। क्यों? क्योंकि शरीर आदि परपदार्थों को ही अपना मानता रहा। बहिरात्मा की कैसी दशा होती है?

बहिरात्मा जीव शुभाशुभ कर्मोदय में अपने को सुखी-दुखी मानने लगता है। जब पापकर्म का उदय होता है दरिद्री होता है तो स्वयं को रंक कहने लगता है। पुण्य के उदय में भूमिपति बन जाता है तो अपने को मैं राजा हूँ ऐसा कहकर राजपाट करता है। यह धन मेरा, यह घर मेरा है, यह गोधन मेरा है, ये मेरे पुत्र, ये मेरी पत्नी, मैं बहुत बलवान हूँ, मैं कमजोर दीन हूँ, मैं रूपवान हूँ, मैं कुरूप हूँ। मैं सबको अत्यंत प्रिय हूँ, मैं मूर्ख, मैं होशियार हूँ कर्मों की भिन्न-

भिन्न उदय दशा में वह अपने आप को भिन्न-भिन्न स्वरूपवाला मानने लगता है। कर्माधीन पर्याय को अपना मानता रहता है। और तन की उपज को ही आत्मा की उपज मानता है। तन के नाश को आत्मा का नाश मानता है। राग-द्वेषादि भावों को जो तत्काल ही जीव के लिये दुख देनेवाले हैं वह मूढ़ अज्ञानी बहिरात्मा जीव इनके आश्रय से ही अपने को सुखी अनुभव करता है। अनंतकाल से यह जीव इसी बहिरात्म दशा में जीता रहा। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि जब तक यह जीव परपदार्थों को अपना मानता रहेगा, पर में ममत्व-ममकार बुद्धि रखेगा, तब तक यह जीव बहिरात्मा बना रहेगा।

जबकि अन्तरात्मा जीव ऐसी भ्रान्ति से, भ्रम बुद्धि से रहित होता है। वह जानता है कि इनमें कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है। मेरे साथ तो इनका संयोग मात्र बना हुआ है। न ये मेरे थे, न मेरे हैं, और न ही कभी मेरे हो सकते हैं। मेरी आत्मा का इन पदार्थों से न कभी कोई संबंध रहा है, न है, और न ही कभी हो सकता है। ऐसा जिसका दृष्टिकोण होता है भगवान महावीर कहते हैं कि वह जीव अंतरात्मा है, सम्यग्दृष्टि है, मोक्षमार्गी है। अपनी आत्मा का हित करने में तत्पर है। शरीर और आत्मा अलग-अलग है। भगवान महावीर ने अपनी दिव्य देशना में हर श्रावक के लिये यही बताया है कि इन दोनों को हमेशा पृथक-पृथक जानना। ये दो भिन्न द्रव्य हैं एक नहीं हैं। भले ही वर्तमान में संश्लेष संबंध को प्राप्त हैं लेकिन फिर भी एक नहीं हैं जैसे दूध और पानी दोनों पृथक-पृथक स्वरूप वाले हैं पृथक वस्तुए हैं किंतु संश्लेष संबंध को प्राप्त हो जाने पर एकरूप दिखायी देते हैं। अंतरात्मा जीव ऐसा भेदविज्ञान करता हुआ आत्मा के स्वरूप के प्रति दृढ़ श्रद्धावान होता है। किंतु बहिरात्मा जीव शरीर और आत्मा में अभेददृष्टि रखने के कारण, अभेदबुद्धि रखने के कारण शरीर को ही आत्मा मानता-जानता रहता है।

बहिरात्मा वह होता है जो शरीर को ही आत्मा मान बैठता है। शरीर के परिणमन को ही अपना परिणमन मानता है। शरीर में कोई परिवर्तन रोगादि हो जाये तो सोचता है यह मुझे हो गया है। शरीर के गुणों को अपनी आत्मा के गुण मानता है। अगर शरीर काला है तो अपने आप को काला मानता है अगर शरीर पीला है तो अपने को पीला कहता है शरीर गोरा है तो अपने को गोरा बताता है जबकि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। शरीर में रंग आदि पाये जाते हैं लेकिन आत्मा में रंग रूप नहीं पाया जाता। शरीर मूर्तिक द्रव्य है और आत्मा अमूर्तिक है।

जैसे आपके पास फोर व्हीलर (Four Wheelur) गाड़ी है और आप उसके अंदर बैठे हुए हैं अगर आपकी गाड़ी लाल रंग की है, तो क्या आप कहोगे कि मैं लाल रंग का हूँ? गाड़ी अगर नीली, काली, पीली, सफेद रंग की है, तो क्या आप कहोगे कि मैं नीला, काला, पीला, सफेद रंगवाला हूँ? क्या कहोगे ऐसा? नहीं ना। इस बात को आपने आसानी से स्वीकार कर लिया कि गाड़ी जैसा मैं नहीं हूँ, लेकिन यह शरीर मैं नहीं हूँ ऐसा निर्णय करने में यह मोहभाव अज्ञान भाव मिथ्यात्वभाव अड़चन डालता है। जीव को ऐसा लगता है कि ऐसा कैसे मैं स्वीकार कर लूँ कि मैं ऐसा नहीं हूँ? लेकिन सत्य को एक न एक दिन स्वीकार तो करना ही पड़ेगा। सत्य तो सत्य ही रहता है और सत्य को स्वीकार कर लेना ही समझदारी है।

थोड़ा और समझने का प्रयास करते हैं—मान लीजिए लोहे को अग्नि में तपा दिया। क्या कर दिया? लोहे को अग्नि में तपा दिया। अब ये बताओ लोहा और अग्नि एक हैं या अलग-अलग हैं। कैसे हैं? क्या कहेंगे आप? यही ना कि लोहा और अग्नि हैं तो दोनों अलग-अलग। कैसे हैं? लोहा अलग है और अग्नि अलग है भले ही अभी अग्नि में तप्त हो जाने के कारण दोनों एक ही मालूम पड़ते हैं तो भी दोनों अलग-अलग हैं। कुछ समय बीत जाने पर स्वत: ही लोहा और अग्नि अलग हो जायेंगे। तो जैसे लोहा और अग्नि अलग-अलग हैं वैसे ही शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं जो जीव ऐसी भिन्नता को नहीं जानता नहीं मानता वह जीव बहिरात्मा है और जो दो द्रव्यों के मिले होने पर भी दोनों को भिन्न-भिन्न जानता मानता है वह विवेकी अंतरात्मा कहलाता है।

आप बाजार से लौकी खरीदकर लाते हो। लौकी के ऊपर छिलका रहता है या नहीं? आप छिलके सहित को लौकी कहते हो या छिलके रहित को लौकी कहते हो? छिलके सहित को लौकी कहते हैं, अच्छा। अगर छिलका उतार दिया जाये तो उसको क्या कहेंगे? वो लौकी नहीं है क्या? छिलके सहित को आप लौकी कहते हो यह बात व्यवहार से सत्य है। वास्तव में तो छिलका अलग है और लौकी अलग है। इसलिए जब आप सब्जी बनाते हो पहले उसे सुधारते हो यानि छिलका अलग कर देते हो और लौकी अलग कर लेते हो। अब सब्जी किसकी बनाते हो? छिलके की या लौकी की? लौकी की सब्जी बनाते हो यानि छिलका उतारने के बाद अब जो बचा है वह लौकी है, न कि छिलका लौकी है। छिलका अलग है और लौकी अलग है।

यद्यपि दोनों मिले हुए हैं मिले हुए होने पर भी विवेकी श्रावक क्या करेगा, वह लौकी की सब्जी बनाते-बनाते भी भेदविज्ञान कर लेगा, कहेगा कि जैसे यह लौकी अलग है और इसका छिलका अलग है वैसे ही मैं आत्मा अलग हूँ और शरीर अलग है।

ज्ञानी विवेकी श्रावक रसोई बनाते-बनाते भी अपने ज्ञान का आश्रय नहीं छोड़ते। वे कोई भी काम करें भेदविज्ञान करते रहते हैं और अपने उपयोग को आत्मा के यथार्थस्वरूप के प्रति स्थिर करते रहते हैं। मटर छीलते हुए वे कहते हैं, मटर का दाना अलग है छिलका अलग है। ऐसे ही मैं आत्मा अलग हूँ और शरीर अलग है। गाड़ी में बैठकर कहीं जा रहे थे मन में विचार रहे थे जैसे इस गाड़ी में यह शरीर है दोनों अलग-अलग हैं वैसे ही मैं आत्मा इस शरीर में हूँ दोनों अलग-अलग हैं।

भगवान महावीर कहते हैं कि जो यह भेद करता है वही जैनधर्म का मर्म जाननेवाला होता है और जिसने ऐसा भेदविज्ञान नहीं किया है वह शरीर को ही अपना आत्मा मानकर जानकर मात्र शरीर के लिये ही जीता रहता है। आत्मा के धर्म से अनजान बना रहता है। शरीर के धर्म को ही आत्मा का धर्म मानने लग जाता है।

विचार करना! किसी ने उपवास किया। क्या किया? उपवास किया। उपवास में क्या करना पड़ता है? भोजन नहीं करते यानि चारों प्रकार के आहार का त्याग कर देते हो। इसको क्या कहते हैं? उपवास कहते हैं। लेकिन ध्यान रखना, ये जो उपवास हुआ है वह शरीर का उपवास हुआ है। आत्मा का नहीं हुआ। क्योंकि जो भोजन शरीर के लिये मिल रहा था वह भोजन शरीर को नहीं मिला तो किसका उपवास हुआ? शरीर का उपवास हुआ।

और भोजन में जो आपकी आसक्ति थी। भोजन में जो आपकी गृद्धता थी। राग भाव था। यदि आपने उस आसक्ति, उस रागभाव का, इच्छाओं का त्याग किया है तो आपने आत्मा को उपवास कराया है।

भगवान महावीर कहते हैं कि केवल शरीर को ही धार्मिक मत बनाओ, अपनी आत्मा में भी धर्म प्रगटाओ। मात्र शरीर का धर्म पालन मत करो आत्मा के भी धर्म का ज्ञान करो। आत्मा के वीतराग धर्म को पहचानकर यदि आपने राग-द्वेष भाव का त्याग किया है तो उस दिन

आपका सच्चा उपवास होगा और यदि आपके चारों प्रकार के आहार का त्याग मात्र है देह को तो भोजन नहीं कराया और इच्छाओं को शांत नहीं किया अपितु खूब राग द्वेष किया। जितने भी काम पेंडिंग (Pending) पड़े थे उन सबको पूरा करेंगे आज। क्यों? क्योंकि उपवास है।

इस विषय में आचार्य कार्तिकेयस्वामी धर्मानुप्रेक्षा में कहते हैं—

उववासं कुव्वाणो आरंभं जो करेदि मोहादो।
तस्स किलेसो अपरं कम्माणं णेव णिज्जरणं।।442।।

अर्थात् जो उपवास करते हुए मोहवश आरंभ को करता है, उसके लिए वह एक और कष्ट तो हुआ किन्तु कर्मों की निर्जरा नहीं हुई।

अब आप बताइए, आपको धर्म का फल मिलेगा क्या? उपवास का फल मिलेगा क्या? अहो! आपने जो आरंभ किया आपको उसका फल मिलेगा। आपने जो रागद्वेष, मोह, काम-क्रोधादि भाव किये हैं तो फल भी तो उन्हीं का भोगना पड़ेगा। जिसका वृक्ष लगाओगे उसी के फल पाओगे। शरीर को भोजन नहीं कराने से कर्म बंध नहीं रुक जाता। यदि किसी ने एक दिन शरीर को भोजन नहीं कराया तो क्या कर्मबंध रुक जायेगा? नहीं रुकेगा।

अहो आत्मन! आचार्य भगवन् शुभचन्द्र स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ की टीका में कहते हैं कि अपनी आत्मा के निकट रहना ही सच्चा उपवास है।

उप-समीपे आत्मनः परमब्रह्मणः शुद्धबुद्धैकस्वरूपस्य वसतीत्युपवासः।

अर्थात् शुद्ध-बुद्ध एकस्वरूप परमब्रह्म आत्मा के उप अर्थात् समीप में वसने का नाम उपवास है।

कषायविषयाहारत्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः।।

अर्थात् जिसमें विषयकषायरूपी आहार का त्याग किया जाता है वही उपवास है, केवल भोजन का त्याग करना तो लंघन है।

अहो! शरीर को भोजन का त्याग करा देने के पीछे यह भाव है कि उस दिन के लिये, भोजन के प्रति जो रागादि भाव था इच्छा आदि थी आपने उसका त्याग किया है। आत्मा के त्यागधर्म को बढ़ाने का भाव आया। ज्ञानी जीव अपने अंतस में इन भोगों के प्रति क्या चिंतन रखता है? तो आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी इष्टोपदेश में कहते हैं कि जिसे अपने इष्ट (शुद्धात्मा) की प्राप्ति की अभिलाषा होती है वह जीव इन भोगों के प्रति ऐसी विचारधारा रखता है-

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान् मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य कः स्पृहाः।।30।।

वह कहता है कि इस संसार में जितने भी पुद्गल परमाणु हैं वे सभी पुद्गल परमाणु मेरे द्वारा बार-बार भोगकर छोड़े गये हैं और जूठन के समान उन पुद्गलों में मुझ ज्ञानी जीव की क्या इच्छा होगी अर्थात् नहीं।

यदि ऐसा परिणाम आत्मा में आता है। हमारा आत्मा तो अनंत शक्तिशाली है वह तो अपने अनंतसुख-रस का भोग करनेवाला है इसलिये मैं आज भोजन नहीं करूँगा इस परिणाम के साथ उपवास किया है तो आपने सच्चा उपवास किया है।

इसप्रकार ज्ञानी जीव विचार करता है कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। उसीप्रकार शरीर को रोगी बनानेवाले पदार्थ अलग हैं और आत्मा को रोगी बनानेवाले भाव अलग हैं। यदि आपने अभक्ष्य पदार्थों का सेवन कर लिया। शरीर की प्रकृति के प्रतिकूल भोज्य पदार्थों का सेवन कर लिया तो शरीर रोगी बीमार अस्वस्थ हो जायेगा। और आपके द्वारा किये गये रागादिभाव क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या आदि जो परिणाम आत्मा में उत्पन्न हुए हैं उनके कारण आपका आत्मा रोगी बन रहा है संसारी बन रहा है सुख-दुख का वेदन कर रहा है।

भोजन से आत्मा रोगी नहीं बनता इसलिए भोजन का त्याग कर देंगे तो आत्मा निरोगी हो जायेगा ऐसा नहीं है। **जब अपना उपयोग शरीर में होता है तब अपना उपयोग रागद्वेष मय होता है और आत्मा उसी रूप होकर सुखी-दुखी हो जाता है। वैभाविक परिणति में रहने के कारण रोगी कहलाता है।** इसलिये तो कहते हो आप भगवान से कि-

मैं तो अनादि से रोगी हूँ उपचार कराने आया हूँ।

क्या कहते हो भगवान् से? भगवन्! मैं अनादिकाल से रोगी हूँ। ये जन्म, जरा, मृत्यु, रागद्वेष, मोह, वासना रूपी रोग मेरी आत्मा के साथ लगे हैं? हे प्रभु! मेरे ये रोग मिटाने में एक मात्र आप ही सहाई हो। आप ही मुझे उपचार का मार्ग बतला सकते हो। हे भगवन्! मैं अब आप के जैसी निरोगता पाना चाहता हूँ इसलिये आज आपकी शरण में आया हूँ।

यदि शरीर के स्वास्थ्य को ही आत्मा का स्वास्थ्य मान लिया। शरीर को स्वस्थ देख जान आत्मा को रागद्वेष करते हुए भी स्वस्थ मान लिया तो वह जीव बहिरात्मा ही कहलायेगा। भले ही आपका शरीर कितना भी स्वस्थ, अनुकूल रहे लेकिन आत्मा के अंदर अगर रागादि क्रोधादि भाव बन रहे हैं तो आपका आत्मा स्वस्थ नहीं है अपितु बीमार बना हुआ है।

इसलिये भगवान महावीर कहते हैं कि शरीर और आत्मा को पृथक-पृथक जानो। शरीर के धर्म को शरीर का धर्म मानो और आत्मा के धर्म को आत्मा का धर्म मानो जानो। शरीर के द्वारा धर्मपालन से आत्मा का धर्म हो जायेगा यह कोई जरूरी नहीं है लेकिन आत्मधर्म के पालन के लिये शरीर की भी आवश्यकता पड़ती है इसलिये शरीर को भी अनुकूल बनाए रखना जरूरी है। संयम धर्म की साधना में शरीर साधन की भूमिका निभाता है। इसलिए शरीर की प्रकृति के अनुकूल ही भोजनपान करना चाहिये।

अज्ञानी जीव परपदार्थ को अपना मानता है और बहिरात्मा होने के कारण शरीर के द्वारा की जानेवाली तप साधना को ही आत्मा की साधना मान लेता है जबकि आत्मा की साधना क्या है? **रागादि भावों को जीत लेना यही आत्मा की साधना है।**

अब प्रश्न है कि जीव इन रागादि भावों को कैसे जीतता है इनसे कैसे मुक्त होता है?

इसका समाधान करते हुए श्री समयसार जी ग्रंथ में आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं-

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।। 150।।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि ऐसा भगवान जिनेन्द्र का उपदेश है कि रागी जीव कर्मों को बाँधता है और विराग संपन्न जीव कर्मों से छूटता है इसलिये भो भव्यात्माओ! इन कर्मों में राग मत करो।

अर्थात् जब यह जीव पर के आश्रय को छोड़कर अपनी आत्मा के वीतराग स्वभाव का आश्रय करेगा तब इन रागादि भावकर्मों से छूट जायेगा, मुक्त हो जायेगा।

जो जीव ऐसे वीतराग स्वभावी आत्मा का आश्रय नहीं करता, आत्मा के धर्म को नहीं मानता, नहीं जानता, मात्र शरीर के धर्म को ही अपनी आत्मा के लिये हितकारी मानता है वह जीव बहिरात्मा ही है। और एक वह है जो शरीर का भी धर्म पालन नहीं करता अपितु सांसारिक परपदार्थों में भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक किये बिना, कर्तव्य-अकर्तव्य, कार्य-अकार्य का विचार किये बिना, हर वस्तु हर पदार्थ को अपना बनाने की चेष्टा करता रहता है। आचार्य कहते हैं कि यह तो बहिरंग धर्म से भी व्यवहार धर्म से भी बाह्य है। इसलिये यह तो पक्का बहिरात्मा है।

बंधुओ वह बहिरात्मा जीव कैसा होता है? यह आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव इस बारहवीं गाथा में बता रहे हैं-

दाण ण धम्म ण चाग ण, भोग ण बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोह-कसायग्गि-मुहे पडिदो मरिदो ण संदेहो।। 12।।

जो श्रावक '**दाण ण**' दान नहीं देता है '**धम्म ण**' धर्म का पालन नहीं करता है '**चाग ण**' कभी त्याग का भाव मन में नहीं लाता है। '**भोग ण**' और जो न्यायपूर्वक भोग नहीं भोगता '**बहिरप्प सो**' वह बहिरात्मा होता है '**लोहकसायग्गि मुहे जो पयंगो सो**' वह ऐसा पतंगा है जो लोभ कषायरूपी अग्नि के मुख में '**पडिदो**' गिर जाता है '**मरिदो**' मर जाता है '**संदेहो ण**' इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये।

आचार्य भगवन् बहिरात्मा जीव की पहचान लक्षण बताते हुए कहते हैं कि बहिरात्मा जीव दान नहीं करता। लेना तो जानता है लेकिन देना उसके स्वभाव में नहीं है। प्रकृति में नहीं है। दान करने की बात आ जाये तो बेचारा घबरा जाता है।

एक नगर में एक सेठ रहता था। नाम था मुंगेरीलाल। वह था तो सेठ किंतु प्रवृत्ति से महाकंजूस था। जब भी उनके घर कोई दान माँगने आता तो उसका स्वास्थ्य ही खराब हो जाता। वह कहता-भैया! अपना इलाज कराने के लिये तो मेरे पास धन नहीं है, मैं तुम्हें कहाँ

से दे दूँ? जब उसके परिवारी जन उससे कुछ दान करने के लिए कहते तो वह उन पर कुपित हो उठता। आपे से बाहर हो जाता। स्थिति यह हो गई कि कोई उसके सामने 'दान' यह शब्द बोल ही नहीं सकता था।

घरवाले भी कब तक सहते। जब उसके पुत्र व्यापार आदि में पूर्ण सक्षम हो गये और उन्होंने देखा कि हमारे पिताजी इतनी धन-संपदा होने के बावजूद भी दानधर्म का पालन न स्वयं करते हैं और न हमें ही करने देते तो उन्होंने सोचा, कोई न कोई युक्ति तो करनी होगी जिससे हम अपने श्रावक धर्म का पालन भी कर लें और पिताजी का दिल भी न दुखे।

पुत्रों ने पिता को अधिक धन अर्जन का लोभ दिखाकर व्यापार के कार्य से दूसरे गाँव जाने की बात रखी। उन्होंने कहा—पिताजी आप अनुभवी हैं और हमसे ज्यादा आप लाभ कमाकर ला सकते हैं। वह लोभीराम तुरंत जाने को तैयार हो गया। पुत्र जानते थे कि ये गाड़ी आदि से तो जायेंगे नहीं क्योंकि उसमें पैसे देने पड़ेंगे। इन्हें आने-जाने में लंबा समय लग जायेगा उतने समय हम निश्चिंत होकर अपना धर्म पालन कर सकते हैं क्योंकि-

'वित्तस्य सारं खलु पात्रदानं'

अर्थात् धन का सार पात्रदान है।

उधर वह लोभी मुंगेरीलाल पैदल-पैदल यात्रा पर निकल पड़ा। उस दिन उसने खूब बैलगाड़ी वालों को रोका लेकिन कोई भी मुफ्त में ले जाने को तैयार न हुआ और वह एक पाई देने को तैयार न था। गर्मी का मौसम, तेज धूप थकान से उसका सिर चकराने लगा। पास ही उसे एक कुआँ दिखा। उसने सोचा चलो कुएँ के पास चलकर पानी पीकर थोड़ा चैन से बैठेंगे। वह कुएँ के पास पहुँचा। उसने अपनी पादुकाएँ दूर ही उतार दीं। सोचने लगा-कहीं पानी से गीली हो गयीं तो जल्दी खराब हो जायेंगी अत: नंगे पाँव पहुँच गया कुएँ के पास। कमजोर शरीर मुंगेरीलाल जैसे ही पानी खींचने के लिये झुका, बैलेंस (Balance) बिगड़ जाने के कारण कुएँ में ही जा गिरा।

पुण्य का उदय था सो कुएँ में एक टहनी को पकड़ लिया और चिल्लाने लगा, बचाओ-बचाओ। कुछ समय में वहाँ से एक राहगीर गुजरा। उसने जब यह बचाओ-बचाओ की आवाज सुनी तो वह उस आवाज की दिशा में चलकर कुएँ तक पहुँच गया। उसने देखा कि एक व्यक्ति कुएँ में लटका हुआ है। उसने गौर से देखा तो पहचान लिया कि अरे ये तो हमारा पड़ौसी भाई मुंगेरीलाल है उसने तुरंत अपना झोला उतारकर जमीन पर रख दिया और कहने लगा—भैया! सुनो, मत घबराओ, मैं आ गया हूँ आप मुझे अपना हाथ दीजिए मैं अभी आपको निकालता हूँ।

मुंगेरीलाल ने सुना तो वह और घबरा गया। जोर-जोर से चिल्लाने लगा। उस व्यक्ति ने पुन: कहा किंतु फिर भी वह चिल्लाता ही रहा। पड़ौसी भाई ने सोचा, विचार किया, फिर उसे याद आया कि अरे! इन्होंने अपने जीवन में कभी कुछ दिया ही नहीं तो आज कैसे दे देंगे? उसने कहा-भैया! लो मैं अपना हाथ आपको देता हूँ आप इसे पकड़कर ऊपर आ जाओ।

मुंगेरीलाल ने इतना सुनते ही तुरंत हाथ पकड़ लिया और कुएँ से बाहर आ गया।

बंधुओ! यह दशा होती है लोभ से पीड़ित इंसान की। वह अपने जीवन को बचाने के लिये अपना हाथ भी न दे सका। और लेने का नाम सुनते ही आनंदित हो उठा। ऐसा वह लोभी जीव लोभ कषाय से निरन्तर ग्रसित रहता है इसलिए उसके जीवन में कभी दान का भाव नहीं आता।

जो श्रावक अपना जीवन अच्छा बनाना चाहते हैं श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं उन्हें नितप्रति दानधर्म का पालन अवश्य ही करना चाहिये। **'दाणं पूया मुक्खं सावय धम्मे'** क्योंकि दान और पूजा यह श्रावक का मुख्य धर्म है। इसलिये नितप्रति अपने धर्म का पालन कर अपने श्रावकत्व की रक्षा करना चाहिये। श्रावक धर्म की रक्षा करनी चाहिये।

दान देनेवाला कौन है? अगर दान लेनेवाला न हो तो आप चाहते हुए भी दान नहीं दे सकते। श्रावक को दान देने का सौभाग्य कब मिलता है? जब कोई तुम्हारे दान को स्वीकार करनेवाला हो तब दान देने का सौभाग्य मिल पाता है। ध्यान रखना! यदि लेनेवाला न हो तो तुम्हें दान का पुण्य मिलनेवाला नहीं है। लोभ का पाप तो मिलेगा लेकिन दान का पुण्य नहीं मिल सकता।

इसलिये बंधुओ! ऐसे पात्र का प्राप्त हो पाना लोक में अतिदुर्लभ है। आचार्य कुंदकुंददेव कहते हैं जो श्रावक दान का भाव नहीं रखता वह लोभी श्रावक है बहिरात्मा है अभी वह अंतरात्मा नहीं हुआ है। क्यों? क्योंकि सम्यग्दृष्टि हो जाये अंतरात्मा हो जाये और दान का भाव न आये ऐसा संभव ही नहीं है। नियम से उसकी आत्मा में दान करने के भाव उमड़ेंगे।

जब भी कोई श्रावक जिनमंदिर आता है तो वह खाली हाथ नहीं आता अपितु साथ में चढ़ाने हेतु सामग्री लाता है। क्यों लाता है वह चावल आदि अष्टद्रव्य ? इसलिए जिससे वह अपनी लोभ कषाय को जीत सके। श्रावकबंधु मुट्ठी भरकर डिब्बियाँ भर-भरकर जिनमंदिर में लाते हैं और पूरी सामग्री वहीं दान कर जाते हैं बचाकर वापस नहीं ले जाते। जब वह मुट्ठी में, अपने हाथ में, कोई न कोई वस्तु लेकर के आता है और मंदिर में छोड़कर के जाता है उस समय वह भावना करता है कि हे परमात्मा! मैं-

'मुट्ठी बाँधे आया जग में, हाथ पसारे जाऊँगा'

उसके लिये इस बात का भान होता है विवेक होता है कि मैं भले ही मुट्ठी बाँधकर आया हूँ लेकिन मैं जब भी जाऊँगा तब आज मैं जिसे अपना कहता हूँ वह सब इसी तरह छूट जायेगा और मैं खाली हाथ इस दुनिया से चला जाऊँगा।

उसे यह बोध होता है यह विवेक जाग्रत होता है इसलिये वह नितप्रति बुद्धिपूर्वक अपने हाथ की वस्तु को भगवान् के चरणों में अर्पित करता है। इसतरह उसकी आत्मा में त्यागभाव उत्पन्न होता है।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि जो श्रावक होकर भी दान नहीं करता वह बहिरात्मा लोभी श्रावक है। इसलिये शक्ति के अनुसार दान अवश्य ही करना चाहिये। ऐसा नहीं कि आपकी उतनी शक्ति सामर्थ्य नहीं लेकिन आप भावुकता में उससे भी अधिक दान करने के लिये तत्पर हो गये तो क्या होगा? दान करने का सुख विकल्पों में घिर जाने से कम हो जायेगा इसलिये भगवान जिनेन्द्र ने कहा कि शक्तितः त्याग करना चाहिये। शक्त्यानुसार दान करने का तात्पर्य है कि न तो शक्ति से अधिक और न शक्ति से कम। ऐसा भी न हो कि आप में 500 रु. दान करने की शक्ति है और आपने निकाले 5 रु.। ऐसा करके आपने अपनी शक्ति को

छिपाया है। दान तो किया है आपने, जितना किया है उतने का पुण्य आपको अवश्य मिलेगा लेकिन आपने आज अगर शक्ति को छुपाया तो जितना करोगे उतना ही मिलेगा उससे ज्यादा परभव में नहीं मिलेगा। जबकि अपने पास अवसर था आपकी स्थिति उस समय उस भिखारी के जैसी ही होगी जिसने हाथ आये अवसर को खो दिया। लोभ के कारण फिर पीछे पछतावे के अलावा कुछ नहीं मिला।

एक राजा था। किसी निमित्तज्ञानी ने कहा—राजन्! आपके राज्य पर बहुत बड़ा संकट आनेवाला है इसलिए यदि तुम अपने राज्य में सुख-समृद्धि, खुशहाली बनाये रखना चाहते हो तो इसका एक ही उपाय है कि आप प्रात:काल होते ही रथ पर सवार होकर पूर्व दिशा की ओर गमन करिएगा और रास्ते में जो पहला व्यक्ति मिले उससे अपने करपात्र में भिक्षा माँगिएगा। जो मिले उसे अपने राजकोष में जमा कर दीजिएगा। तभी आपके राज्य पर आनेवाली विपदा टल सकती है।

सम्राट अपनी प्रजा के हित के लिये भीख माँगने के लिये भी तैयार हो गया। वह रथ पर सवार होकर प्रात:काल चल दिया। राजा का रथ पूर्व दिशा की ओर गतिमान है धूल उड़ाता हुआ रथ दौड़ता जा रहा है।

उधर एक भिखारी खड़ा था। उसने रथ को आते देखा तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। सोचा, आज तो मेरी किस्मत खुल गयी जो सुबह-सुबह साक्षात् लक्ष्मीपति के दर्शन हो गये। उसने देखा—अरे! ये तो स्वयं हमारे राजा साहब आ रहे हैं। आज लगता है हमारी सारी दरिद्रता दूर हो जायेगी। मैं रथ रुकवाकर उनका अभिवादन करूँगा तो मेरी दीन-हीन दशा देखकर वे दयामूर्ति मुझे उपहार स्वरूप कुछ न कुछ अवश्य भेंट करेंगे। वह भिखारी अपने भावी सुख-वैभव सम्पन्न जीवन के सपने देखने लगा।

इतने में राजा का रथ आया और भिखारी के पास रुका। भिखारी प्रसन्नचित्त हाथ जोड़े खड़ा है उसने सोचा, अब राजा अपना हार उतारकर मेरे इस पात्र में डालेगा लेकिन राजा ने हार तो नहीं उतारा वह खुद रथ से उतर आया और भिखारी के सामने अपने हाथ फैलाते हुए बोला—आप मुझे कुछ दीजिए। भिखारी सोच में पड़ गया। आज ये राजा को क्या हो गया? ये मुझे देखकर मेरे जैसी बातें क्यों कर रहा है? जो मुझे कहना चाहिये वह ये क्यों कह रहा है?

भिखारी को सोच में पड़ा देख राजा ने पुनः उससे कुछ देने के लिये निवेदन किया। अब भिखारी बड़ा खिन्न हुआ। सोचने लगा कि आज न जाने सुबह-सुबह किसका मुख देखकर उठा था जो आज मुझे लेने के बदले देना पड़ रहा है।

राजा ने कहा—भो मित्र! क्या विचारते हो? तुम्हारे पास जो कुछ है उसमें से अपनी स्वेच्छानुसार तुम हमारे लिये कुछ दान करो।

अब राजा की आज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता है? उसने बड़े ही निराश मन से अपने झोले में हाथ डाला और अनाज के दानों से अपनी मुट्ठी भर ली। फिर उसने सोचा, इतना क्यों दूँ? थोड़ा कम देता हूँ और ऐसा सोचकर उसने अँगूठे से मुट्ठी खाली करना शुरु कर दी। ऐसा करते-करते जब उसकी मुट्ठी में मात्र चार दाने रह गये तो उसने बड़े बेमन से राजा के करपात्र में दे दिये। राजा प्रसन्नतापूर्वक वह दान प्राप्तकर पुनः रथ पर सवार हो धूल उड़ाता हुआ अपने राजमहल की ओर चला गया।

इधर भिखारी सोचने लगा, आज मेरी जिंदगी का सबसे बुरा दिन था जो राजा मेरे सामने आया और मुझे कुछ देने के बदले मुझसे ही कुछ माँगकर चला गया। हाय री मेरी किस्मत। वह नगर की ओर भिक्षा लेने चल दिया। आज उसे अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक भिक्षा मिली। रोज वह थैला भर भिक्षा ही मुश्किल से जुटा पाता था लेकिन आज तो चार थैले भी कम पड़ गये। वह जैसे-तैसे घर पहुँचा और पत्नी को आवाज लगायी। पत्नी ने देखा, ये आज इतनी सारी भिक्षा लेकर आये। आज तो बहुत अच्छा दिन है। लेकिन जब उसने पति के लटके हुए चेहरे को देखा तो पूछा-आज आप इतनी सारी भिक्षा लेकर आये हो फिर उदास क्यों हो? और इतना कहकर उसने थैले खाली करना शुरु कर दिये।

पति बोला-अरे, आज मेरा महा दुर्भाग्य का दिन है, जो आज राजा मेरे सामने आया और देने के बदले मुझसे ही माँगने लगा। मुझे अपने पुरखों से चली आई लेने की परंपरा को छोड़कर उसे कुछ देना पड़ा। मैं तो अपने पुरखों को मुँह दिखाने लायक न रहा।

इतने में पत्नी बोली-देखो, देखो। इन चावलों के मध्य में यह क्या चमक रहा है। देखो, देखो और भी हैं। ये चार दाने ऐसा लगता है जैसे सोने के ही हों।

पति ने देखा तो बोला- अरे! ये तो वास्तव में सोने के ही हैं। फिर वह विचारने लगा और कहने लगा कि आज मैंने नगर के सम्राट को दान में चार दाने दिये थे और पूरी भिक्षा में ये चार दाने ही मात्र स्वर्ण के निकले हैं। इतना सुनकर पत्नी बोली—तुम तो भिखारी बुद्धि के ही हो गये हो। कम से कम मुट्ठीभर दाने ही दान कर देते।

हाथ में आया सुनहरा अवसर खो जाने के कारण अब भिखारी पुनः दुखी होकर अपना माथा ठोकने लगा।

'चाग ण' और त्याग नहीं करता हो। **दान में और त्याग में अंतर होता है। दान परोपकार है और त्याग स्व-उपकार है।** दान दो लोगों के बीच, और त्याग के समय किसी अन्य व्यक्ति का होना अनिवार्य नहीं है सामने कोई है अथवा नहीं इससे कोई प्रयोजन नहीं रहता। लेकिन दान करते समय अन्य की उपस्थिति अनिवार्य होती है। आप कहते हैं कि आज हमने मुनिराज को दान दिया। अब मुनिराज होंगे तभी तो दान करोगे। और आज हमारी हरी का त्याग है मीठे का त्याग है इत्यादि। दान की जगह दान श्रेष्ठ है और त्याग की जगह त्याग श्रेष्ठ है। त्याग आत्मा का धर्म है। आचार्य भगवंतों ने त्यागधर्म की बड़ी महिमा बतलाई है इसलिये शक्ति के अनुसार त्याग करना श्रावक और साधु दोनों का कर्तव्य है।

'भोग ण' न्यायपूर्वक भोग का तात्पर्य है कि जैसे किसी व्यक्ति को कोई रोग बीमारी हो जाये और डॉक्टर (Doctor) उसके लिये 10 दिन की दवाई दे तो क्या वह उसे 5 दिनों में ही खत्म कर देगा? एक दिन की औषधि और ले लो ये भाव आता है क्या? औषधि लेते समय तो ऐसा लगता है कि एक गोली ले रहा हूँ तो इसमें से भी मुझे आधी लेनी पड़े अथवा न लेनी पड़े तो अच्छा है, न कि ये भाव आता है कि एक गोली की जगह दो गोली ले लूँ। एक कैप्सूल (Capsule) की जगह दो कैप्सूल (Capsule) ले लूँ।

ऐसे ही भोग के समय भी आत्मा में ये परिणाम आना कि मुझे यह लेना न पड़े और कदाचित् लेना भी पड़ रहा है तो आसक्तिपूर्वक भोग न करूँ। मेरी आसक्ति न जगे। उसमें भी मेरा थोड़े से थोड़े में काम चल जाए तो बहुत अच्छा रहेगा। भोग के समय आत्मा में ऐसे परिणाम उत्पन्न होना न्यायपूर्वक भोग कहलाता है।

एक व्यक्ति ने घर में दो रोटियाँ बनाईं। अब वह क्या सोचता है? कोई मुनिराज आ जाते तो कितना अच्छा होता? मैं इनमें से उन्हें भी कुछ दान दे पाता। और एक व्यक्ति ये सोचे कि

मैंने केवल दो रोटी बनाई हैं। कोई आ न जाये। क्या सोचता है? कोई आ न जाये। एक व्यक्ति यह सोच रहा है कि कोई आ जाता तो मैं उसे भी खिला देता। और एक व्यक्ति यह सोच रहा है कि कोई आ न जाये। एक तो न्यायपूर्वक भोग रहा है और एक आसक्ति गृद्धतापूर्वक भोग रहा है। बहिरात्मा श्रावक ऐसा होता है अपना भी भोग रहा है और दूसरे का भी मिल जाये तो और अच्छा।

अंतरात्मा कैसा होता है उसका तो वो जाने हमारे में से भी अगर किसी का भला होता हो तो मैं अपना भी देने को तैयार हूँ। ऐसा होता है अंतरात्मा श्रावक। लेकिन जो जीव न्यायपूर्वक भोग नहीं भोगता, वह बहिरात्मा श्रावक है ऐसा आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं। और कैसा होता है वह बहिरात्मा? इन्द्रिय विषयों के लिये वह न्याय-अन्याय का विवेक नहीं रखता। जैसे व्यक्ति को अपने जीवन के लिए धन-संपदा चाहिए तो एक वह है जो न्यायपूर्वक कमाता है और दूसरा वह है जो अन्यायपूर्वक धन संपदा जोड़ता है। कमा दोनों रहे हैं मेहनत परिश्रम दोनों कर रहे हैं लेकिन जो न्यायपूर्वक धन कमाता है वह ज्ञानी है और जो अन्यायपूर्वक कमाता है वह अज्ञानी है।

अपना जीवन चलाने, घर गृहस्थी चलाने के लिये कितना धन चाहिए? एक दिन में आपने हजार रूपये कमाये। अब आपको अपने लिये या अपने परिवार के संचालन के लिए जितना चाहिए उसका निर्णय कर लो। अगर एक दिन में 400 रु. खर्च हो रहे हैं और आप कमा रहे हो 1000 रु. तो विचार कर लो कि अगर 400 रु. में खर्च चल जाता है तो 600 रु. का अन्याय करके तुम पाप कमा रहे हो। अब यदि न्यायपूर्वक 400 रु. कमा लो तो भी आपके परिवार का खर्च चलेगा। चलेगा कि नहीं? परिवार का संचालन भी हो जायेगा और परभव में भी सुखपूर्वक जीवन जी सकोगे। किंतु लोभ कषाय की तीव्रता में अन्यायपूर्वक धन कमा रहे हो तो जो पापकर्म का बंध हो रहा है वह परभव तो नष्ट कर ही रहा है साथ ही इस भव में भी उदय में आकर आपकी सारी मेहनत पर पानी फेर सकता है।

इसलिए आचार्य भगवन् कहते हैं कि काम ऐसा करो जिससे न इसभव में बर्बादी हो और न परभव में परेशानी हो। इसके लिए न्यायपूर्वक भोग भोगना चाहिए। लेकिन बहिरात्मा जीव न्यायपूर्वक भोग नहीं करता। रावण त्रिखण्डाधिपति था। वह सीता को न्यायपूर्वक लाया था

कि अन्यायपूर्वक? अन्यायपूर्वक लाया था। किसलिए? भोग भोगने के लिए। वह सीता रूपी परस्त्री का भोग करना चाहता था; इसलिये अन्यायपूर्वक हरण करके लाया था। उस समय उसका पुण्य था जो सीता जैसी सती पतिव्रता शीलवंती नारी का हरण कर सका। किंतु जिससमय हरण किया उसी समय से पापकर्म का बंध होना प्रारंभ हो गया। इसतरह अन्यायपूर्वक अपनी भोगाकांक्षा को तृप्त करने के लिए उसे अपने पुण्य से भी हाथ धोना पड़ा अर्थात् धन-वैभव, संपदा, राजपाट क्या उसका जीवन तक नष्ट हो गया। और त्रिखण्डाधिपति होने का जितना यश था वह भी हमेशा-हमेशा के लिये कलंकित हो गया।

दूसरी ओर मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं जो न्याय-नीति पूर्वक जीवन जीते हैं। युवराज राम का राज्याभिषेक होना था और सुबह पिता ने कह दिया कि बेटा! तुम्हें वन को जाना है। राम बोले-जो आज्ञा पिताश्री! जबकि राम चाहते तो कह सकते थे कि मैं युवराज हूँ मेरा राजतिलक होनेवाला है मैं राज्य छोड़कर क्यों जाऊँ? क्या राम को कोई राजभोग से च्युत कर सकता था? किसी में इतनी ताकत नहीं थी। राम चाहते तो राजभोग कर सकते थे लेकिन राम धर्मात्मा श्रावक थे। वे जानते थे न्यायपूर्वक भोग करना यही श्रावक का धर्म है।

इसलिये जब पिता दशरथ ने कहा-'भो पुत्र राम! तुम्हारे लिये वनवास और भरत के लिये राजसिंहासन'। राम ने क्षणभर भी न लगाया, तुरंत कह दिया 'स्वीकार है पिताश्री'। क्यों कहा उन्होंने ऐसा? क्योंकि वे जानते थे कि न्यायपूर्वक जो राजभोग है वह हित का कारण है। यदि अन्यायपूर्वक राजसिंहासन का उपभोग कर भी लिया, तो भी मैं कुल-कलंकी ही कहलाऊँगा। लोग यही कहेंगे कि पिता ने राजसिंहासन नहीं दिया था लेकिन राम ने छीनकर राजपाट का भोग-उपभोग किया। विचार करना, राम ने सहजभाव से त्याग कर दिया। चौदह वर्ष तक वन में रहे तो राम का माहात्म्य बढ़ा। उनकी महत्ता बढ़ी। वे मर्यादा पुरुषोत्तम बन गये। और यदि शक्ति दिखाकर राजसिंहासन हथिया लेते तो मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते क्या? उसी समय उनकी सारी मर्यादा समाप्त हो जाती।

एक धर्मात्मा श्रावक न्यायपूर्वक भोगोपभोग का सेवन करता है। बहिरात्मा जीव न्यायनीति के मार्ग को जानते हुए भी उसका पालन नहीं करता। परवस्तु को अपना बनाने का भाव रहता है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि वह ऐसा पतंगा है जो लोभ कषाय रूपी अग्नि में पड़कर शीघ्र

नष्ट हो जाता है। जैसे कहीं कोई बल्ब (Bulb) जल रहा हो तो कोई भी पतंगा आकर उस बल्ब (Bulb) के ऊपर बार-बार गिरता है लेकिन उसे छोड़ता नहीं है। ऐसी ही दशा उस लोभी श्रावक की होती है। जो धन-वैभव, संपदा, ऐश्वर्य की चाह करते रहने के कारण लोभ कषाय रूपी अग्नि के मुख में ही बार-बार गिरता रहता है लेकिन उसका परित्याग नहीं कर पाता है।

इसलिए बंधुओ! इस लोभ कषाय को जीतने का प्रयास करना। इसे कैसे जीता जाता है? दानपूर्वक, त्यागपूर्वक जीता जाता है।

अत: श्रावक को दानधर्म आदि का पालन अवश्य करना चाहिये। अन्यथा अंत में तुम्हारे द्वारा संचित धन की क्या दशा होगी?

लोभी का धन लावर खाय, और बचे सरकारे जाय।

अन्यथा लोभियों का जितना भी धन होता है वह कौन ले जाते हैं? लावर यानि जो खूब गप्पबाजी ऊँची-ऊँची बातों में फँसाकर ठग लेते हैं। कहते हैं ऐसे लोग लोभियों का धन उन्हें चने के झाड़ पर चढ़ाकर मूर्ख बनाकर हथिया लेते हैं और कदाचित् कहीं बच भी जाये तो सरकार ले जाती है। क्या हुआ? छापा पड़ गया। जान से ज्यादा प्यारा धन सरकार जब्त करके ले गयी। और तुम उस धन का न भोग कर पाये और न ही दो पैसे दान कर पाये।

ऐसा लोभी व्यक्ति दान नहीं कर पाता है। दान देने के नाम पर तो साँप सूँघ जाता है। यदि लेने का अवसर आ जाये तो सीना फूल जाता है। ध्यान रखना, जो लोभ कषाय से ग्रसित व्यक्ति होता है वह धन में अत्यधिक आसक्त रहने के कारण मरकर अपने ही घर में कुण्डली मारकर सर्प बनकर बैठता है। तब घरवाले ही उसे डंडे से मार-मारकर घर से बाहर निकाल देते हैं। और दानी व्यक्ति यदि धन-वैभव, राजभोग, सिंहासन सब कुछ छोड़कर भी चला जाये तो वह जहाँ भी जाता है वहाँ राजसी सम्मान को प्राप्त होता है। राम राजमहल राजपाट छोड़ वन में रहने लगे। एक यक्ष ने जंगल में भी उनके लिये राजमहल बना दिये।

इसलिये बंधुओ! अगर आपको यह मनुष्य जीवन मिला है और आप अपने इस जीवन को अच्छा और श्रेष्ठ बनाना चाहते हो। यशस्वी जीवन जीना चाहते हो तो दानधर्म का पालन करो। दान करने से यश मिलता है। कुल की प्रतिष्ठा बढ़ती है। जीवन यशस्वी बनता है। मैं

कहता हूँ व्यक्ति को दो प्रकार के कार्य अवश्य करने चाहिये। प्रथम आत्मा का हित मोक्षमार्ग स्वीकार करना चाहिये। दूसरा गृहस्थ में रहकर दानधर्म अवश्य करना चाहिये। जिससे आपका यश बढ़े और आपके जाने के बाद भी लोग आपको याद रखें। अब यह आपके ऊपर निर्भर करता है कि लोग आपको क्या कहकर याद करें? अरे! वह तो महालोभी था अथवा धरती पर एक देवता था। जिसके द्वार पर कोई भी चला जाता था कभी खाली हाथ नहीं लौटता था। ऐसी कुल प्रतिष्ठा, यश, सम्मान दानधर्म के पालन से ही प्राप्त होती है।

कहने का तात्पर्य यह है यदि जीव लोभी वृत्तिवाला है बहिरात्मा है तो वह कभी दान के भाव नहीं बना सकता। पुण्य धर्म नहीं कर सकता। त्याग से दूर रहता है। न्यायपूर्वक भोग करना कभी सीख नहीं पाता और लोभ कषायरूपी अग्नि में शनैः शनैः जल-जलकर अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

इसलिये आचार्य कुंदकुंददेव ने श्रावकों को संबोधित करते हुए कहा कि हमेशा सुपात्रों के लिये दान देते रहना। अपने धर्म का पालन करते रहना। जैसे किसी व्यापारी के पास कोई ग्राहक आ जाये तो व्यापारी ग्राहक को देखते ही खुश हो जाता है। भले ही वह आपसे सौदा ले अथवा न ले। लेकिन ग्राहक को देखते ही दुकानदार प्रसन्न हो जाता है। ऐसे ही यदि मुनिराज आदि पात्र दिख जायें तो धर्मात्मा श्रावक की आत्मा में हर्ष का भाव उत्पन्न होता है। भले ही वे मुनिराज आपके द्वार पर आयें अथवा न आयें। यह कोई जरूरी नहीं है कि कोई पात्र आपके द्वार पर पहुँच ही जायेगा। आप पड़गाहन करने के लिये खड़े हैं। अगर आपका पुण्य होगा तो पात्र की प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो धर्मात्मा श्रावक होते हैं वे धर्मात्मा जीवों को देखकर अपने आप को धन्य मानने लगते हैं। आज हमारा महान पुण्य का उदय है जो निर्ग्रंथ गुरु के माध्यम से निर्ग्रंथ जिनेन्द्र की यह पवित्र वाणी हमें सुनने को मिल रही है। यह निर्ग्रंथवाणी, अरिहंत वाणी युगों-युगों तक जयवंत रहे। इसके द्वारा हम अपने हित के मार्ग को प्रशस्त करें। साधु न बन सको तो श्रावक जरूर बनना। अपने कर्तव्यों का पालन करना। दानधर्म का पालन करना। त्यागधर्म जीवन में लाना। न्यायनीति का मार्ग अपनाना। और एक सच्चे धर्मात्मा बन अंतरात्मा बन इस मनुष्य पर्याय को सफल करना। केवल धन कमाना नहीं अपितु अंतस में दान का भाव भी बनाना। दान का भाव रहेगा तो आपका धन कमाना भी सार्थक हो जाएगा।

और दानधर्म का अभाव रहेगा तो आपका धन कमाना भी व्यर्थ हो जायेगा। आज कमाओगे कल गँवाओगे क्योंकि धन हमेशा साथ नहीं रहता।

श्रावक होकर दान नहीं, हृदय धर्म सम्मान नहीं।
न्यायपूर्वक भोग नहीं, त्याग नहीं बहिरात्म वहीं।।
लोभी पतंगा, हो-हो-2, अग्नि दुख पाये रे.....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

निर्दोष तपस्वी कल्पवृक्ष के समान

तपः समर्थेषु तपोधनेषु, त एव कल्पावनिजा इवात्र।
फलन्ति ताभिः सुजनाः सपुण्या-स्सममस्त लोकाः सुखिनश्च तैः स्युः

।।दा.शा.।।

यदि इस लोक में अनशनादि तपों को निर्दोष रूप से आचरण करनेवाले तपोधन हों तो वे ही भव्यों के इष्टार्थ को पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष के समान हैं। उनके द्वारा सज्जनों की सर्व इच्छायें पूर्ण होती हैं। समस्त लोक में पुण्यमय कार्य होते हैं एवं समस्त संसार के प्राणी सुखी होते हैं।

गाथा - 13
(प्रवचन)

●

सम्यग्दर्शन की रक्षा प्रथम कर्तव्य

26.08.2013

भिण्ड

(पूजा-दान करनेवाला सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है)

जिणपूया-मुणिदाणं, करेदि जो देदि सत्तिरूवेण।
सम्मादिट्ठी सावयधम्मी सो होदि मोक्खमग्गरदो।। 13।।

*** अन्वयार्थ ***

(जो) जो **(सत्तिरूवेण)** शक्ति के अनुसार **(जिण-पूया करेदि)** जिनदेव की पूजा करता है **(मुणि-दाणं देदि)** मुनियों को दान देता है **(सो)** वह **(सम्मादिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि **(धम्मी)** धर्मात्मा **(सावय)** श्रावक **(मोक्ख-मग्ग-रदो होदि)** मोक्षमार्ग में रत होता है।

अर्थ-जो श्रावक प्रतिदिन अपनी शक्ति के अनुसार जिनेन्द्रदेव की पूजा करता है, मुनियों को दान देता है, वह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा श्रावक मोक्षमार्ग में रत-मोक्षमार्गी होता है।

सिंह की पर्याय में तीर्थंकर महावीर का जीव हिरण का शिकार करता हुआ।

युगल मुनिराज द्वारा सिंह की पर्याय में तीर्थंकर महावीर के जीव को संबोधन।

23

रयणोदय

जो मुनियों को दान करे, जिनपूजा बहुमान करे।
सम्यग्दृष्टि धर्मातम, श्रावक ऐसा नाम धरे।।
शिवमार्ग में रत, हो-हो-2, श्रावक कहलाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंदस्वामी श्रावक के लिए धर्म का आचरण करना सिखाते हैं और जो अज्ञानी हैं मिथ्यादृष्टि हैं उन्हें सम्यक्त्व की उपादेयता दिखाते हैं। आचार्य भगवन् कहते हैं जो सम्यग्दृष्टि श्रावक है उसे धर्म का आचरण करना चाहिये जिससे वह धर्मात्मा श्रावक, मोक्षमार्गी श्रावक कहला सके।

पूर्व में बताया था कि सम्यग्दृष्टि जीव के आवश्यक कर्तव्य क्या-क्या हैं? और उनमें भी प्रमुख कर्तव्य क्या हैं? अब इस 13 वीं गाथा में आचार्य भगवन् कह रहे हैं— यदि जीव सम्यग्दृष्टि है तो इन कर्तव्यों का पालन करता है। देवशास्त्र गुरु की भक्ति, पूजा, उपासना करता है दान धर्म का पालन करता है तभी वह धर्मात्मा कहलाता है धर्मी श्रावक कहलाता है मोक्ष मार्ग में अनुरक्त कहलाता है '**गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो**' अर्थात् मोक्षमार्ग में स्थित गृहस्थ इस जिनवचन को चरितार्थ करता है।

यदि सम्यग्दृष्टि जीव अपने इन कर्तव्यों का पालन नहीं करता। जिनदेव, जिनवाणी और जिनगुरु के प्रति उपासना का भाव नहीं रखता, पात्रदान नहीं देता तो वह धर्मात्मा जीव नहीं कहला सकता। क्यों? क्योंकि उसका आत्मा अभी धर्मकार्य में लीन नहीं हुआ। उसके आत्मा में अभी सम्यक् आचरण, सम्यक्त्वाचरण का उद्‌भव नहीं हुआ है। कल बताया था कि '**चारित्तं खलु धम्मो**' निश्चय से चारित्र ही धर्म है। और इस धर्म का मूल क्या कहा गया? '**दंसण मूलो धम्मो**' सम्यग्दर्शन को उस धर्म का मूल कहा। जैसे जड़मात्र को वृक्ष नहीं कहते किंतु यदि वृक्ष है तो जड़ तो होगी ही होगी। इसी तरह सम्यक्चारित्र होगा तो सम्यग्दर्शन तो होगा ही होगा।

जैसे गर्मी के महीने में किसी ने अपनी तृषा वेदना, प्यास मिटाने के लिये शिकंजी पीने की इच्छा व्यक्त की। शिकंजी बनाने में आवश्यक साधन जुटाये और शिकंजी बनकर तैयार भी हो गई। अब बताइए उसमें नींबू होगा या नहीं? शक्कर होगी या नहीं? पानी होगा या नहीं? उसमें यह सब होगा, क्योंकि वह शिकंजी है। अब यदि कोई मात्र शक्कर लिये बैठा हो और कहे कि ये शिकंजी है। मात्र नींबू का रस लिये बैठा हो और कहे कि भैया! ये शिकंजी पीजिए। कोई लोटे में पानी भरकर कहे कि मैं शिकंजी पी रहा हूँ तो क्या यह सत्य है? यह केवल शिकंजी का भ्रम मात्र है शिकंजी नहीं है। क्यों? क्योंकि जब तक शिकंजी के सारे घटक मिलकर एक नहीं हो जाते, तब तक उन्हें **शिकंजी** यह संज्ञा प्राप्त नहीं हो सकती।

उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव को जब तक योग्य आचरण प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक वह धर्मात्मा नहीं कहलाता। इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव बताते हैं कि सम्यग्दृष्टि कौन है? केवल सम्यग्दृष्टि नहीं, अपितु सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा श्रावक कौन है? यह जानने के लिये गाथा देखते हैं–

जिणपूया मुणिदाणं, करेदि जो देदि सत्तिरूवेण।
सम्मादिट्ठी सावय धम्मी सो होदि मोक्खमग्गरदो।।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव बता रहे हैं कि जो '**जिणपूया**' नितप्रति जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक, पूजा करता है, बहुमान करता है, सम्मान करता है। आचार्य भगवन् रविषेण स्वामी श्री पद्मपुराण-2 में कहते हैं कि-

यजन्ते भावतः सन्तो यावन्तः श्रावकादयः।। 20।।

अर्थात् जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भावपूर्वक पूजा, भक्ति, उपासना करते हैं अर्थात् जो भी सम्यग्दृष्टि, धर्मात्मा, सज्जनपुरुष होते हैं वे भगवान जिनेन्द्र की पूजा अवश्य करते हैं। '**मुणिदाणं करेदि**' और निर्ग्रंथ मुनिराजों के लिये नितप्रति दान करता है। वह किस प्रकार से? '**सत्तिरूवेण**' अपनी शक्ति के अनुसार मुनिराजों के लिए दान देता है। वह कौन होता है? '**सम्मादिट्ठी सावय धम्मी सो होदि**' सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा श्रावक होता है। '**मोक्खमग्गरदो**' वही श्रावक मोक्षमार्ग में रत, मोक्षमार्ग में स्थित, मोक्षमार्ग में लीन ऐसा कहा गया है।

किंतु जो अपने गुणस्थान के योग्य आचरण से रहित है वह धर्मात्मा ऐसी संज्ञा को प्राप्त नहीं होता है। विचार करना, कोई छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज हैं और अपने गुणस्थान के अनुरूप अपने मूलगुण आदि का बिल्कुल भी आचरण नहीं करते, पालन नहीं करते हैं, लेकिन सम्यग्दृष्टि हैं। अब आप बताइए, क्या आप उन्हें मुनिराज कहेंगे? धर्मात्मा, महात्मा कहेंगे? आप ये कहेंगे कि बताओ महाराज होकर भी अपने मूलगुण आदि का, आवश्यक कर्तव्यों का पालन नहीं करते हैं ये कैसे मुनिराज हैं? अहो आत्मन्! मुनिराजों को तो तुम कह दोगे कि ये कैसे मुनिराज हैं? लेकिन अगर तुम सम्यग्दृष्टि हो और दान-पूजारूप अपना धर्माचरण पालन नहीं करते हो, तो क्या तुम श्रावक हो? जिनवाणी माँ कहती है कुंदकुंददेव कहते हैं कि तू कैसा श्रावक है? जो सम्यग्दृष्टि होकर भी अपने धर्म का पालन नहीं करता।

मुनियों के आचरण पर उँगली उठाना बहुत सरल है लेकिन स्वयं अपने आचरण को निहारना पहचानना बहुत कठिन है। एक चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जीव का आचरण कैसा होता है? आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव इस गाथा में बता रहे हैं कि जो जिनेन्द्र भगवान की

नितप्रति पूजन करता है। जो मुनिराजों के लिये, साधर्मीजनों के लिए दान करता है। भोजन कराता है। कैसे करता है? शक्ति के अनुसार करता है। उसे जिनागम में धर्मात्मा श्रावक कहा गया। सच्चा सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा कहा गया। वही मोक्षमार्गी है।

बंधुओ! प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ के प्रथम पुत्र चक्रवर्ती भरत थे। जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे। क्षायिक सम्यक्त्व के धारी थे। उनके सम्यक्त्व में न तो कोई अतिचार लगने की बात थी। न कोई मल दोष लगने की बात थी। और न ही सम्यक्त्व के छूटने जैसी बात थी। ऐसा क्षायिक सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती भरत अपने आचरण को पहचानता था। वह छह खण्ड का अधिपति सम्राट था। उसके लिये कितनी व्यस्तता होगी? कितने कार्य रहते होंगे उसके लिए? इसके बावजूद भी वह अपने श्रावकधर्म को कभी विस्मृत नहीं करता था। वह नित्य नियम से भगवान जिनेन्द्र की पूजन अभिषेक किया करता था। और नितप्रति अपने हाथ में मांगलिक कलश आदि सामग्री लेकर अपने राजमहल के द्वार पर खड़े होकर द्वारा प्रेक्षण किया करता था। द्वारा प्रेक्षण का तात्पर्य है ऐसी भावना कि कोई दिगंबर मुनिराज, आर्यिका माताजी अथवा ऐलक-क्षुल्लक, व्रती श्रावक अगर मेरा आतिथ्य स्वीकारें तो मेरा अहोभाग्य होगा। हाथों में कलश लिये द्वार पर खड़े-खड़े वह भावना करता था- हे भगवन्! आज मुझे पुण्योदय से किन्हीं निर्ग्रंथ मुनिराज का पड़गाहन करने का सौभाग्य मिल जाये।

वह चक्रवर्ती अपने धर्म को जानता था। आचरण को पहचानता था। वह अंतरंग से भाव रखता था कि दान और पूजा करना मेरा धर्म है और उनका पालन करना मेरा कर्तव्य है। वह भरत धर्मात्मा श्रावक था। नित प्रति मुनिराजों का पड़गाहन करता था। पुण्य का उदय होता था तो मुनिराज आ जाते थे और वह नवधाभक्ति पूर्वक उन्हें आहारदान देता था तत्पश्चात् अपने अन्य कार्यों को सम्पन्न करता था।

एक दिन चक्रवर्ती भरत अपने राजमहल के द्वार पर खड़ा हुआ था। भावना कर रहा था कहीं से कोई उत्तम पात्र आ जायें। कोई सत्पात्र आ जायें। मैं नवधाभक्ति पूर्वक अपने हाथों से मुनिराज को आहारदान दूँ। लेकिन उस दिन कोई भी मुनिराज आदि पात्र चक्रवर्ती भरत को प्राप्त नहीं हुये। वह बहुत देर तक इंतजार करता रहा लेकिन जब उसने देख लिया कि आज तो कोई भी मुनिराज इस मार्ग से विहार करते हुए नहीं आए हैं। वह राजमहल में जाकर उदास

मन से बैठ गया। जब रानियों ने इस तरह उदास मुखमुद्रा में देखा तो आकर पूछा-आर्य! क्या बात है? आज आप इतने उदास क्यों हैं? ऐसा क्या हो गया, नाथ?

चक्रवर्ती भरत ने कहा, आज मेरे हाथों की कोई शोभा नहीं रही। क्योंकि एक सम्यग्दृष्टि श्रावक के हाथों की शोभा तो निर्ग्रंथ मुनिराजों को दान देने से है। आज मुझे कोई भी ऐसा पात्र प्राप्त नहीं हुआ। जो मेरा दान स्वीकार कर मुझे धन्य कर सके। भो महारानी! आज चक्रवर्ती भरत के इन हाथों की कोई शोभा नहीं रही।

वस्तु मिलना सरल है, वस्तु की सँभाल करना बहुत कठिन होता है। घर में अनाज आ गया उस अनाज की सुरक्षा करना बहुत कठिन होता है। एक किसान जिसने बहुत श्रम-परिश्रम करके फसल को तैयार किया है। खेत में फसल खड़ी है। फसल तो आयेगी ही आयेगी। अगर आपने फसल के लिये आवश्यक पानी आदि दिया है तो अपने समय पर वह दाना अंकुरित होकर परिपक्व होगा ही होगा। फसल आयेगी ही आयेगी। लेकिन किसान यह सोचने लगे कि अब तो आराम से खटिया डालो और सोओ क्योंकि फसल तो आ ही गई है। जो काम करना था सो हो ही गया है अब कोई चिंता की बात नहीं है।

ध्यान रखना! फसल का आना तो सरल है लेकिन फसल को उजाड़ने वाले कीट, पक्षी, जानवर आदि बहुत हैं वे फसल को नष्ट कर देंगे। इसलिए जब तक फसल अंकुरित होकर बड़ी होती है तब तक किसान को उतनी चिंता नहीं रहती है, पर जब खेत में फसल लहलहाने लग जाती है फसल तैयार हो जाती है तब किसान की चिंता बढ़ जाती है। क्यों? क्योंकि फसल की सुरक्षा करना उसका बहुत बड़ा दायित्व हो जाता है।

इसीप्रकार **जिस जीव के लिये सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हुई है उसकी रक्षा करना अब उसका प्रथम कर्त्तव्य दायित्व हो जाता है। अगर वह अपने कर्त्तव्यों का पालन न करे। जिनपूजा और मुनिराजों के लिये दान आदि आचरण न करे तो कषाय वृद्धि होने के कारण वह अपने सम्यग्दर्शन को मलिनकर नष्ट कर देता है और पुनः मिथ्यात्व के गर्त में गिर जाता है।** इसलिये आचार्य भगवंतों ने कहा कि सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा धर्माचरण करे जिससे अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण कषाय को जीतने की योग्यता प्राप्त हो जाये। क्योंकि जीव मात्र सम्यग्दृष्टि ही बना रहना नहीं चाहता। कोई जीव यह सोचे, मुझे सम्यग्दर्शन

प्राप्त हो गया। अब मुझे और कुछ नहीं करना। जो करना था सब कर लिया। समझ लेना यह जीव सम्यग्दृष्टि नहीं है अपितु मिथ्यादृष्टि है क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव नियम से मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ने की भावना करता है मुनिराज बनने की भावना करता है। वह क्या सोचता है? मैं कब चारित्र को धारणकर उत्कृष्ट तप साधना करूँ और अंतरात्मा से परमात्मा बनूँ?

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर।।
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठबीस गुण पालन करूँ।
दो बीस परिषह सह सदा, शुभधर्म दस धारन करूँ।।
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित बंध आस्रव परिहरूँ ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ।। दर्शन स्तुति।।

बंधुओ! सम्यग्दृष्टि जीव अपने सम्यग्दर्शन को बनाये रखने का पुरुषार्थ करता है इसलिए वह अपने कर्तव्यों का पालन, अपने योग्य धर्माचरण का पालन, अवश्य ही करता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक का धर्म क्या है? भगवान जिनेन्द्र की पूजा करना, गुरुओं की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान करना। यदि श्रावक अपने इस धर्म का पालन न करे तो वह धर्मात्मा श्रावक नहीं कहला सकता।

चक्रवर्ती भरत, मर्यादा पुरुषोत्तम राम जैसे महापुरुष नितप्रति भगवान जिनेन्द्र की पूजा, अर्चा किया करते थे। अगर मुनिराज मिल जायें, पात्र मिल जायें तो उन्हें आहारदान के लिए अन्तरंग में उल्लास रहता था। धर्माचरण में लीन हुआ ऐसा धर्मात्मा श्रावक अपने कर्मों की निर्जरा करता हुआ कषायों को मंद करता है और अप्रत्याख्यानावरण आदि जो कषायभाव हैं उन कषायों को भी जीतने के पुरुषार्थ में लगा रहता है।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ऐसे श्रावक को धर्मात्मा श्रावक कहते हैं। यदि श्रावक कदाचित् देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान करे लेकिन अपने कर्तव्य आदि न करे, ऐसे श्रावक को आचार्यों ने कथंचित् पाक्षिक श्रावक कहा है जो आचरण का पक्ष मात्र रखता है लेकिन उस रूप स्वयं आचरण नहीं कर पाता, ऐसा पाक्षिक श्रावक कहा गया है। और जो उस

रूप आचरण करता है वह नैष्ठिक श्रावक कहा गया है उसी श्रावक की यहाँ पर आचार्य कुंदकुंददेव चर्चा कर रहे हैं।

बंधुओ! कषायवृद्धि सरल है लेकिन कषाय को जीतना बहुत कठिन होता है। कषाय के निमित्त तो कदम-कदम पर हैं लेकिन कषाय को जीतने का पुरुषार्थ बहुत विरले जीव ही कर पाते हैं। इसलिये हमारी आत्मा निर्लोभी कैसे बने? इसके लिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं, दो काम करो-

1. जिनेन्द्र देव की पूजा करो।

2. पात्रों के लिए दान करो।

ऐसे परिणाम अगर आत्मा में होंगे तो तुम्हारी आत्मा लोभ कषाय को जीतने में समर्थ हो सकती है।

आप देखिएगा, सम्यग्दृष्टि जीव के कैसे परिणाम होते हैं? भरत चक्रवर्ती अपने राजमहल में सिंहासन पर विराजमान था। तभी उसके लिये तीन समाचार प्राप्त हुए। प्रथम समाचार एक दूत लाया कि आयुधशाला में चक्ररत्न प्रगट हुआ। दूसरा दूत सूचना लाया कि सम्राट आपके लिये पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है और तीसरा समाचार मिला कि महामुनि आदिनाथ के लिए केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है। अब देखना धर्मात्मा जीव का स्वभाव, सम्यग्दृष्टि जीव का आचरण। भरत को क्या प्राप्त हुआ? उसे तो दो ही चीजें प्राप्त हुईं, एक तो चक्ररत्न और दूसरा पुत्ररत्न। केवलज्ञान किसे प्राप्त हुआ? भगवान आदिनाथ को। किंतु सम्यग्दृष्टि भरत केवलज्ञान महोत्सव का निश्चय करता है। यदि आप जैसे सम्यग्दृष्टि होते तो क्या करते?

मान लीजिए, आपकी नगरी में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव चल रहा है और उस दिन केवलज्ञान कल्याणक का दिन है। इधर भगवान का केवलज्ञान महोत्सव मनाया जानेवाला है और उधर आपके लिये किसी ग्राहक ने फोन (Phone) किया, 'सेठजी! मैं अभी आपके लिए एक लाख रूपये देने के लिये आ रहा हूँ फिर एक महीने बाद ही आ पाऊँगा।' सही बताना आप कौन सा कल्याणक मनाओगे? केवलज्ञान कल्याणक या केवल धनकल्याणक। आपकी दृष्टि में किसका महत्व है? सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीव होगा तो उसकी दृष्टि में केवलज्ञान का महत्व होगा।

भरत की दृष्टि में किसका महत्व है? भगवान आदिनाथ के लिये केवलज्ञान की प्राप्ति का। और जो स्वयं को चक्ररत्न एवं पुत्ररत्न प्राप्त हुआ है वह कहता है इनकी खुशियाँ मैं बाद में भी मना सकता हूँ। यह धर्मात्मा जीव का स्वभाव है जिसे धर्म और धर्म के फलों में अतिशय श्रद्धा होती है इसलिये वह जानता है कि धर्म कार्य प्रथम करणीय है और शेष द्वितीय।

बंधुओ! सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा श्रावक भरत तुरंत ही भगवान के समवशरण में पहुँचता है और भगवान का पूजन करता है केवलज्ञान का महोत्सव मनाता है यह सम्यग्दृष्टि जीव का लक्षण है। इसलिये यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाये तो उसके अनुकूल आचरण भी करना। श्रावक बनना। **श्रावक का पहला कार्य क्या है? भगवान जिनेन्द्र की पूजन करना। जिन्होंने हमारे ऊपर इतना बड़ा उपकार किया हो। हमें हित का मार्ग दिखाया हो। मोक्षमार्ग दिखाया हो। सात तत्त्वों की देशना जिनसे प्राप्त हुई हो। हित- अहित का जिन्होंने विवेक कराया हो। उन प्रभु के प्रति अगर अपना बहुमान न हो। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तू कृतज्ञ नहीं कृतघ्नी जीव है।**

कृतज्ञ जीव दूसरों के द्वारा किये गये उपकारों को भूलता नहीं है अपितु हृदय से स्वीकार करता है। और कृतघ्नी जीव उपकार को भूल जाता है। जिनेन्द्रदेव का हम सभी पर महान उपकार है। जब तक हमें निर्वाण नहीं हो जाता तब तक हम जिनेन्द्रदेव, जिनवाणी और जिनगुरु का उपकार नहीं भूल सकते। इसलिये तो भावना भाते हैं कि हे भगवन्!-

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः संगतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्म-तत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः।। स.भ.।।

शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ सत्संगति का,
सद्वृत्तों का सुजस कहके दोष ढाँकू सभी का।
बोलूँ प्यारे वचन हित के आपका रूप ध्याऊँ,
तौ लौं सेऊँ वचन जिनके मोक्ष जौ लौं न पाऊँ।।

भक्त क्या कहते हैं भगवान से? हे भगवन्! मुझे भव-भव में सच्चे शास्त्रों का पठन मिले। कोई कहे, तुम्हें शास्त्रज्ञान की क्या आवश्यकता है? तुम तो स्वयं ज्ञानी हो। क्यों? क्योंकि ज्ञानगुण तो जीव का स्वभाव है इसलिये संसार में जितने भी जीव हैं वे सब ज्ञानी हैं। तो शास्त्रों की क्या आवश्यकता? **अहो! ज्ञानस्वभाव तो आत्मा में है लेकिन जब तक हमें भगवान जिनेन्द्र की वाणी से सच्चाज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक हम ज्ञानी नहीं कहलाते। इसलिये जिनवाणी का बहुत बड़ा महत्व है।** जिनवाणी के माध्यम से ही हमारी आत्मा को सच्चाज्ञान होता है सम्यग्ज्ञान होता है। हित और अहित का विवेक होता है।

अन्यथा ज्ञान तो सभी में है। सभी ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा हैं। एक सिंह हिरण के लिए मारकर खा रहा था। वह सिंह भी ज्ञानी भगवान आत्मा है और जिसे खाया जा रहा है वह भी ज्ञानी भगवान आत्मा है। जब दोनों ही ज्ञानी भगवान आत्मा हैं तो दोनों का कार्य अच्छा है या नहीं? एक सिंह हिरण को मारकर खा रहा है उसका वह कार्य ठीक नहीं है भले ही वह ज्ञानी भगवान आत्मा क्यों न हो। ऐसे ज्ञानी भगवान आत्मा से तो भगवान ही बचाये। जो दूसरे जीवों का घात करते हों, दूसरों को कष्ट पहुँचाते हों, हानि-दुख पहुँचाते हों, ऐसे ज्ञानी भगवान आत्मा से तो दूर रहना ही श्रेयस्कर है।

आपके सामने सिंह आ जाये तो क्या आप कहोगे कि अरे भगवान आत्मा आ पधारे हैं। क्या खड़े रह सकोगे उसके सामने? नहीं। क्यों? क्या भगवान आत्मा नहीं है वह? भगवान आत्मा तो सभी हैं। आप क्या कहोगे, अरे! भगवान आत्मा तो हैं लेकिन इस जीव को अभी भगवान आत्मा का ज्ञान नहीं है। इसलिए यदि इसके सामने खड़े रहे तो यह ऐसे आचरण वाला है कि अभी मुझे मारकर खा जायेगा। इसलिये कहते हैं जिसका आचरण ठीक नहीं हो उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है।

वह सिंह जो हिरण को मारकर अपनी क्षुधा मेंटने का कार्य कर रहा है। उसी समय आकाश मार्ग से विहार करते हुए दो युगल मुनिराज उसी ओर से निकले। मुनिराजों ने हिंसा में प्रवृत्त सिंह को देखा और अपने ज्ञान से उसकी भवितव्यता को जानकर उसे संबोधन देने पहुँचे। बोले-भो भावी तीर्थेश! तुम्हारे द्वारा किसी भी जीव को दुख देना, कष्ट पहुँचाना, यह कार्य ठीक नहीं है। तुम भावी तीर्थंकर हो और एक असहाय, दीन, निर्बल मृग को मारकर उसके माँस से अपनी क्षुधा वेदना को मिटा रहे हो। यह कार्य तुम्हारे द्वारा करने योग्य नहीं है।

वह सिंह निर्ग्रंथ मुनिराज के वचनों को सुनकर प्रबोध को प्राप्त हो गया और विचारने लगा, ओ हो! मैं भावी तीर्थंकर हूँ। मेरे द्वारा अहिंसा धर्म प्रवर्तमान होगा। जब उसने अपने दुष्कृत्यों पर दृष्टि डाली तो उसकी आत्मा अपने आप को धिक्कारने लगी। अहो! धिक्कार हो मुझे। लानत हो मेरे लिए, जो मैं दूसरे जीवों को मार-मारकर आज तक अपना पेट भरता रहा, पाप करता रहा। नहीं, नहीं, यह कृत्य मेरे द्वारा करने योग्य नहीं है। अहो! धन्य हैं ये मुनिराज। जिनके द्वारा मुझे भगवान जिनेन्द्र की साक्षात् वाणी सुनने को मिली। वह सिंह भीतर से भगवान जिनेन्द्र, जिनगुरु और माँ जिनवाणी के प्रति श्रद्धा भक्ति से भर गया। उसके लिये स्व और पर का भेदविज्ञान हो गया और वह सिंह जो अभी तक हिंसक व्यवहार में तल्लीन था, अब वही सिंह अहिंसक व्यवहार में स्थिर हो गया।

जिस सिंह की एक दहाड़ से सारा जंगल स्तब्ध हो जाता था। जिसे देखकर सभी जानवर भाग खड़े होते थे, छुप जाते थे, अब उसी सिंह के पास चूहा भी आराम से पहुँच जाता। अब उसके पास जाने में कोई जानवर घबराता नहीं, डरता नहीं। क्यों? क्योंकि वह सिंह अब अभयदानी हो गया। सम्यक् आचरणवाला हो गया। हिंसक से अहिंसक हो गया। अहिंसा धर्म के प्रति नतमस्तक हो गया। इसलिए अब निर्भयता के साथ सिंह के पास सब खुशी-खुशी विचरण करने लगे। उसके धर्मध्यान में धर्मपालन में सहायी बने सहयोगी बने।

घर में पिताजी हों और क्रोध में आकर हाथ में चाकू उठा लें तो एक तो पिताजी, दूसरे भगवान आत्मा, फिर भी उनसे डर लगेगा कि नहीं? यही सोचोगे कि पिता हैं तो क्या हुआ, क्रोध में विवेक नष्ट हो जाता है फिर इंसान अपने-पराये सबको भूल जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि **जीवन में श्रेष्ठता श्रेष्ठ आचरण से ही आती है**। महानता आती है तो आचरण से ही आती है। इसलिए आचार्य भगवान् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि जो श्रेष्ठ आचरण से युक्त होता है अर्थात् जिनेन्द्रदेव की पूजा करता है निर्ग्रंथ मुनिराजों के लिए नितप्रति दान करता है ऐसा सम्यग्दृष्टि ही धर्मात्मा श्रावक कहलाता है। अन्यथा धर्माचरण से हीन कहा जाता है। **जो जीव सम्यग्दृष्टि होता है उसके अंतस में ऐसे भाव रहते है कि मैं कब चारित्र को धारण करके निर्ग्रंथ मुनिराज बन जाऊँ। और जब तक वह ऐसे उत्कृष्ट चारित्र आदि को धारण करने में अपने को असमर्थ पाता है तब तक वह चतुर्थ गुणस्थान के योग्य अपने षट्कर्तव्यों का पालन अवश्य ही करता है।**

उपासक संस्कार में कहा भी है-

देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने।। 7।।

वह इन छह कर्तव्यों का पालन करता हुआ कषायों को जीतता हुआ, मंद करता हुआ अपने पुरुषार्थ को बढ़ाने का प्रयास निरंतर करता रहता है। इसलिये आप सभी श्रावक हो, सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु की सच्ची श्रद्धा करो। सात तत्वों की सच्ची श्रद्धा करो। आत्मा और अनात्मा में भेदविज्ञान करो। सम्यग्दर्शन प्राप्त करो और सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद चारित्रमोहनीय को जीतने के लिये श्रावक का आचरण भी अपनाओ। क्योंकि चारित्र धारण करने में बाधक कौन है? चारित्रमोहनीय कर्म। और जो बाधक होता है उस बाधा को दूर करने का प्रयास किया जाता है। अरे! चारित्रमोहनीय कर्म का उदय चल रहा है अभी हमारा, ऐसा कहकर हाथ पर हाथ रखकर बैठा नहीं जाता अपितु उस चारित्रमोहनीय को जीतने का पुरुषार्थ किया जाता है।

किसी स्थान पर खूब वर्षा हुई। भूमि में जल का स्तर बढ़ गया। अब कोई किसान है जिसे कृषि करने के लिये कुआँ चाहिए वह माथे पर हाथ रखकर बैठा हुआ है। किसी सज्जन पुरुष ने पूछा-भैया! ऐसे क्यों बैठे हो? इतने दुखी क्यों नजर आ रहे हो? वह कहने लगा-भैया! कैसे कृषि करूँ? मेरे पास तो पानी ही नहीं है। सिंचाई की कोई व्यवस्था ही नहीं है। सज्जन पुरुष ने पूछा-भैया! आपके यहाँ पानी क्यों नहीं है? वह बोला-भैया! पानी तो खूब है इस जमीन में लेकिन ये भूमि बाधक बन रही है।

अरे! भूमि बाधक बन रही है तो तू कुछ करता क्यों नहीं? भूमि अपने आप थोड़े ही सरक जायेगी। आज तक जितने भी कुएँ तैयार हुए हैं पुरुषार्थ करने से ही तैयार हुए हैं। भूमि को खोदना पड़ता है मिट्टी को निकालना होता है, तभी कुआँ तैयार होगा। अब तुम पुरुषार्थ तो करो नहीं और बैठे-बैठे पत्थर-मिट्टी को दोष देते रहो कि यह मिट्टी-पत्थर है इसलिए हमारा कुआँ नहीं बन पा रहा है। इस तरह इन्हें दोष देने से कुआँ तैयार हो जायेगा क्या? समस्या सुलझ जायेगी क्या? नहीं। तो फिर क्या करना पड़ेगा? उनको हटाने का पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

पहले के समय में मशीनें तो चलती नहीं थी। व्यक्ति अपने हाथ में कुदाल आदि उपकरण लेकर के खोदते थे। अब ये बताओ, जो कुआँ बनकर तैयार हुआ वह कुदाल से खोदने पर तैयार हुआ है या उस व्यक्ति की अपनी शरीर की शक्ति से अथवा दोनों का उपयोग करने से तैयार हुआ? कुआँ, कुदाल से तैयार हुआ ये एक पक्ष हो सकता है। शक्ति से तैयार हुआ है यह भी एक पक्ष हो सकता है और दोनों से तैयार हुआ है यह भी एक पक्ष हो सकता है। कैसे तैयार हुआ? उस मजदूर में कुएँ को खोदने की शक्ति थी। उस शक्ति का उसने हाथ में कुदाल लेकर उपयोग किया और जो कुआँ बनाने का लक्ष्य बनाया था वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

ऐसे ही आत्मा में शक्ति तो है लेकिन कोई आत्मा की शक्ति मात्र से यह विचार करे कि मैं कषायों को जीत लूँगा और बहिरंग में कषाय निमित्तों का आश्रय करता रहे, कषायें बढ़ाता रहे। तो क्या वह कषायों को जीत सकता है? नहीं। इसलिये बाह्य में कषायों के हीन करनेवाले निमित्तों का भी आश्रय करना होगा और अंतरंग में अपनी उपादान शक्ति का उपयोग करना होगा। जब दोनों का एक साथ संयोग बनेगा तो कुआँ खुदकर के तैयार हो जायेगा अर्थात् चारित्र मोहनीय को जीत लिया जायेगा।

यदि कोई कुदाली मात्र लेकर बैठा रहे। शक्ति का उपयोग न करे तो शक्ति प्रयोग बिना कुदाली आदि बाह्य उपकरण से क्या कुआँ खुदकर तैयार हो पायेगा? इसीप्रकार **आत्मशक्ति का बोध और बाह्य में सम्यक् आचरण का आलबंन इन दोनों में से किसी एक का अभाव होने पर चारित्रमोहनीय को नहीं जीता जा सकता।**

बंधुओ! हमें दोनों का उपयोग करना होगा। हमें अपनी आत्मा का ज्ञान भी करना होगा और इन कषायों को जीतने के लिए जिनेन्द्र पूजा और मुनिदान धर्म का पालन भी करना होगा। और जहाँ सम्यक्त्वपूर्वक धर्माचरण का पालन हो रहा है वहीं चारित्रमोहनीय को जीतने का पुरुषार्थ चल रहा है। यदि कोई ऐसा कहे कि हमारे तो चारित्र मोहनीय का उदय चल रहा है। चलो ठीक है, इसलिए तुम मुनिराज नहीं बन पा रहे हो तो मत बनो लेकिन ये तो बताओ कि भगवान जिनेन्द्र की पूजा करने में, दान करने में भी क्या आपका तीव्र चारित्रमोहनीय कर्म का उदय चल रहा है। अरे महाप्रमादी! कैसे हो तुम? प्रमादी हो। अज्ञानी हो! प्रमाद और अज्ञान के कारण कर्तव्य से विमुख होकर अपने सम्यक्त्व को नष्ट कर रहे हो। क्यों? क्योंकि तीव्र

कषाय के उदय में सम्यक्त्व रह नहीं सकता। क्षायोपशमिक ज्ञान बना रहेगा और वह क्षायोपशमिक ज्ञान तुझे भटकाता रहेगा। तू यह मानता रहेगा कि मैं तो सम्यग्दृष्टि हूँ। मुझे भेदविज्ञान है आत्मा अलग है शरीर अलग है। हमारी आत्मा के अलावा कुछ भी हमारा नहीं है। अरे भाई! यह तो क्षायोपशमिक ज्ञान की बात है। यदि सम्यग्दर्शन होता तो उसके अनुरूप सम्यक्त्वाचरण भी जरूर होता।

इसलिये बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने यहाँ पर हम सभी को यह समीचीन मार्ग दिखाया कि जो श्रावक जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है वह उनके गुणों की पूजन करता हुआ अपने आत्मा में भी उन जैसे गुणों को प्रकट करने की भावना करता है। कषायों को मंद करता हुआ, भावों की विशुद्धता को बढ़ाता हुआ, अपने कर्मों के क्षय करने की भावना से ओतप्रोत होता हुआ, अपने कर्तव्यों में दत्तचित्त हो पालन करता है। सत्पात्रों को दानादि देकर अपने आप को धन्यभाग मानता है और उन जैसे गुणों को अपनी आत्मा में प्रगट करने की उत्कृष्ट भावना भाता हुआ अपना हितमार्ग प्रशस्त करता है। अत: आप सभी अपने हित मार्ग को प्रशस्त करें। अपनी आत्मा में अरिहंत सम गुणों को प्रकट करें। इसी भावना के साथ आप सभी का जीवन मंगलमय बने, ज्योतिर्मय बने।

जो मुनियों को दान करे, जिनपूजा बहुमान करे।
सम्यग्दृष्टि धर्मातम, श्रावक ऐसा नाम धरे।।
शिवमार्ग में रत, हो-हो-2, श्रावक कहलाये रे.......
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

पीछी में सोने-चाँदी की राखियाँ वीतरागता या शिथिलाचार?

• श्रमणाचार्य विमर्शसागर

रक्षाबंधन पर्व सिद्धांत की प्रयोगशाला में आचरण का शंखनाद है। जिनागम में सम्यक्त्वाचरण एवं संयमाचरण के जो सिद्धांत प्रतिपादित हैं, उनके परिप्रेक्ष्य में मुनि विष्णुकुमार और आचार्य अंकपनस्वामी आदि मुनिराज आचरण के प्रस्तोता हैं। सहज शुद्ध ज्ञायक भगवान् आत्मा में गुप्त, शुद्ध चिदानन्द रस का पान करनेवाले परम वीतरागी, इन दिगम्बर संतों ने जिनागम कथित दृढ़ श्रद्धा, तप, त्यागमय आचरण को जगत में प्रसिद्ध किया है।

आगमानुसार चर्या का पालन करनेवाले आचार्य अकंपन स्वामी के संघ पर घोर उपसर्ग होता जानकर मुनिवर विष्णुकुमार ने अपनी श्रेष्ठ साधना के फल से प्राप्त विक्रिया ऋद्धि के द्वारा उपसर्ग निवारण कर जो परस्पर साधु वात्सल्य का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया, वही रक्षाबंधन पर्व के रूप में विख्यात हुआ है। वर्तमान में सम्पूर्ण श्रमणसंघ एवं श्रावकों के लिए अत्यन्त प्रेरणास्पद है।

रक्षाबंधन पर्व कैसे मनायें—

जैन शास्त्रों के अनुसार रक्षाबंधन विशुद्ध धार्मिक पर्व है। इस दिन श्रमण संघ में आचार्य अकंपनस्वामी एवं विष्णुकुमार मुनिराज का गुणानुवाद हो। श्रमणाचार की चर्चा-वार्ता हो एवं सम्पूर्ण संघ समुदाय के प्रति वात्सल्य धर्म का पालन करने का संकल्प मुखरित हो। श्रावक समुदाय इस दिन नित्य पूजा अर्चा के साथ रक्षाबंधन पर्व की पूजा करें। धर्म एवं धर्मायतनों की रक्षा करने का संकल्प दुहरावें। संत, पंथ, जातिवाद की दीवारों में न बँधकर विष्णुकुमार मुनि के आचरण को आदर्श मानकर संतवाद-पंथवाद के भेदभाव को न रखकर जिनमुद्रा एवं जिनायतन की रक्षा का संकल्प करें। तभी कलाई पर बाँधी गई मंदिर की राखी सार्थक हो सकेगी। साथ ही पारिवारिक एवं सामाजिक रीतियों को यथोचित रीति से पालन करें। भाई-बहिन के पवित्र बंधन का रिश्ता ईमानदारी से निभायें।

रक्षाबंधन पर्व और शिथिलाचार—

सकल परिग्रह के त्यागी निर्ग्रंथ वीतरागी मुनि निश्चय-व्यवहार धर्म में स्थित हो शुद्ध चारित्र एवं शुभचारित्र का पालन करते हैं। शाश्वत एवं घटनात्मक पर्व के दिनों में आत्मा को पवित्र करनेवाली क्रियायें ही करते हैं किन्तु गृहस्थोचित अप्रशस्त क्रियायें नहीं करते।

पारिवारिक एवं सामाजिक परम्पराओं का निर्वाह नहीं करते अपितु आगमानुसार अपनी चर्या का निर्वाह पालन कर सुखी होते हैं।

किन्तु वर्तमान में श्रमण संघ गृहस्थोचित, पारिवारिक अप्रशस्त क्रियाओं में लीन होते जा रहे हैं। आगमानुसार चर्या की प्रतिज्ञा करने वाले साधु रक्षाबंधन पर्व के दिन वीतराग धर्म को छोड़कर गृहस्थोचित सरागक्रिया में प्रसन्न हो रहे हैं वह बड़ा आश्चर्य पैदा करता है।

तिल तुष मात्र परिग्रह से रहित, आत्मस्वभाव में रमणता की भावना करनेवाले निर्ग्रंथ श्रमण की संयमोपकरण पिच्छिका में असंयमी गृहस्थ स्त्री-पुरुष लाखों रुपयों की बोली लगाकर सोने-चाँदी की प्रथम राखी बाँधने का धर्म विरुद्ध कार्य करते हैं। इस क्रिया से श्रमण का स्वरूप नष्ट होता है। साधुजन इस बंधन से अप्रशस्त सरागभाव को प्राप्त हो जाते हैं। साथ ही श्रावक भी महान पाप का बंध करते हैं।

भाई-बहन का पवित्र बंधन गृहस्थों में तो देखा जा सकता है किन्तु साधु पद में तो इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। साधुजन स्त्रीवर्ग में बहिन की दृष्टि तो रखते हैं, किन्तु स्वयं भाई के बंधन में अथवा स्त्रीवर्ग को बहिन के बंधन में बाँध नहीं सकते। साधुजन, भैया-बहिन ऐसा वचन व्यवहार करते हुए भी बंधन रहित होते हैं, यही साधना में विवेक है। वास्तव में वीतरागी साधु की पीछी में राखी बाँधना नियोजित एवं स्वीकृत शिथिलाचार है, इसका सम्बन्ध हीन संहनन से भी नहीं है। कदाचित् पंचमकाल में हीन सहनन होने से अपवाद मार्ग जो मूल स्वरूप को नष्ट नहीं करता, माना भी जा सकता है, किन्तु पीछी में राखी बाँधना-बंधवाना श्रमण स्वरूप का नाशक है।

कोई कहे—राखी तो गुरु-शिष्य के भाव से बाँधते हैं, न कि भाई-बहिन के। समाधान यह है कि जिस क्रिया से वीतरागी गुरु की वीतराग धर्म रूप परिणति नष्ट होती हो ऐसी धर्मनाशक क्रिया शिष्य के भाव से कहाँ तक उचित है अनुचित ही है। गुरु-शिष्य के बीच तो श्रद्धा का बंधन होता है दोषात्मक क्रिया नहीं। वास्तव में मुनिव्रत के शुद्ध परिणाम कितने कठिन हैं इसके विषय में कवि ने कहा भी है—

उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना।।
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन, शुद्ध भाव करना।।

अर्थात् उत्तमदेश, सुसंगति, श्रावक कुल में जन्म, सम्यग्दर्शन, देश संयम रूप पंचम गुणस्थान, रत्नत्रय दीक्षा, चतुर्विध आराधना, मुनिव्रत का निर्दोष पालन और व्रत पालन करते हुए शुद्ध भाव की प्राप्ति क्रमशः अत्यन्त दुर्लभ है।

आशा करता हूँ कि चतुर्विध श्रमण संघ ख्याति-पूजा की भावना को छोड़कर निज वीतराग स्वभाव की रक्षा करें और राखीरूपी महापरिग्रह के बढ़ते शिथिलाचार को अपनी चर्या में स्वीकार नहीं करेंगे।

गाथा - 14
(प्रवचन)

●

सम्यग्दृष्टि ही शुद्धमन वाला श्रावक

08.08.2013

भिण्ड

(पूजा व दान का फल)

पूयफलेण तिलोक्के , सुरपुज्जो हवदि सुद्धमणो।
दाणफलेण तिलोए, सारसुहं भुंजदे णियदं।।14।।

*** अन्वयार्थ ***

(**सुद्धमणो**) शुद्ध मनवाला श्रावक (**णियदं**) निश्चय से (**पूयफलेण**) पूजा के फल से (**तिलोक्के**) तीनों लोकों में (**सुरपुज्जो**) देवों से पूज्य (**हवदि**) होता है (**दाणफलेण**) दान के फल से (**तिलोए**) तीन लोक में (**सारसुहं**) सारभूत सुखों को (**भुंजदे**) भोगता है।

अर्थ-शुद्ध मनवाला श्रावक निश्चय से-नियम से पूजा के फल से तीनों लोकों में देवों से पूज्य होता है और दान के फल से तीनों लोकों में सारभूत सुखों को भोगता है।
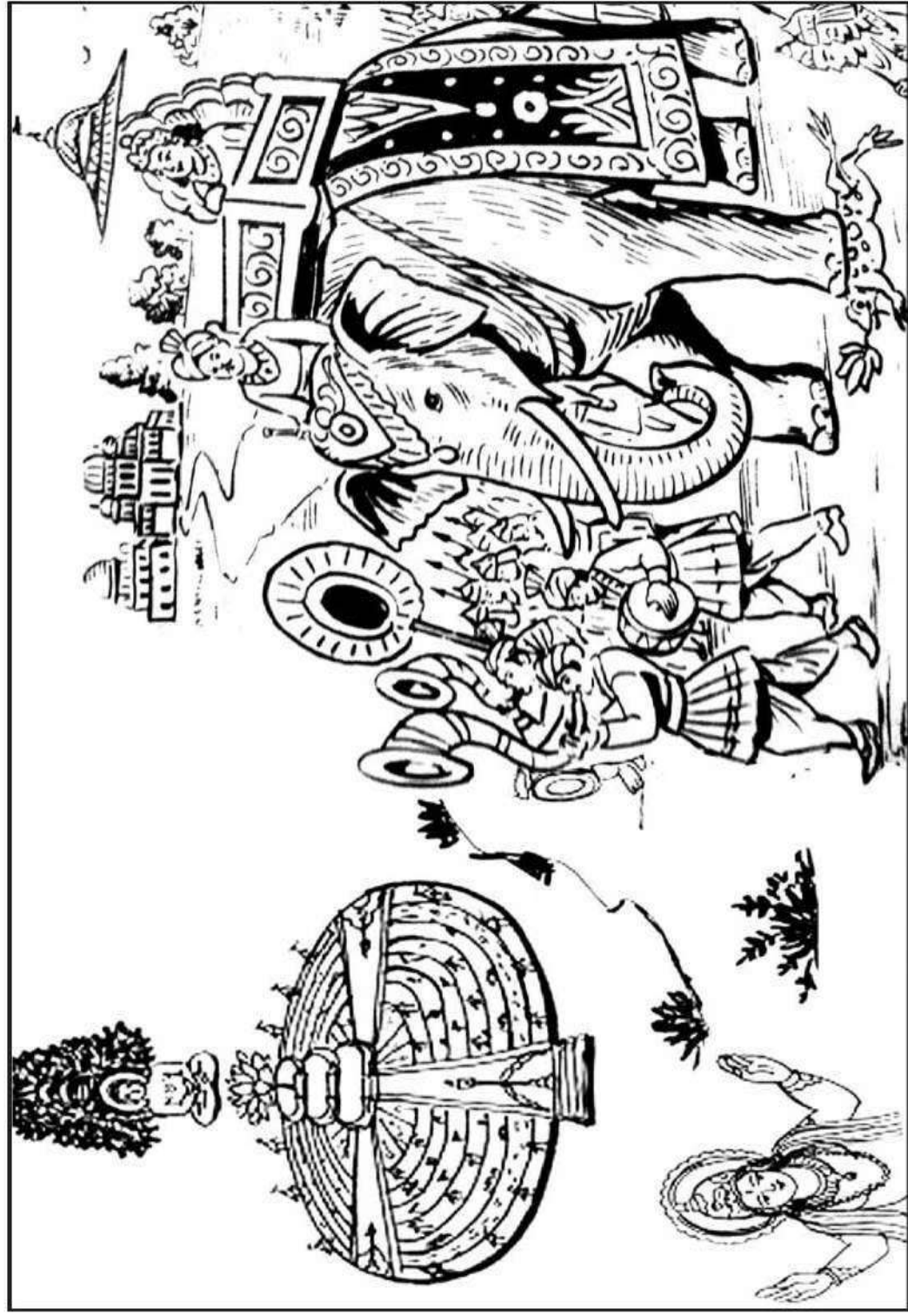
राजा श्रेणिक के हाथी के पैर से दबकर मृत्यु को प्राप्त मेंढक प्रभु पूजा के भाव से देव पर्याय को प्राप्त हुआ।

24

रयणोदय

श्रावक शुद्ध हृदय वाला, जिनपूजा करने वाला।
प्रभु पूजा का फल पाता, सुरगण से पूजा जाता।।
उत्तम दानी ही, हो-हो-2, शिवसुख को पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

कुछ दिनों से हम सभी अपने आत्महित के विषय में विचार कर रहे हैं क्योंकि अनंतकाल व्यतीत हो गया लेकिन कभी अपने आत्महित के विषय में नहीं सोचा। हमारी देह सब प्रकार से सुख प्राप्त करती रहे, इसके उपाय तो बहुत किये। हमारा परिवार सुखी बने, इसका चिंतन और उद्यम भी बहुत किया है लेकिन हमारा आत्मा सुखी कैसे बने? इसका विचार कभी नहीं

किया। यदि ऐसा विचार किया होता, चिंतन किया होता, समझा होता, जाना होता, तो शायद हमने उस सुख प्राप्ति के लिये उपाय भी किया होता, पुरुषार्थ भी किया होता, लेकिन हमारे द्वारा ऐसा कोई चिंतन-मनन नहीं किया गया। हम अपनी देह को सुखी बनाने के विषय में चिंतन करते रहे। हमारे परिवार, मित्र, परिजन, पुरजन ये सुखी रहें, बस यही एक भाव हमारे भीतर बना रहा, इस कारण हम आज भी पर में सुख की तलाश और पर को सुखी बनाने की चाह में इस संसार में भटक रहे हैं।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव महान करुणा और उपकार करते हुए बता रहे हैं कि एक भव्यात्मा के लिए किस प्रकार से अपनी आत्मा को सुखी बनाने का उपाय करना चाहिये। यदि आत्मा को सुखी बनाना है तो उसके लिये सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना आवश्यक है। क्योंकि सम्यग्दर्शन के अभाव में ही हमारे अंदर, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचिंतन, मिथ्यामार्ग बना रहा।

यदि हमें एक बार सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाये तो हमारे विचार भी सम्यक् होंगे, भाव भी सम्यक् बनेंगे और मार्ग भी सम्यक् होगा। इसलिये आचार्य भगवंतों ने हमारे लिये बताया कि भो भव्य आत्मा! तू सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त कर। सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद जो श्रावक अथवा मुनिधर्म है उस धर्म का पालन कर। क्योंकि जो भव्य सम्यग्दर्शन पूर्वक धर्म का पालन करता है उसके लिये फिर निश्चित रूप से संसार में कोई दुख नहीं रहता और जो सम्यग्दर्शन को छोड़कर धर्म का पालन करता है वह भले ही संसार के समस्त सुख-साधन सामग्री एकत्रित कर ले, प्राप्त कर ले, फिर भी उसे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

संसारी जीवों के पास खूब धन-संपदा सुख-साधन हैं लेकिन ये सब बाहरी साधन प्राप्त होने के बावजूद भी किसी को मानसिक शांति नहीं रहती है तो किसी को शारीरिक शांति नहीं रहती है। वह किसी न किसी चिंता से, अशांति से घिरा ही रहता है। संसार में यह जीव जिन भौतिक साधनों के माध्यम से सुखी माना जाता है जो लोग उन समस्त भौतिक संसाधनों से परिपूर्ण हैं कहीं कोई कमी नहीं, इसके बावजूद वे लोग सुख तलाशते क्यों नजर आते हैं? दुखी क्यों रहते हैं? उनके चेहरे की हँसी के पीछे एक सूनापन सा क्यों नजर आता है? सब प्रकार के अनुकूल साधन होने के बाद भी यह जीव दु:खी है इसका तात्पर्य यह है कि इस जीव ने

पुण्यकर्म तो किया है लेकिन सम्यग्दर्शन पूर्वक पुण्यधर्म नहीं किया। इस जीव ने शुभकार्य किये जिनसे पुण्यबंध हुआ किंतु वे शुभकर्म उसने सम्यग्दर्शन सहित नहीं किये इसलिये वह उस पुण्यफल को प्राप्त होकर भी सम्यग्दर्शन का अभाव होने से दुखी का दुखी बना रहा।

बड़े-बड़े धनपतियों को, अमीर लोगों को देखकर जो गरीब होते हैं वे यह विचार करने लगते हैं कि ये धनपति तो बहुत सुखी होंगे क्योंकि इनके पास खूब धन-दौलत पैसा है। वैभव सुखसाधन की सामग्री है इनके पास कोई कष्ट भी आता होगा तो वे तुरंत अपने धन का उपयोग कर उसका निराकरण कर लेते होंगे। लेकिन हम लोगों के पास क्या है कुछ भी नहीं है। हम लोगों के भाग्य में तो केवल दुखमय जीवन जीना ही लिखा है वे ऐसा विचार करते रहते हैं।

अगर देखा जाये तो बड़े-बड़े धनपति जितने ज्यादा परेशान और दुखी होते हैं मुझे नहीं लगता कि उतने ज्यादा गरीब आदमी दुखी होते होंगे। क्योंकि **गरीब आदमी के पास मात्र गरीबी का दुख है जबकि अमीर आदमी के पास अभाव का भी दुख है और सद्भाव का भी दुख है अर्थात् तृष्णा की पूर्ति न हो पाने का दुख और दूसरी ओर जो प्राप्त हो चुका है उसकी रक्षा की चिंता से दुख।** अधिकांश लोग यह सोचते हैं कि अमीरी में सुख होता होगा लेकिन अमीरी में भी बहुत दुख होता है, ऐसा चिंतन कभी गरीबों के मन में नहीं आता है। वास्तविकता तो यह है कि आदमी जितना ज्यादा अमीर है वह उतना ही दुखी होगा। क्योंकि जितने ज्यादा साधन होंगे, उतने साधनों की चिंता उसे घेरे रहेगी और जिसके पास जितने कम साधन होंगे उस आदमी की चिंताएँ भी उतनी कम होंगी।

आप विचार करिएगा, कोई बालक अथवा बालिका जिसकी अभी शादी नहीं हुई। उसके लिये अभी सिर्फ अपनी चिंता रहेगी, अपने भविष्य की चिंता रहेगी, बहुत ज्यादा हुई तो अपने शरीर की चिंता रहेगी। अपने शरीर की ज्यादा से ज्यादा खुशामद करने की कोशिश होगी। उसकी साज-सँवार करना। अच्छे से अच्छे वस्त्र-आभूषण पहनाना। नये-नये वस्त्र चाहिये, अलंकार चाहिये इतनी चिंता रहेगी। इतनी चिंता के बाद उसे अन्य कोई चिंता नहीं होगी। लेकिन जैसे ही उस बालक या बालिका की शादी हुई। शादी होते ही उसकी चिंता बढ़ जाती है। अपनी भी चिंता करो और अपने साथ रहनेवालों की भी चिंता करो। एक ओर पुण्य वृद्धि हुई। सुख-साधन की सामग्री तुम्हारे लिये और ज्यादा वृद्धि को प्राप्त हुई। अब एक से दो हो

गए। अब दोनों के लिए सुखी रहना चाहिए था। लेकिन वास्तविकता यह है कि जितना सुख होता है उससे अधिक नयी-नयी चिंताओं का दुख भी होता है। लेकिन आदमी उस चिंता को भी सुख रूप मानता है। यह मान्यता उसकी अज्ञानता के कारण है।

चिंता ही दुख है। वह जब भी देगी आकुलता ही देगी। आपको अनेक प्रकार के विकल्पों के बीच खड़ा कर देती है। उलझनें देती है। **आदमी परिवार का सृजन सुख के लिये करता है लेकिन वास्तविकता यह है कि वह अपनी चिंताओं को बढ़ाता है।** पहले दो हुए। फिर हम दो हमारे दो हो गए। साथ ही चिंता भी दुगुनी हो गई। अभी तक तो केवल पत्नी की चिंता रहती थी, अब दो बच्चों की भी चिंता रहने लगी। उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, उज्जवल भविष्य की चिंता सताने लगी। इन चिंताओं में पड़ा हुआ फिर सोचता है कि अब तो मुझे और भी कुछ करना पड़ेगा। थोड़े धन की और व्यवस्था बनानी पड़ेगी। अच्छे स्कूल (School) में एडमीशन (Admission) कराना है। फीस (Fees) बहुत बढ़ गयी है। ऊँची शिक्षा दिलानी है तो अच्छे से अच्छे हॉस्टल (Hostel) में भेजना है। उनके रहन-सहन की, आने-जाने की, पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था बनानी है। उनकी बढ़ती इच्छाओं को पूरा करना है। इस तरह निरंतर चिंताओं पर चिंताएँ बढ़ती चली जाती हैं। **जितनी साधन-सामग्री बढ़ती जाती है आदमी के जीवन में उतने ज्यादा दुख, चिंता, विकल्प खड़े होते चले जाते हैं।**

तो आदमी क्या सोचता है जो जितना बड़ा धनपति वह उतना ज्यादा सुखी। किन्तु वास्तविकता असलियत कुछ और ही होती है जो भीतर ही छुपी रहती है। बाहर आ नहीं पाती। इसलिये सांसारिक लोगों को कुछ ऐसा लगता है कि धन और भौतिक साधनों से ही जीवन सुखी बनता है। बंधुओ! पुण्य के उदय में चाहे जितनी अनुकूलताएँ प्राप्त हो जायें। ऐसा लगे कि इनके माध्यम से हर कोई जीव सुखी हो रहा है किंतु यदि सम्यग्दर्शन का साथ नहीं, तो बाहर जीव चाहे जैसा दिखे भीतर दुख ही दुख रहेगा। क्योंकि मिथ्यात्व कभी सुख नहीं दे सकता और सम्यक्त्व के साथ कभी दुख हो नहीं सकता।

इसलिये आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि सम्यग्दर्शन को प्राप्त करो और गृहस्थ में रहते हुए जो श्रावक धर्म है व्यवहार-निश्चय धर्म है उसका पालन करो। क्योंकि यदि साक्षात् मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती तो कम से कम दुख तो न उठाना पड़े। और इसके लिये सम्यग्दर्शन

के साथ व्यवहार धर्म का पालन, श्रावकधर्म का पालन करने के लिये आचार्य भगवन् कुंदकुंदस्वामी प्रेरणा दे रहे हैं। मोक्षमार्गी बनने की शिक्षा दे रहे हैं। श्रावक धर्म में लगा हुआ वह भव्य जीव कैसा होता है? तो आचार्य भगवन् कहते हैं वह मोक्षमार्गी होता है। पुन: जब वह इस पर्याय को छोड़कर अन्य पर्याय में जाता है तो किन-किन फलों को प्राप्त होता है? आचार्य भगवन् चौदहवीं गाथा में बतला रहे हैं कि पूजा करने से दान करने से क्या प्रतिफल मिलता है। क्यों? क्योंकि आदमी कोई भी कार्य करता है तो निश्चित रूप से उसके हृदय में यह विचार चिंतन आता ही है यदि मैं ऐसा करूँगा तो मुझे यह फल मिलेगा। अगर कुछ फायदा होता हो तब तो कुछ करें अन्यथा अपना टाइम (Time) खराब क्यों करें? इसतरह का चिन्तन आप अपने सांसारिक जीवन में करते हैं। ऐसा ही चिंतन परमार्थ के क्षेत्र में करना है। एक श्रावक के मन में विचार आ सकता है कि आखिर पूजा करने से क्या होता है? दान करने से क्या मिलता है? आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव श्री रयणसार जी ग्रंथ की इस गाथा के माध्यम से आपके इन प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं। आइए पहले गाथा देखते हैं-

पूयफलेण तिलोक्के सुरपुज्जो हवदि सुद्धमणो।
दाण फलेण तिलोए सारसुहं भुंजदे णियदं।। 14 ।।

पूयफलेण तिलोक्के सुरपुज्जो हवदि सुद्धमणो अर्थात् शुद्ध मनवाला श्रावक पूजा के फल से तीनों लोकों में देवताओं से पूजित होता है।

अब प्रश्न उठता है कि शुद्ध मनवाला श्रावक कौन हो सकता है? सम्यग्दृष्टि श्रावक ही शुद्ध मनवाला हो सकता है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं वह कितना भी अच्छे मनवाला क्यों न हो फिर भी शुद्ध मनवाला श्रावक नहीं कहला सकता। क्यों? क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव के लिये निज शुद्धात्मतत्त्व का श्रद्धान होता है। देह और आत्मा में भेदविज्ञान होता है। जैसा कि हम पूर्व गाथाओं में देख आये हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव और कैसा होता है? **णियसुद्धप्पणुरत्तो**-वह निज शुद्धात्मा में अनुरक्त होता है। अपने मन को निज आत्मा में लीन करने का प्रयास करता है। उसकी भावना करता है। ऐसे श्रावक का मन शुद्धमन कहा जाता है। हमारे सामने दो ही चीजें शुद्ध हैं एक तो निज शुद्ध आत्मा और दूसरे जिन्होंने अपनी आत्मा को शुद्ध बना लिया है अथवा जो अपने आत्मा

को शुद्ध करने के पुरुषार्थ में सतत लीन हैं, ऐसे पंचपरमेष्ठी। अत: जो पंचपरमेष्ठी और निज शुद्ध आत्मा इनका आश्रय करता है अपने मन को इनमें लगाता है रमाता है उसका मन भी शुद्ध कहा जाता है। इसलिये पूर्व में ही सम्यग्दृष्टि जीव का लक्षण बतलाते हुए आचार्य भगवन् ने बतला दिया था कि वह कैसा होता है? **'पंचगुरुभत्ति जुत्तो'** पंचपरमेष्ठियों की भक्ति से युक्त होता है। प्रथम तो वह इन पंचपरमेष्ठियों के माध्यम से उनके गुणों का चिंतन करता है फिर उन्हीं जैसे गुणों का चिंतन अपने निज शुद्ध आत्मा के सन्मुख होकर करता है ऐसा वह सम्यग्दृष्टि श्रावक **'सुद्धमणो'** शुद्ध मनवाला कहा जाता है।

जो निज शुद्धात्मा का आश्रय नहीं करता, न ही पंचपरमेष्ठी का आश्रय करता है अपितु संसार में गृहवास में रहता हुआ सांसारिक गार्हस्थिक कार्यों को करने में ही दत्तचित्त रहता है जिसे कभी इतना समय नहीं मिल पाता कि वह पंचपरमेष्ठी की भक्ति-आराधना कर सके, अपनी आत्मा का चिंतन करने के लिये जिसके पास बिल्कुल भी समय नहीं है, वह संसार में रहता हुआ कितने भी परोपकार के कार्य क्यों न करता हो तो भी शुद्ध मनवाला श्रावक नहीं है। शुद्ध मनवाला श्रावक तो वही कहा गया है जो पंचपरमेष्ठी और निज शुद्धात्मा के आश्रय से अपने मन को निर्मल करता है। फिर स्वपर उपकार के कार्यों में दत्तचित्त रहता है। ऐसे श्रावक के लिये शुद्ध मनवाला श्रावक कहा गया है ऐसे शुद्ध मनवाले श्रावक के लिये पूजा व दान का फल प्राप्त होता है।

'पूयफलेण तिलोक्के सुरपुज्जो हवदि' अर्थात् पूजा के फल से तीनों लोकों में देवों से पूज्य होता है। जब तक हम संसार में हैं सच बताइए, क्या हम अपमानित जीवन जीना चाहेंगे? निंदित तिरस्कृत जीवन जीना चाहेंगे? क्या हम चाहेंगे कि लोग हमारी निंदा करें, अपमान, अनादर, तिरस्कार करें? ऐसा जीवन कोई चाहेगा क्या? मैं तो यह कहता हूँ कि शायद ही कोई जीवात्मा ऐसा हो जो अपने जीवन में तिरस्कार चाहता हो। सभी यह चाहेंगे कि हम जहाँ भी रहें, हमारे लिए यथायोग्य सम्मान की प्राप्ति होती रहे। हम जिस सम्मान के योग्य हैं कम से कम उतने सम्मान की प्राप्ति तो हमें होती रहे। हर आदमी की ऐसी भावना रहती है। और ऐसी भावना होना गलत भी नहीं है। हर आदमी सम्मान के साथ जीना चाहता है और जीना भी चाहिए।

आचार्य भगवन् कहते हैं पूजा के फल से ऐसा पूज्य जीवन मिलता है कि तीनों लोकों में यह जीव कहीं भी चला जाये हर जगह सम्मान को प्राप्त होता है। पूज्यता को प्राप्त होता है। देवता भी चरणों में नतमस्तक होते हैं। देवता भी नतमस्तक होते हैं इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण लोक के जीव भी उसका आदर, सम्मान करते हैं क्योंकि **देवताओं से पूज्य वही होता है जो देवताओं से भी उत्कृष्ट हो**। सुरों के द्वारा पूजित होना कोई छोटी बात नहीं है। पूजन किसकी की जाती है? पूजन सदैव उनकी की जाती है जो पूज्य होते हैं। पंचपरमेष्ठी सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्तम होने के कारण परमपूज्य होते हैं इसलिये पंचपरमेष्ठियों की पूजा की जाती है। पूजा किसलिए की जाती है? पूज्य बनने के लिये पूजा की जाती है। पंचपरमेष्ठियों की आराधना करने से अपनी आत्मा भी पूज्य बनती है, पवित्र बनती है। किसके माध्यम से? पूजा के माध्यम से।

'तिलोक्के सुरपुज्जो हवदि' तीनों लोकों में पूज्यता को प्राप्त होता है। तीनों लोक के प्राणियों द्वारा पूज्य कौन होता है? तीर्थंकर आदि त्रैलोक्य पूजित होते हैं अर्थात् यह आत्मा कहीं भी चला जाये उसे तिरस्कार अनादर प्राप्त नहीं होगा, हर जगह आदर-सत्कार प्राप्त होगा। क्यों? क्योंकि उसने सच्चे पवित्र हृदय से भगवान जिनेन्द्र की पूजा की है अत: जो शुद्ध हृदय से, पवित्र भावों के साथ त्रिलोकपूज्य भगवान जिनेन्द्र की भक्ति आराधना करता है वह भी एक दिन त्रिलोक पूज्य पद को प्राप्त होता है।

और जिसने अपने जीवन में चार प्रकार के आहार दिये हैं उसे क्या प्राप्त होता है? आचार्य भगवन् कहते हैं **'तिलोए सार सुहं भुंजदे णियदं'** वह **'णियदं'** निश्चित रूप से **'तिलोए'** तीनों लोकों में **'सारसुंह भुंजदे'** सारभूत सुख को भोगता है। जो श्रावक सच्चे भावों से पवित्र हृदय से दान धर्म का पालन करता है वह तीनों लोकों में सारभूत सुखों को प्राप्त करता है भोगता है।

भोगों को प्राप्त करना अलग है और भोगना अलग है। किसी आदमी के पास खूब धन-संपदा, भोग सामग्री है लेकिन डॉक्टर (Doctor) ने कह रखा है कि आपके लिए बिना घी की रोटी और मूंग दाल का पानी ग्रहण करना है। इसलिये वे रूखी रोटी और दाल का पानी पीकर ही संतुष्ट हो रहे हैं। जबकि उनके नौकर मालपुआ और तरह-तरह के व्यंजन खा रहे हैं। विचार करना! तुमने किसके लिये कमाया था अपने लिये या डॉक्टर (Doctor) और नौकरों के लिये?

सारभूत सुखों को भोगनेवाला कौन होता है? ये कैसे प्राप्त होते हैं? जो भव्यजीव चित्त की निर्मल परिणति से संक्लेष भावों से रहित होता हुआ चार प्रकार का दान देता है वह जीव जब तक संसार में रहेगा तब तक सारभूत सुखों को भोगनेवाला होगा। और भगवान जिनेन्द्र की पूजा करने से सब जगह आदर-सम्मान को प्राप्त होगा। अहो! भगवान जिनेन्द्र की मात्र पूजा के भाव से तिर्यंच जैसी निंद्य पर्याय को प्राप्त मेंढक भी महान ऋद्धियों का धारी स्वर्ग का देव हो गया।

हम रास्ते से गुजरते अक्सर देखते हैं कि कोई आदमी भीख माँगकर अपनी आजीविका कमाता है अपना जीवनयापन करता है। कोई व्यक्ति अत्यंत गरीबी का जीवन जी रहा है पहनने को वस्त्र नहीं है एक वक्त के भोजन का भी ठिकाना नहीं है रहने के लिये मकान नहीं है। जीवन जीने के लिये व्यतीत करने के लिए आवश्यक कोई भी साधन उपलब्ध नहीं है। जो ऐसा दुखमय जीवन जी रहे हैं जिन्हें देखकर मन में यह विचार आ ही जाता है कि इन जीवों ने अपने पूर्वभव में कोई भी धर्म का कार्य नहीं किया। अपने धार्मिक कर्तव्यों का जिनपूजा व दानादि धर्म का निर्वाह नहीं किया। जिसकारण यह जीव इसतरह के दुखों को प्राप्त हो रहे हैं।

यदि किसी के लिये समस्त भैतिक सुख, साधन, भोग सामग्री प्राप्त हो गईं तो ऐसे लोग अक्सर सोचने लग जाते हैं कि हमें अब भगवान के दर्शन पूजन से क्या प्रयोजन? दानधर्म का पालन करने की क्या आवश्यकता है? हमारे पास तो सब कुछ है। धन, संपदा, ऐश्वर्य सब कुछ उपलब्ध है अब किसी की पूजा-अर्चा करने की क्या आवश्यकता?

लेकिन बंधुओ! यह तुम्हारे लिए पूर्वकर्म के उदय से प्राप्त हुए हैं। पूर्वभव में तुमने शुभकर्म किए जिसका फल आज प्राप्त हुआ। यदि इस भव में आपने सम्यग्दर्शन सहित श्रेष्ठ कार्य नहीं किए तो कालान्तर में कुछ भी प्राप्त होनेवाला नहीं है। इसलिये जो जीव धर्मात्मा होता है वह विचारवान होता है। चिंतन करता है कि मुझे भगवान जिनेन्द्र की नित्य पूजा, सत्पात्रों के लिए नित्य दान आदि देना चाहिये जिससे कि पुनः देवशास्त्रगुरु की भक्ति हमें प्राप्त हो सके। संसार में जब तक रहें सारभूत सुख की प्राप्ति होती रहे। सुख शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत हो और परंपरा से मुक्ति की भी प्राप्ति हो।

अहो! मनुष्यभव जैसी श्रेष्ठ पर्याय पाने के बाद भी यदि कोई श्रेष्ठ सुखों का भोग नहीं कर सका। सुख-शांति से नहीं जी सका। धर्म का, आत्मा का चिंतन नहीं कर सका। निज आत्मा को, परमात्मा को नहीं पहचान सका। तो ध्यान रखना, जीवन व्यर्थ ही है।

भगवान जिनेन्द्र की पूजा, अर्चा, आराधना करने से दान आदि धर्म का निरंतर पालन करने से, वह भव्यजीव उच्चकुलों में महापुरुषों के रूप में जन्म लेता है। पुण्य पुरुषों में, शलाका पुरुषों में अथवा राजा-महाराजा चक्री-अर्धचक्री आदि के रूप में सम्यग्दृष्टि जीवों का जन्म होता है। वे कभी भी निम्न कुलों में उत्पन्न नहीं होते हैं। कभी भी विकलांग अल्प-आयुष्क नहीं होते हैं। उनके शरीर में कभी रोग आदि उत्पन्न नहीं होते हैं।

जो जीव सम्यग्दर्शन से रहित होते हैं। धर्म-कर्म कर्तव्यों से परे संसार के तुच्छ क्षणिक सुख-भोगों की आकांक्षा से सहित होते हैं। ऐसे जीव तुच्छ योनियों में निरंतर भटकते रहते हैं दुख भोगते रहते हैं। इसलिये यदि आज हमने भी भगवान जिनेन्द्र की भक्ति-आराधना, देव-शास्त्र-गुरु की सच्ची उपासना, अपने कर्तव्यों का सम्यग्दर्शन पूर्वक पालन नहीं किया तो हमें भी एक दिन इसी तरह निम्न कुल-जाति में जन्म लेकर दर-दर भटकना पड़ सकता है। जिनधर्म कहता है जब जागो तभी सबेरा। इसलिये समय रहते चेत जाना अच्छा है।

बंधुओ! आज अपना महान पुण्य का उदय है जो जिनवाणी सुनने को प्राप्त हो रही है। जिसमें सम्यक्त्व आदि का स्वरूप बताया गया है, आत्महित का उपाय बताया गया है। भगवान जिनेन्द्र की पूजा-आराधना का, दानधर्म आदि का माहत्म्य बताया गया है। संसार में रहते हुए अभ्युदय सुखों की प्राप्ति एवं निश्रेयस सुख की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

अब कोई आदमी सोचे कि मैं तो अपने धन से ही सब कुछ प्राप्त कर सकता हूँ इसलिये मुझे तो मात्र धन कमाने से ही प्रयोजन है। तो क्या धन से कभी चक्रवर्ती पद की प्राप्ति हुई है? यह तो हो सकता है कि चक्रवर्ती बनने के बाद छह खण्ड मिल जायें, लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ कि धन से किसी ने चक्रवर्ती पद खरीद लिया हो। कहने का तात्पर्य यह है कि हम सभी के लिये यह मानव जीवन मिला है तो दान और पूजा जो कि श्रावक का मुख्य धर्म है उसके माहात्म्य को जानकर उनका पालन करने के लिये मिला है। कैसे करना चाहिये? शुद्ध मन से करना चाहिये क्योंकि शुद्ध मन से करने पर शुद्ध फल की प्राप्ति होती है अर्थात् संसारावस्था में यह जीव जब तक रहेगा उत्तम सुखों को प्राप्त होता रहेगा और मुनिधर्म का पालनकर एक दिन निश्चित रूप से मोक्षरूपी महाफल को प्राप्त करेगा। अशुभ मन से करेगा

तो नरकादि अशुभ फल मिलेगा अथवा निरतिशय फल मिलेगा, जो शाश्वत सुख की प्राप्ति में साधक नहीं बनेगा। हमें तो दोनों कार्य साधने हैं मोक्ष भी चाहिये और जब तक इस संसार में रहें सुख शांति से रहें।

जो शुद्ध मनवाला श्रावक होता है यद्यपि वह दान और पूजा आदि से ऐसे सारभूत सुख और पूज्यता सम्मान आदि को प्राप्त होता है लेकिन वह कभी यह भावना नहीं करता कि भगवान जिनेन्द्र की पूजा के फल से मैं सभी के द्वारा पूजा जाऊँ। वह कभी इस भाव से दान नहीं देता कि इस दान के फल से मुझे परभव में उत्तम सारभूत सुखों की भोगों की प्राप्ति हो। वह ऐसी आकांक्षा से रहित होता है। सम्यग्दर्शन के निष्कांक्षित अंग का पालन करनेवाला होता है। अपने सम्यक्त्व को मलिन नहीं होने देता। यह निश्चित है कि दान-पूजा आदि श्रावक धर्म के पालन से जीव उत्तमोत्तम सुखों को प्राप्त होता है लेकिन कोई इसमें भी आकांक्षा करने लगे कि भगवन्! मैं इस श्रावक धर्म का पालन कर रहा हूँ तो परभव में मुझे अमुक-अमुक फल की प्राप्ति हो तो ऐसे लोभी जीव को कुछ भी प्राप्त होनेवाला नहीं है। पुण्य के उदय से भोग प्राप्त हो सकते हैं किंतु सारभूत सुख अर्थात् मोक्ष सुख एवं इसकी प्राप्ति में निमित्त साधन नहीं मिल सकते।

इसलिये आचार्य भगवन् कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव तो मात्र निज शुद्धात्मा की प्राप्ति की भावना करता है उसका लक्ष्य तो मात्र निज शुद्धात्मा की प्राप्ति करना है।

ऐसे श्रावकधर्म के फल को जानकर हमें भी चाहिये कि हम यह विचार करें चिंतन करें कि आज तक हम मिथ्यात्व के साथ जीते रहे सम्यक्त्व प्राप्त न किया। और इस पर्याय में भी हम गृहस्थ ही बने रहे मुनिधर्म तो दूर शुद्ध हृदय से अपने श्रावकधर्म का भी पालन न किया। इसलिये हे भगवन्! अब हमें मिथ्यात्व नहीं सम्यक्त्व को प्राप्त करना है। सच्चे देवशास्त्रगुरु का हृदय से सच्चा श्रद्धान करना है। सम्यग्दर्शन का निरतिचार पालन करना है।

शरीर और आत्मा में भेदविज्ञान कर अपने ज्ञानबल को बढ़ाना है। आज तक हम इस देह और देह के संबंधियों को अपना मानते रहे। निज आत्मज्ञान से दूर भागते रहे। किंतु अब हमें पर को अपना मानने रूप इस भूल को नहीं दोहराना। वास्तव में जो हमारा अपना है ऐसा

एकमात्र शुद्ध आत्मा है। अब उसे ही अपना जानना है। अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख स्वरूप अनंत गुणों का भंडार जो आत्मा है ऐसे शुद्ध आत्मा के प्रति चाह, लगन हमारे अंदर जागृत हो और इस शरीर से हटकर हम अपनी आत्मा की ओर जाने का प्रयास करें।

ऐसा भेदविज्ञान, ज्ञानपूर्वक सम्यक् निर्णय के द्वारा हमारी आत्मा में प्रगट होगा। ऐसा भेदविज्ञान ही हमें सम्यक्त्व तक पहुँचायेगा और सम्यक्त्व के माध्यम से हमारा आत्मा अनंतसुखी बन सकेगा। हम सभी के लिये कुछ ऐसा ही चिंतन विचार करना है।

यह श्रावक धर्म आज आपके लिये सुनने को मिल रहा है। उसे आप अपने जीवन में लाने का प्रयास करें। जिससे मरण के बाद आपका आत्मा दुखी न हो। कहीं भी जाने का तो प्रश्न ही खड़ा नहीं होता क्योंकि अगर जीव सम्यग्दृष्टि है और दान-पूजा आदि धर्म-कर्म करनेवाला है तो वह दुर्गति को कभी प्राप्त होता ही नहीं है। उत्तमगति स्वर्ग की प्राप्तिकर पुन: योग्यकाल में मनुष्य पर्याय को प्राप्तकर फिर मोक्ष जाने का प्रयास कर सकता है। यह पुरुषार्थ आप सभी के जीवन में आये। श्रावक धर्म का पालन करते हुए अपने जीवन को सुखी बनायें, समृद्ध बनायें।

श्रावक शुद्ध हृदय वाला, जिनपूजा करने वाला।
प्रभु पूजा का फल पाता, सुरगण से पूजा जाता।।
उत्तम दानी ही, हो-हो-2, शिवसुख को पाये रे......
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

जिनागम बाह्य स्वतंत्र चिंतन की मान्यता वाले जैनाभासी संघ

• श्रमणाचार्य विमर्शसागर

जिनागम वर्णित पंथ से, मार्ग से अर्थात् जिनागम पंथ से बाह्य स्व निर्णीत स्वतंत्र चिंतन की मान्यता करनेवाले एवं श्रमण-श्रावक से करवाने वाले कई जैनाभासी संघ हुए हैं एवं वर्तमान में भी हो रहे हैं। जो वर्तमान में हो रहे हैं उनकी तेरह पंथ - बीसपंथ आदि पंथ परम्परायें संज्ञायें प्रचलित हो रही हैं। अहो! श्रमण और श्रावक भी इन पंथ परम्पराओं के पोषक होने से जिनागम पंथ बाह्य हो रहे हैं।

इन्द्रनन्दि आचार्य ने नीतिसार समुच्चय में कहा है—

गोपुच्छकः श्वेतवासा द्राविडो यापनीयकः।
निष्पिछश्चेति पंचैते जैनभासाः प्रकीर्त्तिताः।।10।।

अर्थात् गोपुच्छक, श्वेताम्बर, द्राविड, यापनीय और निष्पिच्छ ये जैनाभास कहे गये हैं।

स्व स्वमत्यनुसारेण सिद्धांत व्यभिचारिणम्।
विरचय्य जिनन्द्रस्य मार्गं निर्भेदयन्ति ते।।11।।

अर्थात् ये संघ अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विरुद्ध सिद्धान्तों की रचना कर जिनेन्द्रदेव के मार्ग को उनके समान ही बताते हैं।

1. श्वेताम्बर संघ- आचार्य देवसेन ने दर्शनसार में कहा है—

छत्तीसे वरिससए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
सोरट्ठे बलहीए उप्पण्णो सेवडो संघो।।11।।
सिरिभद्दबाहुगणिणो सीसो णामेण संति आइरिओ।
तस्स स सीसो दुट्ठो जिणचंदो मंदचारित्तो।।12।।
तेण कियं मयमेयं इत्थीणं अत्थि तब्भवेमोक्खो।
केवलणाणीण पुणो अद्दक्खाणं तहा रोओ।।13।।
अंवरसहिओ वि जई तिज्झइ।।14।।

अर्थात् विक्रमादित्य की मृत्यु के 136 वर्ष बाद सौराष्ट्र देश के बल्लभीपुर में, श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ। श्री भद्रबाहु गणि के शिष्य शान्ति नाम के आचार्य थे, उनका 'जिनचन्द्र' नामका एक शिथिलाचारी, दुष्ट शिष्य था। उसने यह मत चलाया कि स्त्रियों को उसी भव में मोक्ष प्राप्त हो सकता है, और

शेष पेज नं. 204 पर

गाथा - 15
(प्रवचन)

●

जिनलिंग में पात्र-अपात्र का विचार अकर्त्तव्य

27.08.2013

भिण्ड

(जिनमुद्रा में विचार कैसा ?)

दाणं भोयण-मेत्तं, दिण्णदि धण्णो हवेदि सायारो।
पत्तापत्त-विसेसं, सद्दंसणे किं वियारेण।। 15।।

* अन्वयार्थ *

(**सायारो**) श्रावक (**भोयण-मेत्तं**) भोजनमात्र (**दाणं**) दान (**दिण्णदि**) देता है-तो वह (**धण्णो**) धन्य (**हवेदि**) हो जाता है (**सद्दंसणे**) जिनलिंग को देखकर (**पत्तापत्त-विसेसं**) पात्र-अपात्र विशेष के (**वियारेण**) विचार/विकल्प से (**किं**) क्या लाभ है?

अर्थ-श्रावक भोजनमात्र दान देता है तो वह धन्य हो जाता है। जिनलिंग को देखकर पात्र-अपात्र विशेष का विकल्प या विचार करने से क्या प्रयोजन है? अर्थात् श्रावक का कर्त्तव्य है, जिनमुद्रा मात्र देखकर आहारदान देवे। जिनमुद्रा में पात्र-अपात्र का विचार करने में कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि श्रावक भोजन मात्र दान देने से धन्य हो जाता है क्योंकि उसे जिनमुद्रा का श्रद्धान है।

वर्षाकाल में सप्तर्षि मुनिराजों का आहार चर्या हेतु मथुरा से अयोध्या आगमन।
अकाल में आये मुनिराजों को देख अश्रद्धा से भरा अर्हद्दत्त सेठ
पात्र-अपात्र का विचार न कर श्रद्धापूर्वक आहार देती अर्हद्दत्त सेठ की पुत्रवधु
?
चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों के विषय में अर्हद्दत्त सेठ को बताते द्युति भट्टारक।
चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों में अश्रद्धा रखने से पश्चाताप करता अर्हद्दत्त सेठ।
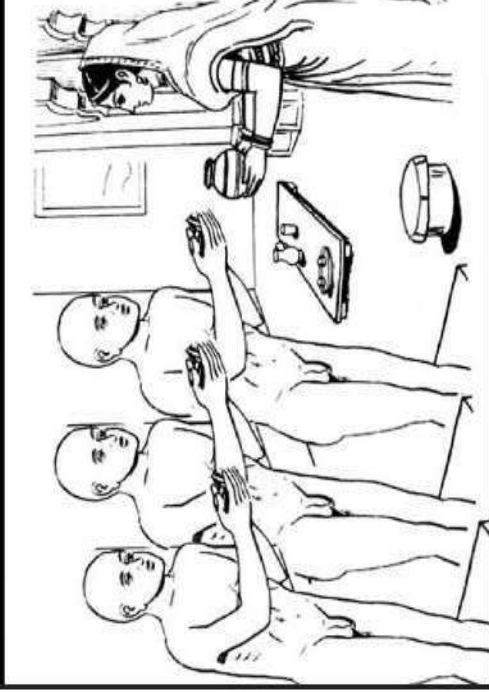
25

रयणोदय

श्रावक भोजन दान करे, जीवन धन्य महान करे।
पात्रापात्र विचार नहीं, जिनलिंग का श्रद्धान करे।।
जिनमुद्रा लखकर, हो-हो-2, श्रद्धा दिखलाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

जीवन में जब श्रद्धा होती है तब व्यर्थ के विकल्प नहीं होते अपितु जो श्रावक श्रद्धावान होता है वह अपने कर्तव्यों को जानकर उनके अनुसार अपने जीवन को बनाता है। जिसके हृदय में श्रद्धा नहीं होती उसके जीवन में कई विकल्प खड़े हो जाते हैं। अनेक प्रकार की बातें मस्तिष्क में पैदा होती हैं और वह मनुष्य अपने जीवन को अश्रद्धा, संदेह, संशय, अज्ञान और

शंकाओं से भर लेता है। इसलिये भगवान महावीर ने धर्ममार्ग पर बढ़नेवाले हर जीवात्मा के लिए 'सम्यग्दर्शन' को प्रथम शर्त के रूप में रखा है अर्थात् उसे सम्यग्दर्शन अवश्य होना चाहिये।

सम्यग्दर्शन का अर्थ है सच्ची श्रद्धा का होना। यदि अंतस में सच्ची श्रद्धा विद्यमान है तो अपने धर्म के प्रति, कर्तव्यों के प्रति, विकल्प उत्पन्न नहीं हो सकते और यदि अनेक प्रकार के विकल्प उठ रहे हैं, कर्तव्यों का निर्वाह नहीं किया जा रहा है, तो समझना कि अभी आत्मा में सम्यग्दर्शन नहीं हुआ है और यदि हुआ भी है तो कहीं न कहीं, कोई न कोई, अज्ञानता जरूर प्रभाव डाल रही है।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि जो सम्यग्दृष्टि जीव होता है वह सच्चे देवशास्त्रगुरु के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह अवश्य करता है। **श्रद्धा को तीसरी आँख कहा गया है। दो आँखों से जो दिखायी देता है वह श्रद्धा की आँख से दिखाई दे यह कोई जरूरी नहीं, लेकिन जो श्रद्धा से दिखाई देता है वह इन दो आँखों से कभी दिखाई नहीं देता।**

श्रद्धा की आँख वह देख लेती है जो चर्म की आँख नहीं देख पाती। व्यक्ति अपनी इन चर्म की आँखों से जो कुछ देखता है वह सत्य हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। अक्सर लोग चर्म की आँखों से कुछ भी देखकर उसे सत्य मान लेते हैं शंका, संदेह में पड़ जाते हैं और अपने जीवन को नरकमय बना लेते हैं संक्लेशों से भर लेते हैं।

जैसे कहीं कोई व्यक्ति खड़ा है और उससे थोड़ी दूर कोई दो व्यक्ति और खड़े हैं। वे दो व्यक्ति आपस में किसी बात पर चर्चा कर रहे हैं और चर्चा करते-करते उनकी दृष्टि उस खड़े हुए व्यक्ति पर पड़ जाती है। वे दोनों उसे देख नहीं रहे, उस ओर तो उनकी सामान्य दृष्टि जा रही है इसी बीच चर्चा करते-करते वे किसी बात पर हँस भी पड़ते हैं। अब जो अकेला व्यक्ति खड़ा है वह उन्हें देख-देखकर मन ही मन सोचने लगता है शंका करने लग जाता है कि ये दोनों व्यक्ति मुझे देखकर हँस रहे हैं। मेरी किसी बात पर ये चर्चा कर रहे हैं। थोड़ी देर तो वह सहन करता है, फिर तो संदेह से इतना भर जाता है कि लड़ने पर भी उतारू हो जाता है। आप लोग मुझे देखकर क्यों हँस रहे हो? आप लोग मेरे विषय में क्या चर्चा कर रहे हो? जबकि उन दोनों व्यक्तियों को उससे कुछ लेना देना नहीं होता।

ध्यान रखना! ऐसी स्थिति घर में परिवार में एवं अन्य क्षेत्रों में अनेक बार बन जाती है। व्यक्ति चर्म की आँख से कुछ भी देखकर नानाप्रकार की शंका और संदेह करने लग जाता है। **श्रद्धावान श्रावक कभी चर्म की आँखों से देखे हुए को सर्वथा सत्य नहीं मानता अपितु चर्म की आँखों से उसने जो देखा है उसकी सत्यता को जानने का प्रयास करता है निर्णय करता है और निर्णय करने के बाद अगर कुछ गलत होता है तो वह उसे उपगूहन और स्थितिकरण के माध्यम से हित के मार्ग में लगाता है। कभी भी निंदा बुराई जैसे विपरीत कार्यों को नहीं करता।**

एक मुनिराज थे। किसी नगर के बाहर उद्यान में विराजमान थे। कहीं से एक आर्यिका संघ मुनिराज के दर्शन हेतु पहुँचा। उस आर्यिका संघ में उन्हीं मुनिराज की एक बहन भी थी, जो आर्यिका व्रत का पालन करके अपनी पर्याय को श्रेष्ठ बना रही थी। और स्त्री पर्याय से मुक्त होने का पुरुषार्थ कर रही थी। क्योंकि स्त्री पर्याय को बहुत निंद्य पर्याय माना गया है। स्त्री पर्याय में बहुत दुख और पीड़ायें रहती हैं। यद्यपि संसारी पर्याय कोई भी हो, सुखी पर्याय नहीं है। यहाँ तक कि निर्ग्रंथ मुनिराज की पर्याय भी क्यों न हो, उन्हें भी अपनी पर्याय में दुख अनुभव में आता है।

जिनागम में लिखा है कि निर्ग्रंथ मुनिराज के लिए इतना सुख होता है जितना इन्द्रों के लिये भी नहीं होता है। इतना सुख वे निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर अपनी आत्मा की अनुभूति करते हुए अनुभव करते हैं। लेकिन ध्यान रखना, निर्ग्रंथ मुनिराज के लिये भी निरंतर दुख का वेदन होता है क्योंकि अगर दुःखानुभूति न हो तो दुख से मुक्त होने का उपाय कोई क्यों करेगा?

जिन्होंने संसार, शरीर और भोगों को दुःखमय जाना है वे उससे छूटने का उपाय निरंतर करते हैं। संसार में रहनेवाली ऐसी कोई भी पर्याय नहीं जिस पर्याय में दुख का वेदन न होता हो। इसलिये प्रत्येक जीवात्मा संसार से मुक्त होने का पुरुषार्थ करना चाहता है।

वह आर्यिका संघ निर्ग्रंथ मुनिराज के दर्शनार्थ पहुँचा। दर्शन के पश्चात् सभी आर्यिकायें अन्यत्र विराजमान हो गयीं और सुदर्शना नामक आर्यिका जो उनकी गृहस्थ अवस्था की बहन थी वह किसी तत्व जिज्ञासा के समाधान करने हेतु उनसे चर्चा करने लगी।

उसी समय एक स्त्री जिसका नाम वेदवती था उसका उसी ओर से निकलना हुआ। उसकी दृष्टि उन मुनि-आर्यिका पर पड़ी। उन्हें इस प्रकार चर्चा करते देख वह नाना प्रकार के संदेह करने लगी। और बिना सोचे-विचारे उन निर्ग्रंथ मुनिराज और आर्यिका माँ के विषय में अपने मुख से अन्यथा बोलना शुरु कर दिया।

धर्म और धर्मात्मा के विषय में बोलो तो श्रद्धा से बोलो अन्यथा कुछ मत बोलो। कम से कम पापबंध तो नहीं होगा। क्योंकि इनके विषय में बिना सोचे समझे कुछ भी बोल देने से अत्यंत खोटे कर्मों का बंध होता है, जिसे तीर्थंकर भी दूर करने में समर्थ नहीं है। ऐसे निधत्ति निकाचित् कर्मों का फल जीव को अवश्य भोगना पड़ता है।

वह वेदवती पूरे नगर में घूमने लगी और हर किसी से मुनिराज और आर्यिका की अनुचित चर्चा कर अवर्णवाद करने लगी।

सभी जीव एक जैसे नहीं होते। जैसे कहा जाता है कि पाँच अँगुलियाँ बराबर नहीं होती।

मुंडे मुंडे मतेर्भिन्नः।। सर्वो.।।

प्रत्येक जीव की मति भिन्न-भिन्न होती है। कुछ श्रद्धावान लोग होते हैं कुछ अश्रद्धावान भी होते हैं। **श्रद्धावान लोग अपने धार्मिक कर्तव्यों का शुद्ध हृदय से पालन करके निरंतर अपनी श्रद्धा को और मजबूत करने के पुरुषार्थ में लगे रहते हैं और अश्रद्धावान लोग बिना विचार विवेक के सतत अश्रद्धा ही बढ़ाते रहते हैं।**

उस नगर में कुछ ऐसे श्रद्धावान लोग भी थे जो पात्रों के प्रति निर्ग्रंथ मुनिराजों के प्रति अटूट श्रद्धा रखते थे। उन्होंने जब वेदवती के मुख से अनुचित बातें सुनी तो वे उसे समझाते हुए कहने लगे—

भो वेदवती! तू यह उल्टा-उल्टा क्या बोल रही है इससे तुझे अत्यंत खोटे कर्मों का बंध होगा।

उसने कहा-खोटे कर्मों का बंध मुझे क्यों होगा? मैंने तो जो देखा है वह मैं बोल रही हूँ।

ध्यान रखना! जिनधर्म यह कहता है कि यदि तूने अपनी आँखों से कुछ गलत भी देख लिया हो, तो भी उसको किसी से मत कहना ये तेरा सत्य है। और अगर कोई ऐसा कहे जो मैंने देखा है मैं तो वही कहूँगा। क्योंकि मैं तो सत्य कहूँगा और सत्य के अलावा कुछ नहीं कहूँगा।

तो जिनागम यह कहता है कि अगर तूने देख भी लिया है तो भी तेरे वचन सत्य नहीं है। देखा हुआ सत्य हो सकता है लेकिन तेरे वचन कैसे हैं? असत्य वचन है। क्यों? क्योंकि तेरे इन वचनों से लोग धर्म के प्रति अश्रद्धावान होंगे। इसलिये धर्मात्मा श्रावक का कर्तव्य है कि ऐसी परिस्थिति में वह अपने सम्यग्दर्शन का परिचय दे। अपने स्थितिकरण उपगूहन अंग का पालन करे।

यदि स्थितिकरण, उपगूहन का पालन नहीं करता विज्ञापन करता है तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि वह धर्म का नाश करनेवाला पापी जीव है। जिसने पाप किया है वह कदाचित् प्रायश्चित की भावना से भर जाये तो अपने आपको पुनः प्रायश्चित तप के द्वारा शुद्ध कर सकता है। फिर वह पापी नहीं रहता। और जिसने पाप तो नहीं किया लेकिन धर्म और धर्मात्मा के विषय में कुछ अनुचित बोला है तो वह जीव पापी है। क्यों ? क्योंकि उसके द्वारा अनेकों जीव अश्रद्धावान बनेंगे दुर्गति के पात्र बनेंगे।

वेदवती के जीव ने कहा, कि जो मैंने देखा सो मैंने कहा। लोगों ने पूछा—अच्छा बता, तूने क्या देखा? वह बोली— मुनिराज और आर्यिका बैठे हुए थे और वार्ता कर रहे थे हँस रहे थे। वे श्रद्धालु श्रावक मुनिराज के पास पहुँचे और भक्ति विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनके चरणों में बैठ गये। बातों ही बातों में उनसे आर्यिका के विषय में पूछने लगे। वेदवती भी वहीं थी। तब मुनिराज बोले-यह आर्यिका गृहस्थ अवस्था की हमारी सगी बहन थी। और तत्वचर्चा सुन-सुनकर प्रमुदित भाव को प्राप्त हो रही थी। अपनी जिज्ञासाओं को शांत कर रही थी। पता लगाया गया तो मुनिराज की कही बात एकदम सत्य निकली।

वेदवती के जीव को बहुत दुख, पश्चाताप हुआ। वह विचारने लगी-ओ हो! मैंने इन आँखों पर विश्वास करके किनके विषय में क्या-क्या चिंतन कर लिया। क्या-क्या सोचा। उनका अपवाद किया। अहो! मैंने कैसे खोटेकर्म का बंध कर लिया?

ध्यान रखना! कर्मबंध तो हँसते-हँसते कर लिया जाता है लेकिन जब उदय में आता है तब अगर तीर्थंकर को भी पुकारो तो वे भी नहीं आते। कर्म का फल तो स्वयं को ही भोगना पड़ता है। इसलिये चर्म की आँखों से देखा हुआ सत्य हो ही, यह कोई जरूरी नहीं है। श्रद्धा रूपी तीसरी आँख से जो देखा जाता है वही सत्य होता है।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि अपनी श्रद्धा को समीचीन, सम्यक् बनाओ। अगर श्रद्धा सम्यक् है समीचीन है सही है तो पात्रों को देखने के बाद, साधु-संतों को देखने के बाद, हृदय में आल्हाद उत्पन्न होगा। किसी का नियम हो कि मैं देवदर्शन के बिना भोजन नहीं करूँगा और किसी कारणवश वह किसी ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ उसे जिनदर्शन हो जायें। जिनालय मिल ही जाये इसका कोई भरोसा नहीं था ऐसे स्थान पर भी कदाचित् उसे जिनालय मिल जाये तो उसे कितना हर्ष होगा? कितना आनंद होगा? रोमांचित होकर वह यही सोचेगा कि अहो! मेरा पुण्य तो देखो कि ऐसे वीरान स्थान पर भी, ऐसे जंगल में भी, जिनेन्द्रदेव का दर्शन हो गया। मैं तो धन्य हो गया।

ऐसे ही पंचमकाल में, कलिकाल में अगर निर्ग्रंथ मुनिराज का दर्शन हो जाये तो समझ लेना कि तुम्हारा कोई महान पुण्य का उदय हुआ है। सुभाषित रत्न संदोह में कहा गया है कि-

'साधूनाम् दर्शनं पुण्यं।। 105।।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव श्री रयणसार जी ग्रंथ की इस पन्द्रहवीं गाथा में कह रहे हैं कि जिनमुद्रा को देखकर आहारदान अवश्य देना चाहिये। सम्यग्दृष्टि जीव को जिनमुद्रा ही पर्याप्त होती है।

दाणं भोयणमेत्तं, दिण्णदि धण्णो हवेदि सायारो।
पत्तापत्त-विसेसं, सद्दंसणे किं वियारेण।। 15।।

'**सायारो**' यदि श्रावक '**दाणं भोयणमेत्तं दिण्णदि**' भोजन मात्र दान देता है तो '**धण्णो हवेदि**' वह धन्य हो जाता है। '**सद्दंसणे**' जिनलिंग को देखकर '**पत्तापत्तविसेसं**' पात्र-अपात्र विशेष के '**वियारेण**' विचार से '**किं**' क्या लाभ है अर्थात् कुछ भी नहीं।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि अगर जिनलिंग दिखायी दे रहा है तो अब पात्र और अपात्र का विचार करने से क्या लाभ है। जिनलिंग को देखनेवाला सम्यग्दृष्टि श्रावक पात्र-अपात्र का विचार नहीं करता और यदि पात्र-अपात्र का विचार करने लग जाये तो वह अपने सम्यग्दर्शन को ही मलिन करता है।

विचार करना! श्रावक का धर्म क्या है? पात्रों को दान करना न कि पात्र में ही पात्र-अपात्र का विचार करना। आप कह सकते हो कि महाराज श्री! सम्यग्दृष्टि बिना पात्र-अपात्र का विचार किए दान देगा तो उसे पाप नहीं लगेगा, दोष नहीं लगेगा? अगर तुम्हें जिनसूत्र, आगम, शास्त्र की श्रद्धा नहीं है तो तुम मिथ्यादृष्टि तो हो ही। और मिथ्यात्व के कारण तुम तो वैसे भी दोषी हो।

जिनलिंग को देखने के बाद श्रावक का धर्म सिर्फ इतना है कि वह मुनिराज को, पात्र को आहार कराये और आहारदान देने के बाद अगर उनकी कोई क्रिया धर्मानुकूल नहीं लग रही है तो एकांत में विनयपूर्वक उनसे निवेदन करे कि 'भगवन्! आपकी यह क्रिया जिनागम के अनुकूल नहीं है ऐसी क्रिया करने से आपको दोष लगता है। आप मुझे क्षमा करिएगा, मैंने छोटे मुँह बड़ी बात की है। लेकिन अन्य लोग न देखें इसलिए मैंने संकेत मात्र किया है। आपकी अविनय करने का हमारा कोई भाव नहीं है।' **विनयवान श्रावक सबसे पहले अपने कर्तव्य को निभाता है आहारदान देता है तत्पश्चात् यदि उनके अंदर कोई शिथिलता मालूम पड़ती है तो वह बहुत विनय से एकांत में बताकर उनका स्थितिकरण करता है।** अपने श्रावक धर्म का पालन करते हुए सम्यग्दर्शन के अंगों का पालन करते हुए अपने सम्यग्दर्शन को मजबूत बनाता है और धर्मी और धर्म की रक्षा करता है।

यदि कोई श्रावक अथवा साधु, किसी मुनिराज को देखते ही यह घोषित करने लग जायें कि ये मुनिराज नहीं हैं, ये पात्र नहीं हैं, साधु नहीं हैं। इन्हें आहारदान दोगे तो सम्यग्दर्शन मलिन होगा, दोष लगेगा। समझ लेना यह घोषणाकर्ता सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है। ओ हो! सम्यग्दृष्टि यदि दूसरों के दोष देखकर मलिनता को प्राप्त होने लग जाये तो इस जगत में किसी को भी देख लो सब दोषी ही दोषी दिखाई देंगे। ध्यान रखना! सम्यग्दर्शन तो तब मलिन होगा जब तू अपने कर्तव्य का पालन नहीं करेगा।

इसलिये सम्यग्दृष्टि श्रावक का कर्तव्य है कि वह जिनलिंग को देखने के बाद पात्र-अपात्र का उस समय विचार न करे, अपितु उस समय तो वह उन्हें आहार प्रदान करे। यह केवल श्रावकों के लिये नहीं है अपितु मुनिराज को भी चाहिये कि आहारचर्या करते समय श्रावकों में पात्र-अपात्र न खोजें।

एक मुनिराज ने सामुद्रिक शास्त्र पढ़ लिया। सामुद्रिक शास्त्र में मुनष्य के अंगों को देखकर उसका स्वभाव कैसा है? इसका निर्णय किया जाता है। उन मुनिराज ने वह शास्त्र पढ़ लिया। अब वे आहार करने गये। आहारचर्या करते समय कोई श्रावक या श्राविका आये तो उन्होंने अपना ज्ञान लगाकर जाना कि अरे इसका स्वभाव तो ऐसा है इसका स्वभाव ऐसा है। अब उन्हें ऐसा लगने लगा कि किसी से आहार न लूँ। क्यों? क्योंकि आहारचर्या में सामुद्रिक शास्त्र लगाने लगे। जब लौटकर आये तो शास्त्र उठाकर रख दिया। और सोच लिया कि अब मुझे नहीं पढ़ना।

ध्यान रखना! निर्ग्रंथ साधु को भी कहा गया कि आहारचर्या के समय अपना विशेष ज्ञान न लगावे। इसी प्रकार श्रावक भी जिनलिंग को देखने के बाद उनमें पात्र-अपात्र का विशेष विचार न करे। आचार्य भगवन् कहते हैं कि ऐसा विचार करने से क्या लाभ? और जब साधु का दर्शन-वंदन अभी हुआ ही नहीं, दूर से ही देखकर, सुनकर अथवा बिना देखे ही यह निर्णय कर लें कि ये साधु तो द्रव्यलिंगी हैं। सुनकर ऐसा निर्णय करनेवाला नियम से मिथ्यात्वी जानना चाहिये। क्यों? क्योंकि आचार्य भगवन् कुंदकुंदस्वामी कह रहे है कि जिनलिंग को देखकर श्रावक पात्र-अपात्र का भेद न करे।

लिंग तीन प्रकार के कहे गये हैं—

1. भावलिंग, 2. द्रव्यलिंग, 3. कुलिंग

एक श्रावक जिनलिंग और कुलिंग का विचार तो करता है किंतु जिनलिंग को देखने के बाद द्रव्यलिंग और भावलिंग का विचार नहीं करता है। क्यों ? क्योंकि, कोई भी श्रावक किसी के भी भावलिंग को पहचान नहीं सकता।

कुलिंग का तात्पर्य है निर्ग्रंथ मुनि मुद्रा के अलावा जितने भी मिथ्या भेष हैं वे सब कुलिंग हैं कुगुरु हैं। हमने पढ़ा है-

'धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपल नाव।'

द्रव्यलिंगी उपलनाव नहीं होता। कुलिंगी को उपलनाव कहा गया है। द्रव्यलिंगी भले ही स्वयं तर पाये अथवा न तर पाये, लेकिन उसके निमित्त से अनेकों जीव मोक्षमार्ग का उपदेश

प्राप्तकर मोक्षमार्गी बनकर अपनी आत्मा का हित कर लेते हैं इसलिये द्रव्यलिंगी मुनिराज को उपलनाव कुलिंगी नहीं कहा अपितु जिनलिंगी कहा है। जिनलिंग में वे द्रव्यलिंगी भी हो सकते हैं भावलिंगी भी हो सकते हैं लेकिन कुलिंगी नहीं होते। कुगुरु नहीं होते। इसलिये एक सम्यग्दृष्टि श्रावक कुलिंगी और जिनलिंगी का भेद तो करता है लेकिन जिनलिंगी में द्रव्यलिंगी और भावलिंगी का भेद नहीं करता है। क्यों? क्योंकि किसी के भावलिंग को पहचानना अपने ज्ञान का विषय नहीं है।

चलिये ठीक है अगर आपको भावलिंग पहचानने की कला आ गई है तो फिर आप एक काम कीजिए, आप अपने इस ज्ञान को अपने परिवार से ही लगाना शुरु कीजिए। क्यों? क्योंकि अगर आप किसी दूसरे के भावों को पहचान सकते हैं तो अपने घर में साथ रहनेवालों के भावों को तो आप पहचान ही लेंगे। जिस स्त्री के साथ पुरुष वर्षों से अपना जीवन व्यतीत कर रहा है जब वह अपनी स्त्री के भावों को नहीं पहचान सकता तो फिर भावलिंगी संतों को पहचानने की बात तो दूर की है।

मैं कहता हूँ कि अपने घर में रहनेवाली स्त्री, बच्चे, बेटा, बेटी, मित्रजन, परिजन आदि पहले इनके भावों को पहचान ले, तो हम समझ जायेंगे कि तुझे भावलिंगी को पहचानने की कला आ गई है। पहचान सकते हो क्या ? अहो! जब तुम अपने घर-परिवार में पत्नी बच्चों के भावों को नहीं पहचान पाते और साधुजन को देखकर खोज में लग जाते हो, पहले निर्णय तो कर लें कि भावलिंगी हैं या द्रव्यलिंगी।

ध्यान रखना, जो सम्यग्दृष्टि श्रावक होता है वह भले ही मुनिराज द्रव्यलिंगी क्यों न हों किंतु जिनलिंग को धारण किए हुए हैं इसलिये वह उन्हें देखकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। उनकी निंदा बुराई नहीं करता है। उनके प्रति अश्रद्धा का भाव नहीं रखता। क्यों? क्योंकि, जिनमुद्रा को धारण किये हुए हैं इसलिये द्रव्यलिंगी तो हैं ही। और रही बात भावलिंगी होने की तो वह हमारे ज्ञान का विषय ही नहीं है। वह जिनागम के कथन की श्रद्धा रखता है कि इस पंचमकाल के अंत तक भावलिंगी संत विद्यमान रहेंगे।

आचार्य कुंदकुंद देव ने मोक्षप्राभृत में कहा है-

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।। 76।।

अर्थात् भरतक्षेत्र में दु:षमनामक पंचमकाल में मुनि के धर्म्यध्यान होता है तथा वह धर्म्यध्यान आत्मस्वभाव में स्थित साधु के होता है ऐसा जो नहीं मानता वह अज्ञानी है।।76।।

किंतु जिनलिंग को देखकर यदि कोई ऐसी बात कहे कि ये पात्र हैं, और ये अपात्र हैं। इन्हें आहारदान नहीं देना चाहिये इनकी सेवा वैयावृत्ति आदि कर्तव्यों का पालन नहीं करना चाहिये। तो ध्यान रखना, वह जीव मिथ्यादृष्टि है दुर्गति का पात्र है। क्योंकि स्वयं तो धर्म विहीन है साथ ही दूसरों को भी धर्म और धर्मात्माओं के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करानेवाला है। धर्म से विमुख कर धर्म की हानि करनेवाला है।

ध्यान रखना, जिनलिंग में कोई भी अपात्र नहीं होता है अगर जिनलिंग धारण किया हुआ है तो जिनलिंगी पात्र, अपात्र जैसा नहीं होता। तीन प्रकार के पात्र कहे गये हैं-

1. पात्र 2. अपात्र 3. कुपात्र

पात्र कौन है? जो जिनलिंगी है चाहे द्रव्यलिंगी हों या भावलिंगी हों वे पात्र कहलाते हैं।

कुपात्र कौन है? जिन्होंने जिनलिंग के अलावा अन्य मिथ्या भेष धारण किये हुये हैं। अन्य नाना प्रकार के भेषों को धारण करके हम भी साधु हैं ऐसी जिनकी अवधारणा है जो कैसी भावना रखते हैं-

'धारैं कुलिंग लहि महत भाव'

और जिन्होंने न तो जिनलिंग धारण किया है और न ही कुपात्र रूप भेषों को ही धारण किया है ऐसे समस्त जीव जो सम्यक्त्व से विहीन हैं वे सब अपात्र कहे जाते हैं।

आचार्य देवसेन ने भावसंग्रह ग्रंथ में कहा भी है—

जस्स ण तवो ण चरणं ण चावि जस्सत्थि वरगुणो कोई।
तं जाणेह अपत्तं अफलं दाणं कयं तस्स।। 531 ।।

अर्थात् जिसके तप नहीं, जिसके चारित्र भी नहीं, और न ही जिसके कोई श्रेष्ठ गुण है उसे अपात्र जानो, उसको दिया गया दान निरर्थक होता है।

उपासकाध्ययन में भी कहा है—

यत्र रत्नत्रयं नास्ति तदपात्रं विदुर्बुधाः।
उप्तं तत्र वृथा सर्वमूषरायां क्षिताविव।। 342-8।।

अर्थात् जिस व्यक्ति में रत्नत्रय नहीं होता उसे विद्वज्जन अपात्र समझते हैं उसके लिए दिया हुआ समस्त दान ऊसर भूमि में बोये हुए बीज के समान निरर्थक है।

अतः जिनलिंग को धारण करनेवाला पात्र होता है। जो कभी भी अपात्र संज्ञा को प्राप्त नहीं होता है फिर भी अगर कोई जिनलिंग को देख करके पात्र-अपात्र का विचार करता है तो उसे समझाते हुए आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि यह विचार करने से क्या लाभ है? क्या प्रयोजन है?

आचार्य भगवन् कहते हैं कि तुम तो अपने श्रावक धर्म का पालन करो। उनकी जो परणति होगी, सो उस परणति का फल वो प्राप्त करेंगे और तुम्हारी जो परणति होगी उस परणति का फल तुम्हें प्राप्त होगा। **अगर एक सच्चे मुनिराज को देखकर तुमने उन्हें अपात्र मान लिया तो विचार करना तुम्हारी क्या परणति गति होगी ?** इसलिये आचार्य भगवन् भव्य जीवों को संबोधित करते हुए कह रहे हैं कि भो श्रावको! मुनियों को, पात्रों को देखकर कभी पात्र-अपात्र का विचार मत करना।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ के काल की एक घटना है चतुर्थकाल चल रहा था। मथुरा नामक नगर के एक उद्यान में सप्तर्षि मुनिराजों ने चातुर्मास किया। चातुर्मास काल में उन सप्तर्षि मुनिराजों में से एक मुनिराज आहारचर्या हेतु अयोध्या नगरी की ओर निकल गये। उस समय अयोध्या में एक अर्हद्दत्त नाम का सेठ रहा करता था। जैसे ही उसने चातुर्मास काल में मुनिराज को आहारचर्या के लिये आते हुए देखा, उसने सोचा— ये सच्चे साधु नहीं हो सकते। चातुर्मास काल में तो साधुजन एक ही स्थान पर रहकर साधना करते हैं इधर-उधर तो विहार करते नहीं हैं। जबकि ये मुनिराज चातुर्मास काल में अन्य स्थान से पधारे हैं ये आगमानुकूल चर्या से रहित हैं। ऐसा जानकर अर्हद्दत्त सेठ ने मुनिराज के पड़गाहन आहारचर्या आदि से अपने आप को दूर कर लिया।

सेठ अर्हद्दत की एक पुत्रवधू थी। उसने जब मुनिराज को आहारचर्या हेतु आते देखा तो अत्यंत रोमाञ्चित हो उठी। अपना अहोभाग्य, सौभाग्य मानने लगी। उस पुत्रवधू ने अन्य

परिजनों के साथ मिलकर उन मुनिराज का पड़गाहन कर लिया। मुनिराज के लिए निर्विघ्न आहारचर्या करायी और आहारोपरांत अत्यंत हर्षित, रोमाञ्चित होकर गुरुचरणों की वंदना उपासना की।

आहारचर्या के उपरांत मुनिराज अर्हद्दत्त सेठ के गृह चैत्यालय में पहुँचे और वहाँ चातुर्मासरत आचार्य परमेष्ठी से कुशल क्षेम पूछी। भगवान जिनेन्द्र की वंदना करने के बाद वे जंघाचारण ऋद्धिधारी मुनिराज थे अत: उन्होंने अपनी जंघा पर हाथ रखा और आकाशमार्ग से मथुरा की ओर विहार कर गये। अर्हद्दत्त सेठ को जब आचार्य परमेष्ठी से यह ज्ञात हुआ, तो बोले, ओ हो! ऋद्धिधारी मुनिराज के प्रति संदेह कर लिया और व्यर्थ ही घोर पापकर्म का बंध कर लिया। आज मैं ऐसे श्रेष्ठ मुनिराज को आहारदान देने से वंचित रह गया।

मुनिराज तो चले गये लेकिन वह अर्हद्दत्त सेठ अंदर ही अंदर पश्चाताप से भर गया। सोचने लगा— काश! मैंने भी ऐसे निर्ग्रंथ मुनिराज को आहारदान दिया होता तो मेरा यह जीवन धन्य हो जाता।

इसलिए आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि जिनलिंग को देख करके पात्र-अपात्र का विचार नहीं करना चाहिये। क्यों? क्योंकि अगर कोई सच्चे भावलिंगी निर्ग्रंथ मुनिराज हों और उनको देखकर भी आत्मा में अन्यथा परिणति उत्पन्न होने लग जाये, अश्रद्धा के भाव बनने लग जायें तो ध्यान रखना, फल कैसा मिलेगा? अगर पुत्रवधू ने मुनि को आहारदान दिया तो फल पुत्रवधू को मिला। मुनिराज तो निर्दोष चर्या वाले थे। किसी के विचार करने से उनमें दोष नहीं आ गया। मुनिराज आहारचर्या करके मथुरा की ओर वापस चले गये। लेकिन अर्हद्दत्त सेठ ने व्यर्थ का कर्मबंध कर लिया।

इसलिये बंधुओ! श्रावक धर्म को पहचानो! सम्यग्दृष्टि होने का तात्पर्य यह नहीं है कि मुनिराजों में तुम भेद करने लग जाओ। सम्यग्दृष्टि होने का अर्थ यह नहीं है कि तुम अपने कर्तव्य से विमुख हो जाओ। सम्यग्दर्शन तो कर्तव्यशीलता लाता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक का अर्थ है कर्तव्यशील श्रावक। जो अपने कर्तव्य को समझे कि मेरा धर्म क्या है?

आपके लिये जिनलिंग के दो भेद बतलाये गये द्रव्यलिंग और भावलिंग। लेकिन कौन द्रव्यलिंग का धारी है और कौन भावलिंगी है यह निर्णय करना अपनी बुद्धि की बात नहीं है।

हाँ, यह हो सकता है कि किन्हीं मुनिराज की चर्या में शिथिलता हो तब तुम अपने कर्तव्य का निर्वाह करो। आहारदान न देने से तुम कर्तव्यवान नहीं हो जाओगे। तुमने न तो कर्तव्य का पालन किया और न ही अपने सम्यग्दर्शन का परिचय दिया अपितु तुम स्वयं अपने कर्तव्य से विमुख हो गये। न तुम्हारे अंदर उपगूहन अंग है न ही स्थितिकरण और न वात्सल्य। जहाँ सम्यग्दर्शन के ये अंग ही नहीं, वहाँ सम्यक्त्व कैसे रह सकता है? अंगविहीन सम्यक्त्व तुम्हारे आत्महित में कारण कैसे बन सकता? जन्म-मृत्यु की परंपरा का छेदन नहीं कर सकता। जैसा कि आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं-

नांगहीन मलं छेत्तुं, दर्शनं जन्म संततिं।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम्।। 21 ।।

अर्थात् अंगहीन सम्यग्दर्शन जन्म-मरण की परंपरा को छेदने में समर्थ नहीं है, जिसप्रकार अक्षरहीन मन्त्र विष की वेदना को नष्ट करने में समर्थ नहीं होता।

किंतु ये मुनिराज द्रव्यलिंगी हैं, ये भावलिंगी हैं ये पहचान करना श्रावक का कर्तव्य है, यदि ऐसा भाव आत्मा में आता है तो समझ लेना कि अभी हमारी श्रद्धा समीचीन नहीं है। जो मुनिराज सम्यक्त्व से सहित हैं किंतु पंचमगुणस्थानवर्ती हैं तो वे भी द्रव्यलिंगी कहे जाते हैं। और यदि कोई अभव्य जीव मुनिराज बन जाये, तो कोई उनके लिये आहारदान देता होगा या नहीं? या यह कह देता होगा कि पहले देख तो लो, ये भावलिंगी हैं अथवा द्रव्यलिंगी हैं। जबकि अभव्य मुनिराज तो पक्के द्रव्यलिंगी हैं और वह भी मिथ्यात्व से सहित द्रव्यलिंग है। यह भी नहीं है कि पंचमगुणस्थानवर्ती होंगे या चतुर्थ गुणस्थानवर्ती होंगे।

बंधुओ! जिनलिंग देखकर पात्र-अपात्र का विचार करना सम्यग्दृष्टिपना नहीं है यह तो अपनी अज्ञानता है कर्तव्य से विमुख होना है अश्रद्धा को बढ़ाना है धर्म को नष्ट करना है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि श्रावक साधु के लिये मात्र भोजन दान करता है इतने में ही वह धन्य हो जाता है और अगर आप उत्तमभावों से सहित होकर दान करें, अहो! ये तो उत्तम पात्र हैं श्रेष्ठ पात्र हैं। भावी सिद्ध भगवंत आज मेरे घर आँगन में पधारे हैं। अहो! इन्हें उत्तमोत्तम दान देकर मेरी यह श्रावक पर्याय ही धन्य हो उठेगी। उत्तम भावपूर्वक दिया गया दान तुम्हारे लिये ही उत्तम उत्कृष्ट फलों की प्राप्ति करायेगा। तुम्हें तो अपने भावों का फल मिलेगा और

पात्र के भाव जैसे होंगे उसके लिये अपने भावों का फल प्राप्त होगा। उत्कृष्ट फल चाहिये तो भावों में भी उत्कृष्टता लानी चाहिये।

सम्यक्त्व के आठ अंगों का कथन करनेवाला एक ग्रंथ है **'धर्मामृत'**। आचार्य भगवन् नयसेन द्वारा प्रणीत इस ग्रंथ में एक कथानक आता है-

एक नगर में एक ब्राह्मण रहता था, जिसका नाम वसुभूति था। जो निर्ग्रंथ मुनिराजों से बहुत द्वेष रखता था उनकी निंदा बुराई करने में ही लगा रहता था। उसी नगर में एक दयामित्र नामक सेठ रहता था। एक दिन उस सेठ के मन में विचार आया कि क्यों न समय का सुदपयोग किया जाये। अपने व्यापार को और समृद्ध किया जाये। उस सेठ ने व्यापारियों के साथ मंत्रणा की और सभी ने विदेश जाकर धन कमाने का निर्णय किया। सम्पूर्ण नगर में खबर फैल गयी कि दयामित्र सेठ विदेश यात्रा पर जा रहा है। उस ब्राह्मण के कानों तक भी यह बात पहुँची। उस ब्राह्मण ने सोचा, क्यों न मैं भी सेठ के साथ विदेश चला जाऊँ? मुझे भी कोई न कोई लाभ अवश्य होगा। वह सेठ के पास पहुँचकर उसके साथ चलने की अनुनय करने लगा।

वह दयामित्र सेठ उस ब्राह्मण को अपने साथ लेकर चल दिया। उसने सोचा कि रास्ता लंबा है आवश्यकता पड़ने पर यह कहीं न कहीं काम आ ही जाएगा और बेचारा गरीब भी है इसका भी भला हो जायेगा।

सफर तय करते-करते जब भी दयामित्र सेठ निर्ग्रंथ गुरुओं की चर्चा, भक्ति, प्रशंसा करता तो यह सुनकर वह ब्राह्मण वसुभूति उसे गलत ठहराने लगता। उनकी निंदा बुराई करने लगता। सेठ दयामित्र उसे बहुत समझाता किंतु वह मूढ़ ब्राह्मण अपनी हठ पर अड़ा रहता। इसी बीच आष्टान्हिक पर्व आ गया। दयामित्र सेठ जिनधर्म का दृढ़ श्रद्धानी था। वह भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमा का अभिषेक पूजन नित्य करता था। वह अपने साथ एक छोटा चैत्यालय लेकर चला था किंतु आष्टान्हिक पर्व में अपने दान धर्म का पालन न कर पाने के कारण वह आकुल व्याकुल होने लगा। दुखी होकर सोचने लगा कि **अहो! मैं धन की चाहत में आज यहाँ बीच जंगल में पड़ा हुआ हूँ। आष्टान्हिक पर्व आ गये हैं। काश! कोई निर्ग्रंथ मुनिराज होते तो मैं उन्हें दान देने के बाद ही स्वयं भोजन ग्रहण करता। अहो! ये मेरे कैसे पापकर्म का उदय है कि आष्टान्हिक पर्व जैसा शाश्वत पर्व है और मुझे सत्पात्र मुनिराज का संयोग नहीं मिला।**

अब सेठ को एक युक्ति सूझी। उसने अपने साथ चलनेवाले उस वसुभूति ब्राह्मण से कहा कि भैया! हमारे आष्टान्हिक शाश्वत पर्व आनेवाले हैं इन पर्वराज में प्रत्येक धर्मात्मा श्रावक अत्यंत भक्तिभाव से, श्रद्धा से सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की आराधना उपासना में लीन रहता है महाअर्चना पूजन महोत्सव रचाता है तथा सत्पात्रों के लिये दान आदि देकर अपनी इस मानव पर्याय को सार्थक मानता है। भो मित्र! यहाँ इस समय हमारे लिये निर्ग्रंथ मुनिराज का सान्निध्य नहीं मिल पा रहा है और उनका सान्निध्य प्राप्त कर सकूँ ऐसा कोई अन्य मार्ग भी नहीं सूझ रहा है। इसलिये यदि तुम इन आठ दिनों के लिये मुनि बन जाओ तो मुझ पर बड़ा अनुग्रह होगा। इसके बदले में मैं तुम्हारे लिये मुँहमाँगा धन दूँगा।

वह ब्राह्मण सोचने लगा कि मुझे जैनमुनि अच्छे नहीं लगते किंतु धन के आगे अच्छा-बुरा क्या देखना। फिर मात्र आठ दिनों की ही तो बात है। और वैसे भी मुझे यहाँ कौन देखने आ रहा है? आठ दिन बाद सेठ से ढेर सारा धन लेकर अपने परिवार के साथ सुखपूर्वक जीवन बिताऊँगा। उधर सेठ दयामित्र विचारता है कि माना यह व्यक्ति मुनियों से द्वेष भाव रखता है उनकी निंदा करता है किंतु जब तक यह उनकी कठिन तप साधना को जानेगा नहीं तब तक उनकी महिमा को पहचानेगा नहीं।

वह ब्राह्मण पहले तो दिखावे के लिए मना करने लगा तब सेठ ने पुनः कहा-भैया! देख लो, सोच लो। इन आठ दिनों के बदले में तुम्हें इतना धन प्राप्त होगा जितना तुम पूरे जीवन में नहीं कमा पाओगे। तुम्हें मात्र आठ दिन के लिये मुनिराज बनना होगा। मेरे आष्टान्हिक पर्व सफल हो जायेंगे। मैं मुनिराज को नितप्रति आहारदान दूँगा जिससे मेरा श्रावक धर्म का पालन हो जायेगा और तुम्हें भी अपना इच्छित फल प्राप्त हो जायेगा।

देखो! सेठजी को सब पता है कि ये जीव सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि। किंतु उनका भाव तो मात्र अपने धर्म का पालन करने का है। वह ब्राह्मण तैयार हो गया। कहने लगा, 'ठीक है मैं आठ दिन के लिये मुनिराज बन जाऊँगा, लेकिन आपको इतना इतना धन देना पड़ेगा।'

सेठजी ने कहा—ठीक है मेरा वचन पत्थर की लकीर है आप विश्वास कीजिये। लेकिन धन आपको आठ दिन के बाद ही मिलेगा, दो दिन बाद ही तुम माँगने लग जाओगे तो नहीं दूँगा

क्योंकि निर्ग्रंथ मुनिराज अपने पास धन नहीं रखते हैं इसलिये आपको पहले धन नहीं दूँगा बाद में दूँगा। लेकिन दूँगा अवश्य यह मेरा वचन है।

वह ब्राह्मण मुनिराज बनने के लिये तैयार हो गया। सेठ जी ने कहा—सुनिये अब आपको दीक्षा लेनी है। केशलौंच की क्रिया और मुनिदीक्षा के संस्कार में सम्पन्न करा दूँगा, तुम तैयार हो जाओ। सेठजी बहुत ज्ञानी विद्वान थे। उन्होंने केशलौंच विधि प्रारंभ करते हुए कहा, तुम चिंता मत करो, थोड़ी तकलीफ होगी लेकिन मात्र एक-दो घंटे की बात है। जैसे ही केशलौंच शुरु हुए, वह तो अपने हाथ-पैर पटकने लगा। मन ही मन सोचने लगा कि हे भगवान्! ये मैं कहाँ फँस गया? इतना कष्ट मुझसे सहन नहीं होता। न जाने ये जैनमुनि इतना कष्ट कैसे सह लेते हैं? उनके मुखमण्डल पर तो एक शिकन तक नहीं आ पाती लेकिन मैं यह तकलीफ अब एक पल भी और नहीं सह सकता। किंतु तुरंत ही लोभ जाग गया। सोचा, मुझे इसके बदले खूब धन मिलेगा। और धन के लालच में पड़कर जैसे-तैसे उसने केशलौंच करवाये। सेठजी ने मुनिदीक्षा के संस्कार सम्पन्न कराये और वह निर्ग्रंथ मुनिराज बन गया। सेठजी ने मुनिराज को नमोस्तु किया।

सेठ जी ने कहा, जिस दिन दीक्षा होती है केशलौंच होता है उस दिन उपवास रखना होता है। इसलिये आज आपको उपवास रखना होगा।

उस ब्राह्मण ने अपने जीवन में कभी उपवास नहीं किया था। अब धन के लिये उपवास भी करना पड़ रहा है वह भी जैनियों का उपवास। अन्य कोई उपवास हो तो उसमें तो अन्य चीजें चल भी जाती हैं। लेकिन जैनियों का उपवास, उसमें तो एक बूँद पानी भी पीने को नहीं मिलता है। चारों प्रकार के आहारों का त्याग रहता है।

सेठजी ने कहा—अब आप मुनिराज हो गये हैं। आपने भावपूर्वक उपवास ग्रहण किया है। अब आप इसका अच्छी तरह से पालन करो। दिन में सारी क्रियायें सम्पन्न हुईं तो दिन तो निकल गया। अब जब रात हुई तो नवोदित मुनिराज जमीन पर लोटने लगे। कहने लगे, सेठ जी! बहुत जोर से प्यास लग रही है।

सेठजी ने कहा, आप इससमय हमसे बहुत श्रेष्ठ हैं अब आप एक निर्ग्रंथ मुनिराज हैं और मैं एक सामान्य सा श्रावक हूँ। धन्य हैं आप, जो ऐसा निर्ग्रंथ दिगम्बर रूप धारण किया है। धन्य है आपकी चर्या। यह महान मुनि मुद्रा। देखो, एक धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि जीव का स्वभाव, उसकी चर्या, उसकी कर्तव्यनिष्ठा। सेठजी कहते हैं—हे मुनीश्वर! आप सुबह होने का इंतजार कीजिए।

मैं सुबह आपके लिये बहुत सुस्वादु आहार कराऊँगा। ऐसा आहार जो आपकी चर्या में साधक बनेगा। अब आप मुनिराज बन गये हो, और दिगम्बर जैनमुनि रात्रि में पानी भोजन आदि कुछ भी नहीं लेते हैं 24 घंटे में मात्र एक बार ही आहारचर्या करते हैं। यदि आपने अभी पानी की चर्चा भी की तो जिस धन की आपको चाह है वह नहीं मिलेगा। ब्राह्मण सोच में पड़ गया। बोला ठीक है, ठीक है।

देखो, क्या वह सेठ नहीं जानता है कि ये मुनिराज द्रव्यलिंगी हैं? अरे, साधु द्रव्यलिंगी हों या भावलिंगी, यह तो उनकी बात है। लेकिन मेरे भाव एक दिगम्बर मुनिराज को आहार देने के हैं और इन पवित्र भावों का फल मुझे अवश्य मिलेगा। सेठ ने रात भर मुनिराज के लिये संबोधन दिया। देखो उल्टी धारा चल रही है श्रावकों को मुनिराज उपदेश देते हैं और यहाँ सेठजी मुनिराज को उपदेश दे रहे हैं।

मुनिराज रातभर बैचेन रहे। सुबह हुई नित्यकर्मों से निवृत्त हो सेठ जी मुनिराज के पास आये और उनसे विनयपूर्वक रत्नत्रय एवं स्वास्थ्य आदि के बारे में पूछा। मुनिराज धीरे से बोले–सेठजी! अभी और कितनी देर लगेगी। सेठजी ने कहा–भगवन्! निर्ग्रंथ मुनिराज सूर्योदय की तीन घड़ी के बाद ही आहार चर्या कर सकते हैं इसलिये अभी थोड़ा और धैर्य रखिएगा। आप तब तक थोड़ा स्वाध्याय कीजिए।

मूलाचार में भोजन योग्य काल को इस प्रकार कहा है—

सूरुदयत्थमणादो णालीतिय नज्जिदे असणकाले।
तिग-दुग-एग-मुहुते जहण्ण-मज्झिम्म-मुक्कस्से।। 492।।

सूर्य के उदय और अस्त काल की तीन-तीन घटिका छोड़कर भोजन के काल में तीन, दो और एक मुहुर्त पर्यन्त जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट है।

उधर सेठजी ने आष्टान्हिक पर्व में पूजा अर्चना करने के पश्चात् भोजनशाला में सुस्वादु भोजन तैयार कराया। सेठ विचार करने लगा कि अहोभाग्य! आष्टान्हिक पर्व सफल करने के लिये मुझे मुनिराज का योग मिल गया है। सेठजी ने मुनिराज के कमण्डलु में जल भर दिया। उन्हें पूरी चर्या समझा दी कि अब आपको ऐसे शुद्धि करनी है ऐसे आहारचर्या को निकलना

है इसतरह आपका पड़गाहन होगा। इस तरह आपको अंजुली बनाकर खड़े होकर आहारचर्या विधि सम्पन्न करनी है।

आहारचर्या की बेला में सेठजी ने मुनिराज की शुद्धि आदि करायी और उनसे निवेदन किया कि हे मुनिवर! अब आप इस तरह से सिंहवृत्ति को धारणकर आहारचर्या के लिए निकलें। सेठजी के कहे अनुसार मुनिराज आहारचर्या के लिए निकले।

सेठजी मन ही मन विचारने लगे, अहो! मैं तो धन्य हो गया। कृतार्थ हो गया। आज इस जंगल में भी मुझे आष्टान्हिका पर्व में निर्ग्रंथ मुनिराज का सुयोग प्राप्त हुआ है। सेठजी हर्ष से अत्यंत रोमांचित हो उठे। क्यों?

'दान देय मन हरष विशेखै'

दान देते समय मन में अत्यंत हर्ष होना चाहिये। ऐसे ही रोमांचित होते हुए सेठजी उन मुनि महाराज को देखते ही भक्ति-भावपूर्वक, प्रमुदित चित्त होते हुए हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उल्लासपूर्वक कहने लगे— हे स्वामिन्! नमोऽस्तु... नमोऽस्तु... नमोऽस्तु।

अब विचार करना, दयामित्र सेठ तो धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि श्रावक है और मुनिराज द्रव्यलिंगी हैं। सेठजी को ज्ञात नहीं है क्या ? उन्हें सब ज्ञात है कि इन्हें धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं। निज आत्मा का श्रद्धान बोध नहीं है लेकिन सेठजी इतना जरूर जानते हैं कि जिनलिंग को देखकर पात्र-अपात्र का विचार नहीं किया जाता है।

सेठ दयामित्र मुनिराज का पड़गाहन करने लगे। हाथों में मांगलिक द्रव्य लेकर पुकारने लगे, हे स्वामिन्! नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु। अत्र... अत्र... अत्र, तिष्ठ.... तिष्ठ... तिष्ठ। सेठजी नवधाभक्ति पूर्वक पड़गाहन विधि कर रहे हैं और आप लोग नमोस्तु-नमोस्तु तो बोलते हो, उससे आगे नहीं बोलते। नमोऽस्तु कहकर नमस्कार करते हो, अत्र-अत्र, तिष्ठ-तिष्ठ, कहकर न अपने पास बुलाते हो, न रुकने की कहते हो तो फिर मुनिराज क्यों आयेंगे तुम्हारे चौके में?

ध्यान रखना, ऐसे पड़गाहन किया जाता है। हे स्वामिन्! नमोऽस्तु....3। फिर अत्र, अत्र, अत्र कहकर अपने पास बुलाया जाता है। अगर वे तुम्हारे पास आने लग जायें तो कहना— तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ अर्थात् ठहरो, ठहरो, ठहरो। और अगर ठहर जायें तो, हे स्वामिन्! मन शुद्धि,

वचन शुद्धि, काय शुद्धि बोलकर तीन परिक्रमायें लगाना। घेरलो फिर तो महाराज को। अब चिंता की क्या बात है।

ध्यान रखना! यह पड़गाहन विधि है। निर्ग्रंथ मुनिराज का भावपूर्वक पड़गाहन करने से अन्तराय कर्म की खूब निर्जरा होती है। बहुत से लोग कहते हैं—महाराजश्री! हमारी दुकान नहीं चलती। व्यापार नहीं चलता। क्या करें? अरे मुनिराज का पड़गाहन कर। उनका निरंतराय आहार करा तेरा अंतराय कर्म भी क्षीण हो जायेगा। **मुनिराज का पड़गाहन करना कोई सामान्य बात नहीं है। सामान्यजनों के भाग्य की बात नहीं है। जिनका श्रेष्ठ पुण्य उदय में आया है ऐसा धर्मी श्रावक मुनिराज आदि सत्पात्रों का पड़गाहन कर पाता है।**

सेठजी ने मुनिराज का पड़गाहन किया। चौके में ले गये। उच्चासन ग्रहण कराया। पाद प्रक्षालन किया। चरणोदक को अपने उत्तमांग पर लगाया। मुनिराज की अष्टद्रव्यों से पूजन की। नमोऽस्तु अर्पण किया। हृदय गद्गद् हो उठा। अहो! धन्य भाग मेरा, यह मेरी पर्याय पवित्र हो गयी। सेठजी ने मुनिराज के लिये थाली दिखाई, थाली में देखो तो व्यंजनों की भरमार। मुनि ने देखा तो सोचने लगे। ओ हो! अभी तक की उम्र में मैंने इतने व्यंजनों के दर्शन तक नहीं किये। आज तो मजे पड़ गये। सेठजी बोले—हे स्वामिन्! मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्धि, मुद्रा छोड़ अंजुलि बाँध आहार ग्रहण कीजिए।

मुनिराज तो तैयार ही थे। जैसे ही सेठजी इतना बोले, मुनिराज ने तुरंत अपनी मुद्रा खोली और फटाफट हाथ-मुँह धोने के बाद अंजुली बनाने लगे। सेठजी बोले—अंजुली बनाने से पहले सिद्धभक्ति पढ़ी जाती है। अब मुनिराज को तो सिद्धभक्ति आती नहीं थी। सेठजी ने उन्हें सिद्धभक्ति सुनायी। सिद्धभक्ति सुनकर वे तुरंत ही आहारचर्या के लिये खड़े हो गये। सेठ जी समझदार थे उन्होंने सर्वप्रथम जल दिया। सोचा, कल का उपवास था महाराज का। इसलिये पहले जल ले लें तो शुष्क आहारनली थोड़ी तरबतर हो जायेगी। लेकिन थोड़ा सा जल लेते ही मुनिराज ने अंजुली बंद कर ली। मुनिराज ने सोचा कि सेठ जी पानी-पानी दे रहे हैं, यदि पानी अधिक ले लूँगा तो ये सारे व्यंजन कब खाऊँगा? मुनिराज ने जल तो लिया नहीं। रसयुक्त गुलाबजामुन और रसगुल्लों से शुरुआत की सेठजी तुम तो चलाते चलो कहीं पीछे मत रख देना। उधर सेठजी का मन यह सोच-सोच पुलकित हो रहा है कि अहोभाग्य! आज इस जंगल में भी पर्व के दिन निर्ग्रंथ मुनिराज को आहार देने का सौभाग्य मिल रहा है, सेठजी ने तरह-

तरह के सुस्वादु व्यंजनों का आहार कराया। मुनिराज ने भी खूब छककर जितना हो सकता था उतना आहार किया।

यद्यपि सेठजी ने उन्हें समझा दिया था कि जैनमुनि विवेकपूर्वक अपनी आहारचर्या करते हैं। वे पेट के चार भाग बनाकर दो भाग अन्न से और एक भाग पेय से भरते हैं और एक भाग खाली रखते हैं। जिससे वायु का संचार ठीक प्रकार से होता रहे।

मूलाचार के पिण्ड शुद्धि अधिकार में कहा है—

अद्धमसणस्स सव्विंजणस्स उदरस्स तदियमुदयेण।
वाऊसंचरणट्ठं चउत्थमवसेसये भिक्खु।।491।।

अर्थात् उदर का आधा भाग व्यंजन अर्थात् भोजन से भरे, तीसरा भाग जल से भरे और वह साधु चौथा भाग वायु के संचरण के लिए खाली रखे।

अब मुनिराज ने सोचा कि वायु का संचार तो जीवनभर से होता चला आ रहा है। उन्होंने डटकर आहार किया और अंत में दो-तीन अंजुली पानी पीकर बैठ गये। आहारचर्या निर्विघ्न सानंद सम्पन्न हुई। सेठजी आनंदित हो उठे। खुशी से झूम उठे। धन्य हो गये हम। मुनिवर के आहारोपरांत सेठजी उन्हें उनके स्थान तक छोड़ने गये।

मुनिराज अति संतुष्ट और आनंदित दिखाई दे रहे थे। सेठजी अपना भोजनपान करके पुनः मुनिराज के पास आये और उनके पैर दबाने लगे। देखो! सेठ जी जिसे अपनी सेवा के निमित्त से साथ लेकर आये थे उसे निर्ग्रंथ मुनिराज बनाकर आज उन्हीं के चरणों की सेवा में लगे हुये हैं। पैर दबाते हुए सेठजी बोले—हे गुरुदेव! आपकी आहारचर्या कुशलता पूर्वक हो गयी? मुनिराज बोले-हाँ, सानंद सम्पन्न हुई। सेठजी खुश हुये और बोले—हे गुरुदेव! मुझे आशीर्वाद दीजिए। मुनिराज ने पूछा—क्या बोलना पड़ता है आशीर्वाद में? सेठजी ने कहा- श्रावक को आशीर्वाद देते समय **'सद्धर्मवृद्धिरस्तु'** तुम्हारे समीचीन धर्म की वृद्धि हो। मुनिराज ने हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुए कहा—**सद्धर्मवृद्धिरस्तु**। सेठ जी ने नमोऽस्तु अर्पित किया और अपने स्थान पर चले गये।

अब मुनिराज ने आहार तो डटकर कर लिया परन्तु पानी नाम मात्र के लिये लिया था। जैसे ही शाम हुई गला सूखने लगा। मुनिराज भूमि पर लोटने लगे। सेठजी ने उनकी यह दशा

देखी तो पूछने लगे, हे मुनिवर! क्या हो गया आपको? वे बोले-सेठ जी! बहुत प्यास लग रही है। सेठजी ने कहा—हे मुनिराज! दिगंबर साधु भोजन के लंपटी नहीं होते। वे रसना इन्द्रिय के आधीन नहीं होते। वे विवेकपूर्वक अपनी आहारचर्या सम्पन्न करते हैं और संयम साधना के पथ पर निरंतर गतिशील रहते हैं। आपने ऐसी उत्तम मुनि पर्याय को प्राप्त किया है। आहारचर्या में जल और भोजन उचित मात्रा में ही लेना चाहिये। अब कल सुबह आहारचर्या होगी। आप इस बात का ध्यान रखना। मुनिराज ने कहा, ठीक है।

दूसरे दिन सेठजी ने मुनिराज की पुनः आहारचर्या करवायी। मुनिराज ने भी इस बार सेठजी की बातें ध्यान में रखते हुए विवेकपूर्वक आहारचर्या सम्पन्न की। आष्टान्हिक पर्व के आठ दिन मुनिराज के द्वारा मुनिचर्या करते-करते पूर्ण हुये और इन आठ दिनों में सेठजी ने उन मुनिराज के लिये श्रेष्ठ धर्मोपदेश दिया। मुनिराज उन उपदेशों को सुनकर थोड़े विशुद्ध परिणामी बने। उन्हें अब यह बात समझ में आने लगी कि मैं व्यर्थ ही दिगम्बर मुनियों से द्वेष रखता था। उनकी निंदाकर मैंने घोर पापकर्म का बंध किया। ये दिगम्बर निग्रंथ मुनिराज इतनी कठोर चर्या का कितनी समतापूर्वक पालन करते हैं।

मुनिराज के लिये थोड़ा सा बुद्धत्व प्रकट होने लगा विवेक जागृत होने लगा। वसुभूति को साधु बने आठ दिन हो गये। और जैसे ही आठ दिन निकले तभी कुछ चोरों ने उस स्थान पर हमला कर दिया। चोरों के द्वारा छोड़े गये बाणों में से एक बाण उन मुनिराज को जा लगा। सेठजी को जब यह ज्ञात हुआ तो वे तुरंत उनके पास पहुँचे। सेठजी के रक्षाबल के वीर युवाओं के द्वारा उन चोरों को तुरंत ही खदेड़ दिया गया। उधर सेठजी उन मरणासन्न मुनि के लिये संबोधन देते हुए कहते हैं कि हे मुनिवर! अब आप सच्चे हृदय से भावपूर्वक इस दिगम्बर पर्याय को, और भेदविज्ञान को स्वीकार कीजिये। एकमात्र अपनी आत्मा को अपना मानकर अविनाशी आत्मा का आश्रय लेकर समतापूर्वक मरण को प्राप्त कीजिये।

जानते हो, उन मुनिराज के परिणाम सँभलने लगे और वे मुनिराज द्रव्यलिंगी से भावलिंगी अवस्था को प्राप्त हो गये। सच्चे मुनिराज बनकर, समाधिमरण करके स्वर्ग में देवपद को प्राप्त हुये। देव पर्याय के बाद स्वर्ग से च्युत होकर राजगृही नगरी के महाराजा श्रेणिक के अभयकुमार नामक अतिशय बुद्धि चातुर्य से युक्त राजपुत्र बने।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि जिनलिंग को मुनिमुद्रा को देखकर आहारदान देने के समय भोजनमात्र के लिये कभी भी पात्र-अपात्र का विचार नहीं करना चाहिये। सम्यग्दृष्टि

धर्मात्मा जीव अपनी परणति सँभालता है। और अज्ञानी सम्यक्त्वहीन जीव दूसरों में दोषों को खोजता रहता है। जिनलिंग को देखकर भी पात्र-अपात्र का विचार करता रहता है।

वे द्रव्यलिंगी से सच्चे भावलिंगी मुनिराज बन गये। इसलिये कब, कौन सा जीव, अपने परिणामों को सँभालकर कहाँ पहुँच जाये कुछ कहा नहीं जा सकता? और कोई सम्यग्दृष्टि जीव अपने परिणामों को बिगाड़कर अपने को कब पुनः मिथ्यात्व के गर्त में डाल दे यह भी नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कोई सम्यग्दृष्टि रहा हो और अंत समय में उसके परिणाम बिगड़ जायें। उसी भावदशा में मरण करके निम्न पर्याय में चला जाये, और कोई ऐसा भी प्राणी हो सकता है जो जीवनभर तो मिथ्यात्वी रहा लेकिन अंत समय में परिणाम सुधर जायें, जैसे वसुभूति ब्राह्मण। वह द्रव्यलिंगी तो था ही भावलिंग को प्राप्तकर श्रेष्ठ समाधि करके उत्तम फल को प्राप्त हो गया।

इसलिए जिनवाणी का श्रद्धान करना। **जिनागम को देखकर जानकर भी जो उसका श्रद्धान नहीं करता वह उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है यह जिनागम कहता है। इसलिये भोजन मात्र देने के लिये आहारदान के लिये पात्रापात्र का विचार नहीं करना चाहिये। हाँ, यदि किसी में कोई शिथिलता महसूस हो तो आप अपने धर्म का परिचय देते हुए कर्तव्य का पालन करते हुए उनको योग्य आचरण में स्थिर करने का प्रयास करें, उपगूहन करें। लेकिन कभी किसी की निंदा बुराई न करें।**

आप सभी का यह सौभाग्य है पुण्य का उदय है जो इस पंचमकाल में भी अरिहंतों की वाणी, निर्ग्रंथों की वाणी, सुनने को मिल रही है। इस काल में विवेक प्रगट करने के लिये जिनवाणी सबसे बड़ा साधन है। इसलिये बंधुओ! जिनवाणी का श्रवण करके अपनी आत्मा में होनेवाले अश्रद्धा के परिणामों को छोड़ना और सच्ची श्रद्धा को अपनी आत्मा में प्रगट करना।

श्रावक भोजन दान करे, जीवन धन्य महान करे।
पात्र अपात्र विचार नहीं, जिनलिंग का श्रद्धान करे।।
जिनमुद्रा लखकर, हो-हो-2, श्रद्धा प्रगटाये रे.....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 16
(प्रवचन)

●

जिनाज्ञा हीन शास्त्रज्ञ भी मिथ्यादृष्टि

28.08.2013

भिण्ड

(सुपात्र दान से परम्परा मुक्ति-प्राप्त)

दिण्णदि सुपत्त-दाणं, विसेसदो होदि भोग-सग्गमही।
णिव्वाण-सुहं कमसो, णिद्दिट्ठं जिणवरिं-देहिं।। 16।।

* अन्वयार्थ *

(जिणवरिं-देहिं) जिनेन्द्र देव ने **(णिद्दिट्ठं)** कहा है कि **(सुपत्त-दाणं दिण्णदि)** सुपात्र में दान को दिया जाता है- तो **(विसेसदो)** विशेष रूप से **(भोग-सग्गमही)** भोगभूमि व स्वर्ग **(होदि)** प्राप्त होता है और **(कमसो)** क्रमशः **(णिव्वाण-सुहं)** निर्वाण-सुख प्राप्त होता है।

अर्थ-जिनेन्द्र देव ने कहा है कि सुपात्र में दान दिया जाता है तो विशेष रूप से भोगभूमि व स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा क्रमशः मोक्ष के सुखों की प्राप्ति करता है।
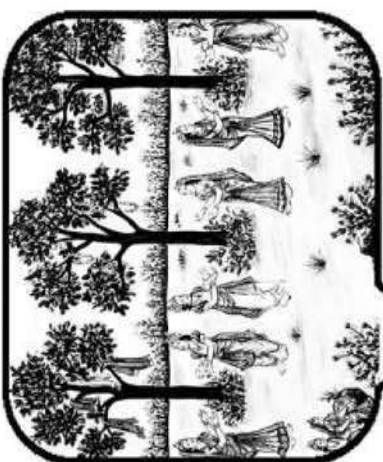
स्वर्ग एवं भोगभूमि की प्राप्ति सुपात्रदान का फल
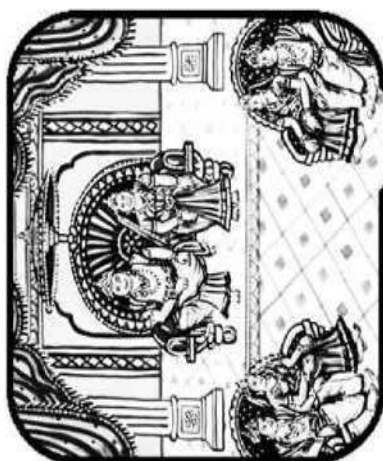
26

रयणोदय

जो सुपात्र को दान करे, अतिशय पुण्य महान करे।
स्वर्ग भोगभूमि पाकर, क्रमशः सुख निर्वाण वरे।।
जिनवर ही ऐसा, हो-हो-2, सद्‌मार्ग दिखाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

मानव जीवन एक यात्रा है इसमें अच्छे कार्य भी किये जा सकते हैं और बुरे कार्य भी। अच्छे कार्य करनेवाला अच्छा इंसान, नेक आदमी कहलाता है और बुरे कार्य करनेवाला इंसानियत से गिर जाता है।

किसी ने पूछा—महाराज श्री! धर्म करने से क्या होता है? क्योंकि जितने भी साधु, महात्माजन होते हैं वे सभी धर्म करने की प्रेरणा देते हैं लेकिन हम आज तक समझ नहीं पाये कि धर्म करने से हमारे जीवन में क्या उपलब्धि होती है? हमें क्या प्राप्त होता है? मैंने कहा- 'तुम धर्म का क्या अर्थ समझते हो?' बोला—महाराज श्री! धर्म यानि आलू का त्याग करो, रात्रिभोजन त्याग करो, गुटखा खाने का त्याग करो, ऐसी सारी चीजों को त्याग दो इसका नाम मैं धर्म समझता हूँ।

मैंने कहा- भैया! धर्म का अर्थ होता है सदाचरण को स्वीकार करना। धर्म का अर्थ है, एक ऐसा प्रभावी व्यक्तित्व निर्मित करना जिससे आपका लोक में सम्मान, प्रतिष्ठा बढ़ सके। आपको अपने जीवन में शांति सुकून प्राप्त हो सके और एक दिन सच्चा सुख प्रगट हो सके।

लोग ये समझते हैं कि शायद सब वस्तुओं का त्याग कर देने का नाम धर्म है। जबकि धर्म का अर्थ होता है श्रेष्ठ को स्वीकार करना और जो अश्रेष्ठ, क्षुद्र, हानिकारक है उसका परित्याग कर देना। यदि आप धर्म को थोड़ा भी जानते समझते हैं तो स्वयं अपनी बुद्धि से यह निर्णय करेंगे कि धर्म का अर्थ है सन्मार्ग पर, श्रेष्ठमार्ग, सही मार्ग पर चलना।

अब बताइए, अगर धर्म आपको यह सिखाता है कि आप सही मार्ग पर चलें, तो धर्म करना क्या गलत है? हाँ, अगर सही मार्ग पर चलना गलत हो तो धर्म करना गलत हो सकता है। और यदि सही मार्ग पर चलना सही है, अच्छा है, सदाचरण को अपनाना अच्छा है तो धर्म करना भी अच्छा है।

मान लीजिए, आपको नैनीताल जाना है और अगर आप नैनीताल के सही मार्ग पर जा रहे हैं तो क्या यह गलत है? नहीं है। अगर आप अपनी मंजिल के सही रास्ते पर जा रहे हैं तो आप भटकेगें नहीं। हैरान, परेशान नहीं होंगे। और आपके निमित्त से आपके परिवारीजन आदि भी हैरान, परेशान नहीं होंगे। क्योंकि जब आप कहीं बाहर जाते हैं तो परिवार के लोग आपसे मोबाइल (Mobile) आदि के माध्यम से सम्पर्क बनाकर रखते हैं। आपसे पूछते हैं अभी आप कहाँ पहुँच गये? आप कब तक वहाँ पहुँचेंगे? और कदाचित् आपने यह कह दिया कि हम रास्ता भूल गये हैं गलत रास्ते पर आ गये हैं। सही राह नहीं मिल रही, भटक गये हैं। अब आप

देख लीजिएगा, आपके परिवारीजन कितनी चिंता में पड़ जायेंगे। इधर आप भी परेशान हो रहे हो उधर आपके घर-परिवार के लोग भी व्याकुल हो जाते हैं।

और यदि आपके परिवारजनों ने पूछा, कि आप कब तक पहुँचने वाले हैं और आपने कह दिया कि बस एक घंटे में पहुँचने वाले हैं हम बिल्कुल सही मार्ग पर चल रहे हैं इतना सुनते ही आपके परिवारीजन भी निश्चिंत हो जायेंगे।

तात्पर्य यह है कि सही मार्ग पर चलना यानि अपने को पूर्णत: प्रसन्न, आनंदित रखना, सुखी रखना। और गलत मार्ग पर चलना यानि अपने आप को संकट में डालना और अपने से जुड़े जितने भी संबंधीजन हैं उन्हें भी संकट, चिंता, परेशानी में डाल देना।

धर्म शिक्षा देता है सदाचरण की, सही मार्ग पर चलने की। धर्म इंसान से भगवान बनने की कला सिखाता है। धर्म आपके व्यक्तित्त्व को उभारता है, और इतना प्रभावी बना देता है कि आप जन-जन के लिए श्रद्धास्पद हो जाते हैं, सम्मानीय हो जाते हैं।

बंधुओ! जीवन में धर्म की बहुत आवश्यकता होती है। मैं कहता हूँ कि दुनिया में ऐसा कोई भी धर्म नहीं जो आपको गलत मार्ग पर जाने की शिक्षा देता हो। जो सही मार्ग पर चलने की शिक्षा देता है वह धर्म कहलाता है। जो संसार मुक्ति की शिक्षा देता है वह सच्चाधर्म कहलाता है। जो गलत मार्ग पर जाने की शिक्षा देता हो वह धर्म नहीं हो सकता।

आज का युवा कभी किसी से यह पूछने लग जाये कि धर्म करने से क्या होता है? तो उससे पूछ लेना कि बेटा परीक्षा हॉल (Hall) में कॉपी (Copy) पर सही उत्तर लिखने से क्या होता है? बस इतना सा प्रति प्रश्न कर देना कि परीक्षा हॉल (Hall) में प्रश्न का सही उत्तर लिखने से आपको क्या मिलेगा? वह तुरंत कहेगा, ऐसा करने से मैं पास हो जाऊँगा। मेरी सालभर की मेहनत सफल हो जायेगी। तो आप भी कह देना धर्म करने से व्यक्ति अपने जीवन में आगे बढ़ता है। सम्मान, महानता को प्राप्त होता है। धर्म करने से व्यक्ति सुसंस्कारी सदाचारी बन जाता है। एकमात्र धर्म ही जीवन जीने की कला सिखाकर, जीवन को सफल बनाता है। धर्म करने से ही मानव जीवन सफल होता है।

जीवन जीना भी एक कला है। जीवन जीना सरल है, लेकिन एक अच्छा जीवन जीना पुरुषार्थ साध्य है। जीवन तो सभी जी रहे हैं। एक धनपति भी जी रहा है और एक निर्धन भी जी रहा है। साधु भी जी रहा है और भिखारी भी जी रहा है। जीवन सभी जी रहे हैं अंतर सिर्फ इतना है कि एक सम्मान का पात्र बनकर जी रहा है और एक अपमान तिरस्कार को प्राप्त करके जी रहा है। जीवन तो दोनों जी रहे हैं साधु भी भिक्षा स्वीकार करता है और भिखारी भी भीख माँगकर के अपने जीवन का भरण पोषण करता है। लेकिन एक के लिये व्यक्ति आगे होकर के देना चाहता है और दूसरे के लिए माँगने पर भी प्राप्त नहीं होता है। एक भीख माँगकर अपना जीवन निर्वाह करता है तिरस्कृत जीवन जीता है और एक वह है जिसके सामने लोग झुक-झुककर विनय कर रहे हैं कि, हे स्वामिन्! आप मेरी विनती को स्वीकार कीजिए। मेरी भावनाओं को स्वीकार कीजिए। आप मेरे द्वार पर आकर के खड़े होइए। आप मेरे गृह में प्रवेश कीजिए। मैं आपके लिये सविनय भक्ति, आराधनापूर्वक, पूजन-स्तुति करके शुद्ध प्रासुक आहार देना चाहता हूँ। आप मेरे दान को स्वीकार कर मुझ पर अनुग्रह करें।

एक को देने के लिए व्यक्ति खुद हाथ जोड़कर खड़ा है आप मेरे दान को स्वीकार कीजिए। और एक के सामने लेनेवाला हाथ जोड़कर खड़ा है विनती कर रहा है कि आप मुझे कुछ दान में दे दीजिए। जीवन दोनों जी रहे लेकिन अंतर है एक वह व्यक्ति है जो धर्म के फलों को भोग रहा है और एक वह व्यक्ति है जो कर्मफलों को भोग रहा है। कर्म के फल में भी अशुभ कर्म का फल भोगने के कारण निमित्त कभी मिलते भी हैं तो कभी नहीं भी, किंतु धर्म का फल अवश्य ही प्राप्त होता है।

धर्म से तात्पर्य है अपने आपको एक श्रेष्ठ इंसान मानव बनाना। धर्म सदाचार सिखलाता है इसलिये जब कोई पूछे कि धर्म करने से क्या होता है तो कह देना धर्म करने से जीवन सुख शांतिमय बनता है। धर्म करने से जीवन प्रतिष्ठित बनता है। यदि आप धर्म विहीन हैं तो आप कितना भी अच्छा जीवन जी लीजिए, आपके पास सुख के साधन तो हो सकते हैं लेकिन सुख नहीं हो सकता। शांति और सुकून की अनुभूति नहीं हो सकती। जीवन में सारे साधन अनुकूलताएँ उपलब्ध हो सकती हैं लेकिन सुकून नहीं तो उन साधनों का कोई महत्व नहीं। सुकून मिलना बहुत बड़ी बात है। अगर जीवन में सुकून है शांति और संतोष है तो साधन वैभव आदि न होते हुए भी व्यक्ति आनंद के साथ जीवन जीता है। सदा प्रसन्नचित्त आल्हादित रहता है।

धर्म व्यक्ति को सही राह दिखाता है। आपको यह चिंतन देता है कि आप यदि मनुष्य हैं तो अब आपको अपना जीवन कैसे जीना चाहिये? विचार करना! भोजन करके जीनेवाले तो बहुत हैं दुनिया में। जितने भी पशु-पक्षी, मनुष्य आदि प्राणी हैं सभी भोजन करके जीवन जीते हैं। भोजन तो सभी करते हैं परन्तु लोक धर्म यह सिखाता है कि '**भोजन करो और कराओ**'। और जिनधर्म यह सिखाता है कि '**भोजन कराके भोजन करो**' **अर्थात्** '**भोजन कराओ और करो**'।

समझिएगा बात को, एक तो वह व्यक्ति है जो कहता है **भोजन करो और सुख से जिओ**। दूसरा वह व्यक्ति है **जो भोजन करो और कराओ की** भावना रखता है। और तीसरा वह व्यक्ति है **जो भोजन कराओ और करो** के आदर्श को स्वीकारता है। जो कहता है '**भोजन करो आराम से जिओ**' ऐसा व्यक्ति केवल जीने के लिये जी रहा है। दूसरा जो '**भोजन करो कराओ का**' सूत्र अपनाता है वह व्यक्ति परोपकारी है। और तीसरा वह व्यक्ति है जिसे भगवान महावीर श्रावक कहते हैं ऐसे व्यक्ति को भगवान महावीर ने श्रावक संज्ञा दी और कहा '**भोजन कराओ और भोजन करो**'। यानि पहले पात्र को आहारदान दो तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन स्वीकार करो।

भगवान महावीर ने ऐसे कर्तव्यशील व्यक्ति को श्रावक कहा है जो अपना भी हित करता है और साथ ही मोक्षमार्ग पर चलनेवाले मोक्षमार्गियों का भी हित साधता है। भगवान महावीर ने हमें उदार बनने की शिक्षा देते हुए, संकुचित विचारधारा को छोड़ने हेतु प्रेरित किया है। उन्होंने हमें पहले हाथ बढ़ाने की कला सिखायी। उन्होंने संकीर्ण विचारधारा कि कोई हमारे सामने आगे हाथ बढ़ायेगा तो मैं अपना हाथ बढ़ाऊँगा को नहीं स्वीकारा। भगवान महावीर ने चित्त को उदार बनाने को कहा। उदार भावनावाला व्यक्ति पहले अपना हाथ आगे बढ़ाता है और जिसने अपना हाथ आगे बढ़ाया उसके हाथ पर अपना हाथ रखनेवाले अनेकों मिल जाते हैं।

अगर कोई यह सोचकर बैठे कि पहले वो अपना हाथ आगे बढ़ाये तब मैं अपना हाथ आगे बढ़ाऊँगा। ऐसा व्यक्ति उदार तो बनना चाहता है लेकिन अभी थोड़ा अभिमानी, अहंकारी भी है। इसलिये वह ऐसी सोच रखता है कि पहले सामनेवाला ऐसा करे तो मैं उसका सहयोग करने के लिए तैयार हूँ। ऐसा व्यवहार अक्सर सामाजिक जीवन में देखा जाता है। समाज में रहनेवाला व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा को बनाकर रखना चाहता है इसलिए वह कई बार अपना पक्ष

भी रखता है कि मैंने पहले अपना हाथ बढ़ाकर देख लिया लेकिन वह व्यक्ति मेरा मजाक बनाता है इसलिए अब यदि वह मेरा सहयोग चाहता है तो वह मुझसे निवेदन करे मैं उसका सहयोग करने के लिये हमेशा तैयार हूँ तत्पर हूँ। इस व्यक्ति का समाज में अपना सम्मान, प्रतिष्ठा गौरव बनाये रखने का भाव है जो समाज के बीच में कदाचित् रखना भी होता है। लेकिन अगर अपने से पूज्य श्रेष्ठ पुरुष हों तो वहाँ कभी ऐसा भाव नहीं रखा जाता।

भगवान महावीर कहते हैं अपने से पूज्य श्रेष्ठजनों के सामने उदार बन जाना। हृदय में इतनी उदारता लाना कि उनका दर्शन पाते ही प्रमुदित भाव से स्वत: आपका हाथ सेवा-वैय्यावृत्ति के लिए आगे बढ़ जाये, ऐसा भाव जागृत हो जाये। इस उदारता का फल आपको मिलेगा ही मिलेगा, आप चाहें अथवा न चाहें। आप नमोऽस्तु करोगे तो आशीर्वाद मिलेगा। और नहीं करोगे तो भी आशीर्वाद मिलेगा, क्योंकि पूज्य पुरुषों का स्वभाव ही आशीर्वाद देने का होता है। यह पूज्य पुरुषों की महानता होती है। तुम्हारी कोई महानता नहीं कही जा सकती। इसलिये पहले स्वयं आगे आओ, फिर सामनेवाले से अपेक्षा रखो।

भगवान महावीर कहते हैं कि जो पहले भोजन कराता है और फिर स्वयं करता है वह श्रावक है। जो अपने कर्तव्यों को समझता है उसका नाम श्रावक है। और जो न तो भोजन कराये और न ही कराने की भावना रखे वह धर्मविहीन है।

प्रश्न है—पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है अथवा पहले भगवान की पूजा दान आदि का भाव आता है ? क्या होता है पहले ? बंधुओ ध्यान रखना! पूजन दान आदि रूप जो श्रावक का धर्म है सम्यक्त्व प्राप्त करने के लिये इस श्रावक धर्म का आश्रय लेना होता है। सम्यक्त्व प्राप्ति के लिये धर्म रूप इन परिणामों का होना अनिवार्य है क्योंकि ये वो परिणाम है जो जीव के लिये कषाय की मंदता देते हैं। जिनसे ये जीव विशुद्धि आदि लब्धियों को प्राप्त होता हुआ कर्मों को हल्का करता हुआ सम्यक्त्व प्राप्ति के योग्य बनता है। इसलिये आचार्य भगवन् रयणसार जी की इस 16 वीं गाथा में दान का फल बताते हैं कि सुपात्र को दान देने से इस संसारी जीव को किन किन फलों की प्राप्ति होती है? आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं-

दिण्णदि सुपत्तदाणं विसेसदो होदि भोग सग्ग मही।
णिव्वाण सुहं कमसो णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।16।।

'सुपत्तदाणं दिण्णदि' यदि सुपात्र को दान दिया जाता है तो **'विसेसदो'** वह विशेष रूप से **'भोग मही'** यानि भोगभूमि और **'सग्गमही'** यानि स्वर्गभूमि को प्राप्त होता है। यानि सुपात्र को दान देने से भोगभूमि और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। **'णिव्वाण सुहं कमसो'** और वह सुपात्रदान क्रम से निर्वाण सुख को भी देता है। **'णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं'** ऐसा जिनेन्द्र भगवंतों ने कहा है।

आपके पास यदि सम्यग्दर्शन होगा तो जिनेन्द्र भगवान की यह आज्ञा आपके लिये शिरोधार्य होगी। क्योंकि जिसे जिनाज्ञा का पालन करना नहीं आता उसे कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन के दस भेदों में पहला भेद आज्ञा सम्यक्त्व है। आज्ञा सम्यक्त्व का अर्थ है कि हमारे लिये जिनेन्द्र भगवान की जो आज्ञा है मैं उसका श्रद्धान करता हूँ।

हमारा ज्ञान बहुत अल्प, तुच्छ और हीन है। हम अपने ज्ञान से किसी भी वस्तु को परिपूर्णतया नहीं जान सकते। हमने ऐसा सुना है कि नंदीश्वरद्वीप होता है। आठवाँ द्वीप कौन सा है? नंदीश्वर द्वीप। भगवान जिनेन्द्र ने कहा है कि पंचमेरु होते हैं। उनमें प्रथम सुदर्शन मेरु पर्वत है। आप बताइए, आप लोगों ने नंदीश्वरद्वीप देखा है क्या? नहीं देखा। फिर भी आप इनके अस्तित्त्व को स्वीकार करते हैं। हाँ। क्यों? क्योंकि भगवान जिनेन्द्र की वाणी में इन सबका स्वरूप आया है इसलिये भगवान जिनेन्द्र की आज्ञा मानकर हम इन्हें स्वीकार करते हैं।

लेकिन कोई ऐसा कहे कि क्या पता भैया? शास्त्रों में तो बहुत सी बातें कहीं हैं अब ये नंदीश्वर द्वीप होते हैं या नहीं? सुमेरु पर्वत होते हैं या नहीं। नरक होते हैं या नहीं? स्वर्ग होते हैं या नहीं? मोक्ष होता है या नहीं? क्या पता अब किसने देखा है? यदि कोई ऐसा कहकर जिनाज्ञा की अवज्ञा करता है उल्लंघन करता है अश्रद्धा करता है। वह जीव कैसा है? सम्यक्त्वविहीन है। क्यों? क्योंकि उसे भगवान जिनेन्द्र के वचनों का श्रद्धान नहीं है।

जिस समय अमेरिका की खोज नहीं की गयी थी उस समय अमेरिका था अथवा नहीं था? अमेरिका की खोज कोलम्बस ने की उसने बताया कि अमेरिका नाम का भी एक देश है। वास्कोडिगामा ने भारत की खोज करके बताया कि भारत भी एक देश है। अगर इन्होंने ये खोजें न की होती तो क्या ये देश नहीं थे? देश तो थे लेकिन अपनी वहाँ तक पहुँच नहीं थी।

अब अगर आप कहें कि हम नंदीश्वर द्वीप की खोज करेंगे तो आप नहीं खोज सकते। क्यों? क्योंकि ढाई द्वीप में रहनेवाला मनुष्य मनुष्यलोक से बाहर, मानुषोत्तर पर्वत से बाहर नहीं जा सकता। जब आप इस ढाई द्वीप से ही बाहर नहीं जा सकते फिर नंदीश्वर द्वीप तो आठवाँ द्वीप है आप वहाँ कैसे पहुँच सकते हैं?

आपने कोलम्बस की खोज को तो मान लिया। वास्कोडिगामा की खोज का स्वागत किया। अब आप भगवान महावीर की खोज को श्रद्धा से स्वीकार करेंगे अथवा नहीं करेंगे। ये भगवान महावीर की खोज है इसलिए आप नंदीश्वर द्वीप की आराधना भी उतनी ही श्रद्धा भक्ति के साथ करते हो, जितनी सच्चे देवशास्त्रगुरु की करते हो। करते हो या नहीं? **भगवान जिनेन्द्र की आज्ञा माननेवाला भले ही बहुत बड़ा शास्त्रज्ञ हो अथवा न हो, तो भी वह सम्यग्दृष्टि है। वह कौन सा सम्यक्त्वी कहलाता है ? आज्ञा सम्यक्त्वी कहलाता है। और कोई कितना भी बड़ा शास्त्रज्ञ, विद्वान, चारित्रवान हो, अगर भगवान जिनेन्द्र की आज्ञा का श्रद्धान नहीं करता तो वह सम्यक्त्व विहीन है।**

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं सुपात्र को दान देनेवाला भोगभूमि और स्वर्ग विमानों में जन्म लेता है और परंपरा से निर्वाण सुख को भी प्राप्त करता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है। अब जिनेन्द्र भगवान ने कहा है तो यह अपने लिए कैसा है? श्रद्धान के योग्य है। क्यों? क्योंकि जिनेन्द्र भगवान ने जो भी कहा है वह सत्य है अकाट्य है उसमें किसी भी प्रकार की कोई शंका अथवा संदेह की आवश्यकता नहीं है।

पं. श्री दौलतराम जी कहते हैं–

'जिन वच में शंका न धार'

अर्थात् भगवान जिनेन्द्र के वचनों में कभी भी शंका, संदेह, संशय नहीं रखना चाहिये।

जिनेन्द्र भगवान ने कहा—जो सुपात्र को दान देता है उसको विशेष रूप से भोगभूमि और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। कोई दाता जिसने अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया लेकिन वह सुपात्रों के लिये भक्तिभाव पूर्वक आहारदान देता है। विचार करता है कि पात्रों को दान देने से हमारे लिये सुख की प्राप्ति होती है। हमारा हित होता है। ऐसा विचार करके अगर कोई सम्यक्त्व से रहित मिथ्यादृष्टि जीव यदि सुपात्रों को दान देता है तो वह जीव मरण करके

भोगभूमि में जन्म लेता है। मनुष्यगति का सर्वोत्कृष्ट इन्द्रियजन्य सुख यदि पाया जाता है तो वह भोगभूमि में ही पाया जाता है। जहाँ के जीव अत्यंत मंद कषायी होते हैं और मरण करके नियम से देवगति को प्राप्त होते हैं।

विचार कीजिएगा, मृत्यु होना तो सुनिश्चित है उसे कोई रोक नहीं सकता। मृत्यु के बाद मरण करके आप कहाँ जाना चाहेंगे? नरकगति में, पशुगति में, मनुष्यगति में अथवा देवगति में। चार ही गतियाँ हैं पाँचवी गति तो इस पंचमकाल में मिलनेवाली नहीं है। उसकी तो भावना ही की जा सकती है। अब इन चार गतियों में से ही आपको चुनाव करना है कि मैं कौन सी गति के योग्य आचरण करूँ जिससे दुर्गति से बच सकूँ। पंचमकाल में मोक्षगति तो है नहीं किंतु उस मोक्षगति का पुरुषार्थ है और आपका वह पुरुषार्थ आपको स्वर्ग में ही ले जाएगा। क्योंकि इस पंचमकाल में मोक्षमार्ग तो है लेकिन साक्षात् मोक्ष नहीं है। चार गतियाँ हैं और इन चार गतियों में से अब आपको निर्णय करना है कि आप किस गति में जाना चाहते हैं। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव हमारे लिये मनुष्य गति और देवगति में जाने का मार्ग बताते हुए कह रहे हैं कि आप सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि। यदि आप सुपात्रों के लिये भक्तिभाव पूर्वक आहारदान देते हैं तो आपके लिये देवगति प्राप्त होगी और मनुष्यगति में भोगभूमि की प्राप्ति होगी।

निर्णय आपको करना है कि हमें क्या करना है? आप प्लेटफॉर्म (Platform) पर पहुँच गये हैं ट्रेन (Train) अभी आयी नहीं है। आपको इंतजार करना पड़ रहा है। अब यह आपके ऊपर है कि आप कहाँ बैठकर इंतजार करते हैं। भूमि पर बैठकर इंतजार करेंगे अथवा किसी कुर्सी आदि पर बैठना पसंद करेंगे। व्यवस्था सब है चुनाव आपको करना है। आचार्य कुंदकुंददेव कहते हैं कि भली बात तो यह है कि निर्वाण मिले। अगर इस काल में वह प्राप्त नहीं हो पा रहा है तो अब कहाँ जाने का चिंतन करना हैं, नरक गति में या तिर्यञ्चगति में? और यदि सुखपूर्वक इंतजार करना चाहते हो तो दो ही गति बची हैं जहाँ सुख की प्राप्ति होती है। वह है मनुष्यगति और देवगति। कहाँ रहकर सिद्धालय जाने का पुरुषार्थ करेंगे आप? आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी भव्य जीवों के लिये अपने इष्ट की प्राप्ति का उपदेश देते हुए श्री इष्टोपदेश ग्रंथ में कहते हैं कि-

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वत नारकं।
छाया तपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।। 3 ।।

अर्थात् जब तक इस जीव के लिये मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती तब तक व्रतों का पालन करके देवपद को पाना श्रेष्ठ है किंतु अव्रती रहकर नरक में जाना श्रेष्ठ नहीं है। छाया और धूप में स्थित पुरुषों के समान व्रत और पापाचरण पालन के फल में महान अंतर है।

अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपना आगामी जीवन कैसा जीना चाहते हैं? भगवान जिनेन्द्र की वाणी प्राणीमात्र के लिये कल्याण का हित का मार्ग बताती है। हमारे लिये मार्गदर्शक बन हित मार्ग को, सुख के मार्ग को अपनाने के लिये हमें प्रेरित करती है हमारा उत्साह बढ़ाती है। श्री भक्तामर स्तोत्र में दिव्यध्वनि प्रातिहार्य का वर्णन करते हुए आचार्य भगवन् श्री मानतुंग स्वामी कहते हैं-

स्वर्गा - पवर्ग-गममार्ग विमार्गणेष्टः।
सद्धर्म-तत्त्व कथनैक पटुस्त्रिलोक्याः।। 35 ।।

स्वर्गापवर्ग स्वर्ग और अपवर्ग यानि मोक्ष '**गम मार्ग**' यानि जाने का मार्ग '**विमार्गणेष्टः**' इसका अन्वेषण करना ही इष्ट है। '**सद्धर्मत्तत्व**' अर्थात् समीचीन धर्म और समीचीन तत्त्वों का एकमात्र कथन करने में '**पटुस्त्रिलोक्याः**' निपुण है। किसके लिये? '**त्रिलोक्याः**' तीनों लोकों के प्राणियों के लिए।

अर्थात् भगवान की दिव्यध्वनि जो तीन लोक के प्राणियों के लिये सद्धर्म के तत्वों के यथार्थस्वरूप का विशद वर्णन करनेवाली है स्वर्ग और अपवर्ग यानि मोक्ष इसका अनुसंधान, खोज, अन्वेषण करनेवाली है। भव्य जीवों से कहती है मोक्ष प्राप्त करो और जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं होता तो स्वर्ग प्राप्त करो। स्वर्ग जाओ। क्योंकि सभी धर्मात्मा जीवों के लिये मोक्ष प्राप्ति का मार्ग चुनना होता है स्वर्ग की प्राप्ति तो स्वतः ही हो जाती है। कदाचित् कोई अभव्य जीव भी है वह भी स्वर्ग तो जा सकता है लेकिन मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी कहते हैं-

यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौ कियद्दूरवर्तिनी।। 4।।

जिन भावों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है, उनके द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति कितनी दूर है कुछ भी नहीं। जिन भावों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है उनके द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति हो जाए तो इसमें कौन सी बड़ी बात है।

अब आपको विचार करना है कि आपने ऐसा उत्तम कुल, उत्तम पर्याय प्राप्त की है तो आप इस पर्याय से कहाँ जाना चाहेंगे? आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं सुपात्र को दान देना, यह भोगभूमि और स्वर्ग जाने का मार्ग है।

अमितगति श्रावकाचार में कहा भी है—

पात्रेभ्यो यः प्रकृष्टेभ्योः मिथ्यादृष्टिः प्रयच्छति।
स याति भोगभूमीषु प्रकृष्टासु महोदयः।।62 ।।

यदि कदाचित् कोई मिथ्यादृष्टि मंद कषायी जीव भक्ति भावपूर्वक सुपात्रों को दान देता है तो वह भोगभूमि में जन्म लेता है अथवा स्वर्ग जायेगा। सम्यग्दृष्टि जीव यदि सुपात्र दान करता है तो देवपर्याय को प्राप्त करता है। यदि सम्यक्त्व प्राप्ति से पूर्व ही उसने मनुष्य आयु का बंध कर लिया है तो वह नियम से भोगभूमि का मनुष्य बनेगा। भोगभूमि में ही क्षायिक सम्यक्त्व के धारी कुलकरों की उत्पत्ति होती है। वे मनुष्य जिन्होंने मनुष्य आयु का बंध करने के बाद क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति की है ऐसे जीव भोगभूमि में जाकर ऐसी श्रेष्ठ पर्याय को प्राप्त होते हैं।

बंधुओ! अपना हित विचारना अपना हित करना। प्रतिपल आयु क्षीण होती जा रही है और हम अपने भविष्य के प्रति बिल्कुल भी चिंतित नहीं हैं। ऐसा न हो कि कहीं बहुत देर हो जाये। हम विचार करते रह जायें और तन से प्राण ही निकल जायें। बीता हुआ समय लौटकर नहीं आता और बिना पुरुषार्थ किये जीव कुछ नहीं पाता। इसलिये आयु लौटकर मिलनेवाली नहीं है अब तो जो बाकी है उसी में आपकी झाँकी है। जैसी लगाना चाहो वैसी लग जायेगी।

अगर आप अपना भविष्य सुखमय बनाना चाहते हो तो श्रावक धर्म का पालन करो। सुपात्रदान आदि कर्तव्यों का पालन करो। जिससे भोगभूमि व स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति होती है। और यदि दाता सम्यग्दृष्टि है तो आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि '**णिव्वाणं सुहं कमसो**' क्रम से निर्वाण सुख को भी प्राप्त होता है। श्रावकों के लिये सीधा निर्वाण का मार्ग तो है नहीं। चाहे श्रावक चतुर्थकाल का हो अथवा पंचमकाल का। किसी भी काल का हो। श्रावक के लिये तो मोक्षसुख की भावना और स्वर्ग की प्राप्ति ये ही सुख का मार्ग है।

श्रावक, श्रावकधर्म की प्राप्ति करके किसकी प्राप्ति करेगा? स्वर्ग सुख की प्राप्ति करेगा। जब तक अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति नहीं होती तब तक अभ्युदय सुख को प्राप्त करेगा। वह श्रावक जो श्रावक धर्म का पालन करता है वह स्वर्ग में सौधर्मइन्द्र आदि पर्याय को प्राप्त करता है। क्यों? क्योंकि साक्षात् मोक्षमार्ग और उसका फल तो एकमात्र निर्ग्रंथ मुनिराजों के लिये है। श्रावक तो क्रमशः अर्थात् परंपरा से निर्वाण को प्राप्त होता है इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि श्रावक को अपने आत्महित का विचार करना चाहिये।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि सुपात्र को दान देनेवाला ऐसा सद्गृहस्थ श्रावक भोगभूमि को प्राप्त होता है और नियम से भोगभूमि के बाद देव बनता है। पुनः मनुष्यगति को प्राप्तकर कर्मभूमि का मनुष्य बनकर निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा को धारणकर निर्वाणसुख को भी प्राप्त कर लेता है। इसलिये यदि श्रावक अपने धर्म का पालन करता है तो शीघ्रातिशीघ्र इस संसार से विमुक्त हो जाता है। और यदि वह अपने ऐसे पवित्र श्रावक धर्म से दूर रहता है तो ऐसे जीव से समस्त अभ्युदय सुख अर्थात् भोगभूमि व स्वर्ग के दिव्य सुख भी दूर ही रहते हैं। अब जो सुख से दूर है तो निकट किसके होगा? इस जीव ने यदि भगवान जिनेन्द्र के द्वारा बताये गये मार्ग का, आचरण का अनुसरण नहीं किया तो ऐसे जीव मरण करके दुर्गति के पात्र बनते हैं जहाँ वे दुख ही दुख पाते हैं।

बंधुओ! अपने आत्मा का हित विचारना। जीवन में धर्म का पालन करना और श्रेष्ठ आचरणवान बनकर प्रतिष्ठित सम्माननीय जीवन बिताना, लेकिन धर्महीन बनकर इस मनुष्य पर्याय को व्यर्थ मत गँवाना। **मुनिधर्म तो मनुष्यपर्याय की सार्थकता है ही। श्रावक धर्म भी मनुष्य पर्याय की सार्थकता है। जिसने अपने जीवन में श्रावक धर्म का भी नियम अंगीकार नहीं कर पाया, मात्र सांसारिक भोगों इन्द्रिय सुखों की आसक्ति में ही डूबा रहा उस जीव को कोई भी तारनेवाला नहीं है।** क्यों? क्योंकि अपना साथी यह जीव स्वयं होता है। कोई भी किसी दूसरे का साथ नहीं निभाता। अगर किसी को कुछ हो जाता है तो कोई हॉस्पिटल (Hospital) तो ले नहीं जाता स्वर्ग कौन ले जायेगा। तुम्हारे अपने बच्चे भी तुम्हें तब तक ही पूछते हैं जब तक तुम उनके लिए कुछ कर रहे हो। जब तक तुम्हारे नाम कुछ है तब तक बच्चे तुम्हें हॉस्पिटल (Hospital) भी दिखा लायेंगे खूब सेवा भी करेंगे।

लेकिन जब तुम बच्चों के लिये कुछ भी करने के योग्य नहीं रह जाते। देह भी जब साथ छोड़ने लगती है। कोई न कोई रोग परेशानी घेरे ही रहती है। ऐसे समय जिनके हर दुख दर्द को दूर करने के लिये तुमने अपना सुख-चैन खोया उनसे जब तुम अपने दुख को कहोगे कि बेटा! हमें ये परेशानी हो रही, हमें ये दर्द हो रहा है, वो दर्द हो रहा, तो वही बेटा, परिवारी जन कहेंगे कि अभी हमारे पास समय नहीं है। हमें ये काम है, हमें वो काम है। तुम राह तकते रह जाओगे लेकिन कोई पूछनेवाला नहीं मिलेगा। इसलिये अपना साथी तू स्वयं है। **अपना हित करनेवाला भी तू स्वयं है और अपना अहित करनेवाला भी तू स्वयं है। प्राणीमात्र के हितैषी भगवान जिनेन्द्र की आज्ञा तुम पालन नहीं करते, उनके द्वारा बतलाये गये मार्ग का अनुसरण नहीं करते उनके द्वारा प्रतिपादित आचरण को नहीं अपनाते तो फिर तुम्हारी दुर्गति का कारण कौन कहलाएगा ? तुम स्वयं ही तो कहलाओगे।**

टीचर (Teacher) ने विद्यार्थी से कहा-बेटा! अच्छे से पढ़ा करो। समय का सदुपयोग किया करो। समय से अपना विषय याद किया करो। टीचर (Teacher) आज्ञा ही तो दे सकता है। वह तुम्हें जबरन याद नहीं करा सकता। कक्षा में उत्तीर्ण होने का मार्ग बता सकता है। अगर नहीं पढ़ोगे तो तुम्हें असफल होना पड़ेगा। वह इन बातों का भी ज्ञान करा सकता है। लेकिन वह विद्यार्थी अपने टीचर (Teacher) के बताये गये मार्ग से बिल्कुल विपरीत चले। बिल्कुल पढ़ाई-लिखाई न करे। कुसंग में पड़कर अपना जीवन बरबाद करे। तो इसका जिम्मेदार कौन होगा, टीचर (Teacher) अथवा वह विद्यार्थी?

ध्यान रखना! भगवान जिनेन्द्र, जिनवाणी माता और निर्ग्रंथ गुरु ये आपके लिये मार्ग दिखा सकते हैं। परन्तु उस मार्ग का अनुसरण करना प्रत्येक जीवात्मा का व्यक्तिगत कर्तव्य है। जो करेगा वही पायेगा। कहाँ जाना है? स्वर्ग जाना है या दुकान पर जाना है? क्या कहोगे तुम? कहोगे, अभी तो हमें दुकान पर जाना है अभी स्वर्ग जाने की फुर्सत किसे है? अभी तो हमें दुकान पर जाना है अपने जीवन में आपने दुकान जाने का पुरुषार्थ (अर्थ पुरुषार्थ) कितनी बार किया? और स्वर्ग और मोक्ष जाने का पुरुषार्थ कितनी बार किया? दोनों की काउंटिंग (Counting) करना।

दुकान पर जाने से आपको क्या मिलता है? ग्राहक मिलते हैं वो भी अगर पुण्य होगा तो मिलेगा। अगर पुण्य नहीं होगा तो ग्राहकों को तलाशते रहोगे तो भी नहीं मिलेंगे। लेकिन यह

पक्का है अगर आप मोक्षमार्ग का अथवा श्रावक धर्म का पालन करते हैं तो आपको सुख जरूर मिलेगा। यह गारंटी (Guarantee) की बात है। आप उस कंपनी (Company) का सामान खरीदते हो जो आपको गारंटी (Guarantee) देती है अथवा जिसकी कोई गारंटी (Guarantee) नहीं होती उसका सामान खरीदते हो? आजकल तो मेड इन चाइना (Made in China) चलता है। बहुत सारे लोग क्या सोचते हैं कि ये वस्तु तो थोड़े में ही उपलब्ध हो रही है और कंपनी (Company) की खरीदेंगे तो ज्यादा कीमत देनी पड़ेगी। वही वस्तु थोड़े में ही मिल रही है तो बढ़िया है। अगर व्यक्ति चिंतनशील, विवेकी, बुद्धिमान होगा तो वह यही सोचेगा कि थोड़ा और रुक जाओ, अभी अपना पैसा खराब न करके, थोड़ा और जोड़ करके हम तो कंपनी (Company) की चीज लेंगे। क्योंकि उसकी गारंटी (Guarantee) तो रहेगी। और यदि हमने यह मेड इन चाइना (Made in China) खरीद ली जिसकी कोई गारंटी (Guarantee) ही नहीं है। क्या पता दुकान से नीचे उतरे और वस्तु खराब हो गई तो कोई भी जिम्मेदारी लेनेवाला नहीं होगा। और अपना पैसा भी व्यर्थ में खराब हो जायेगा। इसलिये विवेकी जीव वही है जो अपने धन का सदुपयोग करता है।

भगवान महावीर कहते हैं कि चिंतामणि रत्न से भी अत्यंत दुर्लभ इस मनुष्य पर्याय का सदुपयोग करना सीखो। धर्म का पालन करते हुए भी हम अपने लिये सुख के साधन जोड़ सकते हैं। अगर भविष्य की चिंता हो तो श्रावक को अपने धर्म का पालन अवश्य करना चाहिये।

एक बात ध्यान रखना कि सुपात्र के हाथ में दान देनेवाला व्यक्ति अपना निर्णय कर सकता है कि मुझे सुगति का बंध हुआ है अथवा दुर्गति का। जिसे खोटी आयु का बंध हो जाता है वह जीव सुपात्र को दान नहीं दे सकता। यदि आप पात्र को दान दे पा रहे हो। इससे आप अपने ज्ञान से स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि हमारे लिये आयुकर्म का बंध नहीं हुआ और अगर हुआ भी है तो श्रेष्ठ आयु का ही बंध हुआ है। अगर किसी को खोटी आयु का बंध हो जाता है तो वह चाहते हुए भी कभी सुपात्रदान नहीं दे सकता।

इसलिये बंधुओ! अपने लिये आइना बनकर रहिये। अपने को देखते रहिये कि कहीं मुझे खोटी आयु का बंध तो नहीं हो गया। यह भावना आत्मा में अवश्य बनाकर रखना। धर्म का पालन सारे काम छोड़कर करना। क्यों? क्योंकि संसार के सारे कार्य करते हुए भी जब तुम यहाँ

से जाओगे तो जो कुछ भी तुमने जीवनभर किया वह सब यहीं रह जाता है आगे तुम्हारे साथ नहीं जाता। यह धन-संपदा, वैभव, घर-महल, परिवार कुछ भी साथ नहीं जाता। धर्म का कार्य यहाँ के लिये भी है और आगे के लिये भी है इसलिये अपने भविष्य को आप अपने ज्ञान से स्वयं जान सकते हैं समझ सकते हैं।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी कहते हैं वह धर्मात्मा श्रावक जिसने अपने कर्तव्यों का निरंतर पालन किया है भले ही वह धर्म का उत्कृष्ट पालन नहीं कर सका। निर्ग्रंथ मुनिमुद्रा धारणकर साक्षात् मोक्षमार्ग का अनुभव नहीं कर सका, तो भी वह श्रावकधर्म, कर्तव्यों का पालन करके स्वर्ग अथवा भोगभूमि और क्रमश: परंपरा से अपने आगामी भवों में निर्ग्रंथ मुनि बनकर नियम से निर्वाण सुख को प्राप्त करता है।

आपकी आत्मा सुखी बने। आपकी आत्मा में हमेशा परमसुख की चाह रहे। भाव रहे कि हमें यह क्षणिक सांसारिक सुख नहीं अपितु शाश्वत निर्वाण सुख चाहिये। भक्त क्या भावना भाता है? कि हे भगवन्! हे परमात्मा! जिस सुख की आपने प्राप्ति की है वह अतीन्द्रिय निर्वाण सुख हमें भी प्राप्त हो। प्रतिदिन श्रावक सच्चेदेव की आराधना भक्ति करते हुए कहता है कि-

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद् यावन् निर्वाण सम्प्राप्तिः।। स.भ.।।

मैंने एक दिन कहा था कि आप भगवान की पूजा कर रहे हैं। पूजन करते समय आप कैसे हैं? भगवान के गुणों का कीर्तन करनेवाले गुणी व्यक्ति हैं। श्रावक के लिये ये दो ही मुख्य धर्म बताये हैं, पूजा और दान।

पूजा का अर्थ लोग समझते हैं कि एक थाली से दूसरी थाली में चावल क्षेपण कर दो, हो गई पूजा। ये भटके हुए अज्ञानी लोग हैं। इन्हें ये बोध ही नहीं कि पूजा कहते किसे हैं? **पूजा का तात्पर्य है पूज्य पुरुषों के गुणों में अनुराग रखकर उनके गुणों का कीर्तन करना।** जिनधर्म किसी व्यक्ति विशेष की आराधना करना नहीं सिखाता अपितु जिस-जिस ने अपनी आत्मा में रत्नत्रय जैसे महान गुणों को प्रगट कर परमपद को प्राप्त किया है। भव्य जीवों के लिये वे आराध्य बन जाते हैं और सच्चे आराधक श्रद्धा, भक्तिभाव से उनकी भक्ति, आराधना, स्तुति, वंदना किया करते हैं। किस भाव से? **'वन्दे तद्‌गुण लब्धये'** हे भगवन्! हे स्वामिन्! हम आपके जैसे गुणों की प्राप्ति के लिये आपकी वंदना करते हैं।

24 घंटों में आप कितने समय तक भगवान की गुणाराधना करते हैं? घर पहुँचे फिर देख लो, वही संक्लेषताएँ, वही क्लेश। इसके अलावा घर परिवारों में और मिलता क्या है? व्यापार में लगे वहाँ भी संक्लेषता। ऊपर से चेहरा मात्र हँस रहा है भीतर से तुम कितने क्लेषित हो ये तो तुम्हीं जान सकते हो। ग्राहक के सामने आप अपने आपको प्रसन्नचित्त दिखा रहे हो, लेकिन भीतर कितनी संक्लेषता है, इसका अनुभव आप स्वयं ही कर सकते हो। इसलिये जिनेन्द्र भगवान ने कहा कि जिनपूजा करो। उतने समय तक तुम सुख और शांति का अनुभव करके अपने आपको संतुलित रख सकते हो। अपने वचन को सँभालकर स्वस्थ और सुखी जीवन जी सकते हो। अन्यथा मानसिक शांति के अभाव में यह जीव कई प्रकार के रोगों से ग्रसित हो निरंतर दुख का अनुभव करता रहता है।

श्रावक को आत्मशांति प्राप्त करने के लिये, अपनी मन, वचन, काय की प्रवृत्तियों को निर्मल पवित्र बनाने के लिये, भगवान जिनेन्द्र के पंचपरमेष्ठी के निर्मल पवित्र गुणों की आराधना अवश्य ही करना चाहिये। भगवान के गुणों की भावना उनका कीर्तन करना पूजा है। लेकिन अज्ञानीजनों के लिये पूजा सूजा सी लगती है। जैसे किसी को सूजा चुभाओ तो दर्द होता है ऐसे ही उनसे पूजा की कह दो तो दर्द होता है। इसका तात्पर्य यह है कि वे अभी पूजा के माहात्म्य को समझते नहीं हैं।

जो भव्यजीव पूजा के माहात्म्य को समझते हैं वे कहते हैं कि सच्चे देवशास्त्रगुरु की आराधना भक्ति के क्षण हमारे जीवन के सर्वोत्तम अनमोल क्षण होते हैं। अपने इस कर्तव्य को मैं अन्य सांसारिक कार्यों के लिये कभी भी नहीं छोड़ सकता। क्योंकि पूजन के समय ही तो हम भगवान जिनेन्द्र के गुणों को गा पाते हैं अनुभव कर पाते हैं कि आत्मा के ऐसे गुण तो हमारे अंदर भी विद्यमान हैं। ये वो अनमोल क्षण है जिन क्षणों को मैं कभी नहीं छोड़ सकता। पूजा सूजा सी किसको लगती है? जिन्हें ये पता ही नहीं कि पूजा में होता क्या है? वे सोचते हैं एक घंटा बरबाद हो जायेगा, खराब हो जाएगा। यह अज्ञान दशा है।

गुणी बनना हो तो गुणों का आश्रय करो अन्यथा आप गुणी नहीं बन सकते। किसी को शिकंजी बनानी है तो उसे मीठा करने के लिये शक्कर का आश्रय करना ही होगा। और आप

शक्कर के जितने कण स्वीकार करेंगे आपकी शिकंजी उतनी ही मीठी होगी। अगर आपने दो कण स्वीकार किये तो उसमें उतनी ही मिठास आयेगी। अगर आपने मुट्ठीभर कण स्वीकार कर लिये तो आपके लिये उतनी अधिक मिठास मिलेगी।

कहने का तात्पर्य यह है कि पूजन श्रावक के जीवन का एक ऐसा अनमोल तोहफा अद्‌भुत पल है जिसे वह अपने पूरे दिन में भी प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान के गुणों से जुड़कर अपनी आत्मा को गुणवान बना लेता है। इसलिये पूजन के यथार्थभावों को समझें। मात्र क्रिया को ही ध्यान में न लें अपितु उस क्रिया से जुड़ा हुआ जो भाव है उस भाव में उतरें। फिर देखिएगा आपको कैसे अद्‌भुत आनंद की अनुभूति होती है। अज्ञानी जीव मात्र क्रिया को पकड़कर बैठ जाते हैं। भावक्रिया पर ध्यान ही नहीं दे पाते इसलिये धीरे-धीरे द्रव्यक्रिया से भी हीन हो जाते हैं।

पूजन करते समय भगवान के गुणों में लीनता होती है। जैसे गुड़ की ढेली अथवा पारी होती है अगर उसके पास थोड़े से धूल के कण भी पहुँच जाते हैं तो वे धूलकण भी गुड़ रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे ही भगवान के निर्मल पवित्र गुणों की आराधना करते-करते हम जैसे अज्ञानीजन भी, एक न एक दिन भक्त से भगवान बन जाते हैं। इसलिये भगवान की पूजन के सच्चेभाव अपनी आत्मा में लायें। अपने कर्तव्यों का शुद्ध मन, वचन, काय से पालन करें। यदि क्रिया विवेकपूर्वक होती है तो उसका सही फल भी प्राप्त होता है। यदि विवेकहीन क्रिया होती है तो क्रिया होते हुए भी उसका सम्यक् फल प्राप्त नहीं होता है।

जैसे एक बालक होता है। वह कलम को पकड़कर कॉपी (Copy) पर चलाता है। एक ओर आप भी कलम को पकड़कर कॉपी (Copy) पर चलाते हो। दोनों में कितना अंतर होता है। एक के कलम चलाने से पेपर (Paper) खराब होता है और दूसरा चलाता है तो वही पेपर (Paper) सार्थक बातों से भर जाता है। क्रिया तो दोनों कर रहे हैं आप भी क्रिया कर रहे हैं और वह बालक भी क्रिया कर रहा है फिर भी दोनों की क्रियाओं में बहुत अंतर है। एक ज्ञानपूर्वक कर रहा है और एक अज्ञानपूर्वक कर रहा है। अज्ञानपूर्वक की गई क्रिया का फल कागज का खराब हो जाना है और ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया का फल कागज का सार्थक हो जाना है। इसलिये ज्ञानपूर्वक विवेकपूर्वक श्रेष्ठ कार्य कर सम्यक् फल को प्राप्त करें। अपने आप को धर्म से श्रृंगारित करें।

युवाओं का कर्तव्य है कि वे भी अपने जीवन में धार्मिक आचरण को अपनायें। पूजन प्रशिक्षण शिविर का आयोजन ऐसे युवा वर्ग के लिये विशेष रूप से आयोजित किया जाता है। क्योंकि आज का युवा अगर अपनी धार्मिक क्रियाओं को जान लेता है समझ लेता है तो वह आगे चलकर परिवार का निर्माता, मुखिया बनता है। अगर वह स्वयं संस्कारित होगा तो अपने परिवार को धार्मिक संस्कारों से संस्कारित कर सकेगा। उस घर में ऐसे आदर्शवान बच्चे होंगे जो जिनधर्म की पताका को पंचमकाल के अंत-अंत तक ले जाने में अपनी भूमिका निभायेंगे।

बंधुओ! आप सभी श्रावक धर्म को समझें। श्रावक का मुख्य धर्म जिनपूजा और सुपात्र दान अवश्य करें। और जब तक इस संसार में रहें तब तक सुख-शांतिपूर्वक जियें। संसार से मुक्त होने के लिये, निर्वाण सुख प्राप्त करने के लिए, भगवान अरिहंत देव के द्वारा बताये गये मार्ग को सच्ची श्रद्धा से स्वीकार करें। आप सभी की आत्मा सुखी बने। आपके जीवन में सुख-शांति का वातावरण बने ऐसी मेरी भावना है।

जो सुपात्र को दान करे, अतिशय पुण्य महान करे।
स्वर्ग भोगभूमि पाकर, क्रमशः सुख निर्वाण वरे।।
जिनवर ही ऐसा, हो-हो-2, सद्मार्ग दिखाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

शास्त्र प्रकाशन

शास्त्र प्रकाशने तस्माद् ध्रुवं धर्मः प्रकाशितः।
धर्मे प्रकाशिते सर्वे पुरुषार्थाः प्रकाशिताः।।दा.शा.25 पृ.।।

अर्थ— शास्त्र के प्रकाशन करने से उससे धर्म का प्रकाशन अपने आप होता है अर्थात् लोग धर्म के तत्त्व से परिचित होते हैं। धर्म का प्रकाशन करने पर समस्त पुरुषार्थ प्रकाशित होते हैं। अर्थात् समस्त जीवों का उपकार होता है। इसलिए शास्त्र प्रकाशन का महत्व अधिक है।

गाथा - 17
(प्रवचन)

●

पात्र-कुपात्र-अपात्र दान का फल

29 . 08 . 2013

भिण्ड

(उत्तम-पात्र में दिया दान उत्तम फल प्रदाता)

खेत्त-विसेसे काले, वविय सुवीयं फलं जहा विउलं।
होदि तहा तं जाणह, पत्त-विसेसेसु दाणफलं।। 17।।

*** अन्वयार्थ ***

(**जहा**) जिस प्रकार (**खेत्त-विसेसे**) क्षेत्र विशेष-उत्तम क्षेत्र में (**काले-विसेसे**) काल विशेष-योग्य काल में (**वविय**) बोया गया (**सुवीयं**) उत्तम बीज (**विउलं**) विपुल (**फलं**) फलवाला (**होदि**) होता है (**तहा**) उसी प्रकार (**पत्त-विसेसेसु**) विशेष-उत्तम पात्रों में दिये (**तं**) उस (**दाणफलं**) दान के फल को (**जाणह**) जानो।

अर्थ- जिसप्रकार उत्तम क्षेत्र में, योग्यकाल में बोये हुए उत्तम बीज का विपुल फल होता है, उसीप्रकार उत्तम पात्रों में दिये गये उस दान के फल को जानो अर्थात् उत्तम क्षेत्र, योग्यकाल में बोये गये अच्छे बीज की तरह, उत्तम द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में उत्तम पात्रों में दिया हुआ दान, विपुल-फल का प्रदाता होता है, ऐसा जानो।

कुभोगभूमि की प्राप्ति कुपात्रदान का फल

27

रयणोदय

उत्तम भूमि पाओगे, उत्तम फसल उगाओगे।
गर सुपात्र को पाओगे, दान सफल कर जाओगे।।
सम्यग्दृष्टि यह, हो-हो-2, कर्तव्य निभाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

संसार में जितने भी प्राणी हैं वे जो भी कर्म करते हैं उसके पीछे कोई न कोई इच्छा चाह अवश्य रखते हैं। यदि फल की इच्छा न हो तो व्यक्ति कर्म ही क्यों करे? एक छोटे से विद्यार्थी से लेकर युवा तक, एक किसान से लेकर धनपति व्यापारी तक, आप किसी को भी देख लीजिएगा सभी अपने कर्म का फल चाहते हैं। विद्यार्थी कर्म कर रहा है वह पास (Pass) होना

चाहता है। एक युवा उद्यम करता है वह धन कमाना चाहता है। एक किसान बीज बोता है वह फसल रूपी फल चाहता है। एक धनपति व्यापारी कर्म करता है वह अरबपति खरबपति ऐसे प्रतिष्ठारूपी फल को पाना चाहता है।

कोई भी बड़ा धनवान व्यक्ति पेट के लिये कभी श्रम-परिश्रम नहीं करता अपितु अपने मान-सम्मान प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए करता है। क्योंकि पेट के लिये तो उसके पास पूरी व्यवस्था है लेकिन अब वह समाज में रहते हुए , नगरमें रहते हुए , देश-प्रदेश में रहते हुए, अपने नाम को ऊँचा देखना चाहता है। वह चाहता है कि यदि वह समाज में रहे तो समाज के लोग उसके विषय में कहे कि ये समाज के बहुत बड़े अच्छे दानपति हैं। इनके द्वार से कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटता। यदि वह प्रदेश में रह रहे हैं तो प्रदेश के श्रेष्ठ व्यापारियों में उनका नाम अव्वल रहे और जिस देश में रहता है, उस देश की चुनिंदा हस्तियों में उसका नाम भी शामिल होना चाहिये। इसके लिये वह श्रम-परिश्रम करता है। किसी ने कहा है-

'दौलत चाहोगे दौलत मिलेगी, शोहरत चाहोगे शोहरत मिलेगी।
करोगे पुरुषार्थ गर सच्चा तो सफलता जरूर मिलेगी।'

इस संसार में रहनेवाले जितने प्राणी हैं वे कर्म करते हैं तो उसका फल भी चाहते हैं। यदि उसे फल का ज्ञान न हो तो वह कर्म करेगा ही क्यों? एक किसान श्रम-परिश्रम कर रहा है। खून पसीना एक कर रहा है। रात-दिन मेहनत कर रहा है, किसलिये कर रहा है? कि हमें कुछ न कुछ अनाज दाना रूप फल मिलेगा। फल की चाह को ख्याल में रखकर व्यक्ति कर्म करता है। अगर धर्म भी करता है तो धर्म करते हुए भी फल चाहता है। वह क्या माँगता है भगवान से? कहता है— हे भगवन्! हमारे पापों का क्षय हो, कर्मों का नाश हो। साधुजन भी भावना भाते हैं भगवान् के सामने कि— हे प्रभु! **दुक्खक्खओ**-मेरे दुखों का क्षय हो। **कम्मक्खओ**-मेरे कर्मों का क्षय हो। **बोहिलाहो**-मेरे लिये बोधि का लाभ हो। **सुगइगमणं**-सुगति में गमन हो। **समाहिमरणं**- समाधिमरण हो। आप जब पूजन करते हो तो क्या बोलते हो? **'मोक्षमहाफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा'** हे भगवन्! मोक्षरूपी महाफल पाना चाहता हूँ इसलिए फल चढ़ाता हूँ।

संसार में रहनेवाले सभी व्यक्ति कर्मशील हैं। वे जो कर्म करते हैं उसका फल भी चाहते हैं। फिर यदि जीव को श्रेष्ठ कर्मों का व उनके महान फलों का बोध नहीं होगा तो वह उन फलों की प्राप्ति की भावना ही नहीं कर सकेगा। वह उन श्रेष्ठ कर्मों से वंचित रह जायेगा। और जब तक अच्छे कर्म नहीं होंगे तब तक अच्छे फल भी प्राप्त नहीं होंगे। इसलिये आचार्य भगवन् कहते हैं कि तुम कर्म कर ही रहे हो, तो ऐसे कर्म करो जो तुम्हें श्रेष्ठ फल प्रदान करें। **श्रेष्ठ कर्म ही श्रेष्ठ फल देते हैं।**

कोई व्यक्ति रात-दिन मेहनत करता है और मुट्ठीभर फल प्राप्त करता है। कहते हैं न **'रातभर पीसो और पारे भर पाओ।'** व्यर्थ में कोई इतनी मेहनत क्यों करना चाहेगा? आदमी तो ये चाहता है कि मैं थोड़ा भी श्रम करूँ तो उसका अच्छा फल मुझे प्राप्त हो। पर होता क्या है? कोई व्यक्ति मेहनत बहुत करता है लेकिन फल बहुत कम प्राप्त होता है। और कोई व्यक्ति मेहनत कम करता है फल अधिक प्राप्त होता है। इसका कारण है यदि वह बुद्धिमत्तापूर्वक विधिपूर्वक किसी कार्य को करता है तो थोड़े में भी अधिक फल को प्राप्त होता है।

किसी नगर में एक किसान रहता था। पुण्योदय से उसके पास खूब धन संपदा थी। उस के तीन पुत्र थे। जब किसान की वृद्धावस्था आयी तो उसने सोचा कि अब मुझे अपनी यह समस्त धन सम्पदा, जायदाद दानधर्म में लगाना चाहिये। हमारा वंश आगे भी इसीतरह फलता-फूलता रहे, दानधर्म आदि का पालन होता रहे, इसके लिये मुझे अपनी इस संपत्ति को योग्य हाथों में सौंपना श्रेष्ठ रहेगा। हमारे तीन पुत्र हैं अब मुझे उन तीनों में से योग्य पात्र को खोजना होगा। और अपना उत्तराधिकारी घोषित करके, निश्चिंत होकर अपना अंत समय सुख-शांति से धर्मध्यान पूर्वक बिताना होगा।

एक दिन किसान ने अपने तीनों पुत्रों को बुलाया और कहा, बेटा! अब तुम लोग बड़े हो गये हो। एक पिता का कर्तव्य होता है कि वह अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा और संस्कारों से उन्हें योग्य बनाये। जो पिता अपने इन कर्तव्यों का पालन न कर उन्हें दूसरों के भरोसे छोड़ देते हैं उनके शैक्षिक विकास के साथ नैतिक व धार्मिक संस्कारों के बीजारोपण पर ध्यान नहीं देते, वे एक सच्चे पिता की भूमिका अदा नहीं कर पाते।

उस किसान ने अपने बेटों से कहा कि अब आप लोगों को अपने जीवन को अच्छी तरह से जीने के लिये कुछ कर्म करने का प्रयास करना चाहिये। अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये। पुत्रों ने कहा–पिताजी! आप जैसा कहेंगे हम वैसा करेंगे। पिता ने तीनों पुत्रों के लिये मकान निर्धारित कर दिये और एक-एक बोरा गेहूँ का दे दिया, कहा-बेटा! जाओ इसके द्वारा तुम अपने जीवन का निर्वाह करो। तीनों पुत्र कुछ सोच में पड़ गये किंतु पिता ने कहा है तो करना तो पड़ेगा ही। वे तीनों पुत्र बोरेभर गेहूँ लेकर अपने-अपने मकान पर पहुँच गये।

घर में बैठा पहला बेटा सोचने लगा कि पिताजी ने अपनी संपदा में से मुझे कुछ नहीं दिया। इतनी सारी धन संपदा होते हुए हमारे लिये मात्र एक बोरा गेहूँ दिया। पिताजी तो बड़े ही लोभी निकले। इसतरह वह अपने पिता के विषय में विपरीत सोचने लगा। दूसरा बेटा सोचता है कि चलो जो है सो ठीक ही है। हमें कुछ दिया तो सही हमसे कुछ लिया तो नहीं। तीसरा जो बेटा वह अपने मन में विचार करता है कि पिताजी ने यह एक बोरा गेहूँ प्रदान कर हमें श्रम-परिश्रम करने का अवसर दिया है मुझे इस एक बोरे अनाज का सदुपयोग करना चाहिये।

वह जो पहला बेटा था उसने सोचा कि यदि इस थोड़े से अनाज का मैंने अभी उपयोग कर लिया तो फिर आगे क्या करूँगा। इसलिए इसे अभी सुरक्षित स्थान पर रख देता हूँ विपरीत परिस्थितियों में काम आयेगा। अभी तो किसी के यहाँ काम करके मैं अपना काम चला लूँगा। दूसरे पुत्र ने सोचा, अरे ये तो मात्र एक बोरा अनाज है अब इससे भी क्या व्यापार हो सकता? इतने से तो कुछ भी नहीं हो सकता। उसने सोचा चलो एक काम करते हैं इस अनाज को बाजार में बेचते हैं और जो पैसा आयेगा उससे धनार्जन का कोई उपाय करेंगे।

वह पुत्र बाजार में गया और अनाज बेचकर उसके लिये जो धन प्राप्त हुआ, उसके विषय में विचार करने लगा। अरे! यह धन तो बहुत कम है इससे तो कोई व्यापार हो नहीं सकता। उसने मन ही मन कुछ सोचा और धन लेकर जा पहुँचा जुआरियों के अड्डे पर। सोचा, अब तो मैं धन से धन कमाऊँगा। फिर बड़ा व्यापार कर अपने पिता से भी बड़ा अमीर आदमी बनकर दिखाऊँगा। उसने जुआ खेलना शुरु किया। शुरु में पहले दो दाँव में अपनी जीत होते देख वह फूला न समाया। तीसरी बार में उसने सारा धन दाँव पर लगा दिया, किंतु बिना कुछ

किये, बहुत पाने के लालच में जो पास में थोड़ा भी धन था वह भी हार गया। उदास मन होकर वह अपने घर लौट आया।

जो तीसरा पुत्र था उसने अपने पिता द्वारा प्रदत्त अनाज का बुद्धि-विवेकपूर्वक सदुपयोग किया। जब कुछ समय व्यतीत हो गया तो एक दिन पिता अपने पुत्रों के विषय में जानने को उत्सुक हुआ। उसने सोचा चलो देख तो आयें हमारे पुत्र कैसे हैं? सुखी हैं अथवा दुखी हैं कैसा जीवन जी रहे हैं? वह अपने बड़े पुत्र के घर पहुँचा। बेटा घर से निकल ही रहा था। पिता ने बड़े प्रेम से पूछा-बेटा! कैसे हो? पिता को देखते ही पुत्र से रहा न गया, कहने लगा-पिताजी! आपने तो हमारा जीवन नर्क बना दिया। इतनी धन संपदा होते हुए भी आपने हमारे लिये मात्र एक बोरा अनाज दिया। ये दुख के दिन हम कैसे दूसरों के यहाँ काम कर-करके गुजार रहे हैं यह हम ही जानते हैं। पिता ने पूछा-बेटा! उस एक बोरे गेहूँ का तुमने क्या किया? बेटा बोला-जैसा दिया था वैसा ही रखा है। चाहिये हो, तो वो भी ले जाओ। पिताजी ने पूछा-बेटा! कहाँ रखा है? बेटा बोला-आपको विश्वास नहीं होता, आओ दिखाता हूँ। उसने देखा, अरे! सारा अनाज रखा रखा घुन गया। पिता ने सोचा, अहो! यह बेटा मेरी संपदा का अधिकारी नहीं है। अगर मैं इसे संपदा दे भी दूँगा तो भी यह उसका कोई उपयोग नहीं कर सकेगा अपितु अज्ञानतावश समाप्त कर देगा, संपदा को व्यर्थ गँवा देगा। पिता को बड़ा दुख हुआ। उसने सोचा चलो देखते हैं दूसरे पुत्र ने क्या किया है?

पिता दूसरे बेटे के घर पहुँचा। देखता है, चारों ओर अँधेरा फैला हुआ है। पिता ने पुत्र को आवाज लगाई। बेटा बाहर आया। पिता ने पूछा-बेटा! कैसे हो? घर में इतना अँधेरा क्यों है? पुत्र बोला- पिताजी! आपने हमारे लिये मात्र एक बोरा अनाज दिया था। उससे क्या होता? इसलिये मैंने वह अनाज बेचकर प्राप्त धन को बढ़ाने के लिये जुए में दाँव लगा दिया किंतु दुर्भाग्य से हार गया। मेरे पास अब कुछ नहीं बचा। वह तो अपने मित्रों से उधार माँग-माँगकर काम चला रहा हूँ। इसलिये घर में क्या मेरे तो जीवन में ही अँधेरा छाया हुआ है।

पिता ने सोचा, अहो! हमारा यह बेटा भी हमारी संपत्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। अगर इसे अपना उत्तराधिकारी बनाता हूँ तो यह हमारी समस्त सम्पदा के साथ-साथ हमारी

कुल प्रतिष्ठा को भी नष्ट कर देगा। मिट्टी में मिला देगा। क्योंकि इसने उस गेहूँ को बेचकर जो पैसा आया उसे व्यसन में लगा दिया।

पिता दुखी मन से चल दिया अपने तीसरे पुत्र के घर की ओर। छोटा बेटा घर के बाहर कुर्सी डालकर बैठा हुआ था। उसने जैसे ही दूर से पिताजी को आते हुए देखा तुरंत उठकर खड़ा हो गया और प्रसन्नचित्त हो चरणस्पर्श कर उनका स्वागत किया। पुत्र ने पूछा-पिताजी! आप कैसे हैं? पिता ने कहा-बेटा! मैं बिल्कुल सकुशल हूँ। बहुत दिनों से सोच रहा था तुम तीनों के विषय में, आज निकल ही आया तुम लोगों से मिलने के लिये। पुत्र ने कहा-पिताजी! मैं तो स्वयं ही आपके चरणों में आनेवाला था लेकिन आपको इतने दिनों बाद देखकर बहुत हर्ष हो रहा है। पिता ने पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा— बेटा! कैसा जीवन चल रहा है?

पुत्र ने कहा—पिताजी! आपका आशीर्वाद है। आपके आशीर्वाद से जीवन में कहीं कोई कमी नहीं है। पिताजी! आपने इतना दिया कि आज हमारे पास सब कुछ है। पिता ने कहा-बेटा! मैंने तो तुम्हें मात्र एक बोरा अनाज ही दिया था न। वह बोला—हाँ पिताजी! आपने एक बोरे गेहूँ दिये थे। पिता ने पूछा—कहाँ है वह अनाज? पुत्र बोला—आइये पिताजी मेरे साथ चलिये। पुत्र, पिता का हाथ पकड़ ले जा रहा है। रास्ते में सब जगह अच्छा प्रकाश है। ठंडी हवा के साथ अच्छी मीठी सुगंध आ रही थी। जैसे ही वह और अंदर गया तो देखा एक गोदाम है जो अनाज के बोरों से भरा हुआ है। पुत्र बोला-पिताजी! आपने जो हमारे लिये एक बोरा गेहूँ दिया था देखिए ये रखे हैं। पिता ने कहा-बेटा! हमने तो तुम्हें मात्र एक बोरा गेहूँ दिया था। पुत्र ने कहा—पिताजी! आपने तो थोड़े में ही सब कुछ दे दिया। पिताजी! आपने दिनरात मेहनत करके जो धन-संपदा इकट्ठी की उसमें से वह अनाज हमें दिया। हमने आपकी उस मेहनत के फल को व्यर्थ में नहीं गँवाया। उसका सदुपयोग किया। उस अनाज को खेत में बोया और उससे जो फसल हमें प्राप्त हुई वह एक बोरा अनाज गोदाम के रूप में आपके सामने है। पिता यह देखकर बहुत प्रसन्न हो उठा। उसने मन में विचारा कि हमारा यह पुत्र हमारा उत्तराधिकारी बनने के पूर्ण योग्य है।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि यदि ज्ञानपूर्वक बुद्धि विवेकपूर्वक कोई किसी कार्य को करता है तो थोड़े में भी अधिक फल को प्राप्त कर लेता है। संसार में रहनेवाला हर आदमी

चाहता है कि मुझे श्रेष्ठफल मिले लेकिन वह ऐसा क्या कार्य करे जिससे श्रेष्ठ फल की प्राप्ति हो सके? यह बताते हुए आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि-

खेत्तविसेसे काले ववियं सुवीयं फलं जहा विउलं।
होदि तहा तं जाणह पत्तविसेसेसु दाणफलं।।17।।

'**जहा**' यानि जैसे। '**खेत्तविसेसे**' क्षेत्र विशेष में अर्थात् उत्तम क्षेत्र में। '**काले**' और उत्तम अनुकूल काल में। '**ववियं**', बोया हुआ। '**सुवीयं**' उत्तम बीज। '**विउलं फलं**' उत्तम विपुल फल को देता है। '**तहा**' उसी प्रकार। '**पत्तविसेसेसु**' पात्र विशेष में। '**जाणह**' जान। '**दाणफलं होदि**' दिये गये दान का फल भी विपुल उत्तम होता है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने सम्यग्दृष्टि भव्य जीवात्माओं के लिये अथवा संसार से भयभीत, आत्महित की भावना रखनेवाले भव्य जीवों के लिये सुपात्रदान रूप अपने कर्तव्यपालन की आज्ञा दी थी और साथ यह भी कहा था कि दाता के लिये जिनलिंग को देखकर पात्र-अपात्र का विचार नहीं करना चाहिये। अब यहाँ कह रहे हैं उत्तम पात्र को दान देने का फल उत्तम होता है।

जिनमत में पात्र, अपात्र और कुपात्र ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। आचार्य भगवन् कहते हैं कि जिनलिंग को, पात्रों को देखकर उनमें भेद नहीं करना चाहिये। किंतु पात्र के अलावा अपात्र और कुपात्रों के स्वरूप का भी बोध होना चाहिये। इन तीनों में भेद है इसका भी बोध होना चाहिये। पात्र को दिये गये दान का फल उत्तम होता है। यदि कोई कुपात्रों को दान देता है कुपात्र यानि कुलिंगी अर्थात् जिनलिंग को छोड़कर अन्य जितने भी लिंग लोक में धारण किये जाते हैं वे सब कुलिंग कहलाते हैं

आचार्य देवसेन कृत भावसंग्रह ग्रंथ में कहा भी है—

जं रयणत्तयरहियं मिच्छामयकहियधम्म अणुलग्गं।
जइ वि हु तवइ सुघोरं तहा वि तं कुच्छियं पत्तं।। 530।।

अर्थात् जो रत्नत्रय से रहित है और मिथ्यामतों से सम्बद्ध धर्म का अनुसरण करता है वह भले ही घोर तप करे, फिर भी वह कुत्सितपात्र कुपात्र ही है।

और ऐसे कुलिंगियों को दान देने का फल कुभोगभूमि के रूप में मिलता है।

कुभोगभूमि जहाँ पर कोई एक टाँग वाले, कोई हाथी के जैसे मुख वाले, कोई घोड़े के समान मुख वाले मनुष्य होते हैं। जो वहाँ की सुस्वादु मिट्टी को खाकर अपना जीवन निर्वाह किया करते हैं। कुपात्रदान से ऐसी कुभोगभूमि में जन्म मिलता है। जिन्हें मनुष्य आयु का बंध होता है वे भवांतर में कुभोगभूमि के मनुष्य बनते हैं और मंदकषायी, कुपात्रदानी यदि देवायु को बाँधता है तो भवनत्रिक देवों में मिथ्यात्व के साथ जन्म लेता है।

आचार्य भगवन् कहते हैं जो न जिनलिंगी है और न कुलिंगी हैं वे सभी अपात्र कहलाते हैं।

भावसंग्रह ग्रंथ में कहा भी है—

जस्स ण तवो ण चरणं ण चावि जस्सत्थि वरगुणो कोई।
तं जाणेह अपत्तं अफलं दाणं कयं तस्स।। 531।।

अर्थात् जिसके तप नहीं, जिसके चारित्र नहीं, जिसके न कोई श्रेष्ठ गुण है, उसे अपात्र जानें, उसको दिया गया दान निरर्थक होता है।

जो असहाय हैं, दीन गरीबजन हैं, क्षुद्र पशु, पक्षी, जानवर आदि जीवों को करुणाभाव से जो दान दिया जाता है वह करुणा दान कहलाता है।

वसुनन्दि श्रावकाचार में भी कहा है—

अइबुड्ढ-बाल-मूयंध-बहिर-देसंतरीय-रोडाणं।
जहजोग्गं दायव्वं करुणादाणं त्ति भणिऊण।। 235।।

अतिवृद्ध, बालक, गूंगा, अन्धा, बहिरा, परदेसी, रोगी व दरिद्र जीवों को करुणादान दे रहा हूँ, ऐसा कहकर यथायोग्य भोजन देना चाहिए। यदि कोई उन्हें करुणाभाव से दान दे तो वह योग्य है। यदि उन्हें, 'ये पात्र हैं' ऐसा मानकर दान देता है तो उसका वह दान निष्फल ही जानना चाहिये। करुणाभाव से तो सम्यग्दृष्टि जीव भी दान करता है लेकिन मैंने पात्रदान कर लिया, धर्म का पालन कर लिया, इस भाव से नहीं करता है।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जिसप्रकार एक किसान खेती करता है तो सबसे पहले भूमि को परखता है कि इस फसल के लिये यह भूमि योग्य है अथवा नहीं। कोई फसल काली मिट्टी में होती है कोई लाल मिट्टी में तो कोई पीली मिट्टी में। जो फसल जिस मिट्टी में होती है यदि उसी में उत्तम बीज को बोया जाता है तो उत्तम फल की प्राप्ति होती है। यदि कोई अज्ञानी मूढ़ व्यक्ति अपने उत्तम बीजों को अयोग्य भूमि में वपन कर दे और विचार करे कि भविष्य में हमारे लिये ऐसी-ऐसी उत्तम फसल प्राप्त होगी। तो क्या उसे उत्तम फल की प्राप्ति होगी? नहीं होगी। क्यों? क्योंकि भूमि उत्तम नहीं है। इसलिये भले ही बीज उत्तम हो लेकिन जब तक वह उत्तम, योग्य भूमि में नहीं बोया जाता तब तक उत्तम फल नहीं दे सकता है।

यदि किसी के पास उत्तम बीज है और वह सम्पूर्ण भूमि प्रदेश को एकसमान मानकर कहीं ऊसर भूमि अथवा किसी पहाड़ी क्षेत्र पर उन बीजों को डाल दे और सोचे कि अब तो कुछ समय बाद यहाँ मेरी फसल लहलहायेगी, तो क्या ऐसा संभव हो सकता है? नहीं। अपितु वहाँ पड़ा वह उत्तम बीज नष्ट हो जायेगा अथवा पक्षियों के चुगने के काम आयेगा।

इसलिये उत्तम बीज तो उत्तमभूमि में ही बोना चाहिये तभी उत्तम फल की प्राप्ति हो सकती है। कई बार क्या होता है कि भूमि तो उत्तम है किंतु बीज उत्तम नहीं है श्रेष्ठ किस्म का नहीं है। तो ऐसे बीज को कितनी भी अच्छी, उत्तम, योग्य भूमि में बोया जाये तो भी कभी उत्तमफल नहीं मिल सकता। इसलिये बीज और भूमि दोनों का ही योग्य व उत्तम होना आवश्यक है और इसके साथ-साथ काल भी योग्य अनुकूल होना चाहिये।

बरसात का मौसम चल रहा हो तेज बारिश हो रही हो। खेत पानी से भर गये हों अब उसमें अगर कोई गेहूँ उगाना चाहे तो क्या गेहूँ की फसल खड़ी हो सकती है? नहीं हो सकती अपितु ऐसे में बोया गया बीज भी नष्ट हो जायेगा। अगर कोई ऐसे में चावल की खेती करेगा तो उसके वह उपयुक्त क्षेत्र काल होने के कारण निश्चित रूप से अच्छी फसल को प्राप्त कर सकेगा। इसलिये भूमि, बीज के साथ-साथ काल भी योग्य होना चाहिये।

जैसे बीज उत्तमभूमि उत्तमकाल में बोया जाता है उसीप्रकार दाता को दान भी योग्य उत्तमपात्र के लिये योग्यकाल में देना चाहिये। तभी निश्चित रूप से वह दान सफल होगा। और विपुल फल को देनेवाला होगा। आचार्य भगवन् कहते हैं कि जब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव

ये चारों ही अनुकूल होते हैं तब फल की प्राप्ति होती है। जब उत्तम भूमि, उत्तम काल में, उत्तम बीज बोते हैं तो उत्तम फल प्राप्त होता है। उसी प्रकार जब कोई श्रावक श्रेष्ठ भावों से, श्रेष्ठ द्रव्य अर्थात् शुद्ध प्रासुक संयम को वर्द्धमान करनेवाली योग्य वस्तु, योग्यकाल अर्थात् उचित काल में, आहारदान की बेला में, उत्तमपात्र यानि निर्ग्रंथ मुनिराज, मध्यम पात्र- आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक आदि तथा जघन्य पात्र-अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक, ऐसे पात्रों को दान देता है तो उसके लिये पात्र के अनुसार फल की प्राप्ति होती है।

कोई श्रावक यदि उत्तमपात्र अर्थात् निर्ग्रंथ मुनिराज के लिये उत्तम भावों से उत्तमद्रव्य योग्यकाल में दान करता है तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि वह उत्तम भोगभूमि को प्राप्त होता है। यदि मध्यमपात्रों को दान दिया जाता है तो मध्यम भोगभूमि प्राप्त होती है और यदि जघन्य पात्रों को आहार देता है तो जघन्य भोगभूमि में जन्म प्राप्त करता है। इसलिये कहा है पात्रों में विशेषता होने से दान के फल में भी स्वत: ही विशेषता आ जाती है। बशर्ते दाता के द्वारा दी जानेवाली द्रव्य उत्तम हो, दाता के भाव तथा काल उत्तम हों व उत्तमपात्र हो योग्यपात्र हो तो दान का फल भी विशेष होगा उत्तम होगा।

लेकिन बंधुओ! इस लोक में उत्तमपात्रों का मिलना अत्यंत दुर्लभ है। दिगम्बर निर्ग्रंथ साधक आपके लिये कहीं भी, किसी भी समय सुगमता से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। विचार कीजिएगा, आप अपने घर पर होते हैं आपके यहाँ आपके खूब मिलने-जुलनेवाले आते हैं मेहमान आते हैं आप जिनकी खूब प्रसन्नचित्त होकर खातिरदारी करते हो। आपने खूब मेहनत की, धन कमाया और उसका उपयोग मेहमानों की खातिरदारी में किया। बंधुओ! आपका वह धन और धान्य उनके माध्यम से नष्ट हो गया। क्यों? क्योंकि उसका कुछ भी विशेष फल आपको प्राप्त होनेवाला नहीं है।

आप जीवनभर मेहनत कर-करके धन कमाते हैं। आपके घर में मेहमान रिश्तेदार आते हैं। अड़ौसी-पड़ौसी भी आ जाते हैं। व्यापारी वर्ग आदि भी आते जाते हैं। आप अपनी सामर्थ्य योग्यतानुसार उनके लिये खूब रुचिपूर्वक भोजन कराते हो। अपने परिवार की प्रतिष्ठा के लिये विभिन्न प्रीतिभोज आदि आयोजन करते हो। लेकिन इन सबसे आपको कुछ भी विशेष फल प्राप्त नहीं होता है। क्यों? क्योंकि न वे उत्तम पात्र हैं, न मध्यम पात्र हैं, और न ही जघन्यपात्र

हैं। वे सभी तो अपात्र हैं उन अपात्रों के लिये भोजन करा-कराकर आप आनंदित रोमांचित होते हो। अहो! मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है अपने सामाजिक कर्तव्यों का निर्वाह किया, अपने धर्म का निर्वाह किया। विचार करना, यह आपका सामाजिक व्यवहार हो सकता है लेकिन धर्म नहीं हो सकता। अपात्रों को भोजन कराने से पात्रदान का फल प्राप्त नहीं हो सकता है।

आपने खूब विशाल प्रीतिभोज का आयोजन किया। तरह-तरह के व्यंजन बनवाये। लाखों रुपये भोजन कराने में लगाये। सबको भोजन कराया लेकिन भोजन कराने का फल कितना मिला? इसे कहते हैं-

रात भर पीसो और पारे भर पाओ।

वहीं किन्हीं निर्ग्रंथ मुनिराज का दर्शन मिला। उन्हें देखकर मन में भाव आया कि अहो! धन्य है आज का यह दिन, जो ऐसा सुयोग मिला। आज परम दिगंबर निर्ग्रंथ मुनिराज हमारे लिये प्राप्त हुए हैं आज तो हमारे सातिशय पुण्य का उदय है। क्यों? क्योंकि

'पुण्य पुंज बिन मिलहि न संता।'

बिना पुण्योदय के संतों के दर्शन नहीं मिलते। ऐसे निर्ग्रंथ संतों का दर्शन पापक्षय करता है। मन के संताप को हरता है। आत्मशक्ति का विकास करके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है इसलिये कहा है-

गङ्गापापं, शशि तापं, दैन्यं कल्प-तरु-स्तथा।
पापं तापं च दैन्यं च हंति साधु समागमः।। सर्वो.।।

अर्थात् लोक में कहा जाता है कि गंगा पाप को, चन्द्रमा संताप को, और कल्पतरु दीनता दरिद्रता को नष्ट करते हैं परंतु संत समागम पाप, संताप और दैन्यता इन तीनों को नष्ट कर देता है।

आपने किन्हीं निर्ग्रंथ मुनिराज को देखा और मन में ऐसे भाव बनाये कि अहो! आज ऐसा सुयोग हमें प्राप्त हुआ कि निर्ग्रंथ मुनिराज हमारे लिये प्राप्त हुए हैं। ऐसे स्वपर उपकारी आत्मसाधकों, तपोधनों को दान देकर हम अपनी इस पर्याय को सार्थक बनायेंगे। अपने श्रावक धर्म को निभायेंगे। अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

आपने भक्तिभाव पूर्वक मुनिराज का पड़गाहन किया। पड़गाहन के बाद उन्हें अपने गृह तक लाये। घर में, भोजनशाला में प्रवेश कराया। नवधा भक्तिपूर्वक उनकी आराधना की। मुनिराज शांतमुद्रा में पाटे पर विराजमान हैं। आपने हर्षित चित्त होते हुए उनके लिये शुद्ध प्रासुक आहार युक्त थाली दिखाई। मुनिराज ने आपकी थाली में से सारे व्यंजन निकलवा दिये। क्यों? पता चला आज तो महाराज का नीरस है। आज कोई षट्रस मिश्रित भोजन नहीं चलेगा। आज तो रूखा भोजन लेंगे।

एक दिन राकेश मंत्री जी के यहाँ आहार हुआ। आहारचर्या के बाद आकर बोले–महाराज श्री! सबके यहाँ बरसात हो रही है और हमारे यहाँ सूखा पड़ रहा है। क्यों? क्योंकि उस दिन हमारा नीरस आहार था। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रावक का भाव तो यह होता है कि हम निर्ग्रंथ मुनिराज के लिये उत्तम से उत्तम, श्रेष्ठ और अनुकूल आहार दें, लेकिन साधु महाराज आये और नीरस आहार लेकर चले गये।

बंधुओ ध्यान रखना! साधु के, उत्तम पात्र के हाथ में रखा गया सूखा ग्रास भी विपुल फल को देनेवाला होता है। अभी हमने बताया था कि कहीं ऐसा होता है कि थोड़ा दो और फल अधिक मिलता है और कहीं दिया तो बहुत। खूब सुस्वादु व्यंजनों से हजारों लोगों को भोजन कराया लेकिन फल में क्या मिला? संसार मिला। थोड़ा सा तुच्छ फल ही मिला। आखिर कारण क्या है? दान दोनों ही जगह दिया जा रहा है फिर यह अंतर क्यों? तो इसका समाधान आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज 'तत्त्वार्थ सूत्र जी' ग्रंथराज में देते हुए कहते हैं कि–

विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः।। 39-7।।

अर्थात् विधि विशेष होने से, द्रव्य विशेष होने से, दाता विशेष होने से, एवं पात्र विशेष होने से दान के फल में भी विशेषता आ जाती है।

जो श्रावक विवेकी बुद्धिमान होता है वह स्वविवेक से यह निर्णय करता है कि जहाँ थोड़ा देने पर भी अधिक फल की प्राप्ति हो ऐसा कार्य करना ही बुद्धिमत्ता है।

बंधुओ! जिनेन्द्र भगवान ने तीन प्रकार के पात्र बताये हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य। इन तीनों पात्रों को दान देने का फल भी उत्तम भोगभूमि, मध्यम भोगभूमि, और जघन्य भोगभूमि में जन्म कहा है। एक समय ऐसा था श्रेष्ठ निर्ग्रंथ योगीराज तीर्थंकर जैसे महामुनि आहारचर्या करते थे तो देवों के द्वारा दाता के घर में पंचाश्चर्य किये जाते थे। उस दाता के भाग्य को देवगण

सराहते थे। लेकिन सामान्य जनों को भोजन कराने पर कुछ आश्चर्य होता है क्या? एक भी नहीं होता है। इसीलिये विवेकी धर्मात्मा सदैव यह भावना भाते हैं कि मुझे भोजन करने से पूर्व किसी पात्र को आहारदान देने को मिल जाये। पहले मैं उन्हें भोजन कराता फिर स्वयं भोजन करता।

जैसे माँ पहले अपने बेटे को भोजन कराती है फिर स्वयं भोजन करती है। ऐसे धर्मात्मा श्रावक पहले पात्रों के लिये आहारदान करता है पश्चात् स्वयं स्वीकार करता है और अपना सौभाग्य मनाता है कि अहो! आज हमारा यह आहार किसी पात्र के संयमवर्द्धन के काम आ गया। और यदि कोई अपने ऐसे कर्तव्य का पालन नहीं करता है तो वह अपने भोजन को मात्र नष्ट कर रहा है। उसे उसके बदले में कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

जैसे कोई किसान अपने समस्त धान्य को खा-पीकर पूरा करदे, तो उसे भविष्य में क्या फल मिलेगा? और यदि उसने अपने समस्त अनाज में से थोड़ा अनाज खेत में उपयुक्त काल व योग्य भूमि में बो दिया तो उस थोड़े से दानों के बदले में कितना मिलेगा? निश्चित रूप से उत्तम फल की प्राप्ति करेगा।

आप सभी के जीवन में धर्म उद्घाटित हो। गृहस्थ जीवन में रहते हुए बुद्धि विवेकपूर्वक अपने धर्म का पालन करके अपनी इस पर्याय को सार्थक करें। साथ ही अपनी आगामी पर्यायों को भी सँभालें। यह मानव जीवन बहुत सुंदर है। बस सँवारने की कला आनी चाहिये, आप सभी का जीवन सुंदर बने, सहज बने, सरल बने। इसी भावना के साथ...।

उत्तम भूमि पाओगे, उत्तम फसल उगाओगे।
गर सुपात्र को पाओगे, दान सफल कर जाओगे।।
सम्यग्दृष्टि यह, हो-हो-2, कर्त्तव्य निभाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

पृष्ठ 144 का शेष

जिनागम बाह्य स्वतंत्र चिंतन की मान्यता वाले जैनाभासी संघ

केवलज्ञानी भोजन करते हैं, तथा उन्हें रोग भी होता है। वस्त्र धारण करने वाला भी मुनि मोक्ष प्राप्त करता है। ऐसी आगमविरुद्ध मान्यता चलाई।

2. द्राविड संघ- आचार्य देवसेन ने दर्शनसार में कहा है—

पंचसए छब्बीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
दक्खिण महुराजादो दाविड संघो महामोहो।।28।।

अर्थात् विक्रम राजा की मृत्यु के 526 वर्ष बीतने पर दक्षिण मथुरा नगर में यह महा मोहरूप द्राविड संघ उत्पन्न हुआ।

सिरिपुज्जपादसीसो दाविडसंघस्स कारगो दुट्ठो।
णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्तो।।24।।
अप्पासुयचणयाणं भक्खणदो वज्जिदो मुणिंदेहिं।
परिरइयं विवरीयं विसेसियं वग्गणं चोज्जं।।25।।
बीएसु णत्थि जीवो उब्भसणं णत्थि फासुगं णत्थि।
सावज्जं ण हु मण्णइ ण गणइ गिह कप्पियं अट्ठं।।26।।
कच्छं खेत्तं वसहिं वाणिज्जं कारिदूण जीवंतो।
ण्हंतो सीयलणीरे पावं पउरं स संजेदि।।27।।

अर्थात् श्री पूज्यपाद स्वामी का शिष्य वज्रनन्दि द्राविड संघ का उत्पन्न करने वाला हुआ। यह प्राभृत ग्रंथों का ज्ञाता और महान पराक्रमी था। मुनिराजों ने उसे अप्रासुक या सचित्त चनों के खाने से रोका, पर उसने न माना और बिगड़कर विपरीत रूप प्रायश्चित आदि शास्त्रों की रचना की। उसके विचारानुसार बीजों में जीव नहीं है। मुनियों को खड़े-खड़े भोजन करने का विधि नहीं है। कोई वस्तु प्रासुक नहीं है। वह सावद्य भी नहीं मानता और गृहकल्पित अर्थ को नहीं गिनता। कछार, खेत, वसतिका और वाणिज्य आदि कराके जीवन निर्वाह करते हुए, शीतल जल में स्नान करते हुए उसने प्रचुर पाप का संग्रह किया।

3. यापनीय संघ— आचार्य देवसेन ने दर्शनसार में कहा है।

कल्लाणे वरणयो सत्तसए पंच उत्तरे जादे।
जावणियसंघभावो सिरिकलसादो हु सेवडदो।।29।।

शेष पेज नं. 228 पर

गाथा - 18
(प्रवचन)

●

सात क्षेत्रों में दान उत्तम फल का कारण

31.08.2013

भिण्ड

(सप्तक्षेत्रों में दिये गये दान का फल)

इह णिय-सुवित्त वीयं, जो ववदि जिणुत्त-सत्त-खेत्तेसु।
सो तिहुवण-रज्ज-फलं, भुंजदि कल्लाणपंचफलं।। 18।।

* अन्वयार्थ *

(**जो**) जो पुरुष (**जिणुत्त**) जिनेन्द्र देव द्वारा कहे गये (**सत्त-खेत्तेसु**) सप्त क्षेत्रों में (**णिय-सुवित्त-वीयं**) अपने न्यायोपार्जित श्रेष्ठ धनरूपी बीज को (**ववदि**) बोता है (**सो**) वह (**इह**) इसलोक में (**तिहुवण-रज्ज-फलं**) तीनों भुवनों के राज्यरूपी फल को और (**कल्लाण-पंचफलं**) पंचकल्याणक रूप फल को (**भुंजदि**) भोगता है।

अर्थ-जो निकट भव्य पुरुष अपने न्याय से उपार्जित श्रेष्ठ धनरूपी बीज को सप्तक्षेत्र रूपी भूमियों में बोता है, वह इस लोक में त्रिभुवन के राज्यरूप फल को और गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-मोक्ष रूप पंचकल्याणक को भोगता है।

जिनबिंब निर्माण
जिनालय निर्माण
जिनागम पंथ सिंहद्वार
तीर्थयात्रा
जिनालय जीर्णोद्धार
पंचकल्याण प्रतिष्ठा
औषधदान, शास्त्रदान, अभयदान, आहारदान
जिनागम पंथ ग्रंथालय
जिनागम प्रकाशन

28

रयणोदय

बोता जो धन बीज महान, जिनवर कथित सप्त स्थान।
त्रिभुवन का साम्राज्य फले, फलता सौख्य पंच कल्याण।।
तीर्थंकर जैसा, हो-हो-2, सुख वैभव पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

भगवान महावीरस्वामी कहते हैं अपनी आवश्यकताओं को समझो। **जो अपनी आवश्यकताओं को समझकर मात्र आवश्यकता पूर्ति का उपाय करते हैं वे विवेकी कहलाते हैं और जो तृष्णा की पूर्ति में लगे रहते हैं वे अज्ञानी कहलाते हैं।**

यदि किसी विद्यार्थी से यह कहा जाये कि तुम्हें विद्यालय जाना है और अपने विषय की पुस्तकों को साथ लेकर जाना है तो वह बालक यही सोचेगा कि जितनी पुस्तकें उपयोगी हैं मैं उतनी पुस्तकें लेकर ही जाऊँगा। शेष पुस्तकों को यथास्थान रखा रहने दो। उनसे अभी हमारा प्रयोजन नहीं है। इसप्रकार एक बालक भी अपनी आवश्यकता को समझता है।

बंधुओ! भगवान महावीर ने प्रत्येक संसारी जीव के लिए आवश्यकता पूर्ति का उपदेश दिया और बताया कि जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए कदाचित् धन उपार्जन आदि भी करता है, अनेक प्रकार के उद्यम, व्यापार, उद्योग आदि करता है तो वह उसके लिए करने योग्य है। और यदि आसक्ति रखकर कोई आवश्यकता से अधिक संग्रह करता है तो भगवान महावीर कहते हैं कि वह जीव अज्ञानी है।

यहाँ कोई प्रश्न करे—महाराज श्री! अपनी पारिवारिक जीवनोपयोगी आवश्यकताओं को यदि हम प्रतिदिन धनार्जन के माध्यम से पूरा करना चाहें तो यह संभव नहीं है। क्योंकि कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं जो हमें प्रातःकाल से ही पूर्ण करनी होती हैं। इसका समाधान करते हुए भगवान महावीर कहते हैं कि तुम एक काम करो, यदि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तुम्हें कुछ संग्रह भी जरूरी है तो तुम उसका परिमाण बना लो कि हमें अपने परिवार के संचालन के लिये दस लाख, पचास लाख, एक करोड़, दो करोड़ इतने की आवश्यकता है हम इससे ज्यादा धन आदि का संचय नहीं करेंगे। एक लिमिट (Limit) करो, एक सीमा बनाओ, भोगोपभोग का परिमाण करो जिससे तुम्हारे लिये अनीति-अन्याय न करना पड़े। **अहो! आवश्यकताओं की पूर्ति तो न्यायपूर्वक हो सकती है लेकिन आसक्ति की पूर्ति न्यायपूर्वक नहीं हो सकती।**

कोई-कोई मनुष्य अक्सर यह कहते हुए पाये जाते हैं कि 'महाराज श्री! अगर हम ईमानदारी से चलेंगे तो हमारा पेट भी नहीं भर पायेगा।' लेकिन हम यह कहते हैं कि जो ईमानदारी से चलते हैं उनका ही पेट भरता है। और जो बेइमानी से चलते हैं उनकी तो पेटी भरती है, कभी पेट नहीं भरता। पेट तो उन्हीं का भर सकता है जो न्याय-नीतिपूर्वक अपना जीवन जीते हैं। अन्यथा यह पेट है इस पेट को भरने वाले इस धरा पर अनेकों जीव हुये। सामान्य जीव भी हुये और महापुरुष भी हुये। पर कभी इस पेट को तृप्त नहीं कर पाये, भर

नहीं पाये। इसलिये **पेट और पेटी ये दोनों कभी नहीं भरते। अगर कोई अपना पूरा जीवन भी दाँव पर लगा दे तो भी इनकी पूर्ति नहीं कर सकता।**

भगवान महावीर ने कहा कि तुम इस सत्य को जान लो, समझ लो कि पेट और पेटी ये कभी भर नहीं सकते। और यदि तुम पागल बन इनको भरने का उद्यम कर रहे हो, तो अपने समय को, अपने जीवन को व्यर्थ गँवा रहे हो। इसलिए **अच्छा होगा कि हम अपनी आवश्यकताओं को समझ लें, पेट भी भर जायेगा पेटी भी भरेगी, साथ ही जीवन में सुख और शांति भी बढ़ेगी।**

आप स्वयं सोचिएगा, जबसे आप बड़े हुए हो, तबसे आपकी आवश्यकताएँ बढ़ी हैं या आसक्तियाँ बढ़ी हैं। **आवश्यकताएँ तो हर प्राणी के लिये जन्म से ही सुनिश्चित होती हैं लेकिन आसक्तियों का कोई ओर-छोर नहीं होता। क्यों ? क्योंकि इच्छाएँ आसक्तियाँ अंतहीन होती हैं।** आपका जब जन्म हुआ तबसे ही आपको भोजन मिला, रहने के लिए स्थान मिला, वस्त्र आदि भी उपलब्ध हुये। ये भोजन, मकान, वस्त्र प्रत्येक व्यक्ति के लिये मूलभूत आवश्यकता होती है। जीवनभर आपके लिये इनकी आवश्यकता रहती है। लेकिन इनके अलावा बाल्यावस्था से जैसे-जैसे आप बड़े होते जाते हो वैसे-वैसे आपकी आसक्तियाँ बढ़ती चली जाती हैं। अगर व्यक्ति आवश्यकता पूर्ति करना चाहे तो वह पूर्ण हो सकती है लेकिन आसक्तियों की पूर्ति करना संभव नहीं होता।

व्यक्ति छाया के पीछे चाहे कितना भी दौड़े वह उसको पकड़ नहीं सकता, ऐसे ही आसक्ति पूर्ति हेतु व्यक्ति माया के पीछे चाहे कितना दौड़े पूर्ण नहीं कर सकता। इसलिये इस चिंतन को छोड़ दीजिए कि ईमानदारी से काम करेंगे तो पेट ही नहीं भरेगा। यदि आपको पेट-पेटी भरने के साथ-साथ सुख शांति भी चाहिये तो आपको न्याय-नीति का मार्ग ही स्वीकारना होगा। यह बात भी ध्यान रखिएगा कि अन्याय अनीति से आप कितना भी वैभव प्राप्त करलें लेकिन आपका वह धनवैभव आपके भले में आपके काम नहीं आता। अपितु वह निकलने के ऐसे रास्ते तलाशता है जिसके विषय में कभी आपने सोचा ही न होगा कि हमारे जीवन में ऐसी घटना भी घट सकती है। जबकि ईमानदारी से कमाया गया धन मानसिक शांति देने के साथ-साथ चिरस्थायी भी होता है।

किसी नगर में एक सेठ रहता था जिसका नाम रामलाल था। अपनी दुकान पर आनेवाले प्रत्येक मनुष्य को ठगना उसका नित्य का काम था। इससे उसे काफी धन तो प्राप्त होता था किंतु फिर भी उसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं हो पाती थी। क्यों? क्योंकि उसका वह धन उसके पास टिक नहीं पाता था। कभी बीमारी में खर्च हो जाता, तो कभी दुकान में कोई बड़ा नुकसान हो जाता, तो कहीं बेटा व्यसनों में बरबाद कर देता था। घर की ऐसी स्थिति देखकर पुत्रवधु अक्सर अपने ससुर को समझाती रहती थी कि पिताजी! बेईमानी के धन से कभी बरकत नहीं होती है। वह सेठ रामलाल उसकी इन बातों को दकियानूसी बताकर अनसुनी कर देता, टाल देता था।

लेकिन कहीं न कहीं उसे बहू की बातों में सत्य भी नजर आता था, इसलिये उसने सोचा कि क्यों न अपनी बहू की बातों की सच्चाई की परीक्षा ली जाए। इसके लिये उसने ईमानदारी पूर्वक कुछ धन कमाया और उस धन से सोने का एक सिक्का बनवाया। और उस सिक्के पर अपना नाम भी अंकित करवा दिया। फिर उस सिक्के को एक छोटे से कपड़े में बाँधकर नगर के चौराहे पर सबकी नजरें बचाकर डाल दिया। कुछ दिनों तक तो वह कपड़ा चौराहे पर आते-जाते लोगों के द्वारा इधर-उधर होता रहा और कुछ दिनों बाद कचरे के साथ पास ही के तालाब में फेंक दिया गया।

एक दिन एक मछुआरा तालाब पर पहुँचा। उसने मछली पकड़ने हेतु अपना जाल फैलाया तो जाल में वह कपड़ा भी फँसा चला आया जो किसी जलमग्न पौधे की टहनी में फँसा हुआ था। मछुआरे ने जब उस कपड़े पर कुछ चमकती हुई वस्तु देखी तो उसने तुरंत हाथ से उठाकर देखा। अरे यह तो सोने का सिक्का है और इस पर तो सेठ रामलाल का नाम लिखा हुआ है। वह मछुआरा गरीब जरूर था लेकिन ईमानदार था। उसने सेठ को वह स्वर्ण सिक्का जाकर भेंट कर दिया।

सेठ रामलाल आश्चर्य में पड़ गया, अहो! इतने दिनों बाद भी यह सोने का सिक्का मेरे पास लौटकर आ गया। सेठ रामलाल मन ही मन अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसे विश्वास हो गया कि ईमानदारी से कमाया धन यूँ ही छोड़ देने पर भी लौटकर आ जाता है।

इसलिये भगवान् महावीर कहते हैं कि अपनी लोभ कषाय को क्षीण करने के लिए अपने भोग-उपभोग का परिमाण बना लो। यदि कोई व्यक्ति किसी पात्र में जल भर रहा है और वह आवश्यकता से अधिक भरता चला जायेगा तो स्वत: ही उस पात्र से बाहर निकलने लगेगा। यदि आपने जल के निकलने का मार्ग तैयार कर दिया है अर्थात् ज्यादा भर दिया है तो जल को भी बाहर निकलने के लिये मार्ग खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जल भरने के लिये आपने टंकी आदि बनाई यह लिमिट (Limit) है। रहने के लिये मकान बनाया यह एक लिमिट (Limit) है कि हम इतने स्थान में ही निवास करेंगे। उस मकान में भी आपने एक रसोई बनाई यह भी एक लिमिट (Limit) है कि इतने स्थान पर ही हम भोजन आदि की सामग्री संग्रहीत करेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि आपके घर में मकान में हर चीज की एक लिमिट (Limit) है लेकिन आसक्तिपूर्ति की कोई लिमिट (Limit) नहीं है और इसके लिये व्यक्ति अपना पूरा जीवन, सुख, चैन, शांति सब कुछ दाँव पर लगाये बैठे हुए हैं।

बंधुओ! जब सिकंदर भारत आया तो उसके अन्तरंग में यह चाह थी कि मैं विश्व विजेता बनूँ। किंतु विश्व विजेता बनने के यथार्थमार्ग का बोध न होने के कारण उसने सोचा कि मैं अपनी शक्ति के बल से सारी दुनिया को अपनी मुट्ठी में कर लूँगा। मैं युद्ध करूँगा। लूटपाट करूँगा। अपने विरोधियों को तहस-नहस करके सम्पूर्ण विश्व पर एक छत्र राज्य करूँगा। लेकिन वह शायद इस सत्य से अपरिचित था कि **शक्ति और शस्त्र के द्वारा कभी विश्व विजेता नहीं बना जाता। विश्वविजेता बनने के लिये तो शक्ति और शस्त्र के अहंकार को त्यागना होता है।**

विश्व-विजेता बनने का मार्ग अत्यंत सरल है सुगम है इसके लिये आपको ज्यादा कुछ नहीं करना है सिर्फ अपने आप को पहचानकर अपनी आसक्तियों को छोड़ना है और भगवान महावीर के द्वारा बताये गये साधना के मार्ग को मोक्षमार्ग को प्राप्त करना है। आप उस मोक्षमार्ग के फल को प्राप्त होकर स्वयमेव विश्व-विजेता बन जायेंगे। वह सिकंदर भी यह स्वप्न लेकर चला कि मैं भी विश्व-विजेता बनूँ। विश्व-विजेता बनने का स्वप्न जरूर देखना किंतु सिकंदर की तरह विश्व-विजेता बनने का मार्ग मत चुनना। अगर चुनना ही है तो भगवान महावीर का मार्ग चुन लेना। इससे न तो किसी अन्य को कष्ट पीड़ा परेशानी होगी। न कोई हिंसा लूटपाट

जैसे दुष्कृत्य ही होंगे। न अन्य के साथ दुर्व्यवहार होगा और न ही स्वयं को दुख भोगना पड़ेगा। क्योंकि भगवान महावीर ने इस दुनिया को शांति और सहजता का मार्ग सुझाया।

सिकंदर हाथ में नंगी तलवार लिये अपनी सेना के साथ जहाँ से गुजर जाता था, वहाँ रक्त की नदियाँ बहने लग जाती थीं। सिकंदर आ रहा है इस भय से व्यक्ति स्वयं ही मृत्यु को स्वीकार कर लेते थे। और भगवान महावीर जहाँ-जहाँ पहुँचते वहाँ लोग निर्भय होकर उनकी शरण में पहुँच जाते थे। सिकंदर जब यूनान से भारत आ रहा था तो किसी विद्वान ने उससे कहा कि आप भारत को जीतने जा ही रहे हैं तो वहाँ से एक दिगम्बर संत को अपने साथ जरूर लाना। उसने कहा— इसमें कौन सी बड़ी बात है? जब सारा भारत ही मेरे आधीन होगा तो दिगम्बर संत को लाना कौन सी बड़ी बात होगी?

जब वह भारत आया तो भारत के राज्यों पर उसने कब्जा करना शुरु किया। एक दिन वह राजदरबार में बैठा हुआ था तब उसने दिगम्बर संतों की महिमा के बारे में सुना। उनके महान ज्ञान, निस्पृही स्वभाव और उत्कृष्ट तप-त्याग साधना के विषय में सुना। सिकंदर ने सैनिकों को आदेश दे दिया, सैनिको जाओ और दिगम्बर संत को शीघ्र ही हमारे सामने पेश करो। सैनिक साधुओं को खोजते-खोजते नगर के बाहर पहुँचे, जहाँ खुले आसमान के नीचे एक दिगम्बर संत विराजमान थे, अपनी सहज साधना में लीन थे। सैनिकों ने उन्हें देखा और उनके समीप जाकर कहा— आपको सम्राट सिकंदर ने अपने राजदरबार में आमंत्रित किया है।

दिगम्बर मुनिराज बोले— आप लोग शायद हमारी साधना को नहीं समझते। राजा हो अथवा प्रजा हमारा किसी से कोई प्रयोजन नहीं होता, इसलिये हम आपके सम्राट की आज्ञा आदेश को स्वीकार नहीं सकते। सैनिकों ने सारी बात सम्राट के लिये कह सुनायी। सिकंदर को आश्चर्य हुआ कि इस धरती पर ऐसे भी प्राणी हैं जिन्हें सिकंदर का भय नहीं। राजाज्ञा का उल्लंघन करने का फल तो वे जानते ही होंगे। अपनी मृत्यु के भय से रहित ऐसे निर्भीक लोगों से हम अवश्य मिलना चाहेंगे।

सिकंदर ने पुन: सैनिकों से कहा— जाओ और उन साधु जी से कहो कि सम्राट सिकंदर आपका दर्शन करना चाहता है। सैनिकों ने सम्राट का आदेश साधु जी के लिये कह सुनाया।

मुनिराज ने कहा- अगर तुम्हारा सम्राट दिगम्बर साधु के दर्शन करना चाहता है तो वह स्वयं आये। संत किसी को अपना दर्शन देने नहीं जाते। जिनागम पंथ में, जिनशासन में संत स्वयं किसी को दर्शन देने नहीं जाते अपितु जिन्हें करना हो वे निर्मल परिणामों से निर्मल भावों से स्वयं उपस्थित हों। सैनिकों ने सारा वृतांत सिकंदर के लिये सुना दिया।

सिकंदर बोला ये साधु हैं या अपराधी। ये तो अहंकारी मानव मालूम पड़ते हैं। शायद ये नहीं जानते कि सिकंदर कौन है? जाओ और बोलकर आओ, अगर सिकंदर की आज्ञा का पालन नहीं हुआ तो परिणाम अच्छा नहीं होगा। सिकंदर की आज्ञा सैनिकों ने मुनिराज को सुना दी।

मुनिराज ने कहा-जो जीता वही सिकंदर। सिकंदर को पता चला कि साधु जी ने यह कहा, **'जो जीता वही सिकंदर'**। अब तो उसके अभिमान को ठेस पहुँची। क्रोध से आग बबूला हो गया। बोला-मेरे सामने ये साधु कहाँ टिकेंगे?

गर्मी का मौसम था। ज्येष्ठ की गर्मी पड़ रही थी और मुनिराज चिलचिलाती धूप में शिलातल पर बैठे शांतभाव से अपनी सहज तप साधना में तल्लीन थे। सिकंदर घोड़े पर सवार होकर हाथ में नंगी तलवार लिये उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ विराजमान थे वे निर्ग्रंथ दिगंबर योगीराज। मुनिराज को बैठे देख बोला-मैं सिकंदर हूँ। मुनिराज ने उसकी ओर देखा और दृष्टि नीचे कर ली। घोड़े पर सवार सिकंदर लगाम को खींचता हुआ बोला- तो तुम हो दिगम्बर संत। तुम्हारे पास तन ढँकने को कपड़े नहीं फिर भी इतना अभिमान। इधर आओ मेरे पास। मुनिराज ने कहा- अगर तुम्हें आना है तो आओ, मैं तुम्हारे पास नहीं आ सकता। इतना सुनते ही सिकंदर आपे से बाहर हो गया और यह भी भूल गया कि वह नंगे पैर ही घोड़े पर सवार होकर आया था। वह क्रोध में घोड़े से नीचे उतरा और मुनिराज की ओर बढ़ने के लिये जैसे ही शिला पर पैर रखा तुरंत अपना पैर पीछे खींच लिया। वह शिला आग की तरह संतप्त थी। सिकंदर के अहम भाव ने उसे मुनिराज के प्रति द्वेषी बनाया था लेकिन अब सिकंदर शांतभाव से शिला पर विराजमान मुनिराज को देखने लगा। वह उनकी निर्भीकता, निस्पृहता और तपसाधना के आगे नतमस्तक हो गया, सद्बुद्धि जाग गई। सिकंदर ने मुनिराज से कहा- भो साधक! हम तुम्हें ससम्मान अपने देश ले जाना चाहते हैं।

मुनिराज ने कहा- भो सिकंदर! तू अपना देश छोड़कर इस भारतदेश में क्यों आया? सिकंदर ने कहा-मैं विश्व विजेता बनना चाहता हूँ। मुनिराज ने पूछा- भो सम्राट! बताओ जरा, अगर तुम समस्त विश्व को जीत लो, विश्व की सारी संपदा सब कुछ अपने नाम करलो, उसके बाद तुम क्या करोगे? सिकंदर ने संत की बात को जब सुना तो सोच में पड़ गया, अगर सब कुछ मेरे नाम हो गया तो फिर मैं क्या करूँगा? मृत्यु के बाद सब यहीं छूट जायेगा।

बंधुओ! ध्यान रखना, अगर तुम्हें तुम्हारी आसक्ति के अनुसार सब कुछ उपलब्ध हो जाये, तो भी क्या तुम तृप्त हो सकोगे? अरे, सिकंदर को बुद्धि आ गयी, तुम जैसे सिकंदरों को कब बुद्धि आयेगी?

इसलिये भगवान महावीर कहते हैं कि अपनी आवश्यकताओं को समझो। यदि आवश्यकता से अधिक आपको संग्रह करना है तो उसका भी परिमाण बना लो। क्योंकि आवश्यकता से अधिक का संग्रह हमेशा अन्याय-अनीति पूर्वक ही होता है। मनुष्य की जितनी आवश्यकताएँ हैं वे सब न्याय और नीतिपूर्वक चलने से पूर्ण हो सकती हैं। किंतु व्यक्ति अन्याय-अनीति का आश्रय तब लेता है जब वह आसक्तियों से घिरा होता है।

लोग कहते हैं महाराज श्री! आज के जमाने में अगर न्याय-नीति से चले तो अपने बच्चों का पेट भी नहीं भर पायेंगे। इसका तात्पर्य यह है कि इसे पेट की चिंता नहीं है। जो वास्तव में पेट की चिंता करता है वह ऐसे शब्द बोल ही नहीं सकता क्योंकि न्यायनीति से पेट भरना मुश्किल नहीं अपितु तृष्णा रूपी पेट भरना मुश्किल है। कितना भी विपरीत काल आ जाये तो भी व्यक्ति न्यायपूर्वक धन कमाकर पेट तो भर सकता है। और कदाचित् ना भी भर पाये तो भी भगवान महावीर कहते हैं कि पेट के लिये अन्याय-अनीति मत करना।

क्योंकि अन्याय-अनीति से आया धन आपके पुण्योदय से आपको मिल सकता है पर आपके काम नहीं आयेगा। आप देख लीजिएगा, व्यक्ति येन केन प्रकारेण खूब धन कमाता है और कमा-कमाकर बैंक (Bank) में जमा करा देते हैं। ज्यादा होता है तो विदेशी बैंक (Bank) में जमा करा देते हैं। किसी ने अपने धन को जमीन में समर्पित कर रखा है। मृत्यु के बाद वह धन किसके काम आयेगा? जो धरती में गड़ा है वह वहीं गड़ा रह जायेगा। जो बैंक

(Bank) में जमा है वह वहीं पड़ा रहा जायेगा। और जो विदेशी स्विस बैंक (Swis Bank) में जमा है वह वहाँ की सरकार के काम आयेगा। किसी को पता ही नहीं कि कहाँ कितना धन है यानि तुमने किसके लिये धन कमाया? अन्याय, अनीति, मायाचारी क्यों की? अपने लिये, अपनी आवश्यकताओं के लिये अथवा अपनी आसक्तियों को पूर्ण करने के लिये। इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि भाई पुण्य के कार्य करना, श्रेष्ठ कार्य करना, न्यायनीति पूर्वक धन का अर्जन करना किंतु अन्याय-अनीति का आश्रय मत करना।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने इस गाथा के माध्यम से एक श्रावक के लिये जीवन जीने का मार्ग बताया है। पूर्व भवों में यदि आप पुण्य करके आये हैं तो इसभव में आपके लिये सभी प्रकार के अनुकूल साधन धन-संपदा अवश्य ही मिलेगी, चाहे आप चाहो अथवा न चाहो। यदि आपने श्रेष्ठ पुण्य कार्य किये हैं और उसके फलस्वरूप आपको संपदा आदि प्राप्त हुई है, यदि आपसे पूछा जाये कि आप अपनी संपदा का क्या करोगे? तो आप कहेंगे, हम अपने बच्चों को देंगे। आपके लिए बच्चे इतने अच्छे हैं कि आप अपनी सारी संपदा उनके नाम कर जायेंगे। लेकिन ध्यान रखना, अन्याय-अनीति से कमाई गई संपदा कभी किसी के काम नहीं आती। कदाचित् आपने ऐसी संपदा उन्हें दे भी दी, तो आपके बच्चों के संस्कार स्वयमेव बिगड़ने लग जायेंगे। वे स्वयं भी भ्रष्ट होंगे और संपदा को भी नष्ट कर देंगे।

इसलिये आचार्य भगवन् कहते हैं यदि आपको जीवन निर्वाह हेतु धन का संचय करना है तो न्याय-नीतिपूर्वक कीजिए। क्योंकि जिन जीवों ने आपके घर में जन्म लिया है वे सभी अपने-अपने कर्म के अनुसार फल को प्राप्त होंगे। आचार्य भगवन् श्रीवादीभसिंहसूरि क्षत्रचूड़ामणि ग्रंथ में लिखते हैं-

बुद्धिः कर्मानुसारिणी।। 19-1 ।।

अर्थात् जीवों की बुद्धि कर्मानुसार कार्य करती है जिसकी जैसी होनहार होती है उसकी बुद्धि उसी रूप से परिणत होने लगती है। इसलिये कहा है-

पूत सपूत तो का धन संचय।
पूत कपूत तो का धन संचय।।

आप अपने बेटे को पुस्तक लाकर दे सकते हैं पास नहीं करा सकते। वर्तमान में आप यह भी कह सकते हैं कि महाराजश्री! आप किस जमाने की बात कर रहे हैं अब तो वो जमाना आ गया है कि हम बच्चों को पुस्तकें भी दिला सकते हैं और डोनेशन (Donation) देकर उसे पास भी करवा सकते हैं।

ठीक है, आपने पैसे देकर बच्चे को पास भी करा लिया लेकिन आप उसे बुद्धिमान नहीं बना सकते। बुद्धिमान होना तो उसके क्षयोपशम के आधीन है। अगर आप यह सोचें कि आप उसे योग्य बना देंगे तो यह आपकी भूल है। आप बाहरी साधन तो जुटा सकते हो लेकिन योग्यता तो उसके कर्मानुसार होगी।

आपके घर में जितने भी लोग हैं उन सबका अपना-अपना भाग्य है, अपना-अपना पुण्य है, अपने-अपने कर्म हैं। आप अपने कर्तव्य का निर्वाह तो कर सकते हैं किंतु आप यह मान बैठें कि मैं इनके लिये कमा-कमाकर रख जाऊँ तो ये सभी सुखी जीवन जी सकेंगे, तो यह आपकी भूल है। किसी व्यक्ति से पूछा जाये कि आप अपनी सारी संपदा का क्या करेंगे? वो कहेगा, हम अपनी सारी संपदा अपने बच्चों में बाँट देंगे।

लेकिन एक धर्मात्मा श्रावक अपनी संपदा का क्या करे? तो उनका मार्गदर्शन करते हुए आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कहते हैं कि इस लोक में जो पुरुष जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे हुए सात क्षेत्रों में, सप्त स्थानों में, अपने नीतिपर्वूक उपार्जन किये गये धन रूप बीज को बोता है वह तीनों लोकों के राजरूपी फल को और पंचकल्याणक रूप फल को भोगता है।

आपने तो निर्णय कर रखा है कि मैं अपनी सारी धन-संपदा अपने पुत्रों को देकर जाऊँगा। कभी कौरव और पांडव हुये। धृतराष्ट्र ने भी सोचा कि मैं अपना यह समस्त राज्य वैभव अपने पुत्र दुर्योधन को दूँगा। कहते हैं ना '**बुद्धिः कर्मानुसारिणी**' दुर्योधन की मति भी अपने कर्म के अनुसार थी। पांडवों ने कहा कि आप हमें बस थोड़ा सा हिस्सा दे दीजिए, उसी में हम आराम से अपना जीवन निर्वाह कर लेंगे। लेकिन दुर्योधन राज्य का थोड़ा सा भी हिस्सा देने को तैयार नहीं हुआ। मैं ही सम्पूर्ण राज्य वैभव का अधिकारी हूँ। मैं किसी अन्य को किञ्चित् भी हिस्सा नहीं दूँगा।

अन्याय-अनीति से कमाया हुआ राज्य वैभव कभी फलता नहीं है। फिर क्या हुआ? युद्ध हुआ। न्यायनीति से चलनेवालों की जीत हुई अथवा अन्याय-अनीति करनेवालों की? जो हुआ आपको सब कुछ ज्ञात है कि पांडवों की विजय हुई। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि भो श्रावको! न्यायपूर्वक उपार्जित धनरूपी बीज को जिनवर कथित सात स्थानों में बोना सीखो।

ध्यान रखना! अगर कोई यह सोच भी ले कि मेरा यह अन्याय-अनीति का धन धर्मक्षेत्र में लग जायेगा, तो नहीं लग पायेगा। कभी आपके भाव हुए कि यहाँ कोई अच्छा धर्म का कार्य चल रहा है चलो इसमें हम भी कुछ दान कर दें। आपने पैसा दे दिया। वह पैसा समिति के पास पहुँचा। अगर अन्याय से धन कमाया है तो उसे खानेवाले अन्यायी आपको अवश्य मिलेंगे। क्या होगा? समिति में पैसा कब आया और कहाँ गया? किसी को खबर ही नहीं लगी। क्यों? क्योंकि धन कैसा था? किसी के साथ अन्याय करके कमाया हुआ था वह धन धर्मक्षेत्र के योग्य नहीं था। ध्यान रखना, न्याय से ईमानदारी से कमाये गये धन को कभी कोई पचा नहीं सकता।

आपने किसी के लिये अपना धन दिया कि भैया! मैं इस धन को धर्मकार्य में लगाना चाहता हूँ। आप इस कार्य में हमारे धन को लगा देना। हो सकता है अन्याय-अनीति का धन जैसे ही उस व्यक्ति के हाथ में पहुँचा उसकी नीयत खराब हो गई। क्यों? क्योंकि **जैसा धन होता है वैसा ही मन हो जाता है**। हाथ में आते ही मति बिगड़ने लगी। सोचने लगा कि इसे तो मैं अपना बना लूँ। और कदाचित् ऐसा न भी हुआ। उस व्यक्ति अथवा समिति ने आपका धन हड़प नहीं किया। जैसा का तैसा किसी धर्मकार्य में लगा दिया। कहीं किसी जिनालय का निर्माण चल रहा था उस निर्माण कार्य में लगा दिया। आपका पैसा लगकर दीवाल खड़ी हो गई। लेकिन योग्य धन न होने के कारण अन्यायपूर्वक अर्जित करने के कारण कोई न कोई कारण ऐसा बनेगा कि वह दीवाल गिरानी पड़ेगी। आपका पैसा लगा नहीं अपितु खराब चला गया।

आप कई बार देख लीजिएगा, लोग लाखों-करोड़ों रुपये दान में दे देते हैं कि यहाँ इस जिनालय में, वसतिका में, हमारी ओर से एक कमरा बनवा देना अथवा कुछ और बनवा देना। समिति भी खुश हुई कि चलो ऐसे दानी श्रावक मिले। उन्होंने आपका पैसा लगा दिया। श्रम

किया, परिश्रम किया। रात-दिन एक करके उन्होंने निर्माण कार्य कराया। लेकिन पता चला वास्तु के अनुसार सही नहीं बन पाया। गलत दिशा में दीवार खड़ी कर दी। अब क्या होगा? दीवार को गिराना पड़ेगा। दिशा गलत क्यों हुई? क्योंकि वह पैसा न्यायनीति का नहीं था। इसलिये वह पैसा बर्बाद हो गया।

सच्चा मार्ग तो यही है कि अन्याय-अनीति मत करो। विचार करना! दुनिया में जितनी भी अदालतें हैं दण्ड व्यवस्थाएँ हैं वे न्यायी जीवों के लिये हैं या अन्यायी जीवों के लिये? भगवान महावीर के द्वारा जो श्रावक धर्म बतलाया गया है उसके अनुसार यदि कोई सद्‌गृहस्थ श्रावक न्यायनीति पूर्वक धन का उपार्जन करके अपनी आजीविका चलाता है उसके लिये आज तक कोई जेल (Jail) नहीं बनी। किंतु जो भगवान महावीर के द्वारा बताये गये सद्‌गृहस्थ के मार्ग से हटकर चलते हैं अन्याय-अनीति करते हैं ऐसे लोगों के लिये ही दुनिया में अदालतें हैं, जेल (Jail) हैं, पुलिस (Police) है, प्रशासन है। सद्‌गृहस्थों, धर्मात्मा, न्यायप्रिय लोगों के लिये ये सब चीजें नहीं हैं।

अब विचार करना कि अगर आप अन्याय-अनीति कर रहे हैं तो जेल (Jail) जाने की व्यवस्था बना रहे हैं। आज नहीं तो कल आपका कर्म आपको वहाँ अवश्य ले जाएगा। पुलिस (Police), सैनिक भले ही बंदी बना सकें अथवा न बना सकें लेकिन कर्म रूपी कोतवाल से आप बच नहीं सकते। जब तीर्थंकर भगवंतों को कर्मों ने नहीं छोड़ा फिर आप और हम कहाँ टिकते हैं?

इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं जो भगवान महावीर के द्वारा बताये गये सद्‌गृहस्थ के मार्ग को स्वीकारता है उसके परिणाम अपने धन का सदुपयोग करने के होते हैं। चक्रवर्ती भरत ने पूछा-भगवन्! मेरे पास अपार संपदा है, दौलत है, खजाने भरे पड़े हैं, सब कुछ है। मैं यह जानता हूँ कि मेरे बाद इस संपदा का कुछ उपयोग नहीं रहेगा इसलिये मैं ऐसा क्या करूँ जिससे इस संपदा का सुदपयोग हो सके? भगवन् वृषभसेन गणधर ने कहा-भो भरत! तूने पूर्वभव में ऐसा श्रेष्ठ पुण्य किया था जिससे आज तू चक्रवर्ती के इस वैभव को प्राप्त हुआ है। तू अपने इस धन संपदा का उपयोग भगवान जिनेन्द्र के भव्य चैत्यालयों, जिनालयों

के निर्माण में कर। जिनप्रतिमाओं की स्थापना कराओ, प्रतिष्ठा कराओ, और भगवान जिनेन्द्र ने जहाँ-जहाँ संपदा का सुदपयोग करने को कहा उन सात क्षेत्रों में करो।

जो पुरुषार्थ करता है उसे पुरुष कहते हैं। अपने बच्चों को पुरुष बनाइए अर्थात् उन्हें पुरुषार्थ करना सिखाइए। उनके लिये धन-संपदा जोड़-जोड़कर उन्हें कायर मत बनाइए। उन्हें पुरुषार्थहीन मत बनाइए। जानते हो, पहले माता-पिता भले ही घर में कितनी भी धन-संपदा क्यों न हो बच्चों को ऐसे ही नहीं दे देते थे। वे विवेकी होते थे। वे बच्चों से कोई न कोई कार्य, श्रम करवाते थे जिससे पता चल जाये कि यह धनसंपत्ति पिताजी ने कितनी मेहनत, श्रम, पुरुषार्थ करके कमायी है। उन्हें उस संपदा की कीमत पता चल जाये।

कोई छोटा सा गाँव था। उस गाँव में एक सेठ रहता था। जिसने श्रम-परिश्रम करके खूब धन-सम्पदा कमायी। उसका एक छोटा सा पुत्र था। वह अपने पुत्र के लिये रोज एक रुपये का सिक्का देता और कहता कि जाओ जो सामने कुआँ बना हुआ है उसमें डाल आओ। बेटा रोज सिक्का लेता और पिताजी के कहे अनुसार उस सामनेवाले कुएँ में फेंक आता। धीरे-धीरे बालक बड़ा होता गया। वर्षों बीत गये उसे यह कार्य करते-करते। पिताजी रोज एक सिक्का देते और वह उसे कुएँ में फेंक आता। अब वह पुत्र युवा हो चुका था। एक दिन पिताजी ने सिक्का नहीं दिया तो वह पुत्र बोला-पिताजी! अभी तक तो आप हमें रोज एक रुपये का सिक्का उस कुएँ में डालने के लिए देते थे आज शायद आप भूल गये हैं। आज आपने हमें सिक्का नहीं दिया।

पिता ने कहा- ठीक है बेटा हो सकता है मैं भूल गया। पिता ने कहा—लो पकड़ो एक रुपये का सिक्का और डाल आओ। वह युवक गया और वह सिक्का कुएँ में डालकर आ गया। फिर दूसरा दिन आया। पिताजी ने सोचा कि अब हमें अपने पुत्र के लिये सीख देने की आवश्यकता है। सही शिक्षा देने की आवश्यकता है।

बंधुओ! पहले माता-पिता अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा भी देते थे और व्यवहारिक शिक्षा भी। अपने कुल की परंपरा प्रतिष्ठा कैसे बनी रहे इसके लिये व्यवहारिक शिक्षा देना आवश्यक है। तो दूसरे दिन फिर पिता ने अपने युवा पुत्र को कोई सिक्का नहीं दिया।

पुत्र ने कहा- पिताश्री! आज आप फिर सिक्का देना भूल गये। पिता ने कहा- बेटा! आज हम सिक्का शाम को देंगे। अभी तुम हमारे साथ चलो। दुकान पर बैठना। श्रम-परिश्रम करना। पिता अपने पुत्र को अपने साथ बाजार ले गया। दुकान पर बैठाया। दुकान से अपने पुत्र के लिये कोई वस्तु दी और कहा- जाओ बेटा, इस वस्तु को आज तुम्हें बाजार में बेचकर आना है। पिता का आदेश था। उस युवा ने वह वस्तु ली और बाजार-बाजार, गली-गली, द्वार-द्वार घूमा। सुबह से शाम होने को आयी लेकिन उस वस्तु का कोई खरीददार नहीं मिला। भोजनपान करने का भी कोई साधन नहीं मिला। थका हारा जब शाम होते देख निराश मन से घर की ओर लौटने लगा और जैसे लोग पहले फेरी लगाते थे ऐसे वह भी वस्तु को बेचने के लिये बोलता हुआ चला आ रहा था, तो रास्ते में किसी व्यक्ति ने एक रुपये में उसकी वह वस्तु खरीद ली। युवक को प्रसन्नता हुई। मन की निराशा दूर हुई। कोई बात नहीं, सुबह से नहीं घर लौटने के समय तक हमारी यह वस्तु बिक ही गयी। अब पिताजी पूछेंगे तो बता सकूँगा कि पिताजी! आपने जो काम दिया था मैं वह काम पूरा करके आया हूँ।

वह बेटा शाम होते ही घर पहुँचा। पिता ने पुत्र को देखा। थका-हारा किंतु प्रसन्नचित्त दिखायी दे रहा था। पिता ने कहा-बेटा! हाथ मुँह धोकर पहले भोजन कर लो फिर बैठकर बात करते हैं। जैसे ही बेटा भोजन करके पिता के पास आया, पिता ने पूछा-बेटा! जो वस्तु हमने तुम्हें दी थी वह बेच कर आये? बेटे ने कहा- हाँ पिताश्री! ये देखिए मेरे पूरे दिन की मेहनत की कमाई। यह एक रुपये का सिक्का कमाकर लाया हूँ। पुत्र ने वह सिक्का अपने पिता के हाथों में सौंप दिया।

पिता ने कहा- बेटा! मैंने आज तुमसे कहा था कि मैं तुम्हें शाम को एक रुपये का सिक्का दूँगा। यह लो सिक्का अब तुम जाओ और इसे सामनेवाले कुएँ में फेंक आओ! बेटे ने कहा— पिताश्री! ऐसा आप कैसे कह सकते हैं? मैं ही जानता हूँ कि यह एक रुपये का सिक्का मैंने कैसे कमाया है? इसे कमाने के लिये मुझे बहुत मेहनत करनी पड़ी है इसलिए मैं इसे कुएँ में नहीं डाल सकता। पिता अपने पुत्र की यह बात सुन प्रसन्न हुआ। पुत्र बोला-पिताश्री! बचपन से अबतक मैं आपके श्रम-परिश्रम रात-दिन मेहनत की कमाई को पानी में फेंकता रहा।

तबतक मुझे उस सिक्के का मूल्य पता नहीं था किंतु अब मैं प्रण लेता हूँ आपकी इस संपदा का कभी दुरुपयोग नहीं करूँगा। बरबाद नहीं होने दूँगा।

बंधुओ! आपका बेटा कितना भी लाड़ला, प्रिय क्यों न हो, लेकिन आप उसे श्रम-परिश्रम करना अवश्य सिखाना। उसके लिये न्याय-नीति का आचरण अवश्य सिखाना। अगर आपने ही अन्याय अनीति से जोड़-जोड़कर उसके लिये धन रख दिया तो जैसे वह बालक कुएँ में एक रुपये का सिक्का आराम से फेंकता रहा वैसे ही तुम्हारा पुत्र तुम्हारी सारी धन संपदा आराम से बर्बाद कर देगा। और उसे आपने स्वयं मेहनत करने का, श्रम करने का अवसर दिया, तो वह निश्चित रूप से धन की कीमत को समझेगा। आपकी संपदा का सदुपयोग करेगा।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कहते हैं कि ऐसे न्याय नीति से कमाये धन का उपयोग करने के लिये भगवान जिनेन्द्र ने सात स्थान बताये हैं। **पहला स्थान है- जिनबिंब की स्थापना करना। दूसरा है जिनमंदिर का निर्माण कराना। तीसरा है तीर्थवंदना करना। चौथा स्थान है पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों का महाआयोजन कराना। पाँचवाँ है चार प्रकार के दान। छठवाँ है जीर्णोद्धार आदि पुण्य पुनीत कार्यों में लगाना। और सातवाँ है सिद्धान्त शास्त्रों, जिनवाणी के लेखन, संरक्षण और प्रचार प्रसार में लगाना।**

कहा भी है—

जिनबिम्बं जिनागारं, जिनयात्रा महोत्सवं।
जिनतीर्थं जिनागमं, जिनायतनानि सप्तधा।।

(1) जिनबिंब (2) जिनमंदिर (3) जिनयात्रा (4) पंच कल्याणक महोत्सव (5) जिन तीर्थोद्धार (6) जिनागम प्रकाशन (7) जिन आयतन, ये सात दान के योग्य क्षेत्र हैं।

आयतन- सम्यग्दर्शनादि गुणों के आधार निमित्त को आयतन कहते हैं। दान के सात क्षेत्रों के नाम अन्य ग्रन्थ में इस प्रकार हैं-

जिणभवण-बिम्ब पोत्थय, संघ सरुवाई सत्त खेत्तेसु।
जं बइयं धणबीयं, तमहं अणुमोयए सकम्मं।।

अर्थात् जिनभवन, जिनबिम्ब, जिनशास्त्र और मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ इन सात क्षेत्रों में जो धनरूपी बीज बोया जाता है मैं उस अच्छे कर्म की अनुमोदना करता हूँ।

इन सात क्षेत्रों में एक सद्गृहस्थ श्रावक को अपने धन का उपयोग करना चाहिये।

पहला है जिनप्रतिमा, जिनबिंब स्थापना। एक समय था जब हर जैनी व्यक्ति के अंदर यह भाव रहता था कि मैं संतान को जन्म तो दे सकता हूँ लेकिन तीर्थंकर को जन्म कैसे दूँ? काम पुरुषार्थ से संतान को जन्म दिया जा सकता है तो धर्म पुरुषार्थ द्वारा तीर्थंकर को जन्म देने का कार्य भी किया जा सकता है। इसलिए अपने कुलवंश परंपरा को उज्ज्वल यशस्वी बनाने के लिए हर व्यक्ति यह सोचता है कि मैं अपने जीवन में एक जिनप्रतिमा स्थापना अवश्य कराऊँगा। एक सद्गृहस्थ श्रावक इसके लिये न्याय-नीति से धन संचय करता था।

पूर्व समय में व्यक्ति न्याय-नीति के धन को ऐसे कार्यों में लगाने के लिए संचित किया करते थे जिससे उनके कुलवंश, बच्चों, नाती-पोतों को यह पता रहे कि हमारे पिताजी, हमारे दादाजी थे उन्होंने जिनप्रतिमा को विराजमान करवाया था। ऐसा शुभ कार्य हमारे कुलवंश में होता आया है इसलिये हमें भी ऐसा कार्य करना चाहिये।

दूसरा है जिनमंदिर निर्माण। अपने धन का उपयोग जिनमंदिर निर्माण में करना। घर तो सभी बनाते हैं भगवान का घर बनाओगे तो कुबेर कहलाओगे। क्योंकि समवशरण की रचना कुबेर करता है। जो भव्य जीवात्मा अपने जीवन निर्वाह के योग्य धन को सुरक्षित करके शेष धन का उपयोग जिनमंदिर आदि के निर्माण में करता है वह धरती पर कुबेर जैसे यश को प्राप्त करता है।

आप लोगों ने सुना होगा कि जबलपुर में मढ़िया जी नामक प्रसिद्ध स्थान है। यह स्थान पिसनहारी की मढ़िया नाम से प्रसिद्ध है लेकिन इस प्रसिद्ध स्थान को बनानेवाला उस समय प्रसिद्ध नहीं था। वह एक गरीब माँ थी जिसके पास कोई जमीन-जायदाद कोई व्यापार-साधन

आदि नहीं थे। जीवन निर्वाह के लिये भी जिसके पास सामान उपलब्ध नहीं रहता था। वह गरीब माँ जैसे-तैसे अपने बच्चों का भरण-पोषण करती थी। वह दूसरों के घरों में जाकर उनकी चक्की पीसती थी और इसके बदले में उसे जो पारिश्रमिक मिलता था उस पैसे का उपयोग अपने परिवार के भरण-पोषण में करती थी। उसमें से भी थोड़ा सा पैसा बचाकर रख लेती थी। वह किस भाव से धन का संचय कर रही थी? मैं इन पैसों को इकट्ठा करके एक दिन जिनमंदिर का निर्माण कराऊँगी। यह है परिणामों की उज्ज्वलता, परिणामों की निर्मलता। भले ही वह बाहर से दरिद्र लग रही थी किंतु भीतर से अत्यंत सम्पन्न थी। उसके भीतर उत्कृष्ट भावों की सम्पन्नता थी।

एक वह है जिनके पास सब कुछ होता है। दुकान, मकान, बहुत बड़ी-बड़ी फैक्ट्रीज (Factories) खड़ी कर दी। सब कुछ कर लिया लेकिन एक जिनमंदिर का निर्माण न करा पाये। धिक्कार हो ऐसे जीवन पर। एक सच्चा श्रावक सोचता है कि मैं अपने जीवन में एक जिनालय का निर्माण अवश्य कराऊँगा।

वह वृद्धा माँ लोगों के घर जा-जाकर चक्की पीसती और उससे जो कुछ भी उसे मिलता उसमें से थोड़ा धन वह सुरक्षित करती जाती और एक दिन उसने वह थोड़ा-थोड़ा धन संचय कर करके जिनमंदिर का निर्माण कराया जो तब से लेकर आज तक उस वृद्धा माँ के यश को गा रहा है। उस स्थान का नाम ही पड़ गया पिसनहारी की मढ़िया। अगर उस वृद्धा ने ऐसा श्रेष्ठ कार्य न किया होता तो आज तक क्या कोई उसे जानता? उस समय भी बड़े-बड़े धनपति रहे होंगे लेकिन उन्हें कोई नहीं जानता। आज उनका कोई नाम भी लेनेवाला नहीं है। लेकिन उस वृद्धा माँ का नाम जबतक यह जिनालय रहेगा तबतक आदर सम्मान के साथ लिया जाता रहेगा।

बंधुओ! भले ही तुम मंदिर निर्माण करा पाओ अथवा न करा पाओ, लेकिन कम से कम भावना तो बना ही लेना। इसभव में न भी करा पाये तो भावना भाने से ऐसा पुण्यार्जन करोगे कि यहाँ से जाने के बाद स्वर्ग में जा करके कुबेर बनोगे और अनेकों तीर्थंकरों के समवशरण की रचना करोगे। इसलिये ऐसी पवित्र भावना करके ऐसे श्रेष्ठ पुण्य का संचय अवश्य करना। और अगर शक्ति हो तो उसे छुपाना भी मत। अपनी संपदा को ऐसे पवित्र निर्माण कार्य में

लगाकर अपनी भी निर्वाण यात्रा का शुभारंभ करना। भव्य जिनालयों का निर्माण कराना। अगर स्वयं न बनवा पाओ तो जहाँ जिनालयों का निर्माण हो रहा हो उसमें कम से कम एक ईंट अपनी ओर से अवश्य रख देना। तुम्हारे न्यायनीति के दान से जो ईंटें रखीं जायेंगी। ध्यान रखना, इस पंचमकाल के अंत तक उस जिनालय की नींव बनके खड़ी रहेंगी।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि जो सद्गृहस्थ, सच्चे श्रावक होते हैं वे अपनी संपदा को जिनबिंब स्थापना और जिनालयों के निर्माण में लगाते हैं।

तीसरा है तीर्थवंदना। श्रावकों के लिये उत्तमसुख, शांति, समृद्धि, प्राप्ति की राह दिखलाते हुए आचार्य भगवंत कहते हैं कि श्रावक अपने तीर्थवंदना करने के भाव बनाये। चतुर्विध संघ को तीर्थवंदना कराने के भाव बनाये।

पहले ऐसा होता था कि धर्मात्माश्रावक साधकजनों को तीर्थवंदना कराने के लिए बड़े उत्साह के साथ ले जाते थे। आज भी ऐसे श्रावक होते हैं जो चतुर्विध संघ को पूरा विहार कराते हैं। अगर कोई चतुर्विध संघ ना भी मिल पाये तो ऐसे भी श्रावक होते हैं जो साधर्मी वात्सल्य का परिचय देते हुए ऐसे साधर्मी बंधु जो स्वयं यात्रा पर जाने में असमर्थ हैं उनके लिये यात्रा कराते हैं। कहते हैं इस बार हम 50 लोगों को तीर्थ वंदना पर ले जायेंगे। जिनको भी चलना हो वे तैयार हो जायें। हम सभी मिलकर भगवान जिनेन्द्र की वंदना करने जायेंगे। सच्चे श्रावक आत्मतीर्थ की प्राप्ति हेतु तीर्थयात्रा करते और कराते हैं।

चौथा है प्रतिष्ठा उत्सव। आचार्य भगवन् कहते हैं कि भो श्रावको! भोग विलास में धन को बर्बाद मत करो। अपने धन का उपयोग पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के आयोजनों में करो। पहले के समय में सामाजिक पंचकल्याणक नहीं होते थे। व्यक्तिगत होते थे। कोई व्यक्ति स्वयं धन संचित करता था और स्वयं अकेले ही भगवान जिनेन्द्र के जिनालय आदि का निर्माण कराकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के भव्य आयोजन सम्पन्न कराता था।

बुंदेलखंड में ऐसी परंपरा थी कि जिस परिवार के द्वारा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन कराया जाता था जब वह आयोजन निर्विघ्न सम्पन्न हो जाता था तो अंत में गजरथ परिक्रमा का बहुत बड़ा उत्सव होता था। जब गजरथ परिक्रमा महोत्सव हर्षोल्लास पूर्वक निर्विघ्न पूर्ण हो जाता था तो उस परिवार के मुखिया के लिए सिंघई की पदवी दी जाती थी। अगर उसी

परिवार में पुन: किसी ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन कर पुन: गजरथ चलवा दिया तो समाज के द्वारा वह परिवार 'सवाई सिंघई' इस विशेष पदवी को प्राप्त होता था। इसप्रकार उनके लिये उपाधि दी जाती थी।

जब गजरथ चलता था तब रथ के पहियों के ऊपर घी की धार दी जाती थी। क्यों? क्योंकि रथ का पहिया कहीं चैं, चैं, चैं, न बोलने लग जाये। अगर गजरथ परिक्रमा के समय किसी का रथ चैं, चैं करने लगा तो फिर उन्हें लोग चैंके सिंघई बोलने लगते थे।

कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे पवित्र भाव होते थे श्रावकों के। वे अपने धन का सदुपयोग कर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जैसे महोत्सवों का आयोजन कर लेते थे। ध्यान रखना! भले ही बेटा-बेटी की शादी में पैसा कम खर्च हो जाये लेकिन धर्म के आयोजन में अपने धन को लगाने में अपना हाथ पीछे नहीं करते थे। आज कल शादी-विवाह में चाहे जितना खर्च कर लेंगे किंतु धर्म के क्षेत्र में कोई थोड़ा सा भी दान करने की कहे तो कहते हैं पिताजी से पूछकर बतायेंगे। घर पर पहले बात कर लें फिर बतायेंगे। अरे भाई! धर्म तो व्यक्तिगत होता है इसके लिए किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं होती है।

पाँचवाँ स्थान है दान। भगवान जिनेन्द्र की आज्ञा है कि श्रावकों को चार प्रकार के दान अवश्य देना चाहिये। अपने दानधर्म का पालन करना चाहिये। ये दान चार प्रकार के होते हैं- औषधि, शास्त्र, अभय और आहार। इनमें धन का सदुपयोग करना चाहिये।

बंधुओ! कुछ लोग ऐसे होते हैं जो इन चार प्रकार के दानों के प्रति बड़े उदारहृदयी होते हैं। हम देखते थे विजयनगर में हैं एक छोटू जी पाटनी। वे कहीं और दान करें अथवा न करें लेकिन उनको आहारदान में विशेष रुचि है। वे कहीं भी साधुओं के दर्शन करने जायें उनका चौका जरूर जायेगा। और पहुँचते ही अपनी सारी व्यवस्था बना लेते हैं। कोई उनका सहयोग करनेवाला हो अथवा न हो कोई जरुरी नहीं। वह स्वयं ही इतने एक्सपर्ट (Expert) हैं कि पूरा चौका खुद ही तैयार कर लेते हैं लेकिन आहारदान जरूर देते हैं। तो श्रावकों को अपना धनरूपी बीज कहाँ बोना चाहिये? चार दानरूपी भूमि में।

छठवाँ है पूजा महोत्सव। जिनेन्द्र भगवान की पूजन अर्थात् विधान आदि। पूजन तो सभी करते हैं लेकिन आचार्य भगवन् कहते हैं कि ऐसे भी श्रावक होते हैं जो भावना भाते हैं हम कभी कल्पद्रुम विधान रचायेंगे। सिद्धचक्र विधान करायेंगे। कभी हम भी ऐसे महामहोत्सवों में बैठकर अरिहंतों की सिद्धों की महा आराधना करेंगे। इसके लिये धनार्जन कर अपने उस धन को ऐसे मांगलिक कार्यों में लगाकर उत्तमोत्तम फलों को प्राप्त होते हैं।

सातवाँ स्थान है शास्त्र लेखन। एक समय ऐसा था जब प्रिंटिंग मशीन (Printing Machine) नहीं थी। आज की तरह प्रिटिंग प्रेस (Printing Press) नहीं हुआ करते थे। इसलिये शास्त्रों का लेखन करनेवाले होते थे। उनके माध्यम से सद्गृहस्थ श्रावक उन्हें धन देकर शास्त्रों का लेखन करवाते थे। आप ऐसे सौ शास्त्र, पचास शास्त्र, दस शास्त्र अथवा एक शास्त्र हमें लिखकर दें जिससे कि जिनवाणी का प्रचार प्रसार हो सके। भविष्य के लिए भी हमारा यह जिनागम सुरक्षित रह सके। अगर ऐसे हस्तलिखित शास्त्र आज अपने पास नहीं होते तो आज धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। उन दानी भव्यजीवों का अपने ऊपर यह बहुत बड़ा उपकार है। उन श्रावकों का भी बहुत बड़ा उपकार है जिन्होंने स्वयं हाथ से लिख-लिखकर इन शास्त्रों को सुरक्षित रखा। पहले महिलाएँ अथवा पुरुष व्रत आदि का उद्यापन करते समय पाँच शास्त्र अथवा जितनी शक्ति होती थी उतने शास्त्र हाथ से लिखवाकर जिनालयों में रखवा देते थे। इस तरह सिद्धान्तशास्त्रों के जिनवाणी के लेखन में श्रावक अपने धन का उपयोग करते थे।

आजकल लिखने की व्यवस्था तो रही नहीं किंतु मशीन (Machine) के द्वारा प्रकाशन की व्यवस्था है। आज का श्रावक अपने धन का उपयोग जिनवाणी के प्रकाशन में करता है। जिनवाणी प्रकाशित होती है और जन-जन तक पहुँच जाती है सभी लोग उसका भरपूर लाभ लेते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् जिनेन्द्र ने इन सात स्थानों में न्यायनीतिपूर्वक अर्जित धन का उपयोग करने को कहा है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि भो श्रावको! तुमने अपने जीवन में पुण्य के उदय से जो धन संचित किया है अपने परिवार के भरण-पोषण में उसका उपयोग कीजिए और जो शेष बचा धन है उसका उपयोग ऐसे सात क्षेत्रों में अवश्य कीजिए।

आपका दिया हुआ वह धन किसी अन्य की झोली में नहीं जाता अपितु कई गुना वृद्धि को प्राप्त होकर आपको ही पुन: प्राप्त होता है। जैसे भूमि में बोया गया बीज नष्ट नहीं होता अपितु महान फल को देनेवाला होता है उसीप्रकार इन सात क्षेत्रों में दिया गया आपका वह दान कभी नष्ट नहीं होता अपितु परभव में कई गुना वृद्धिंगत होकर आपको ही पुन: प्राप्त होता है।

इसलिये आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने कहा, कि जो ऐसे न्याय-नीति से उपार्जित किये हुये धनरूपी बीज को इन सात क्षेत्ररूपी भूमि में बोता है। वह परभव में तीनों लोकों के साम्राज्य और पंचकल्याणक रूप महान फलों को प्राप्त होता है अर्थात् एक दिन तीर्थंकर जैसे वैभव को प्राप्त करके अपनी आत्मा को परमात्मा बना लेता है।

हमें भी ऐसे महान फलों की प्राप्ति हो। यदि आप सभी ऐसा चाहते हैं तो इसके लिये आपको भगवान जिनेन्द्र द्वारा कथित श्रावकधर्म का भावपूर्वक पालन करके सच्चा श्रावक बनना होगा। न्याय नीतिपूर्वक अपने जीवन का निर्वाह करें। अपने संचित धन का इन सात क्षेत्रों में सदुपयोग करें, अपने कुल की प्रतिष्ठा को बढ़ाने का उद्यम करें और एक श्रेष्ठ श्रावक बनकर अपने जीवन को श्रेष्ठ बनायें।

बोता जो धन बीज महान, जिनवर कथित सप्त स्थान।
त्रिभुवन का साम्राज्य फले, फलता सौख्य पंचकल्याण।।
तीर्थंकर जैसा, हो-हो-2, सुख वैभव पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

पृष्ठ 144 का शेष

जिनागम बाह्य स्वतंत्र चिंतन की मान्यता वाले जैनाभासी संघ

अर्थात् कल्याण नाम के नगर में विक्रम मृत्यु के 705 वर्ष बीतने पर श्री कलश नाम श्वेताम्बर साधु से यापनीय संघ का सद्भाव हुआ।

श्रुतसागर सूरि ने दर्शन पाहुड गाथा-11 की टीका में कहा है—**'यापनीयास्तु बेसरा गर्दभा इवोभयं मन्यन्ते, रत्नत्रय पूजयन्ति, कल्पं च वाचयन्ति, स्त्रीणां तदभवे मोक्षम्, केवलिजिनानां कवलाहारम्, परशासने सग्रन्थानां मोक्षं च कथयन्ति।'**

अर्थात् यापनीय खच्चरों के समान दोनों (दिग. + श्वे.) को मानते हैं। वे रत्नत्रय की पूजा करते हैं, कल्प का वाचन करते हैं, स्त्रियों को उसी भव से मोक्ष होता है, केवली भगवान कवलाहार करते हैं तथा अन्य मत में परिग्रही मनुष्यों को मोक्ष होता है, ऐसा कहते हैं।

4. काष्ठा संघ (गोपुच्छ)— आचार्य देवसेन ने दर्शनसार में कहा है—

सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
णंदियडे वरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो।।38।।

विक्रम राजा की मृत्यु के 753 वर्ष बाद नन्दीतट ग्राम में काष्ठा संघ हुआ।

आसी कुमार सेणो णंदियडे विणयसेणदिक्खियओ।
सण्णासमंजणेण य अगहिय पुण दिक्खओजादो।।33।।

सो समणसंघ वज्जो कुमारसेणो हु समयमिच्छत्तो।
चत्तोवसमो रुद्धो कट्ठं संघं परूवेदि।।37।।

नंदीतट ग्राम में विनयसेन मुनि के द्वारा दीक्षित हुआ कुमारसेन नाम का मुनि था, उसने सन्यास से भ्रष्ट होकर फिर से दीक्षा नहीं ली। और उस मुनिसंघ से बहिष्कृत, समय मिथ्यादृष्टि, उपशम को छोड़ देनेवाले और रौद्र परिणामवाले कुमारसेन ने काष्ठा संघ का प्ररूपण किया।

परिवज्जिऊण पिच्छं चमरं घित्तूण मोहकलिएण।
उम्मग्गं संकलियं वागडविसएसु सव्वेसु।।34।।

इत्थीणं पुण दिक्खा खुल्लय लोयस्स वीर चरियत्तं।
कक्कस-केसग्गहणं छट्ठं च गुणव्वदं नाम।।35।।

शेष पेज नं. 312 पर

गाथा – 19

(प्रवचन)

●

देव दुर्लभ है माँ की गोद

01.09.2013

भिण्ड

(सुपात्र दान का फल)

मादुपिदुपुत्त मित्तं, कलत्त धणधण्णवत्थुवाहणविहवं।
संसार सार सोक्खं, सव्वं जाणह सुपत्तदाण फलं।। 19।।

* अन्वयार्थ *

(मादु) माता **(पिदु)** पिता **(पुत्त)** पुत्र **(मित्तं)** मित्र **(कलत्त)** स्त्री **(धण)** गाय आदि पशु **(धण्ण)** अनाज **(वत्थु)** मकान **(वाहण)** वाहन **(विहवं)** वैभव **(संसार सार सोक्खं)** संसार के उत्तम सुख **(सव्वं)** यह सब **(सुपत्त दाण फलं)** सुपात्र दान का फल **(जाणह)** जानो

अर्थ–माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री, गाय आदि पशु, अनाज, मकान, वाहन, वैभव और संसार के उत्तम सुख ये सब सुपात्र दान का फल जानो।
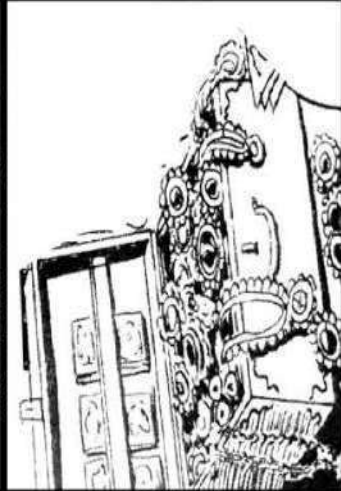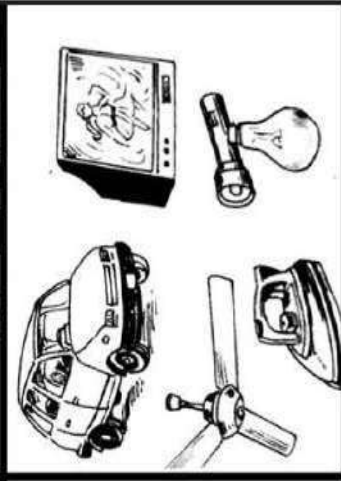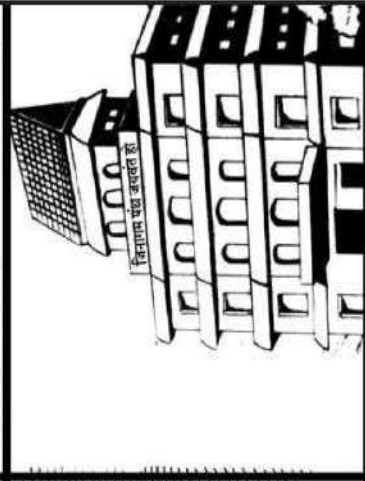
सुपात्रदान के फल से अनुकूल पुत्र, माता-पिता, स्त्री, मित्र, मकान, इहभव संबंधी सर्व सुख - वैभव धन, वाहन की प्राप्ति।

29

रयणोदय

मात पिता धन धान्य सुपुत्र, वाहन विभव मकान कलत्र।
पात्रदान से मिलते हैं, जग के उत्तम सौख्य सुमित्र।।
पुण्यात्मा ही, हो-हो-2, यह शुभ फल पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

जिनागम पंथ जयवंत हो जिसके आश्रय से भव्यात्मा, इहलोक और परलोक में समीचीन सुख के पात्र बनते हैं। आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी सुपात्रदान की महिमा बताते हुए इस गाथा में कह रहे हैं— कि संसार के सारे उत्तम सुख, सुपात्र दान का ही फल जानना चाहिये।

आचार्य कुंदकुंद का उपदेश व्यक्तिपरक् नहीं है, समष्टिपरक् है। इस संसार में जीव अनादि काल से अज्ञानी रहा है।

जो संसार में रहते हुए भी आत्मा के हित को जानता है वह ज्ञानी है। जो अपना हित न जाने वह अज्ञानी है और जो अपने हित को जानकर श्रद्धानकर हित के मार्ग को अपनाये, उसी रूप अपना आचरण करे वह सम्यक्चारित्री है। इसके विपरीत जो अपने आत्महित से अनभिज्ञ है, अपने आत्महित को नहीं जानता है वह अज्ञानी है और जो आत्महित के मार्ग को जानकर भी आत्महित को न स्वीकारे वह अचारित्री है।

हर आदमी चाहता है कि हमारा जीवन सुख, शान्ति और समृद्धि से भरा हो। जीवन में सभी प्रकार की अनुकूलतायें हों। इसके लिये पुरुषार्थ करना पड़ेगा। अनुकूलताओं के साधन जुटाना पड़ेंगे। जिस प्रकार आपके पास भूमि है और आप चाहते हैं कि हमें गेहूँ, चना आदि फसल प्राप्त हो। फसल कैसे प्राप्त होगी? फसल को प्राप्त करने के लिए आपको पुरुषार्थ करना होगा। आपको बीज वपन करना होगा। मात्र भूमि से फसल की प्राप्ति नहीं होती और न ही मात्र बीज से फसल प्राप्त होती है, फसल को प्राप्त करने के लिये आपको भूमि में अभीष्ट बीज का वपन करने रूप पुरुषार्थ करना पड़ेगा, तभी आपको फसल की प्राप्ति हो सकेगी। आप गेहूँ, चना, मक्का आदि जैसा भी बीज भूमि में वपन करेंगे उसी के अनुरूप आपको गेहूँ, चना, मक्का आदि की फसल प्राप्त होगी। उसी प्रकार आपको यह मनुष्य जीवन रूपी भूमि प्राप्त हुई है। इस भूमि पर आप क्या बोकर क्या प्राप्त करना चाहते हैं ये आपके पुरुषार्थ पर निर्भर है।

अगर आप सुख के निमित्तों का आश्रय करेंगे तो फल सुखरूप होगा। अगर दुख के निमित्तों का आश्रय करेंगे तो फल दुखरूप होगा।

आप सुख चाहते हैं तो अपने को सुखी करने का उपाय आपको ही करना पड़ेगा। भगवान आदि शुभ निमित्तों का आश्रय मात्र हमें सुखी नहीं करता, अपितु अपने पुरुषार्थ से हम सुखी होते हैं। भगवान तो मात्र निमित्त हैं, हम उन का भक्ति से आश्रय करेंगे तो वे हमारे लिये सुख के कारण बन जायेंगे।

ये बात बिल्कुल सत्य है कि भगवान किसी को सुख नहीं देते, पर ये भी उतना ही सत्य है कि भगवान की शरण लिये बिना भी सुख प्राप्त नहीं होता क्योंकि इच्छित सुख का कारण पुण्य है और भगवान की भक्ति, पात्रदान उस सातिशय पुण्य का प्रबल हेतु है।

आचार्य भगवन् शिवार्य महाराज भगवती आराधना ग्रंथ में लिखते हैं।

एया वि सा समत्था जिणभत्ती दुग्गइं णिवारेदि।
पुण्णाणि य पूरेदुं आसिद्धि-परंपर सुहाणं।। 745।।

एक ही जिनभक्ति दुर्गति का निवारण करने में, पुण्यकर्मों को पूर्ण करने में और मोक्ष पर्यन्त सुखों की परंपरा करे देने में समर्थ है।

सुख का पुरुषार्थ तुम्हें स्वयं करना होगा। कोई अन्य व्यक्ति तुम्हारा पुरुषार्थ नहीं करेगा क्योंकि सुख शान्ति का मार्ग नितांत एकाकी है। दूसरा व्यक्ति शैय्या तो लगा सकता है लेकिन निद्रा का सुख नहीं दे सकता। निद्रा का सुख तो स्वयं सोने पर ही प्राप्त हो सकता है। हर व्यक्ति अपने को सुखी बना सकता है, दूसरों को सुखी नहीं बना सकता। लौकिक जीवन में हम देखते हैं कि कोई भी धर्मकार्य अगर सेठानी करे तो नाम सेठजी का होता है परन्तु कर्म की व्यवस्था बिल्कुल अलग है। यहाँ तो जो कर्म करेगा वो ही उसके फल को भोगेगा। कर्म के क्षेत्र में ऐसा नहीं होता कि अन्य व्यक्ति कर्म करे और किसी अन्य व्यक्ति को उसका फल भोगना पड़े। आचार्य भगवन् अमितगति स्वामी सामायिक पाठ में लिखते हैं।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।। 30।।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेव-मनन्य मानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।। 31।।

पुराकाल में किये शुभाशुभ कर्म आत्मा ने जैसे।
यहाँ इस समय हुए उसी को प्राप्त शुभाशुभ फल वैसे।।

परकृत कर्म और उसका फल अन्य जीव को हो जावे।
तब तो स्वयं किये कर्मों की सर्व सफलता खो जावे।। 30।।

सभी जीव पाते अपने द्वारा अर्जित कर्मों का फल।
देता नहीं किसी को कोई कुछ भी यह सिद्धांत अटल।।
यह 'विमर्श' करते रहना, हे भवि! एकाग्रचित्त होकर।
देने वाला कोई दूसरा है ऐसी बुद्धि खोकर।। 31।।

जब तक पिताजी थे, तब तक पिताजी ने दान किया नहीं और जब पिता की मृत्यु हो गई, तो पुत्र ने पिता की स्मृति में दान दिया। जब स्मृति थी तब तो दान किया नहीं, अब जब स्मृति शेष है तो नाम से दान करना व्यर्थ है। पुत्र आपकी स्मृति में दान करे उससे पहले अपनी स्मृति में ही भावपूर्वक दान करके जाना। अपनी स्मृति में दान करोगे तो फल मिलेगा, और बेटा आपकी स्मृति में दान करेगा तो फल जीरो (0) होगा।

जो दान भाव से किया जाता है, उसका ही फल मिलता है। फल तो भावों से मिलता है दान तो निमित्त मात्र है।

आप कहीं मेहमान बनकर गये हों, आपके सामने टेबिल (Table) पर अनेक प्रकार के सुस्वादु मिष्ठान-व्यञ्जन रखे जायें, लेकिन भोजन करानेवाला व्यक्ति आपसे अभद्र भाषा में कहे कि खाले-खाले। अब विचार करना, व्यञ्जन तो बहुत मीठे हैं व्यञ्जन तो बहुत सुस्वादु हैं लेकिन खिलाने वाले के भाव मीठे नहीं हैं। भाव अच्छे होते तो वस्तु का मजा अलग ही होता। आप उन मिष्ठ व्यंजनों को खायेंगे भी तो उसमें आनन्द नहीं आयेगा। फिर यदि आप किसी गरीब आदमी के यहाँ मेहमान बनकर गये हों, उसने सर्वप्रथम तो मुस्कुराकर आपका स्वागत किया, फिर थाली में सिर्फ दाल-रोटी रखकर हर्ष भाव से, प्रेमभाव से कहा—आप! भोजन स्वीकार कीजिये। उसके भावों में वो मिठास है, जो उस अमीर आदमी के व्यंजनों में नहीं थी। आप कहेंगे कि भोजन तो बहुत किया लेकिन आत्मीयता की ऐसी मिठास नहीं मिली। सरस भावों से नीरस भोजन भी सरस हो जाता है।

जो भाव से दान करता है, उसे ही उसका फल प्राप्त होता है। जब बेटा छोटा था तो पिता ने बेटे के नाम से दान कर दिया, और जब पिता दुनियाँ से चले गये तो पुत्र ने पिता की स्मृति में दान कर दिया, फल किसी को भी नहीं मिला क्योंकि दान में दाता के भाव नहीं हैं, इसलिए दान की विधि को समझो। दान भावपूर्वक सदैव अपने हाथों से दिया जाता है।

सौधर्म इन्द्र 170 तीर्थंकरों के समवशरण में या कम से कम विदेह क्षेत्र स्थित 20 तीर्थंकरों के समवशरण में रोज उपस्थित होता है। सौधर्म इन्द्र अगर सोचने लगे कि मैं रोज जाता हूँ, आज अपने असिस्टेंट (Assistant) को भेज दूँ? वो ऐसा नहीं सोचता, क्योंकि वो जानता है कि मेरे करने से मुझे मिलेगा। किसी और के करने से किसी और को कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

आचार्य भगवन् कुंदकुंदस्वामी उन्नीसवीं गाथा में कह रहे हैं—

मादु-पिदु-पुत्त-मित्तं-कलत्त-धण-धण्ण-वत्थु-वाहण-विहवं।
संसार-सार-सोक्खं, सव्वं जाणह सुपत्त-दाणफलं।।19।।

अर्थात् माता-पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री, गाय आदि पशुधन, अनाज आदि धान्य, मकान, वाहन, वैभव, संसार के उत्तम सुख सुपात्रदान का फल जानो।

माँ परिवार की बैक बॉन (Back Bone) अर्थात् रीढ़ होती है। जिस प्रकार रीढ़ के बिना शरीर स्थिर नहीं रह सकता उसी प्रकार माँ के बिना परिवार की स्थिति संभव नहीं है। माँ के बिना कोई भी परिवार का खेवनहार नहीं है। जिसप्रकार जिस नाव का खेवनहार न हो वह पानी में डूब जाती है उसी तरह जिस परिवार के ऊपर से माँ का साया उठ जाता है वह परिवार रूपी नाव भी दुखों के सागर में डूब जाती है। घर परिवार की प्रतिष्ठा माँ के इर्द-गिर्द घूमती है।

जैसे किसान खेत को सींच-सींच कर फसल के योग्य बनाता है वैसे ही एक माँ अपने परिवार को सद्संस्कारों के जल से सींच-सींच कर प्रतिष्ठा के योग्य बनाती है। परिवार का संचालन हो या फिर जीवन का दोनों ही जगह बहुत बड़ी भूमिका होती है माँ की।

ममतामयी उत्तम माता का मिलना बहुत दुर्लभ है। जन्म देनेवाली माँ तो मिल जायेगी, लेकिन जन्म देने के बाद मातृत्व की छाँव में पुत्रों का पालन करनेवाली माँ का मिलना दुर्लभ

है। अपनी संतान के हर सुख-दुख की साथी होती है उसकी माँ। माँ का प्यार निस्वार्थ होता है, निष्कपट होता है। दुनिया के रिश्तों में संबंधों में स्त्री मायाचारी कर सकती है, लेकिन माँ कभी अपने पुत्र के साथ कोई छल नहीं कर सकती। पुत्र के ऊपर अगर कोई संकट आ जाये तो माँ दीवार बनके आगे खड़ी हो जाती है। पुत्र के लिये एक सुखद अनुभूतियों का अहसास है माँ।

एक गीत लिखा था—

बेटा हो दुख पीड़ा में माँ बन जाती दीवार।
माँ के प्यार सा इस दुनिया में नहीं किसी का प्यार।
ओ माँ, प्यारी माँऽऽ-2

माँ की गोदी में बेटा जब चैन से सोता है।
बेटा जैसा और किसी का पुण्य न होता है।
किलकारी भर-भरकर माँ का करता है दीदार।
माँ के प्यार...

बेटा जब - जब रोता है माँ लोरी गाती है।
भूखी - प्यासी रहकर भी माँ दूध पिलाती है।
चंदा - सूरज अश्रु बहाते पाने माँ का प्यार।
माँ के प्यार...

कोठी - बँगला रुपया - पैसा सब ऐशो - आराम।
माँ बिन सूना घर का आँगन माँ को करो प्रणाम।
माँ ही घर की तुलसी है, रौनक घर का श्रृंगार।
माँ के प्यार...

जीवन संगिनी पाकर माँ का प्यार भुलायेगा।
घर में दीवाली होगी पर खुशी न पायेगा।

माँ ही घर की दीवाली, होली, घर का त्यौहार।
माँ के प्यार...

अपनी खुशियाँ कर न्यौछावर देती है खुशियाँ।
बेटा समझे, न समझे, समझे न ये दुनियाँ।
माँ चलती काँटों पर, देती फूलों का उपहार।
माँ के प्यार...

दुनिया छूट भी जाये, माँ का कभी न छूटे साथ।
माँ ने पकड़ा हाथ हमारा, पकड़ो माँ का हाथ।
सब तीरथ माँ चरणों में, बन जाओ श्रवण कुमार।
माँ के प्यार...

राम कृष्ण महावीर ने माँ का मान बढ़ाया है।
जाँ देकर आजाद, भगत ने माँ को पाया है।
सदा चिरायु सुखी रहो भारत माँ करे पुकार।
माँ के प्यार... ।। गीताञ्जलि।।

जन्म नहीं, सार्थक संस्कार दायिनी माँ का मिलना अत्यंत दुर्लभ है। यह जीव अनंतकाल निगोद में रहा, वहाँ निगोदिया की पर्याय में माँ नहीं मिली। निगोद से निकला तो एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय एवं चार इन्द्रिय की पर्यायों में जन्म-मरण करता रहा, वहाँ भी माता नहीं मिली। एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक के सभी जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है।

तीनों लोकों में सर्वत्र माता-पिता के संबंध के बिना सब ओर से पुद्गलों को ग्रहण करके जो शरीर की रचना हो जाती है, उसे सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं। पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन होता है तो वहाँ भी माँ नहीं मिलती।

चारों निकाय के देवों को भी माँ की गोद नहीं मिलती। अधोलोक में नारकियों को भी माँ की ममता, माँ का दुलार, माँ का प्यार नहीं मिलता। शेष दो ही गति हैं मनुष्य और तिर्यंच। सो इनमें भी संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज जीव ही ऐसे हैं, जिनको माँ प्राप्त होती है।

महान पुण्य का योग होता है जब ममतामयी माँ की गोद प्राप्त होती है अन्यथा कभी-कभी माता भी कुमाता हो जाती है। काल का दोष है, पूत कपूत होते सुने जाते थे, पर अब माता भी कुमाता बन जाती है। माता, माता हो कुमाता न हो। कई बार माता की कोख में जन्म तो होता लेकिन माता की कोख से जन्म नहीं हो पाता। माता कुमाता बन जाती है और जन्म से पहले ही संतान को मृत्यु के हवाले कर देती है। कई बार कोख से जन्म भी होता है तो माता, कुमाता बन जाती है और अपने ही उदर से जन्मी संतान को लोक लाज के भय से एकान्त में मरने को छोड़ देती है।

महान पुण्यशाली हैं वो जिन्हें जन्म लेने के बाद खेलने के लिए माँ की गोद मिलती है। थामने के लिए माँ की उँगली और छिपने के लिए माँ का दामन मिलता है। पुण्यशाली हैं वे लोग जिन्हें जीवन की प्रथम पाठशाला के रूप में माँ प्राप्त होती है। माँ बहुत कीमती है या यूँ कहूँ, माँ का कोई मोल नहीं, माँ अनमोल है।

किसी अनाथ बच्चे से पूछना कि जीवन में माँ का क्या महत्व होता है। जिसके जन्म लेते ही माँ की मृत्यु हो गई हो गई हो, जब वह अपने किसी मित्र को अपनी माँ के हाथ से भोजन करते हुए देखता है तो आँखों से अश्क बहने लग जाते हैं।

श्री कृष्ण नारायण थे, अर्द्धचक्री का पुण्य लेकर आये थे, लेकिन जन्म लेते ही माँ की ममता नसीब न हो सकी। एक भव का किया गया कर्म अनेक भवों में फलित होता है। भो नारायण तेरा माता से विछोह क्यों हुआ? इसमें किसका दोष है? इसमें दोष कंस का नहीं, कर्म के अंश का है।

श्री कृष्ण ने पूर्व पर्याय में रथ पर सवार होकर जाते समय एक सर्पिणी के मुख के ऊपर से अपने रथ का पहिया निकाला था। नागिन मरके स्त्री की पर्याय को प्राप्त हुई और कृष्ण का जीव उसका पुत्र निर्नामक बनके पैदा हुआ।

तुम चाहो तो इस पर्याय से भावी पर्याय में अपने अनेक शत्रु भी पैदा कर सकते हो, और चाहो तो अनेक मित्र भी तैयार कर सकते हो। उस निर्नामक को देखकर माँ को बहुत क्रोध

आता था। वो क्रोध भी अकारण नहीं था, पूर्व पर्याय का कर्म ही उसमें प्रेरणा दे रहा था। दुनियाँ में माँ तो सबको मिलती है पर संसार में उत्तम सुख की ओर ले जानेवाली सुमाता का मिलना पात्रदान का फल ही जानना चाहिये। पुत्र का हित चाहनेवाली सच्ची माँ, अपने पुत्र से कहती है कि बेटा! मैं तेरी सच्ची माँ नहीं हूँ, तेरी सच्ची माँ तो जिनवाणी माँ है। मैंने तो अपने आँचल का दूध पिलाकर मात्र तेरे तन को पुष्ट किया है, लेकिन जिनवाणी माँ वो अमृत पिलाती है जिससे आत्मा पुष्ट हो जाती है। मोह से अंधी माँ तो बहुत मिल जायेंगी लेकिन निर्मोही माँ का मिलना अत्यंत दुर्लभ है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी को भी ऐसी ही माँ मिली थी जो जन्म से ही उसे शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरञ्जनोऽसि, तू शुद्ध है, तू बुद्ध है तू निरञ्जन है, ऐसी लोरियाँ सुनाया करती थी।

सच्ची माँ कहती है कि हम जैसी माताओं का दूध तो तूने बहुत पर्यायों में पिया है अब एक बार जिनवाणी माँ का दूध पीकर देख, तुझे फिर किसी पर्याय में किसी माता का दूध पीने की आवश्यकता न रहेगी। जिनवाणी माता का दूध ऐसी परमौषधि है कि एक बार भी जिसने सेवन कर लिया उसके जन्म, जरा और मृत्यु रोग नाश को प्राप्त हो जाते हैं। आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी दर्शन पाहुड की सत्रहवीं गाथा में लिखते हैं—

जिणवयण-मोसहमिणं, विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणवाहिहरणं, खयकरणं सव्व-दुक्खाणं।। 17।।

यह जिनवचन रूपी परमौषधि पंचेन्द्रियों के विषयों के सेवन के सुख से उत्पन्न मद को दूर करनेवाली है, अमृत के समान गुणकारी है, बुढ़ापा और मरण आदि रोगों को दूर करनेवाली है और समस्त दुखों का नाश करनेवाली है।

एक बार संकल्प कर लेना कि जिनवाणी माँ की गोद में अवश्य किलकारी भरूँगा। एक बार जिनवाणी माँ का क्षीर अवश्य पीऊँगा।

सच्चा पिता मिलना भी बहुत दुर्लभ है। श्रेष्ठ पिता वही है जो पुत्रों को संस्कारों की विरासत सौंपता है। परिवार के संचालन में जितनी भूमिका माँ की होती है, उतनी ही भूमिका

एक पिता की भी होती है। नीतिकारों ने खूब लिखा है कि पिता की पुत्रों के प्रति कितनी जिम्मेदारियाँ होती हैं और वो किस प्रकार उनका पालन करता है—

लालयेत पंच वर्षाणि, दश वर्णाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्र वदा चरेत्।। 18।। (चाणक्य नीति)

पिता का कर्तव्य है कि अपने बच्चों को पाँच वर्ष की आयु तक खूब लाड़-प्यार करे। छह से पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक अर्थात् 10 वर्ष बच्चे को लाड़-प्यार न करके उसकी सद्वृत्तियों के लिए गल्ती होने पर ताड़ना करे। यही अवस्था पढ़ने लिखने की, सीखने की, और चारित्र निर्माण तथा अच्छी प्रवृत्तियों को अपनाने की होती है। यही वह समय होता है, जब भावी जीवन की नींव रखी जाती है अत: इस अवधि में पिता बच्चे को मात्र लाड़- प्यार न देकर उसे इसप्रकार प्रेरित करे जिससे कि वह अपने कर्तव्यों को भलीप्रकार समझ सके। बच्चे के सोलहवें वर्ष में आते ही न उसे शिशुवत् लाड़-प्यार करे और न ही उसे ताड़ित करे, अपितु उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार करे। उसे अच्छे-बुरे की पहचान कराये और सन्मार्ग पर चलने न चलने का दायित्व उसी पर छोड़ दे। इसप्रकार इस अवस्था में पिता, पुत्र को केवल मित्र के समान परामर्श दे, इससे अधिक नहीं, क्योंकि अब वह बच्चा नहीं रहता, वह समझदार हो जाता है। कठोरता बरतने पर वह पिता का विरोध भी कर सकता है, विद्रोही भी हो सकता है, घर छोड़कर भी जा सकता है अत: पिता को कर्तव्यशील होना चाहिये। पिता अगर कर्तव्यशील होगा तो अवश्य ही पुत्र का जीवन आदर्श बनेगा। ऐसे कर्तव्यशील पिता की प्राप्ति होना सुपात्रदान का ही फल हुआ करता है।

जीवन में मित्रों की भी एक अहम भूमिका होती है। सच्चे मित्र की प्राप्ति होना भी बड़ा दुर्लभ है। सच्चा मित्र वही है जो संकट की घड़ी में साथ निभाये। जब परिवार भी साथ छोड़ देता है तब मित्र साथ निभाता है।

दो मित्र थे, दोनों में बड़ी घनिष्ट मित्रता थी। एक दिन दोनों ही मित्र व्यापार हेतु अन्य देश की ओर जा रहे थे। जब दोनों जंगल के रास्ते से गुजर रहे थे, तभी एक विकराल सिंह दहाड़ मारता हुआ उनके सामने आकर खड़ा हो गया। आगेवाला मित्र खड़ा ही रह गया और पीछे वाला मित्र पेड़ पर चढ़कर बैठ गया। आगेवाले मित्र ने जब पीछे मुड़कर अपने साथी को देखा

तो मित्र गायब। सोचने लगा, मित्र ने तो धोखा दे दिया। अब इस सिंह को ही अपना मित्र बना लिया जाये। अब तो धर्म ही शरण है, धर्म ही सच्चा मित्र है जो शत्रुओं को भी मित्र बना देता है। वह तुरंत साँस रोककर जमीन पर लेट गया और मन ही मन णमोकार महामंत्र को जपने लगा। सिंह पास में आया और उसके कान में धीरे से कह गया कि जो संकट में काम न आये वह मित्र नहीं शत्रु है। घटना काल्पनिक है पर शिक्षाप्रद है। नीतिकार चाणक्य ने कहा है-

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च।। 15 ।।

विदेश में जानेवालों का सच्चा मित्र विद्या है, वे अपनी विद्या के बल पर धन कमाकर और सम्मान प्राप्त करके विदेश में भी देश जैसा परिवेश अनुभव करते हैं। अपने घरों में रहनेवालों की सच्ची मित्र पतिव्रता स्त्री है। पतिव्रता स्त्री ही अपने पति को विश्राम और विनोद के साधन प्रस्तुत करके उसे सब प्रकार से सुख पहुँचाती है। उसकी खिन्नता को प्रसन्नता में बदल देती है। अपने मधुर स्वभाव से पति का मन जीत लेती है। रोगी व्यक्तियों का मित्र औषधि है, औषधि से ही पीड़ा से निवृत्ति और स्वास्थ्य लाभ होता है। और मृत्यु के समय उसका मित्र धर्म है। जीवन के अंतिम पड़ाव पर जब सारे साथी छूट जाते हैं तब धर्म रूपी मित्र का दामन थाम लिया जाये तो वो भव-भव तक साथ निभाता है।

धर्म ही सच्चा साथी है, जैसे दीपक बाती है-
छूटे न धर्म शरण, ओ आत्मा-2
ये दुनिया एक सपना है, यहाँ न कोई अपना है-
छूटे न धर्म शरण, ओ आत्मा-2 ।। गीताञ्जलि ।।

स्वार्थी मित्र परिस्थिति के बदलते ही स्वयं भी बदल जाते हैं, पर जो सच्चा मित्र होता है, वह कैसी भी परिस्थिति हो अपने मित्रधर्म को नहीं छोड़ता।

एक बार मगध के राजा ने अपना राजपाट राजकुमार को सौंपकर शेष बचा जीवन धर्म कार्य में लगाने और तीर्थयात्रायें करने का निश्चय किया, लेकिन जाने से पहले वे चाहते थे कि उनके पुत्र का प्रधानमंत्री कुशल और योग्य हो ताकि राज्य पर कोई विपत्ति आने पर प्रधानमंत्री

के धर्म का पालन करता हुआ वह अपने राजा को सही राय दे सके। परीक्षा लेने के लिये राजा ने अगले दिन ही राज्य में यह घोषणा करवा दी कि वे राजकुमार को देश निकाला दे रहे हैं जो राजकुमार का साथ देगा उसे भी मृत्युदण्ड दिया जायेगा। खबर पूरे राज्य में आग की तरह फैल गई। राजकुमार के तीन मित्र थे, जो उसके लिये जान पर खेल जाने का दावा करते थे, परन्तु जब राजकुमार अपने उन मित्रों से मिलने गया तो उनमें से दो ने तो मिलने से ही मना कर दिया। तीसरा मित्र बोला—मित्र! में बचपन से तुम्हारे हर सुख-दुख का सहयोगी रहा हूँ। इस दुख की घड़ी में भी मैं तुम्हारे साथ हूँ, और तुम्हें जहाँ भी मेरी आवश्यकता होगी मैं खड़ा रहूँगा, लेकिन मैं एक बार राजा से मिलकर कुछ बात करना चाहता हूँ। अगले दिन राजकुमार का तीसरा मित्र राजमहल पहुँचा और बड़ी ही विनम्रता से राजा से पूछा- महाराज! आखिरकार राजकुमार ने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि जो उन्हें देश निकाला दिया जा रहा है।

राजा ने कहा-तुम राजकुमार को छोड़ो, अपनी बताओ तुम राजकुमार का साथ दोगे या नहीं।

राजा की बात सुनकर राजकुमार का मित्र बोला—मैं प्राण देकर भी मित्रधर्म का पालन करूँगा। राजा समझ गया कि जो किसी भी परिस्थिति में मित्रधर्म का पालन कर सकता है,असल में वही राज्य के प्रधानमंत्री पद के योग्य हो सकता है। अगले ही दिन राजा, राजकुमार को राज्य और उसके मित्र को प्रधानमंत्री पद सौंपकर वैराग्य को धारणकर वन की ओर चला गया।

जो संकट की घड़ियों में भी हमेशा मित्र का साथ निभाता है मित्र के सुख-दुख को अपना सुख-दु:ख समझता है और सदैव मित्र के हित में कार्य करता है ऐसे उत्तम मित्र की प्राप्ति सुपात्रदान के फल से ही होती है।

राम की तरह आज्ञाकारी पुत्र का मिलना भी अतिदुर्लभ है। जब राजतिलक की उद्घोषणा हुई तब भी राम सहज थे, पिता का प्रसाद मान हर्षित थे और जब प्रात: बेला में पिता दशरथ

द्वारा 14 वर्ष के वनवास की आज्ञा हुई तब भी राम सहज थे, उसे भी पिता का आशीष मान हर्षित थे। पुत्रों का कर्तव्य होता है कि वो अपने पिता के उज्ज्वल यश को, पिता की निर्मल कीर्ति को बनाकर रखे। जीवन में हर वस्तु का मूल्य है पर पिता के प्यार का कोई मूल्य नहीं। पिता के द्वारा परिवार की जो प्रतिष्ठा स्थापित की गई है पुत्रों का कर्तव्य है कि उस प्रतिष्ठा को और अधिक बढ़ाने का पुरुषार्थ करें। कहीं ऐसा न हो कि पुत्रों के कृत्य से पिता की प्रतिष्ठा धूमिल हो जाये। **पिता की हर आज्ञा का पालन करना ये पुत्रों का कर्तव्य है। पिता ने जिंदगी भर मेहनत करके जो छोटा सा प्रेम का आँगन हमें दिया है, अपने स्वार्थों के कारण उस आँगन में कहीं दीवारें खड़ी न हो जायें। अगर पिता अपने पुत्रों के लिये अपना पूरा जीवन लगा देता है, तो पुत्रों का भी कर्तव्य है कि वो पिता के प्रति अपने दायित्वों को पूरी जिम्मेदारी से निभाये। पुत्र की प्राप्ति तो पुण्य से हो जाती है, पर आज्ञाकारी पुत्र सुपात्रदान से अर्जित पुण्य से ही प्राप्त होता है।**

पतिव्रता स्त्री का मिलना भी पुण्याधीन है। ऐसी स्त्री जो दुर्दिनों में भी धूप में छाया की तरह साथ निभाये, मिलना बहुत दुर्लभ है। वनवास राम को मिला था सीता को नहीं। इधर राम वनवास जाने को तैयार हुए उधर सीता ने सारा श्रृंगार उतार दिया। सफेद साड़ी पहिनकर राम के साथ जाने को तैयार हो गई। राम ने कहा—भो सीते! तुम राजपुत्री हो, राजवधू हो, सुखों में पली हो, हमारे साथ कहाँ वन-वन भटकोगी। ये श्रृंगार पुनः धारण करो और राजमहल में ही सुख से रहो। सीता ने कहा—स्वामी! मैं आपकी अर्द्धांगिनी हूँ, अब आप मेरे बिना आधे हैं पूरे नहीं। मैं आपके साथ ही चलूँगी आपके बिना इन आभूषणों से मेरी कोई शोभा नहीं, मैं अगर राजसी श्रृंगार के साथ जाऊँगी तो लोग कहेंगे पति तो वनवासी और पत्नी रानी, नहीं स्वामी! आपके सम्मान में ही मेरा सम्मान है। सच्ची पत्नी वही है जो अपने पति का गौरव हमेशा बनाकर रखती है। इसलिए बंधुओ सीता जैसी पतिव्रता स्त्री का मिलना भी सुपात्रदान का फल जानना चाहिये।

हमें संसार दशा में धन, धान्य, गृह, वाहन आदि जो भी वैभव प्राप्त होता है, वह उसी सातिशय पुण्य का फल है जो उत्तम भावों के साथ सुपात्रदान से प्राप्त होता है अतः कहीं ऐसे

निर्ग्रंथ तपोधन, परम वीतरागी योगियों का समागम पुण्ययोग से प्राप्त हो जाये तो अपने श्रावक धर्म का, अपने कर्तव्यों का पालन करने में पीछे मत रहना अपितु पूर्ण उत्साहपूर्वक सुपात्रों को दान करके अपनी इस पुण्य पर्याय को सार्थक करना। इसी भावना के साथ—

मात पिता धन धान्य, सुपुत्र, वाहन विभव मकान कलत्र।
पात्रदान से मिलते हैं, जग के उत्तम सौख्य सुमित्र।।
पुण्यात्मा ही, हो-हो-2, यह शुभ फल पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

आहार के समय वर्ज्य मनुष्य

मिथ्यादृग्वृषनाशको गुणहरः क्षुद्वान्व्रणी दूषकः।
कुष्ठी क्रूरमना विरोधकरणः फेलादनः सामयः।।

श्वित्री सूतक वान्मतच्युतजनो दोषी निषिद्धांबरः।
स्निग्धांगोऽक्षिविषश्च भुक्ति समये वर्ज्यो गुणज्ञैर्गुरोः।।दा.शा.।।

गुणवान् मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे साधुओं के आहारके समय में मिथ्यादृष्टि, धर्मद्रोही, गुणापहारी, पतिव्रतादि गुणों से रहित स्त्री, भूखा, व्रणी, धर्मनिंदक, कोढ़ी, क्रूरपरिणागी, विरोधी, उच्छिष्ट खानेवाले, रोगी, श्वेत कुष्टी, सूतकी, मत भ्रष्ट, समाज बहिष्कृत, मैले कपड़ों के धारक, तेल से लिप्त शरीर वाले, नेत्रदोषी आदि को वर्जन करें अर्थात् साधुओं को आहार के समय उपर्युक्त प्रकार के मनुष्य दृष्टिगोचर न हों, इसका ध्यान रखें।

गाथा - 20
(प्रवचन)

चक्रवर्ती का वैभव सुपात्रदान का फल

02.09.2013

भिण्ड

(सुपात्र दान का फल)

सत्तंगरज्ज-णवणिहि भंडार-सडंगबल-चउद्दसरयणं।
छण्णवदि सहस्सित्थी, विहवं जाणह सुपत्तदाणफलं।। 20।।

* अन्वयार्थ *

(**सत्तंगरज्ज**) सप्तांग राज्य (**णवणिहि**) नवनिधि (**भंडार**) कोष (**सडंग बल**) छह प्रकार की सेना (**चउद्दसरयणं**) चौदह रत्न (**छण्णवदि सहस्सित्थी**) छियानवे हजार रानियाँ और (**विहवं**) वैभव यह सब (**सुपत्तदाण फलं**) सुपात्रदान का फल (**जाणह**) जानो।

अर्थ- सप्तांग राज्य - राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, किला और सेना। **नवनिधि** - काल, महाकाल, पाण्डु, नैसर्प, पद्म, मानव, पिंगल, शंख, सर्व रत्न। **षडंग सेना** - यान, वाहन, विमान, हाथी, घोड़ा, रथ। **चौदह रत्न** - चक्र, छत्र, असि, दण्ड, मणि, चर्म, काकिणी, (सात अजीव रत्न)। सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, स्थपति और पुरोहित (सात सजीव रत्न) छियानवे हजार स्त्रियाँ और वैभव यह सब सुपात्र दान का फल जानो।

चक्रवर्ती का वैभव सुपात्रदान का फल

30

रयणोदय

राज्य, निधि, भण्डार, रतन, सेना, स्त्री, वैभव, धन।
पात्रदान का फल जानो, कहते कुंदकुंद भगवन्।।
सत्पात्र दानी, हो-हो-2, चक्री सुख पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

जैनदर्शन में त्रेसठ शलाका पुरुषों का कथन आता है जो महान पुण्यात्मा और अद्‌भुत ऐश्वर्यशाली होते हैं। ये सभी शलाका पुरुष, कुछ उसी भव से कुछ आगामी भवों में नियम से निर्वाण को प्राप्त होते हैं। इनकी संख्या त्रेसठ निश्चित होती है। जिनमें 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण और 9 बलदेव शमिल हैं।

ये सभी त्रेसठ शलाका पुरुष अपनी पूर्व पर्यायों में हम और आपकी तरह ही सामान्य जीवन जिया करते थे। हम और आपकी तरह ही उनका भी जन्म हुआ था, लेकिन जन्म लेने के बाद उन्होंने अपना वर्तमान सबकी तरह खोया नहीं अपितु जो अनादि से खोया था उसे पाने का पुरुषार्थ किया। फलस्वरूप वो सामान्य से विशेष बन गये और हम विशेष की विशेषता रखते हुए भी आज तक सामान्य ही बने हुए हैं। जितने भी शलाका पुरुष होते हैं, सभी निकट भव्य जीव हुआ करते हैं। शलाका पुरुषों में जन्म नियम से भव्यजीवों का ही होता है।

जितने भी लोग ऊपर उठते हैं वो जमीन से ही उठते हैं। हम भी उन महापुरुषों की तरह महान बन सकते हैं। अपने को कभी कमजोर नहीं समझना चाहिये अपितु सदैव अपनी सोच ऊँची रखना चाहिए। आपको भी पंख मिल सकते हैं। आप भी उड़ान भर सकते हैं। बशर्ते आपके हौंसले बुलंद हों।

हमारा चिंतन अगर छोटा होगा तो हम छोटे ही रह जायेंगे। ऊँचाईयाँ प्राप्त करना है तो चिंतन को ऊँचाई दो।

गुब्बारे बेचनेवाला आवाज लगाते हुए गली से गुजर रहा था। आवाज सुन एक छोटा बालक घर से बाहर आया और टकटकी लगाकर उन गुब्बारों को देखने लगा। उसने तुरंत 25 पैसे देकर एक गुब्बारा खरीद लिया। हवा में लहराते हुए गुब्बारों से एक क्षण के लिये उसकी दृष्टि हटकर उन गुब्बारों पर गई जो बेचनेवाले की थैली में रखे हुए थे। अब उसकी दृष्टि कभी हवा में लहराते, इठलाते गुब्बारों पर जाती तो कभी थैली में रखे गुब्बारों को देखता। बालक ने गुब्बारे बेचनेवाले से प्रश्न किया— क्या थैली में रखे गुब्बारे भी उड़ सकते हैं? गुब्बारेवाले ने कहा—हाँ बेटा! अगर इनमें गैस (Gas) भरी जाये तो ये भी उड़ सकते हैं।

साधु और श्रावक में बस इतना ही अंतर है कि साधु हवा युक्त गुब्बारे हैं और श्रावक हवा मुक्त गुब्बारे हैं। भो श्रावको! अपनी योग्यता पर श्रद्धा लाओ, रत्नत्रय की हवा से तुम भी हमारी तरह ऊपर उठ सकते हो।

श्रावक के लिए पात्रदान की अचिंत्य महिमा बताई गई है। पात्रदान के प्रभाव से वह अपने गुब्बारे को रत्नत्रय की गैस (Gas) भरने के योग्य बनाता है। उत्तम भावों से किये गये

पात्रदान के प्रभाव से वह ऐसा महान सातिशय पुण्य संचित करता है कि रत्नत्रय की सफल साधना द्वारा देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुषों के पुण्यफल स्वरूप अभ्युदय सुख का भोग कर परम्परा से निर्वाण को प्राप्त होता है।

चक्रवर्ती का अभ्युदय सुख सुपात्रदान का ही फल जानना चाहिये। इस गाथा में आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी पात्रदान से छह खण्ड का आधिपत्य अर्थात् चक्रवर्तीपना प्राप्त होता है ऐसा बता रहे हैं।

जिसमें चक्ररत्न के साथ, नौ निधियाँ और चौदह रत्नों से उत्पन्न हुई भोगोपभोग की अभ्युदय सुखदायिनी परम्परा प्राप्त होती है ऐसे षट्खण्डाधिपति चक्रवर्ती का पद पात्रदान से ही प्राप्त होता है।

चक्रवर्ती का वैभव इस नृलोक में अन्यत्र दुर्लभतम होता है। उसका शरीर उत्तम संहनन से युक्त होता है अर्थात् वज्रवृषभ नाराच संहनन जिसमें वज्र की हड्डियाँ, वज्रमय कीलों से कीलित होती हैं और उसका वज्रमय ही वेष्टन होता है। उसका शरीर किसी भी प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से अभेद्य होता है। चक्रवर्ती समचतुरस्र संस्थान का धारी होता है अर्थात् शरीर के सभी अंगोपांगों की रचना यथा परिमाण में यथास्थान होती है, जो बहुत ही सुंदर एवं मनोहारी हुआ करती है।

चक्रवर्ती अतुल बल का स्वामी होता है, पृथ्वीलोक के मनुष्यों में सर्वाधिक बलशाली चक्रवर्ती राजा होता है। छह खण्ड के सभी राजाओं का बल एक तरफ और चक्रवर्ती का बल एक तरफ अर्थात् छह खण्डों के सभी राजा एक साथ मिलकर भी चक्रवर्ती के बल का पार नहीं पा सकते।

तिलोयपण्णत्ति में कहा है—

छक्खंड भरहणादो बत्तीस-सहस्स-मउडबद्ध-पहुदीओ।
होदि हु सयलं चक्की तित्थयरो सयल भुवणवई।। 48-1 ।।

अर्थात् जो छहखण्ड रूप भरतक्षेत्र का स्वामी हो और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं का तेजस्वी अधिपति हो, वह सकल चक्रवर्ती होता है व तीन लोक का अधिपति तीर्थंकर होता है।

आज हम सभी जिनेन्द्र भगवान् की दिव्यवाणी में आगत सुपात्रदान के उत्कृष्ट फलों के विषय में जानने का प्रयास कर रहे हैं। सुपात्रदान के फल से जीव ऐसे ही चक्रवर्ती जैसे महान शलाका पुरुषों में जन्म धारण करता है। चक्रवर्ती के सुदर्शन नामक चक्ररत्न का ऐसा माहात्म्य होता है कि उसके प्रभाव से छहखण्ड के सभी राजे-महाराजे उसकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा सदैव उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं। मनोहर महल, तोरणद्वारों से सुशोभित 32 हजार देशों का स्वामी चक्रवर्ती होता है। 84 लाख हाथी एवं सूर्य विमान से प्रतिस्पर्धा करनेवाले 84 लाख वेगशाली रथ होते हैं। थल, जल, और आकाश में समान गति से चलनेवाले 18 करोड़ घोड़े उसकी अश्वशाला की शोभा बढ़ाते हैं। षट्खण्डों के महान योद्धाओं का मान मर्दन करनेवाले 84 करोड़ पैदल सिपाही उसकी सेना का अंग होते हैं।

देव अप्सराओं के सौन्दर्य को तिरोहित करनेवाली 96000 रानियों का उपभोग चक्रवर्ती करता है। इनमें 32000 कन्यायें आर्यखण्ड की होती हैं, 32000 कन्यायें म्लेच्छखण्ड की होती हैं एवं 32000 कन्यायें विद्याधरों की हुआ करती हैं। इन रानियों के साथ रतिक्रीड़ा के समय चक्रवर्ती अपनी पृथक् विक्रिया के प्रभाव से एक कम 96 हजार रूप बना लेता है। चक्रवर्ती का मूल शरीर पटरानी के पास रहता है।

छहखण्डों में उसके पास 32 हजार नाट्यशालायें, 72000 नगर, नंदनवन सम सुरम्य बगीचों से युक्त 96 करोड़ गाँव, 99 हजार द्रोणमुख, 48 हजार पत्तन, कोट, परकोटे, अटारियाँ और परिखाओं से सुशोभित 16 हजार खेट, कुभोगभूमियाँ, मनुष्यों के आवास ऐसे 56 अंतर्द्वीप होते हैं। जिनके चारों ओर परिखा बनी हुई है ऐसे 14 हजार संवाह-पहाड़ों पर बसनेवाले नगर हैं। निर्जन वनों और ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से सुशोभित 28 हजार सघन वन होते हैं। 3 करोड़ गौशालायें होती हैं जिसमें उत्तमोत्तम करोड़ों गायें निवास करती हैं। एक करोड़ हल होते हैं।

प्रत्येक चक्रवर्ती के वैभव में काल, महाकाल, नैसर्प, पाण्डु , पद्म, माणव, पिंगल, शंख और सर्वरत्न नाम की नौ निधियाँ होती हैं जो चक्रवर्ती के पुण्य से उसे सभी प्रकार की भोग-उपभोग की सामग्रियाँ प्रदान करती हैं। ये सभी निधियाँ चक्रवर्ती के श्रीपुर में उत्पन्न होती हैं। निधिपाल देवों से रक्षित यह निधियाँ गृहपति रत्न के अधीन रहकर चक्रवर्ती के मनोरथ पूर्ण

करती हैं गाड़ी के आकार की यह निधियाँ 9 योजन चौड़ी, 12 योजन लम्बी एवं 8 योजन गहरी होती हैं। इनसे प्राप्त सामग्री इसप्रकार है—

कालनिधि – इस निधि से निमित्त, न्याय, व्याकरण आदि अनेक प्रकार के शास्त्र की उत्पत्ति होती रहती है साथ ही यह मन और इन्द्रियों को प्रिय वीणा, बाँसुरी आदि मनोज्ञ इन्द्रिय विषय भी प्रदान करती है।

महाकाल निधि – चक्रवर्ती की महाकाल निधि असि, मसि, कृषि, शिल्प, कला और वाणिज्य इन षट्कर्मों के साधनभूत द्रव्य एवं सम्पदायें प्रदान करती है। इससे बर्तन एवं पंचलौह धातुयें भी प्राप्त होती हैं।

नैसर्प निधि – इस निधि से शैया, आसन, मकान आदि उपभोग्य वस्तुयें प्राप्त होती हैं।

पाण्डु निधि – यह निधि सभी प्रकार के धान्यों को उत्पन्न करती है एवं छह प्रकार के रस भी प्रदान करती है।

पद्म निधि – चक्रवर्ती की यह निधि पादाम्बर, चीन, महानेत्र, दुकूल, उत्तम कम्बल आदि रेशमी, सूती सभी प्रकार के उत्तमोत्तम वस्त्र प्रदान करती है।

पिंगल निधि – इस निधि से अनेक प्रकार के मनोज्ञ आभूषणों की प्राप्ति होती है।

माणव निधि – माणवनिधि से नीतिशास्त्र एवं अनेक प्रकार के उपयोगी शास्त्रों की एवं आयुध की प्राप्ति होती है।

शंख निधि – शंख नाम की इस निधि से स्वर्ण की उत्पत्ति होती है एवं भेरी, शंख, नगाड़े, वीणा आदि वाद्ययंत्र भी प्राप्त होते हैं।

सर्वरत्न निधि – सर्वरत्न नामक निधि से नील, मरकत, पद्मराग, वैडूर्य, स्फटिक आदि नाना प्रकार के मणि एवं रत्नों की उत्पत्ति होती है।

षट्खण्डाधिपति चक्रवर्ती सम्राट 14 दिव्य रत्नों का भोग करता है जिनमें सात चेतन रत्न होते हैं और सात अचेतन रत्न होते हैं। चक्र, छत्र, दण्ड, असि, मणि, चर्म और काकिणी ये

सात अजीव रत्न हैं एवं सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, स्थपति (शिल्पी) और पुरोहित ये सात चेतन रत्न होते हैं।

चक्र, दण्ड, असि और छत्र ये चार रत्न चक्रवर्ती की आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं। मणि, काकिणी तथा चर्म ये तीन रत्न चक्रवर्ती के श्री गृह में प्रकट होते हैं। स्त्री, हाथी और घोड़ा इन तीन रत्नों की उत्पत्ति विजयार्ध पर्वत पर होती है और अन्य रत्न निधियों के साथ अयोध्या में ही उत्पन्न होते हैं।

चौदह रत्नों के नाम एवं कार्य इस प्रकार हैं—

1. **सेनापति रत्न**—चक्रवर्ती सम्राट का सेनापति रत्न अयोध्य होता है जब चक्रवर्ती षट्खण्डों पर विजय प्राप्त करने के लिए जाता है तब सेना की अध्यक्षता सेनापति करता है। छहखण्डों के सभी देश, प्रदेश आदि पर विजय प्राप्त करने में एवं विजयार्द्ध पर्वत की गुफाओं के द्वार खोलने का महत्त्वपूर्ण कार्य सेनापति के द्वारा ही संपादित किया जाता है।

दण्ड रत्न को आगे कर सेनापति सबसे आगे ऊँची-नीची भूमि, पर्वत, वन आदि को लीलापूर्वक सम करता हुआ जाता है जिससे सुखद राजमार्ग जैसा पथ तैयार हो जाता है जिस पर सम्पूर्ण सेना बिना किसी परेशानी के आगे बढ़ती जाती है।

2. **गृहपति रत्न**—भण्डार की सम्हाल करनेवाला होता है।

3. **स्थपति (सिलावट) रत्न**—बढ़ई-तक्षक-कामवृष्टि नाम का सिलावट रत्न होता है जो दिग्विजय के समय उन्मग्ना एवं निमग्ना नदियों पर पुल का निर्माण करता है। साथ ही अनेक प्रकार के तंबू, घास की बड़ी-बड़ी झोपड़ियों का एवं आकाश में चलनेवाले अनेक प्रकार के रथों की रचना करता है।

4. **पुरोहित रत्न**—धर्मप्रेरक या बुद्धिसमुद्र नाम का पुरोहित रत्न दैवीय उपद्रवों की शांति के लिये सभी प्रकार के धर्मानुष्ठान कराता है एवं विशेष परिस्थितियों में योग्य सलाह प्रदान करता है।

5. **गजरत्न**—विजयगिरि या विजयपर्वत नाम का गजरत्न उन्नतकाय एवं धवल वर्ण का होता है जो सवारी का काम करता है।

6. **अश्व रत्न**—चक्रवर्ती का पवनंजय या कुमुरामेलक नाम का एक विशेष अश्व रत्न होता है जो विजयार्द्ध पर्वत की गुफा का द्वार खुलने पर 12 योजन क्षेत्र को लीलामात्र में ही उल्लंघन करने की सामर्थ्यवाला होता है।

7. **स्त्री रत्न**—सौन्दर्य की अनुपम प्रतिमा सुभद्रा नाम का स्त्री रत्न होता है जो चक्रवर्ती के उपभोग का साधन है।

8. **काकणी रत्न**—चिंता जननी नाम का यह काकणी रत्न अंधकारमय गुफाओं में प्रकाश करता है। इस काकणी एवं चिंतामणी रत्न द्वारा गुफाओं की दीवार पर एक-एक योजन की दूरी पर सूर्य एवं चन्द्रमा के मंडल लिखे जाते हैं जिससे सूर्य एवं चन्द्रमा जैसा प्रकाश मिलता है एवं इसी रत्न से दिग्विजय के उपरान्त वृषभाचल पर्वत पर चक्रवर्ती की प्रशस्ति अंकित की जाती है।

9. **चिन्तामणि रत्न**—यह चूड़ामणि नाम का चिंतामणि रत्न चक्रवर्ती के मनोवांछित कार्य की सिद्धि करनेवाला होता है एवं गुफाओं में प्रकाश करने में भी उपयुक्त होता है।

10. **चर्मरत्न**—चर्मरत्न चक्रवर्ती के सम्पूर्ण कटक की जल से रक्षा करता है। प्रसंग आता है कि नागमुख देव द्वारा जब जलवृष्टि की गई तो चारों ओर समुद्र जल भर गया, तब नीचे से चर्मरत्न और ऊपर से छत्ररत्न ने मिलकर एक अंडाकार आकृति बनाई, जिससे पूरी सेना सुरक्षित हो गई और जिसके अंदर चक्ररत्न से प्रकाश किया गया था।

11. **असिरत्न**—सौनन्दक नाम का यह असिरत्न शत्रु का संहार करनेवाला होता है।

12. **दण्डरत्न**—प्रचण्ड वेग नाम का दण्डरत्न होता है जब चक्रवर्ती दिग्विजय यात्रा पर जाते हैं तो मार्ग में गुफाओं के कपाट खोलने एवं दिग्विजय के दौरान शत्रुओं को दण्डित करने तथा सेना के आगे चलते हुए मार्ग को साफ एवं निरापद करने में इसका प्रयोग किया जाता है। साथ ही दिग्विजय यात्रा के पश्चात् वृषभाचल पर्वत पर विजय प्रशस्ति भी इसी दण्डरत्न से अंकित की जाती है।

13. **छत्र रत्न**—बारह योजन लम्बा एवं इतना ही चौड़ा सूर्य प्रभ नाम का यह छत्ररत्न चक्रवर्ती के सम्पूर्ण कटक की वर्षा से रक्षा करता है।

14. **चक्ररत्न**—सुदर्शन नाम का चक्ररत्न दिग्विजय का प्रेरक कारण होता है। सेना के आगे-आगे चलकर मार्ग को व्यवस्थित करता जाता है, शत्रु को भय उत्पन्न करनेवाला यह चक्ररत्न कभी चर्मरत्न एवं छत्ररत्न के बीच सेना स्थित होती है तो उस समय प्रकाश उत्पन्न कर सेना का भय दूर करता है।

चक्रवर्ती सम्राट अपने स्त्रीरत्न के साथ छहों ऋतुओं में उत्पन्न होनेवाले पंचेन्द्रियों के योग्य उत्तमोत्तम भोगों को भोगता है। प्रथम चक्रवर्ती भरत के सुभद्रा नाम का स्त्रीरत्न था।

चक्रवर्ती के दशांग भोग (1) 14 रत्न 9 निधियाँ (2) 96000 रानियाँ (3) नगर (4) शय्या (5) आसन (6) सेना (7) नाट्यशाला (8) भाजन (9) भोजन (10) वाहन, ये 10 प्रकार के जगत् दुर्लभ भोग के साधन चक्रवर्ती के पुण्य से उसे प्राप्त होते हैं।

चक्रवर्ती के 14 रत्नों, 9 निधियों एवं उनकी स्वयं की रक्षा के लिये 16000 गणबद्ध देव होते हैं जो हाथों में असि धारणकर सतत् रक्षा में तत्पर रहते हैं।

क्षितिसार - चक्रवर्ती के महल को घेरे हुए विशाल क्षितिसार नाम का कोट होता है।

गोपुर - दैदीप्यमान रत्नों के तोरणों से सुसज्जित सर्वतोभद्र नाम का गोपुर रहता है।

नंद्यावर्त - चक्रवर्ती की विशाल छावनी के ठहरने का स्थान नंद्यावर्त है।

वैजयन्त महल - शीत, ऊष्ण, वर्षा आदि सभी ऋतुओं में सुख देनेवाला वैजयन्त नाम का महल होता है।

दिक्वसतिका सभाभूमि - बहुमूल्य रत्नों से खचित 'दिक्वसतिका' नाम की सभाभूमि होती है।

सुविधि छड़ी - टहलने के समय हाथ में लेने के लिये मणियों की बनी हुई 'सुविधि' नाम की सुंदर छड़ी होती है।

गिरिकूटक राजमहल – सभी दिशाओं का निरीक्षण करने के लिए 'गिरिकूटक' नाम का राजभवन होता है।

नृत्यशाला – चक्रवर्ती के लिये नृत्य देखने हेतु एक सुंदर 'वर्धमानक' नाम की नृत्यशाला होती है।

धारागृह – ग्रीष्म का संताप दूर करने के लिए शीतल जल का बड़ा भारी 'धारागृह' होता है।

गृहकूटक – वर्षा ऋतु में निवास करने हेतु चक्रवर्ती के पास एक विशेष 'गृहकूटक' नाम का महल होता है।

पुष्करावती – सफेद चूना से पुता हुआ 'पुष्करावती' नाम का एक विशेष खास निवास भवन होता है।

भण्डार गृह – चक्रवर्ती की धन संपदा के संरक्षण के लिये 'कुबेरकान्त' नाम का भण्डार गृह होता है। जो कभी खाली नहीं होता।

कोठार – 'वसुधारक' नाम का बड़ा भारी कोठार रहता है।

स्नानगृह – चक्रवर्ती के पास एक बहुत बडा 'जीमूत' नाम का स्नानगृह होता है।

रत्न माला – 'अवतंसिका' नाम की विशेष सुन्दर माला होती है।

चाँदनी – 'देवरम्या' नाम की चाँदनी होती है।

शैया – चक्रवर्ती जिस शैया पर विश्राम करता है ऐसी सुकोमल 'सिंहवाहिनी' नाम की शैया होती है।

सिंहासन – चक्रवर्ती के बैठने के लिये 'अनुत्तर' नाम का सिंहासन होता है।

चँवर – विजयार्ध कुमार के द्वारा प्रदत्त 'अनुपमान' नाम के सुन्दर चँवर होते हैं।

छत्र – बहुमूल्य रत्नों से निर्मित्त 'सूर्यप्रभ' नाम का दैदीप्यमान छत्र होता है।

कुण्डल – बिजली की चमक को भी तिरस्कृत कर देने में समर्थ 'विद्युतप्रभ' नाम के दो कुण्डल होते हैं जिन्हें चक्रवर्ती धारण करता है।

खड़ाऊँ – 'विषमोचिका' नाम की दिव्य खड़ाऊँ होती हैं इनकी यह विशेषता होती है कि चक्रवर्ती के अतिरिक्त दूसरे के पैर का स्पर्श होते ही विष छोड़ने लगती हैं।

कवच – चक्रवर्ती के पास 'अभेद्य' नाम का कवच होता है जिसे किसी भी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छेद नहीं सकते।

रथ – दिव्य शस्त्रों से सुसज्जित 'अजितंजय' नाम का रथ होता है।

धनुष – जिसकी प्रत्यञ्चा के आघात से समस्त संसार काँप उठे ऐसा 'वज्रकाण्ड' नाम का धनुष होता है।

बाण – चक्रवर्ती के पास 'अमोघ' नाम के ऐसे दिव्य बाण होते हैं जो कभी व्यर्थ नहीं जाते।

शक्ति – वज्र से निर्मित 'वज्रतुण्डा' नामक शक्ति (शस्त्र) होता है।

भाला – 'सिंहाटक' नाम का भाला होता है।

छुरी – रत्नों से जिसकी मूठ बनी होती है ऐसी 'लोहवाहिनी' नाम की दिव्य छुरी होती है।

कणप – वज्र के समान 'मनोवेग' नाम का कणप (अस्त्र विशेष) रहता है।

तलवार – सौनंदक नाम की उत्तम तलवार होती है।

खेट – भूतों के मुखों से चिन्हित 'भूतमुख' नाम का खेट (अस्त्र विशेष) रहता है।

भेरी – चक्रवर्ती सम्राट के पास बारह योजन तक गम्भीर ध्वनि पहुँचाने वाली 'आनंद दायिनी' नामक बारह भेरियाँ होती हैं।

नगाड़े – 'विजयघोष' नाम के बारह पटह नगाड़े होते हैं।

शंख – चक्रवर्ती के पास 'गम्भीरावर्त' नाम के चौबीस शंख होते हैं।

पताकायें - वायु के झकोरे से उड़ती हुईं और चक्रवर्ती के यश को फैलाती हुईं अड़तीस करोड़ पताकायें होती हैं

कड़े - चक्रवर्ती जिनको अपने हाथों में धारण करता है ऐसे रत्न निर्मित 'वीरानन्द' नाम के उत्तम कड़े होते हैं।

दिव्य भोजन - 'महाकल्याण' नाम का दिव्य भोजन होता है। जो अतिशय तृप्ति और पुष्टि कारक होता है। जिस भोजन को अन्य कोई पचा नहीं सकता ऐसे अत्यंत स्वादिष्ट, गरिष्ट और सुगंधित 'अमृत गर्भ' नाम के मोदक आदि भक्ष्य पदार्थ, 'अमृत कल्प' नाम के खाद्यपदार्थ एवं 'अमृत' नाम के दिव्य पानक-पीने योग्य पदार्थ होते हैं।

बंधु - चक्रवर्ती के बंधु-बांधव, कुटुम्ब परिवार का प्रमाण साढ़े तीन करोड़ होता है।

किमिच्छिक दान - चक्रवर्ती सम्राट द्वारा राज्य में अभावग्रस्त जनों को किमिच्छिक दान दिया जाता है। जिससे वो सुखपूर्वक जीवन यापन करते हुए धर्मकार्य करते हैं। याचकों को उनकी इच्छा के अनुरूप इतना दान दिया जाता है कि जिससे उनकी इच्छा शेष न रहे, वह किमिच्छिक दान कहलाता है, इस प्रकार का दान देने की योग्यता सिर्फ चक्रवर्ती में ही होती है।

चक्रवर्ती की राजविद्यायें -

1. आन्वीक्षिकी विद्या - इस विद्या के द्वारा सत्य, झूठ एवं अपना बल, रूप जाना जाता है।

2. त्रयी विद्या - धर्म एवं अधर्म का विशेष ज्ञान कराती है।

3. वार्ता विद्या - इस विद्या द्वारा चक्रवर्ती अर्थ, अनर्थ को समझता है।

4. दण्डनीति विद्या - दुष्टों को दण्ड की नीति का बोध कराती है।

चक्रवर्ती सम्राट् के राज्यवैभव में 14 रत्न और 9 निधियों के साथ-साथ वह 32 हजार मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामीपना होता है। ये सभी राजा राज्य व्यवस्था एवं सैन्य व्यवस्था में महारथ रखते हैं।

राजाओं के कर्तव्य -

(1) **आत्मपालन** - स्वयं की रक्षा संबंधी व्यवस्था करना।

(2) **मतिपालन** - अपनी बुद्धि एवं विवेक जागृत रखना।

(3) **कुलपालन** - राजकुल का आचार-विचार एवं उनकी व्यवस्थाओं का पूर्ण ध्यान रखना।

(4) **प्रजापालन** - अपने पुत्र-पुत्रियों के समान ही अपनी प्रजा का पालन करना।

राजाओं के छह विशेष गुण-

(1) **सन्धि** - अन्य राजाओं से प्रेम-व्यवहार बनाकर रखना।

(2) **निग्रह** - अन्याय एवं आत्मरक्षा, प्रजारक्षा हेतु युद्ध करना।

(3) **यान** - विविध प्रकार के वाहनों का साधन एवं ज्ञान।

(4) **आसन** - राज्य की व्यवस्थानुसार स्थान।

(5) **संस्थान** - अपने वचनों में सदैव दृढ़ रहना।

(6) **आश्रय** - अपने से बलिष्ठ का सहारा लेना और अपने से कमजोर को सहारा देना।

राजाओं का स्वामित्व—

(1) **सेनापति** - समस्त सेनाओं का नायक।

(2) **गणकपति** - ज्योतिष आदि का नायक।

(3) **वणिक पति** - व्यापारियों का नायक।

(4) **मंत्री** - पंचांग मंत्रों के विषय में कुशल।

(5) **दण्डपति** - सेना का नायक।

(6) **महत्तर** - कुलवान् अर्थात् कुल विशेष में उच्चता।

(7) **तलवर** - नगर का कोतवाल।

(8) **वर्ण** - स्वामी ब्राह्मण।

(9) **क्षत्रिय** - शरणागत आये जीवों की रक्षा करना, अभय प्रदान करना।

(10) **वैश्य** - व्यापार आदि कार्य करनेवाले।

(11) **शूद्र** - सेवा कर्म करनेवाले।

(12) **हाथी** - युद्ध में विजयश्री दिलानेवाले।

(13) **अश्व** - सैनिकों को सवारी करने के लिये।

(14) **रथ** - आवागमन यात्रा आदि करने के लिये।

(15) **पदाति** - चतुरंग सेना स्वामी।

(16) **पुरोहित** - राजपण्डित -राज्य के सभी धर्मानुष्ठान कराने हेतु।

(17) **अमात्य** - देश का अधिकारी।

(18) **महामात्य** - राज्य कार्यों का अधिकारी।

मुकुटबद्ध राजा - उपरोक्त गुणों से युक्त 18 प्रकार की श्रेणी का स्वामी एक मुकुटबद्ध राजा होता है।

अधिराज - 500 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अधिराजा होता है।

महाराज - 1000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी महाराजा होता है।

अर्द्धमण्डलीक - 2000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अर्धमण्डलीक होता है।

मंडलीक - 4000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी मंडलीक होता है।

महामंडलीक - 8000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी महामंडलीक होता है।

अर्धचक्री - 16000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी नारायणऔर प्रतिनारायण (त्रिखण्डाधिपति) होता है।

चक्रवर्ती – 32000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी चक्रवर्ती (षट् खण्डाधिपति) होता है।

चक्रवर्ती की सेना के भेद व प्रमाण–

(1) **पत्ति** – 1 रथ, 1 हाथी, 5 प्यादे, 3 घोड़े होते हैं।

(2) **सेना** – 3 रथ, 3 हाथी, 15 प्यादे, 9 घोड़े होते हैं।

(3) **सेनामुख** – 9 रथ, 9 हाथी, 45 प्यादे, 27 घोड़े होते हैं।

(4) **गुल्म** – 27 रथ, 27 हाथी, 135 प्यादे, 81 घोड़े होते हैं।

(5) **वाहिनी** – 81 रथ, 81 हाथी, 405 प्यादे, 243 घोड़े होते हैं।

(6) **प्रतना** – 243 रथ, 243 हाथी, 1215 प्यादे, 729 घोड़े होते हैं।

(7) **चमू** – 729 रथ, 729 हाथी, 3645 प्यादे, 2187 घोड़े होते हैं।

(8) **अनीकिनी** – 2187 रथ, 2187 हाथी, 10935 प्यादे, 6561 घोड़े होते हैं।

(9) **अक्षोहिणी सेना** – इसमें 10 अनीकिनी होती हैं। 21870 रथ होते हैं। 21870 हाथी होते हैं, 109350 प्यादे, 65610 घोड़े होते हैं। चक्रवर्ती की सेना में रथ, हाथी, प्यादे एवं घोड़ों के साथ देव एवं विद्याधर भी होते हैं। इसे षट्प्रकार की सेना कहा जाता है। जो पृथ्वी एवं आकाश के अंतराल को व्याप्त कर चलती है।

व्यूह रचना – ऊपर कही गई सेना में चार प्रकार की व्यूह रचना होती है।

(1) दण्ड व्यूह (2) मण्डल व्यूह (3) भोग व्यूह (4) असंह्यत व्यूह।

72 प्रकार की कलायें – पद्मानंद काव्य में कहा गया है कि चक्रवर्ती सम्राट 72 कलाओं को धारण करता है। वो 72 कलायें निम्न हैं।

(1) **लेख कला** – सुंदर और स्पष्ट लिपि लिखना तथा स्पष्ट रूप से अपने भाव एवं विचारों की अभिव्यंजना लेखन द्वारा करना लेख कला है।

(2) **गणित कला** – अंक गणित, रेखा गणित एवं बीज गणित का ज्ञान करानेवाली कला गणित कला है।

(3) **रूप कला** – चित्रकला का ज्ञान–इस कला में धूलिचित्र, दृश्यचित्र और उस चित्र में तीन प्रकार के चित्र आते हैं।

(4) **नाट्य कला** – नाटक लिखने और खेलने की कला। इस कला में सुरताल आदि की गति के अनुसार अनेक चित्र, नृत्य के प्रकार सिखलाये जाते हैं।

(5) **गीत कला** – किस समय कौन सा स्वर अलापना चाहिये, अमुक स्वर को अमुक समय पर अलापने से क्या प्रभाव पड़ता है? इन सभी विषयों की जानकारी।

(6) **वादित्र कला** – संगीत के स्वर भेद और ताल आदि के अनुसार वाद्य कला का परिज्ञान।

(7) **पुष्कर गत कला** – बाँसुरी और भेरी आदि के वादन की कला।

(8) **स्वर गत कला** – षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सप्त स्वरों का परिज्ञान।

(9) **समताल कला** – वाद्यों के अनुसार हाथ तथा पैरों की गति की साधना।

(10) **द्यूत कला** – जुआ खेलने की कला। प्राचीन काल में जुआ को मनोविनोद का साधन माना गया है, अत: इसकी गणना कलाओं में होती है।

(11) **जनवाद कला** – मनुष्य के शरीर, रहन–सहन, बातचीत, खान–पान आदि के द्वारा उसका परीक्षण करना कि यह किस प्रकृति का है और किस पद या किस कार्य के लिए उपयुक्त है।

(12) **प्रोक्षत्व कला** – वाद्य विशेष के वादन की कला।

(13) **अर्थपद कला** – अर्थशास्त्र का परिज्ञान। इसके अंतर्गत रत्नों की परीक्षा और धातुवाद दोनों ही शामिल है।

(14) **जल मृत्तिका कला** – जलवाली मिट्‌टी का परिज्ञान। किस स्थान में जल है अथवा किस स्थान में जल नहीं है यह मिट्टी के परीक्षण से ही ज्ञात कर लेना।

(15) **अन्न विधि कला** – भोजन निर्माण करने की कला। विविध प्रकार के खाद्यों को तैयार करना इस कला के अंतर्गत आता है।

(16) **पान विधि कला** – शरबत, पानक आदि विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थ तैयार करने की कला।

(17) **वस्त्र विधि कला** – विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के निर्माण की कला।

(18) **शयन विधि कला** – शैया निर्माण तथा शयन संबंधी अन्य आवश्यक बातों का परिज्ञान होता है।

(19) **आर्या** – आर्या छंद के विभिन्न रूपों की जानकारी।

(20) **प्रहेलिका कला** – पहेली बूझने की कला।

(21) **मागधिका** – मागधी भाषा और साहित्य का ज्ञान होना।

(22) **गाथा** – गाथा लिखने की कला।

(23) **श्लोक कला** – श्लोक रचना करना एवं समझने की कला।

(24) **गन्धमुक्ति कला** – इत्र, केशर, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों की पहिचान करना और उनके गुण–दोषों का परिज्ञान।

(25) **मधुसिक्त कला** – मौन तथा आलता बनाने की विधि का परिज्ञान।

(26) **आभरण विधि कला** – विभिन्न प्रकार के मन–मोहक आभूषणों के निर्माण एवं उनको धारण करने की कला।

(27) **तरुण परिकर्म कला** - अन्य व्यक्तियों को प्रसन्न करने की कला।

(28) **स्त्री लक्षण कला** - नारियों की जाति और उनके गुण-अवगुण पहचान करने की कला।

(29) **पुरुष लक्षण कला** - पुरुषों की जाति और उनके गुण-अवगुण की पहचान करने की कला।

(30) **हय लक्षण कला** - घोड़ों की परीक्षा तथा उनके शुभाशुभ लक्षणों का परिज्ञान करानेवाली कला।

(31) **गज लक्षण कला** - हाथियों की जातियों एवं उनके शुभाशुभ लक्षणों की जानकारी करानेवाली कला।

(32) **गोलक्षण कला** - गायों की जातियाँ एवं शुभाशुभ का परिज्ञान करानेवाली कला।

(33) **कुर्कुट लक्षण** - मुर्गों की पहचान और उनके शुभाशुभ की पहचान करानेवाली कला।

(34) **मेंढ लक्षण** - मेंढे की पहचान और शुभाशुभ लक्षणों का परिज्ञान।

(35) **चक्र लक्षण** - चक्र परीक्षा और चक्र संबंधी शुभाशुभ का ज्ञान।

(36) **छत्र लक्षण** - छत्र परीक्षा और उसके शुभाशुभ का ज्ञान।

(37) **दण्ड लक्षण** - दण्ड परीक्षा और उसके शुभाशुभ का परिज्ञान।

(38) **असिलक्षण** - असि यानि तलवार की परीक्षा असि संबंधी शुभाशुभ ज्ञान।

(39) **मणिलक्षण** - मणि, रत्न, हीरा, मुक्ता आदि की परीक्षा करने का ज्ञान।

(40) **काकिणी लक्षण** - सिक्कों की जानकारी।

(41) **चर्म लक्षण** - चर्म परीक्षा करने की जानकारी।

(42) **चन्द्र चरित कला** – चन्द्रमा की गति, विमान एवं अन्य तद्विषयक जानकारी।

(43) **सूर्य चलित कला** – सूर्य की गति, विमान एवं तद् विषयक जानकारी।

(44) **राहू चरित कला** – राहू ग्रह संबंधी जानकारी।

(45) **गृह चरित कला** – अन्य समस्त ग्रहों की गति आदि का ज्ञान।

(46) **सौभाग्यकर कला** – सौभाग्य सूचक लक्षणों की जानकारी।

(47) **दुर्भाग्य कर कला** – दुर्भाग्य सूचक चिन्हों की जानकारी।

(48) **विद्यागत कला** – शास्त्रज्ञान प्राप्त करने की कला।

(49) **मंत्रगत कला** – दैहिक, दैविक और लौकिक पदार्थों को दूर करने के लिये मंत्र विधि का परिज्ञान करानेवाली कला।

(50) **रहस्यगत कला** – जादू-टोने और टोटकों का परिज्ञान।

(51) **संभव कला** – प्रसूति विज्ञान की कला।

(52) **चार कला** – तेज गमन करने की कला।

(53) **प्रतिचार कला** – रोगी की सेवा-सुश्रुषा करने की कला।

(54) **व्यूह कला** – व्यूह रचना की कला। युद्ध करते समय सेना को कई भागों में विभक्त कर दुर्लंघ्य भाग में स्थापित करने की कला।

(55) **प्रतिव्यूह कला** – शत्रु के द्वारा व्यूह रचना करने पर उसके प्रति उत्तर में प्रतिव्यूह रचने की कला।

(56) **स्कन्धवार निवेशन** – छावनियाँ बसाने की कला, सेना की रसद आदि भेजने का प्रबंध कहाँ और कैसे करना चाहिये आदि का ज्ञान करानेवाली कला।

(57) **नगर निवेशन** – नगर बसाने की कला।

(58) **स्कन्धवार मान** – छावनियों आदि का प्रमाण जानने की कला।

(59) नगर मान – नगर का प्रमाण जानने की कला।

(60) वास्तुमान – भवन, प्रासाद और गृह के प्रमाण जानने की कला।

(61) वास्तु निवेशन – भवन, प्रासाद और गृह बनाने की कला।

(62) इष्टवस्त्र कला – बाण प्रयोग करने की कला।

(63) त्सरूप्रवाद कला – असि शास्त्र का ज्ञान।

(64) अश्व शिक्षा – अश्व को शिक्षा देने की कला। नाना प्रकार की चालें सिखलाना।

(65) हस्ति शिक्षा – हाथियों को शिक्षित करने की कला।

(66) धनुर्वेद कला – धनुर्विद्या की जानकारी।

(67) हिरण्यपाक कला – चाँदी के विविध प्रयोग और उनके रूपों को जानने की कला।

सुवर्ण पाक कला – सोने के विविध प्रयोग और उनके रूपों को जानने की कला।

मणिवाद कला – मणि संबंधी विविध प्रयोगों की जानकारी एवं चातुष्पाद का ज्ञान।

(68) बाहुयुद्ध – दण्ड युद्ध, मुष्टि युद्ध, अस्थि युद्ध, एवं युद्धातियुद्ध की कला।

(69) सूत्र खेल – नासिका खेल, मृत खेल, धर्म खेल एवं चर्म खेल आदि का ज्ञान।

(70) पत्रच्छेद कला – कटकच्छेद एवं प्रतरच्छेद की कला।

(71) सजीव और निर्जीव कला – मृत तुल्य या मृत व्यक्ति को जीवित करने की कला तथा यंत्र आदि के द्वारा मरणकाल का ज्ञान।

अथवा

पारद स्वर्ण आदि मृत धातुओं को पुन: सजीव करना या उनका मारण करना।

(72) शकुनरुत कला – पक्षियों की आवाज द्वारा शुभाशुभ का ज्ञान।

चक्रवर्ती सम्राट् 18 प्रकार की लिपियों का भी पूर्ण ज्ञाता होता है। जिनके नाम हैं–

(1) ब्राह्मी (2) यवनालिका (3) दोषोरिका (4) खरोष्ट्रिका

(5) खरषाविका (6) प्रहरात्रिका (7) उच्चतरिका (8) अक्षर पृष्टिका

(9) भोगवतिका (10) वेनतिका (11) निन्हविका (12) अंकलिपि

(13) गणित लिपि (14) गन्धर्व लिपि (15) आदर्श लिपि (16) माहेश्वरी लिपि

(17) दामि लिपि (18) बोलिन्दि लिपि।

• चक्रवर्ती 96 करोड़ ग्रामों का स्वामी होता है।

ग्राम : जिनमें बाड़ से घिरे हुए गृह हों, किसानों और शिल्पियों का निवास हो, तथा वाटिका एवं तालाबों से युक्त हों वे ग्राम कहलाते हैं। जिस ग्राम में सौ घर या कुटुम्ब निवास करते हों वह छोटा गाँव कहलाता है और जहाँ 500 घर या कुटुम्ब निवास करते हों वह बड़ा गाँव कहलाता है। बड़ा गाँव, छोटे गाँव की अपेक्षा धन सम्पत्ति से ज्यादा समृद्ध होता है। बड़े गाँव में सभी पेशेवाले लोग निवास करते हैं परंतु छोटे गाँव में कृषक, चर्मकार और कुम्भकार ही निवास करते हैं। छोटे गाँव की सीमा एक कोस और बड़े गाँव की सीमा दो कोस की होती है। गाँव में अन्न की खेती होती है, खेतों में मवेशी के लिये घास उत्पन्न होती है तथा जलाशय भी प्रत्येक गाँव में होते हैं। नदी, पर्वत, गुफा, श्मशान, क्षीरवृक्ष, कटीलेवृक्ष वन एवं पुल प्रभृति गाँवों की सीमा के चिन्ह माने जाते हैं अर्थात् इनके माध्यम से ग्रामों की सीमाओं का निर्धारण किया जाता है। आदिपुराण जी में भी आचार्य जिनसेन ग्रामों की निम्न विशेषतायें बताते हैं–

(1) जिसमें कृषक, चर्मकार, लुहार, बढ़ई, प्रभृति पेशेवर लोगों का निवास हो।

(2) जलाशय, कूप, तालाब आदि का निर्माण हो।

(3) वृक्षों का पर्याप्त मात्रा में सद्भाव हो, वाटिका और उपवन की स्थिति।

(4) निवासियों की जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्री की उत्पत्ति।

(5) बड़े ग्रामों में संसाधन सामुदायिक विकास कार्यक्रम की व्यवस्था।

(6) सिंचाई एवं भूमि सुधार संबंधी योजनाओं का सद्भाव।

(7) जल की सुगमता, भूमि की उर्वरता आदि का अस्तित्व।

(8) चारागाहों एवं पशुओं के विचरण करने की भूमि की व्यवस्था।

• चक्रवर्ती 72000 नगरों का स्वामी कहलाता है।

नगर - जिसमें परिखा, अटारी, गोपुर, कोट और प्राकार निर्मित हों तथा सुंदर-सुंदर भवन बने हुए हों वह नगर है। नगर में वाटिका वन, उपवन और सरोवरों का होना आवश्यक है। नालियाँ भी इसप्रकार से निर्मित हों कि जिससे पानी का प्रवाह पूर्व और उत्तर के बीच वाली ईशान दिशा की ओर प्रवाहित हो।

नगर शब्द की व्युत्पत्ति - 'न गच्छति इति नगः' नग एव प्रसादः सन्त्यत्र' नगर शब्द की व्युत्पत्ति है। जिसमें उन्नत एवं पक्के प्रासाद बनाये गये हों, जिनकी दीवारें एवं छतें पाषाण शिलाओं से निर्मित हों उन्हें नगर कहा जाता है।

मानसार ग्रंथ में भी आदिपुराण के समान ही नगर को परिभाषित किया गया है। जो निम्न है- जहाँ पर क्रय-विक्रय आदि विभिन्न व्यापार सम्पन्न होते हैं, अनेक जातियों एवं परिवारों के लोग निवास करते हों, विभिन्न श्रेणियों के कर्मकार बसते हों और जहाँ सभी धर्मावलम्बियों के धर्मायतन स्थित हों वह नगर है। नगर व्यवस्था के अनुसार चारों दिशाओं में चार द्वार होना चाहिये एवं सभी द्वार गोपुरों से परिवेष्टित होना चाहिये। नगर में वास भवनों का सम्यक् विन्यास होना चाहिये। यातायात एवं क्रय-विक्रय आदि के कारण तत्परता, संकीर्णता एवं संपन्नता पद-पद पर परिलक्षित होती है आदिपुराण में निम्न परिभाषायें नगर के विषय में उल्लिखित हैं।

(1) यथोचित एवं उपयुक्त विन्यास होना चाहिए।

(2) प्रासाद, हर्म्य, उपयुक्त आदि से समृद्ध।

(3) प्रचुर जलव्यवस्था एवं सुंदर रीत्या जलाशयों का निर्माण।

(4) आबादी की असंकीर्णता।

(5) विस्तृत मार्गों का निर्माण होना चाहिये।

(6) गंदगी, जल एवं दूषित पदार्थों को दूर करने के लिये नालियों की व्यवस्था।

(7) विपुल वायु संचारार्थ एवं वायु सेवनार्थ वाटिका और उपवनों का सद्भाव।

(8) सौविध्यपूर्ण यातायात के साधनों की व्यवस्था।

(9) सुरक्षार्थ परिखा, गोपुर, कोट और प्राकार संघटन।

(10) पूजा, शिक्षा, क्रीड़ा एवं मनोरंजन के उपयुक्त स्थानों की यथोचित् व्यवस्था।

• चक्रवर्ती के राज्य वैभव में 16000 खेट भी शामिल होते हैं।

खेट – आदिपुराण जी ग्रंथ में नदी और पर्वत से वेष्टित स्थान को खेट कहा गया है। समरांगण के अनुसार खेट ग्राम और नगर के बीच का है अर्थात् यह स्थान नगर से छोटा होता है और ग्राम से बड़ा होता है।

अतएव नगर के विषकम्भ से खेट का विष्कम्भ आधा होता है। नगर के मार्गों का विष्कम्भ 30 धनुष होता है पर खेट मार्गों का 20 धनुष प्रमाण है अर्थात् यह स्पष्ट है कि खेट छोटा नगर है जो समतल भूमि पर किसी सरिता के तट पर स्थित होता है तथा इसकी स्थिति छोटी-छोटी पहाड़ियों के समीप भी रह सकती है। खेट वस्तुत: खेड़ा रूप है इसके चारों ओर ग्राम होते हैं। शिल्प रत्न में कहा है-

''ग्रामयो! खेटकं मध्ये राष्ट्रमध्ये खर्वटम्''

अर्थात् ग्रामों के मध्य में एक समृद्ध लघु काय नगर को खेट कहा जाता है। राष्ट्रमध्य में उसी को खर्वट संज्ञा दी गई है। खेटों की आबादी शूद्रों तथा चर्मकारों की होती है।

आदिपुराण में खेट के विषय में निम्न कथन प्राप्त होता है।

(1) नदी तथा पर्वत की तलहटी में अवस्थित है।

(2) खेट का ग्राम से बड़ा होने के कारण नगर रूप में विकास।

(3) नदी एवं पर्वत से संरूद्ध होने से औद्योगिक विकास के साधनों की प्रचुरता।

(4) कृषि तथा सभी पेशे के लोगों का निवास।

साथ ही खर्वट 24000, मडम्ब 4000 एवं पत्तन 48000 होते हैं।

खर्वट - खर्वट पर्वतों से वेष्ठित क्षेत्र कहलाता है। सभी प्रकार के मनुष्यों से आवासित एवं चारों ओर से पर्वतों से घिरे हुए नगर को खर्वट कहते हैं। यह नगर साधारण से आकार का होता है। कौटिल्य ने खर्वट उसे कहा है जो दुर्ग रूप हो यह 200 ग्रामों के रक्षणार्थ निविष्ट होता है। मानसार में खर्वट का प्रयोग ग्राम विशेष के साथ राजकीय भोजनशालीय मण्डप के लिये भी आया है।

मडम्ब - जो 500 ग्रामों के बीच व्यापार आदि का केन्द्र हो उसे मडम्ब कहा जाता है। वस्तुतः व्यापार प्रधान बड़े नगर की ही मडम्ब संज्ञा है।

पत्तन - 48 हजार पत्तनों पर चक्रवर्ती का स्वामित्व होता है। पत्तन उस स्थान को कहा जाता है जो समुद्र के तट पर बसा हो और जहाँ नावों के द्वारा आवागमन होता हो।

समवारांगण सूत्र में राजाओं के उपस्थान अर्थात् ग्रीष्मकालीन राजपीट को पत्तन कहा जाता है। जहाँ व्यापारियों का बाहुल्य हो और जो बंदरगाह हो उसे पुट भेदन कहा जाता है।

द्रोणमुख - जो नगर किसी नदी के तट पर स्थित हो उसे द्रोणमुख कहा जाता है। वस्तुतः यह एक आपणक नगर होता है। यहाँ पर व्यवसायियों का आवागमन लगातार होता रहता है। चक्रवर्ती 99 हजार द्रोणमुखों का स्वामी होता है।

संवाहन - उस प्रधान ग्राम की संवाहन संज्ञा है जिसमें मस्तक पर्यंत ऊँचे-ऊँचे धान्य के ढेर लगे हों, आदिपुराण के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि यह एक समृद्धशाली ग्राम होता है जो नगर के ही समान होता है।

वृहद कथा कोष में वाहन शब्द का प्रयोग संवाह के अर्थ में लिया गया है और इसे अद्रिरूढम, पर्वत पर बसा हुआ ग्राम कहा गया है। चक्रवर्ती 14 हजार संवाहन का स्वामी होता है। चक्रवर्ती के 56 अंतर्द्वीप, 700 कुक्षिनिवास, 28000 दुर्गादिक होते हैं।

राजधानी – मण्डल अथवा जनपद के कतिपय नगरों में से एक नगर को राजधानी के रूप में चयनित किया जाता है। शासन सौविध्य अथवा अनुकूल स्थिति ही इस चुनाव का कारण है। आदिपुराण में 800 ग्रामों को राजधानी के अंतर्गत ग्रहण किया गया है। जिस नगर की आबादी घनी हो और जो चारों ओर से दीवार, परिखाओं और प्राकारों से वेष्टित होता है वही नगर राजधानी के रूप में चुना जाता है।

त्रिलोकसार में राजधानी का स्वरूप इस प्रकार है—

रयणकवाड-वरावर सहस्सदलदार हेमपायारा।
बार-सहस्सा बीही तत्थ चउप्पह सहस्सेक्कं।। 716।।

अर्थात् राजधानी में स्थित नगरों के रत्नमयी किवाड हैं। उनमें बड़े द्वारों की संख्या 1000 है और छोटे 500 द्वार हैं। सुवर्णमयी कोट हैं। नगर के मध्य में 12000 वीथी और 1000 चौपथ हैं।

णयराण बहिं परिदो वणाणि तिसद ससट्ठि पुरमज्झे।
जिणभवणा णिरवइ जणगेहा सोहंति रयणमया।। 717।।

अर्थात् नगरों के बाह्य चौगिर्द 360 बाग हैं और नगर के मध्य जिनमन्दिर, राजमन्दिर व अन्य लोगों के मन्दिर रत्नमयी शोभते हैं।

मयमत शिल्प शास्त्र के अनुसार- जिस नगर की आबादी पश्चिम तथा उत्तर में हो वह राजधानी बनता है। जहाँ पर पश्चिम और उत्तर में जनवासों की स्थिति तथा पूर्व एवं दक्षिण भू भागों पर राजकर्मियों, सेनानियों एवं सैनिकों के निवास हों तथा द्वारों पर गोपुरों की मालायें सुशोभित हों। नगर के आभ्यंतर प्रवेश पर सभी प्रमुख देवों के देवालय निर्मित हों। नाना गणिकायें भी निवास करती हों।

राजप्रासाद के साथ जहाँ अश्वशाला, गजशाला, अस्त्र-शस्त्र शालायें भी विद्यमान हों, विभिन्न धर्मों एवं वर्गों के लोग जहाँ निवासरत हों तथा सभी प्रकार की वस्तुयें जहाँ सुलभता से प्राप्त होती हों इस प्रकार का नगर राजधानी के रूप में स्थापित किया जाता है।

चक्रवर्ती मनुष्यों का इन्द्र होता है। मनुष्यों में तीर्थंकर के बाद सर्वाधिक पुण्यशाली अगर कोई होता है तो वो चक्रवर्ती होता है उस पुण्य के प्रताप से वह मनुष्य पर्याय के उन सभी उत्तमोत्तम एवं दुर्लभ भोगोपभोग को प्राप्त करता है जो नरलोक में किसी अन्य मनुष्य के लिये कभी प्राप्त नहीं होते। चक्रवर्ती दशांग भोग का सेवन करता है यथा-

(1) **दिव्यपुर** - चक्रवर्ती के दिव्यपुर में महल, नृत्य शालायें, सभामण्डप, निवास भवन, शीतगृह, भण्डारगृह, छावनी, गौशाला, कोठार आदि सुव्यवस्थित रूप से निर्मापित किये जाते हैं, जिनका समय-समय पर चक्रवर्ती भोग-उपभोग करता है।

(2) **दिव्य रत्न** - चक्रवर्ती के विलक्षण पुण्य से उसे 14 रत्नों की प्राप्ति होती है जिनका भोग सिर्फ वो ही कर सकता है अन्य कोई नहीं। प्रत्येक रत्न की रक्षा के लिये 1000 देव होते हैं।

(3) **दिव्य निधियाँ** - चक्रवर्ती के महान पुण्य से नव निधियाँ उसके लिये जीवन पर्यंत समस्त भोगोपभोग की सामग्रियाँ उपलब्ध कराती हैं।

(4) **दिव्य सेना** - चक्रवर्ती चक्ररत्न, अश्व सेना, गज सेना, रथ सेना, पैदल सेना आदि 7 प्रकार की सेना का स्वामी होता है जो उसकी दिग्विजय यात्रा में सहयोग करती हैं।

(5) **दिव्य भाजन** - चक्रवर्ती के वैभव में एक करोड़ थालियों सहित सभी प्रकार के उत्तमोत्तम दिव्य भाजन (बर्तन) होते हैं।

(6) **दिव्य भोजन** - चक्रवर्ती की सेवा में 360 रसोइये भोजन तैयार करते हैं जो विभिन्न प्रकार के उत्तमोत्तम व्यञ्जन, महाकल्याण भोजन, रसोई तैयार करते हैं। जिसमें अमृतगर्भ नाम का खाद्य पदार्थ, अमृत कल्प नाम का खाद्य पदार्थ तथा अमृत नामक पेय पदार्थ तैयार करते हैं।

अमृतपानक – प्रथम चक्रवर्ती भरत के पानक पदार्थों में अमृत पानक का कथन आया है। यह पानक यों तो दिव्य होता है पर इसका प्रस्तुतिकरण दुग्ध, कुंकुम, कस्तूरी एवं अन्य अनेक मधुर एवं सुगंधित पदार्थों के संयोग से किया जाता है। इसके स्वाद और गुण दोनों ही अमृत तुल्य होते हैं।

मोच – कदलीफल के लिये मोच का प्रयोग किया गया है, यह एक विशेष प्रकार का केला होता है।

क्रमुक – यह एक विशेष सुपाड़ी का नाम है।

(7) दिव्य शैया – सिंहवाहिनी नाम की विशेष शैया होती है जिस पर सिर्फ चक्रवर्ती ही शयन कर सकता है।

(8) दिव्य आसन – छत्र, चाँदनी, चँवर से सुशोभित चक्रवर्ती के बैठने का दिव्य आसन होता है।

(9) दिव्यवाहन – दिव्य रथ, अश्व, गज आदि आदि वाहन चक्रवर्तियों के विशेष हुआ करते हैं।

(10) दिव्य नाट्य – चक्रवर्ती के मनोरंजन हेतु वर्धमानक नामकी नृत्यशाला होती है जिसमें सुंदर-सुंदर नृत्यांगनायें देवांगनायें स्वर साधक एवं नाट्यमंचक कलाकार अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं।

चक्रवर्ती के आभूषण – श्री आदिपुराण में चक्रवर्ती के आभूषणों का कथन करते हुए आचार्य भगवन् ने कहा – कि चक्रवर्ती के रत्नजड़ित दिव्य आभूषणों में अनेक प्रकार की मणियों का प्रयोग किया जाता है। यथा-इन्द्रमणि, पद्मराग मणि, मरकतमणि, मुक्तामणि गोमुखमणि, वज्र, हीरा आदि। इनमें इन्द्रनील मणि दो तरह की होती है।

महाइन्द्रमणि – गहरे नीले रंग की मणि को महा इन्द्रमणि कहा जाता है।

इन्द्रनील मणि – हल्के नीले रंग की मणि को इन्द्रनील मणि कहा जाता है।

चक्रवर्तियों के इन्द्रिय विषय - चक्रवर्तियों के पाँचों इन्द्रियों के विषय सर्वोत्कृष्ट होते हैं।

स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा वह 9 योजन तक के विषय को जान लेता है।

रसना इन्द्रिय एवं घ्राण इन्द्रिय से भी वह 9 योजन तक के विषय को जान लेता है।

चक्षु इन्द्रिय के द्वारा चक्रवर्ती 47263 $\frac{6}{20}$ योजन दूर स्थित वस्तु को भी स्पष्ट देख लेता है।

कर्णेन्द्रिय के द्वारा वह 12 योजन दूर के शब्दों को सहजता से सुन लेता है।

यह इन्द्रियों के विषय मनुष्यों की अपेक्षा सर्वाधिक हैं।

चक्रवर्ती की दिग्विजय यात्रा - आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति के उपरान्त चक्रवर्ती सम्राट जिनेन्द्र की पूजन आदि मांगलिक अनुष्ठान करके शरद ऋतु में चक्ररत्न को आगे करके सर्वप्रथम पूर्व दिशा में नगाड़ों की मधुर ध्वनि के साथ, सुंदर-सुंदर मांगलिक वस्त्राभूषण, दिव्य मुकुट, कुण्डल कौस्तुभमणि एवं छत्र को धारणकर दस पहियों से युक्त अपने 'अजितंजय' नामक रथ पर सवार होकर चतुरंगिणी सेना के साथ दिग्विजय का शुभारंभ करता है।

सेना में क्रमशः पैदल सैनिक, अश्वसवार सैनिक, रथों पर आरूढ़ राजाओं, महाराजाओं का पताकाओं से आच्छादित विशाल समूह होता है।

अयोध्यापुरी से वह सेना गोपुरद्वार को पार करती हुई आगे बढ़ती है। दण्डरत्न को आगे कर सेनापति सबसे आगे चलता है जो दण्डरत्न के माध्यम से ऊँचे-नीचे पर्वत-खाई आदि दुर्गम वनस्थलों को लीलापूर्वक एक सा अर्थात् सम करता चलता है।

गंगद्वार से प्रविष्ट होकर सेना का प्रथम पड़ाव गंगा के रमणीक वन में होता है। पूर्व दिशा के सभी राजा महाराजा चक्रवर्ती का यशोगान देखकर अपनी परम्परा के अनुसार मूल्यवान भेंट, कन्यायें आदि प्रदानकर उनकी आधीनता स्वीकार करते हैं।

रात्रिकालीन विश्रामकर यथायोग्य नित्यक्रियाओं से निर्वृत्त होकर चक्रवर्ती महाराज अपनी सवारी परिवर्तित कर विजयार्द्ध पर्वत से प्राप्त गजरत्न पर सवार होकर, शत्रु समूह का नाश करनेवाला तथा अनुल्लंघनीय, चक्ररत्न एवं दण्ड रत्न को आगे करके यात्रा का क्रम आगे बढ़ाता है। चक्रवर्ती की दिग्विजय में ये दो रत्न ही प्रमुख आधार स्तम्भ होते हैं शेष सेना तो मात्र शोभा के लिये है। पूर्व दिशा में कोई राजा आदि चक्रवर्ती के बराबर नहीं था अत: चक्रवर्ती द्वारा बिना किसी अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग किये मात्र अपने प्रभुत्व से ही जीत लिया था।

जब सेना आगे की ओर प्रस्थान करती है तो समक्ष विशाल समुद्र पड़ता है जो अलंघनीय सा प्रतीत होता है तब गंगा नदी के उपवन में ही ठहरकर चक्रवर्ती सम्राट मागध देव को वश करने के लिए उद्यत होते हैं। यद्यपि मागध देव को वश में करना चक्रवर्ती सम्राट के लिये कोई कठिन कार्य नहीं होता। किन्तु देव की प्रामाणिकता मानकर लवण समुद्र को जीतने के लिये तत्पर चक्रवर्ती सम्राट अरिहंत देव की आराधना करने का विचारकर और विशेष आराधना पूर्वक जल स्तम्भन विद्या को सिद्ध कर, अपने अजितंजय रथ पर सवार होकर समुद्र में 12 योजन भीतर जाकर अपने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर मागध देव की ओलगशाला के रत्नमय कलश का भेदन अपने अमोघ बाण से करते हैं। मागध देव बाण का शब्द सुनकर अत्यंत क्रोध को प्राप्त होता है लेकिन मत्रियों द्वारा संबोधन सुन चक्रवर्ती महाराज की क्षमता का कथन सुन अपने क्रोध का शमनकर विभिन्न दिव्य भेंटों के साथ चक्रवर्ती को प्रणाम करके कई तरह से शुभ मंगल आशीष प्रदान करता है। चक्रवर्ती भी उसे अभय वचन देकर उसके साथ कटक में प्रवेशकर विजय के लिये प्रस्थान करते हैं और उपवन के बीच से होते हुए द्वीप के प्रदक्षिण रूप में जम्बूद्वीप के वैजयन्त नामक उत्तम दक्षिण द्वार के समीप तक जाते हैं। चक्रवर्ती वहाँ अपने नाम से अंकित बाण के द्वारा वरतनु नामक देव को वश में करते हैं। पुन: वहाँ से आकर कटक में प्रवेशकर द्वीप और उपवन के मार्ग से सिन्धु नदी संबंधी वन वेदिका की ओर जाते हैं उसके तोरण द्वार पर पूर्ववत ही सेना ठहर जाती है एवं चक्रवर्ती सिन्धुनदी द्वार में प्रवेश करके प्रभास नामक देव को सिद्ध करते हैं। वहाँ से पूर्वाभिमुख होकर द्वीप-उपवन द्वार की सीढ़ियों पर चढ़कर वन के मध्य से उपवन समुद्र की सीमा तक जाते हैं।

समुद्र की समीपवर्ती वेदिका के द्वार से वे पंचांग बल निकलकर विजयार्द्ध गिरि की वन वेदिका तक नदी के तीर से जाते हैं फिर इसके आगे उस वन वेदिका का आश्रय करके पूर्व दिशा में उस पर्वत के मध्य कूट के समीप में वेदीद्वार पर्यंत जाते हैं, उसके बाद उस वेदीद्वार से प्रविष्ट होकर वन के मध्य में से उत्तर की ओर गमन करते हैं और रजताचल अर्थात् विजयार्द्ध पर्वत के तट की वेदी को पाकर वहीं ठहर जाते हैं।

उस समय विजयार्द्ध के मध्यम कूट पर रहनेवाला वैताढ्य नामक व्यंतर देव आगन्तुक भय से व्याकुल होता हुआ प्रणाम कर चक्रवर्ती की सेवा में उपस्थित होता है आदर-सत्कार करता है। उस पर्वत के दक्षिण भाग में स्थित 50 नगरों के विद्याधर समूहों को सिद्ध करके पूर्वोक्त तोरण द्वार से वापस आते हैं। उसी के आगे उस वन वेदी का आश्रय करके पश्चिम की ओर जाते हैं और सिन्धु वन वेदी के पास में उस पर्वत के दिव्य वन में प्रवेश करते हैं, तब उस पर्वत पर रहनेवाला कश्तमाल नामक व्यंतर देव आकर के विजयार्द्ध पर्वत के द्वार अर्थात् कपाटों के खोलने का उपाय बतलाता है।

उसके उपदेश से सर्वविधि को अच्छी तरह से समझकर सेनापति तुरंग रत्न पर चढ़कर और दण्ड रत्न को ग्रहण करके षडंगबल सहित निकलता है। वह सिन्धु वन वेदी के द्वार में प्रवेश करके पर्वतीय वेदी के तोरण द्वार में होकर सैन्य सहित स्कंद प्रभा (खण्ड प्रपात) नामक गुफा की सीढ़ियों पर चढ़ता है। सौ सीढ़ियों से पश्चिम की ओर जाकर फिर दक्षिण की ओर से सब सैन्य को उतारकर वह सेनापति नदीवन के मध्य होकर जाता है।

तदुपरान्त सेनापति चक्रवर्ती की आज्ञा प्राप्त कर दण्डरत्न से दोनों कपाटों को ठोकर मारता है और उद्घाटित कपाट युगल के भीतर स्थित ऊष्णता के भय से बारह योजन प्रमाण क्षेत्र को तुरंग रत्न से लाँघता है।

वह दक्षिण की ओर जाकर निवासित सैन्य पड़ाव में प्रवेश करने के पश्चात् सेनापति पश्चिमाभिमुख होकर वन को जाता है और दक्षिण मुख होकर पर्वतीय वन वेदी के तोरणद्वार में से निकलकर सैन्य संयुक्त होता हुआ वह म्लेच्छखण्ड को सिद्ध करता है। सेनापति 6 माह

में सम्पूर्ण म्लेच्छखण्ड को वश में करके पूर्व मार्ग से वैताढ्य गुहा के द्वार पर्यंत आता है और वहाँ देवसेना को द्वार का रक्षक करके म्लेच्छ राजाओं से परिचारित वह सेनापति विशाल वन में प्रविष्ट होकर चक्रवर्ती के चरण कमलों में नमस्कार करता है।

इस प्रकार दक्षिण भरत में खण्डों को अनायास ही जीतकर चक्रवर्ती अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ सिन्धु नदी के विशाल वन में प्रवेश करते हैं और गिरितट संबंधी वेदी के द्वार में प्रवेश करके गिरिद्वार की रत्नमय सीढ़ियों पर चढ़कर सम्पूर्ण सेना उस नदी के दोनों किनारों पर से जाती है।

दोनों तीरों की वीथियों में से प्रत्येक का विस्तार दो-दो योजन प्रमाण है। उनमें महाअंधकार होने से चक्रवर्ती की सेना आगे जाने के लिये समर्थ नहीं होती है तब देवों के उपदेश से विजयार्द्ध पर्वत की गुफा की दोनों भित्तियों पर काकणी रत्न से शीघ्र ही चन्द्रमण्डल और सूर्यमण्डल को लिखता है। एक-एक योजन के अंतराल से लिखे हुए उन बिम्बों के प्रकाश देने पर षडंग बल उन्मग्न-निमग्न जल नदियों तक जाता है। उन नदियों के गहरे और दूर तक विस्तीर्ण जल प्रवाह को उतरने के लिए चक्रवर्ती का सकल सैन्य बल सफल नहीं होता है। तब देव के उपदेश से बढ़ई रत्न के द्वारा पुल की रचना करने पर षडंग बल पुल पर चढ़ता है और उन नदियों को पार करता है। इस प्रकार आगे गमन करते हुए नदी के पूर्व वेदीद्वार से पर्वत वन के मध्य में पहुँचने के लिए चक्रवर्ती सैन्यसहित विजयार्द्ध की गुफा के उत्तर द्वार से निकला। वहाँ चक्रवर्ती प्रशस्त शोभा को प्राप्त विस्तृत मनोहर वृक्षादि से मण्डित वन में पड़ाव में जाकर शामिल हो जाता है और चक्रवर्ती मध्यम म्लेच्छखण्ड को जीतने के लिये पर्वत की वनवेदिका के द्वार मार्ग से निकलते हैं। उस समय म्लेच्छ मही की ओर प्रस्थित हुए सब म्लेच्छ राजा चक्रवर्ती के साथ घोर युद्ध करते हैं। अनंतर चक्रवर्ती सम्राट उन सभी म्लेच्छ राजाओं को जीतकर सिंधु नदी के तटवर्ती मार्ग से उत्तर की ओर जाकर सिंधुदेवी को वश में करता है। पश्चात् पूर्व दिशा में हिमवान पर्वत संबंधी वन के वेदी मार्ग से हिमवान कूट के समीप तक जाकर चक्रवर्ती अपने नाम से अंकित बाण के द्वारा वेधकर हिमवान कूट पर स्थित हिमवान नाम के व्यंतर देव को अपने वश में करता है।

इसके बाद दक्षिण भाग में वृषभगिरि पर्यन्त तक जाकर अपना नाम लिखने के लिये पर्वत के तोरणद्वार में प्रवेश करता है। वहाँ जाकर अतीत में षट्खण्डों का भोग करनेवाले चक्रवर्तियों की विजय प्रशस्तियों से निरंतर भरे हुए उस वृषभगिरि पर्वत को अपने सैनिकों सहित चारों ओर प्रदक्षिणा पथ से देखता है, जब अपना नाम लिखने के लिये पर्वत पर तिल मात्र भी स्थान नहीं मिलता तो चक्रवर्ती का विजय मान खण्डित हो जाता है और चिन्ताकुल हतप्रभ सा खड़ा रह जाता है तब मंत्रियों एवं देवताओं के अनुरोध वश एक स्थान में पूर्व चक्रवर्ती के नाम को अपने दण्डरत्न से साफ करके अपनी विजय प्रशस्ति अंकित करता है। अपने नाम की प्रशस्ति अंकित कर चक्रवर्ती उत्तर की ओर जाते हुए गंगाकूट को पाकर गंगा देवी को वश में करता है।

इसके पश्चात् चक्रवर्ती गंगा नदी के तटवर्ती मार्ग से दक्षिण की ओर जाकर विजयार्द्ध पर्वत के वन में जाकर अपना पड़ाव डालता है। पुनः चक्रवर्ती की आज्ञा प्राप्तकर सेनापति रत्न तिमिश्र गुफा के दोनों कपाटों को खोलकर और पूर्व म्लेच्छखण्ड को भी अपने वश में करके वहाँ से कटक में प्रवेश कर प्रसन्नचित्त एवं भक्तिभाव से युक्त हो महाराज चक्रवर्ती के चरणकमलों में प्रणाम निवेदित कर उनका स्वामित्व दर्शाता है।

इसतरह चक्रवर्ती सम्राट उत्तर भाग में समस्त भूमिगोचरी एवं विद्याधर राजाओं को वश में करके अपने सैन्य बल के साथ गंगा नदी की वन वेदी तक जाते हैं। उस वेदी द्वार से उसकी उपवन भूमियों में क्रीड़ा करते हुए समस्त सेना दक्षिण मुख से निकलती है पश्चात् पर्वत की तट वेदी के द्वार तक जाकर एवं गुफा द्वार की रत्न सीढ़ियों पर चढ़कर वह चक्रवर्ती का सैन्य बल नदी के दोनों तीरों पर से जाता है। उस पर्वत के द्वार में से प्रवेश करके वह सेना नदी के दोनों ओर दो तीर पर दो-दो योजन विस्तारवाली तट वीथियों पर से जाती है।

पूर्व के समान ही गुफाद्वार के बीच से जाकर और दक्षिणद्वार से निकलकर वह षडंगबल गंगा वन के मध्य जा पहुँचता है इसके बाद सेना से घिरा हुआ चक्रवर्ती नदी की वन वेदी के द्वार से जाकर पर्वत संबंधी वन में ठहर जाते हैं।

पुनः चक्रवर्ती की आज्ञा से सेनापति छह मास में पूर्व म्लेच्छखण्ड को भी वश में करके स्कन्धावार में आकर मिलता है।

उसके बाद षट्खण्ड विजेता चक्रवर्ती उस पर्वत की वन वेदी के दक्षिण मुख तोरणद्वार से निकलकर अपने-अपने नगरों में प्रवेश करते हैं। इसप्रकार षट्खण्डों पर विजय प्राप्तकर वह चक्रवर्ती अपनी आयु पर्यन्त इस मनुष्य लोक के सर्वोच्च सुखों का भोग करते हैं। मनुष्य लोक में तीर्थंकर के बाद यदि सर्वाधिक पुण्यशाली कोई होता है, तो वो चक्रवर्ती राजा होता है। उसके महान पुण्य के समक्ष देवगण भी नतमस्तक रहते हैं। ऐसा महान चक्रवर्ती का ऐश्वर्य इस जीव को सुपात्रदान के फलस्वरूप प्राप्त होता है अत: उत्तम भावों के साथ सुपात्रदान कर जीवन को सफल करना चाहिये। अतीत पुण्ययोग से कहीं सुपात्र मिल जायें तो समझना जैसे मुझे आज साक्षात् कल्पवृक्ष मिल गया है। आज मुझे संसार सागर से पार ले जानेवाला जहाज मिल गया है। सुपात्रों के चरणों में जितनी निर्मल भक्ति होगी समझ लेना तुम्हारी उतनी ही शीघ्र मुक्ति होगी। सुपात्रदान का अचिन्त्य माहात्म्य तीनों लोकों में व्याप्त है इसीलिये दान को तीर्थ कहा जाता है। आप भी ऐसे सुपावन तीर्थ का आश्रय कर अपनी आत्मा को तीर्थ सा पावन बनायें। इसी भावना के साथ...।

राज्य निधि भण्डार रतन, सेना स्त्री वैभव धन।
पात्रदान का फल जानो, कहते कुंदकुंद भगवन्।।
सत्पात्र दानी, हो-हो-2, चक्री सुख पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 21
(प्रवचन)

●

मर्यादाएँ नहीं कुरीतियाँ छोड़ो

03.09.2013

भिण्ड

(सकल सुखों की प्राप्ति सुपात्र-दान का फल)

सुकुलसुरूव सुलक्खणसुमदिसुसिक्खा सुसीलसुगुणसुचरित्तं
सयलं सुहाणुभवणं विहवं जाणह सुपत्तदाणफलं।। 21।।

*** अन्वयार्थ ***

(**सुकुल**) उत्तम कुल (**सुरूव**) उत्तम रूप (**सुलक्खण**) उत्तम लक्षण (**सुमदि**) उत्तम मति (**सुसिक्खा**) उत्तम शिक्षा (**सुसील**) उत्तम स्वभाव (**सुगुण**) उत्तम गुण (**सुचरित्तं**) उत्तम चरित्र (**सयलं**) सम्पूर्ण-सकल (**सुहाणु भवणं**) सुखों का अनुभव और (**विहवं**) वैभव- यह सब (**सुपत्त-दाण-फलं**) सुपात्र दान का फल (**जाणह**) जानो।

अर्थ- उत्तम कुल, उत्तम रूप, उत्तम लक्षण, उत्तम बुद्धि, उत्तम शिक्षा, उत्तम स्वभाव, उत्तम गुण, उत्तम चारित्र, समस्त सुखों का अनुभव और वैभव यह सब सुपात्र दान का फल जानो। अत: शक्ति अनुसार दान अवश्य देना चाहिये।

मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका की नवधा भक्ति

31

रयणोदय

उत्तम कुल - बुद्धि - लक्षण, उत्तम-शिक्षा उत्तम-गुण।
उत्तम रूप-स्वभाव-चरित, सुख-अनुभव वैभव-चिंतन।।
सत्पात्र दानी, हो-हो-2, सब ही फल पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

हम सभी आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव द्वारा विरचित 'श्री रयणसार जी ग्रंथ' के माध्यम से मानव जीवन में कौन-कौन से कर्तव्य करने योग्य हैं जिससे यह मानव पर्याय सार्थक हो सके उसकी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

बंधुओ! जिनवाणी वही सुन पाता है जो निकट भव्य होता है। यदि कोई दूरान्दूर भव्य हो उसे जिनवाणी सुनने को नहीं मिल पाती। हमारी भवितव्यता होनहार ऐसी है कि आज इस पंचमकाल में भी हमें अरिहंत देव की वाणी श्रवण करने को मिल रही है। यदि हम जिनवाणी का श्रवण करके अपने जीवन को समझ सके। अपने आचरण को समझ सके। अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित हो सके, तो निश्चित रूप से इस पंचमकाल में भी हमारे लिये साक्षात् आत्महित का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

जब कभी हम किसी महान् व्यक्तित्व को किसी आदर्श पुरुष को देखते हैं तो मन में ऐसा भाव आता है कि हम भी ऐसे बन पाते तो कितना अच्छा होता। जिनशासन में उत्तम, मध्यम और जघन्य तीन प्रकार के सुपात्र कहे गये हैं। मुनिराज, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, व्रती, सम्यग्दृष्टि श्रावक इन्हें सुपात्र माना गया है जो ऐसे सुपात्रों के प्रति आत्मा में नवधाभक्ति पूर्वक दान का भाव रखते हैं शुद्ध हृदयपूर्वक अनुकूल योग्य आहारदान आदि देते हैं आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि ऐसा कौन सा सुख है जो उन्हें प्राप्त नहीं होता है।

यहाँ कोई प्रश्न करे— उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्र की नवधाभक्ति करना चाहिए, ऐसा कोई आगम प्रमाण है क्या?

प्रथम शताब्दी के आचार्य श्री कार्तिकेयस्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ के धर्मानुप्रेक्षा अधिकार में कहते हैं—

तिविहे पत्तम्हि सया सद्धाइ-गुणेहि संजुदो णाणी।
दाणं जो देदि सयं णव-दाण-विहीहि संजुत्तो।। 360।।

सिक्खावयं च तिदियं तस्स हवे सव्व-सिद्धि-सोक्खयरं।
दाणं चउव्विहं पि य सव्वे दाणाण सारयरं।। 361।।

अर्थात् श्रद्धा आदि गुणों से युक्त जो ज्ञानी श्रावक सदा तीन प्रकार के पात्रों को दान की नौ विधियों के साथ स्वयं दान देता है, उसके तीसरा शिक्षाव्रत होता है। यह चार प्रकार का दान सब दानों में श्रेष्ठ है और सब सुखों का तथा सिद्धियों का करनेवाला है।

ऐसा ही ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के आचार्य श्री वसुनन्दि स्वामी ने भी वसुनंदि श्रावकाचार में कहा है—

असणं पाणं खाइमं साइयमिदि चउविहो वराहारो।
पुव्वुत्त-णव-विहाणेहिं तिविह-पत्तस्स दायव्वो।। 234।।

अर्थात् अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य ये चार प्रकार का श्रेष्ठ आहार पूर्वोक्त नवधा भक्ति से तीन प्रकार के पात्रों को देना चाहिए।

आचार्य शुभचंद्र स्वामी टीका में कहते हैं—

त्रिविधे पात्रे त्रिविधेषु पात्रेषु महाव्रत-सम्यक्त्व-विराजित-मुत्तमं पात्रम्, श्रावकव्रत-सम्यक्त्व-पवित्रं मध्यम-पात्रम्, सम्यक्त्वैकेन निर्मलीकृतं जघन्य पात्रम्, इति त्रिविध-पात्रेभ्यः दानं ददाति।

अर्थात् उत्तम-मध्यम-जघन्य तीन प्रकार के पात्रों में जो महाव्रत और सम्यक्त्व से सुशोभित हो वह उत्तमपात्र है। जो देशव्रत और सम्यक्त्व से सुशोभित हो वह मध्यम पात्र है और जो केवल सम्यग्दृष्टि हो वह जघन्य पात्र है। पात्र बुद्धि से दान देने के योग्य ये तीन ही प्रकार के पात्र होते हैं।

आचार्य शुभचंद्र स्वामी इस गाथा की टीका के अंत में कहते हैं—

इति सप्तदातृगुणै- र्नवविध-पुण्योपार्जन-विधिभिश्च कृत्वा त्रिविध-पात्रेभ्यः अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यं चतुर्विधं दानं दातव्य-मित्यर्थः।

इस तरह दाता को सात गुणों के साथ पुण्य का उपार्जन करनेवाली नौ विधिपूर्वक चार प्रकार का दान तीन प्रकार के पात्रों को देना चाहिए ऐसा अर्थ है।

नवधाभक्ति कौन-कौन सी हैं एवं उनका स्वरूप क्या है?

आचार्य भगवन् वसुनंदिस्वामी वसुनंदि श्रावकाचार में कहते हैं—

पडिगह - मुच्चट्ठाणं - पादोदय - मच्चणं च पणमं च।
मण-वयण-कायसुद्धी एसणसुद्धी य णवविहं पुण्णं।। 225।।

पत्तं णिय-घरदारे दट्ठूणण्णत्थ वा विमग्गित्ता।
पडिगहणं कायव्वं णमोत्थु ठाहु त्ति भणिदूण।। 226।।

णेदूणं णियगेहं णिरवज्जाणुवह-उच्च-ठाणम्हि।
ठविदूण तदो चलणाण धोवणं होदि कायव्वं।।227।।

पादोदयं पवित्तं सिरम्मि कादूण अच्चणं कुज्जा।
गंधक्खय-कुसुम-णिवेज्ज-दीव-धूवेहिँ फलेहिं।।228।।

पुप्फंजलिं खिवित्ता पयपुरदो वंदणं तदो कुज्जा।
चइऊण अट्टरुद्दं मणसुद्धी होदि कायव्वा।।229।।

णिट्ठुर-कक्कस-वयणाइ-वज्जणं सा वियाण वचिसुद्धी।
सव्वत्थ संवुडंगस्स होदि तह कायसुद्धी वि।।230।।

चोद्दसमल - परिसुद्धं जं दाणं सोहिदूण जयणाए।
संजदजणस्स विज्जदि सा णेया एसणा सुद्धी।।231।।

प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादोदक, अर्चन, प्रणाम, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि और भोजनशुद्धि ये दान की नवविधियाँ हैं।

अब इन नवविधियों का स्वरूप कहते हैं—

1. प्रथम ही पात्र को अपने घर के द्वार पर देखकर अथवा अन्यत्र से खोज, लाकर 'नमोस्तु-नमोस्तु' और 'तिष्ठ-तिष्ठ' कहकर ग्रहण करना चाहिए।
2. फिर अपने गृह में ले जाकर उन्हें ऊँचे आसन पर बैठाना चाहिए।
3. फिर उनके पाद प्रक्षालन करना चाहिए, पादोदक को सिर पर लगाना चाहिए।
4. (जल) गंध, अक्षत, फूल, नैवेद्य, दीप, धूप और फल द्रव्यों से उनकी पूजा करना चाहिए।
5. पुष्पांजलि क्षेपण करके उनके चरणों के समीप नमस्कार करना चाहिए।
6. आर्त-रौद्र ध्यान को छोड़कर मन को शुद्ध करना चाहिए।
7. निष्ठुर, कर्कश आदि वचनों को छोड़कर वचन शुद्धि करना चाहिए।

8. सब ओर से अपनी काया को संकोचकर काय शुद्धि करना चाहिए।

9. चौदह मलों से रहित तथा यत्न पूर्वक शोधन किया हुआ भोजन पात्रों को, संयतजन को देना एषणा शुद्धि जानना चाहिए।

यहाँ नवधाभक्ति को प्राप्त उत्तमपात्र, मध्यमपात्र एवं जघन्यपात्र में प्रथम दो अर्थात् उत्तम-मध्यम पात्र लिंगसहित हैं और तृतीय जघन्यपात्र लिंगरहित है। जैसा कि आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ने दर्शनपाहुड में कहा भी है—

एक्कं जिणस्स रूवं बीयं उक्किट्ठ-सावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंगदंसणं णत्थि।।18।।

अर्थात् एक जिनेन्द्र भगवान् का नग्नरूप, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का और तीसरा आर्यिकाओं का इसप्रकार जिनशासन में तीन लिंग कहे गये हैं चौथा लिंग जिनशासन में नहीं है।

सूत्रपाहुड में कहा है—

पंचमहव्वय-जुत्तो तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।
णिग्गंथ-मोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य।।20।।

अर्थात् जो पाँच महाव्रत और तीन गुप्तियों से सहित है वही संयत संयमी मुनि होता है और जो निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग को मानता है वही वंदना करने के योग्य होता है।

दुइयं च उत्तलिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्तो समिदि-भासेण मोणेण।।21।।

अर्थात् दूसरा लिंग उत्कृष्ट श्रावकों का कहा गया है, यह उत्कृष्ट श्रावक भिक्षा के लिए भ्रमण करता है, पात्र सहित होता है अथवा हाथ में भी भोजन करता है और भिक्षा के लिये भ्रमण करते समय भाषासमिति रूप बोलता है अथवा मौन रखता है।

यहाँ उत्कृष्ट श्रावक के दो भेद हैं, 1. क्षुल्लक 2. ऐलक। क्षुल्लकचर्या में पात्र रखने का विधान है। ऐलक करपात्र में आहार ग्रहण करता है। जो क्षुल्लक अनेक गृह भोजी है वह

भाषासमिति के अनुसार बोलता है। जो क्षुल्लक मुनिराज की तरह एकगृह भोजी है वह मौन रखता है। ऐलक जी मौन रखते हैं ऐसा अर्थ है।

लिंगं इत्थीणं हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ।।22।।

अर्थात् तीसरा लिंग स्त्रियों का है इस लिंग को धारण करनेवाली स्त्री दिन में एक ही बार आहार ग्रहण करती है। वह आर्यिका हो तो एक ही वस्त्र धारण करे और वस्त्र के आवरण सहित भोजन करे। क्षुल्लिका भी चादर उतारकर वस्त्रावरण सहित भोजन करे।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव कथित यह तीनों लिंग उत्तम पात्र एवं मध्यम पात्र में किस प्रकार ग्रहण होते हैं इसका समाधान करते हैं।

द्रव्यानुयोग के अनुसार—

- शुद्धोपयोग प्रधान मुनिराज उत्तम पात्र हैं।
- अनगार मुनिराज, आर्यिका माताजी, ऐलक जी, क्षुल्लक जी, क्षुल्लिका माता जी मध्यम पात्र हैं।
- अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं।

जैसा कि छहढाला में कहा है—

उत्तम-मध्यम-जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी।।
मध्यम अन्तर आतम हैं जे देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि तीनों शिवमगचारी।।

करणानुयोग के अनुसार—

- छठवें आदि गुणस्थानवर्ती मुनिराज उत्तम पात्र हैं।
- पंचम गुणस्थानवर्ती आर्यिका माताजी, ऐलक जी, क्षुल्लक जी, क्षुल्लिका माताजी मध्यम पात्र हैं।

- चतुर्थगुणस्थानवर्ती लिंगरहित अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं।

चरणानुयोग के अनुसार—

- साक्षात् महाव्रती मुनिराज एवं उपचार महाव्रती आर्यिका माताजी उत्तम पात्र हैं।
- उत्कृष्ट श्रावक ऐलक जी, क्षुल्लक जी एवं क्षुल्लिका माताजी मध्यम पात्र हैं।
- लिंगरहित सम्यग्दृष्टि श्रावक जघन्य पात्र हैं।

प्रथमानुयोग के अनुसार—

- जिनमुद्राधारी मुनिराज एवं आर्यिका माताजी उत्तम पात्र हैं।
- उत्कृष्ट श्रावक ऐलक जी, क्षुल्लक जी एवं क्षुल्लिका माताजी मध्यम पात्र हैं।
- लिंगरहित सम्यग्दृष्टि श्रावक जघन्य पात्र हैं।

चूँकि आहारचर्या और नवधाभक्ति चरणानुयोग का विषय है अत: उत्तम पात्र में मुनिराज एवं आर्यिका माताजी तथा मध्यम पात्र में ऐलक जी, क्षुल्लक जी एवं क्षुल्लिका माताजी का ग्रहण होता है।

उत्तम पात्र मुनिराज एवं आर्यिका माताजी की नवधाभक्ति में इतना विशेष है कि मुनिराज की विशेष भक्ति के रूप में परिक्रमा होती है और अष्टद्रव्य से पूजा होती है।

आर्यिका माताजी की नवधाभक्ति में परिक्रमा होती भी है, नहीं भी होती। अष्ट द्रव्य से पूजन होती है अथवा अर्घ्य समर्पित किया जाता है।

मध्यम पात्र की नवधाभक्ति में पूजन के स्थान पर अर्घ्य समर्पित किया जाता है। परिक्रमा नहीं होती।

शेष भक्तियाँ उत्तम-मध्यम पात्र में समान हैं।

जघन्य पात्र चूँकि लिंगरहित है अत: नवधाभक्ति में

- पड़गाहन के स्थान पर विनयपूर्वक 'आइये-आइये' कहकर बुलाया जाता है।

- चौकी आदि देकर उच्चासन दिया जाता है।
- पैर धोने के लिए जल दिया जाता है अथवा अपने से श्रेष्ठ जान पैर धुलाये जाते हैं। पाद प्रक्षालन का जल मस्तक पर लगाया नहीं जाता।
- पूजा के अर्थात सम्मान के शब्द बोलकर विनय की जाती है।
- जय-जिनेन्द्र, वन्दना, आदि शब्द बोले जाते है।
- मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि एवं भोजन शुद्धि का जैसा स्वरूप कहा है वैसा स्वयं को शुद्ध रखकर भोजन करने का निवेदन किया जाता है।

इस प्रकार उत्तम-मध्यम एवं जघन्य पात्रों को यथायोग्य नवधाभक्ति पूर्वक दान दिया जाता है।

क्षुल्लक मनोहर लाल जी वर्णी 'सहजानन्द' ने श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार की व्याख्या में त्रिविध पात्रों की नवधाभक्ति के विषय में ऐसा कहा है—

पात्र को आहार देने के प्रसंग में की जानेवाली नवधाभक्ति में प्रथम भक्ति प्रतिग्रह—श्रावक के बारह व्रतों में अन्तिम वैयावृत्य नामका शिक्षा व्रत बताया जा रहा है। मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका और भी श्रावकजनों का यथायोग्य वैयावृत्य करना, सेवा करना, आहार आदिक देना यह वैयावृत्य कहलाता है। सो मुनि या श्रावक जो जिस पद में है उसके अनुसार नवधाभक्ति करता हुआ श्रावक आहार देता है। (1) पहला तो है संग्रह, जिसका दूसरा नाम है प्रतिग्रह अर्थात् पात्र मुनि, क्षुल्लक आदिक आहारचर्या के लिए जा रहे हों तो यह श्रावक प्रथम त्रिवार नमस्कार बोलता हुआ त्रिवार कहेगा कि तिष्ठ-तिष्ठ याने यहाँ ठहरिये तो वह जान जायेंगे कि आहार के लिए भक्तिपूर्वक बुला रहा है। और इसके आगे भी जितना बोला जाता है उतना प्रतिग्रह में बोलेगा, जो बात आगे करेगा उसका निवेदन करता है। अन्न जल शुद्ध है। मन शुद्धि, वचन शुद्धि काय शुद्धि पधारिये ऐसे विनयपूर्वक शब्दों में वह पात्र को बुलाने की, घर में पहुँचने की प्रार्थना करेगा। अनेक बार आदरपूर्वक विनयकी बात कहकर अपने भाव बतायेगा। देखिये बिना बुलाये, बिना प्रीति के वचन कहे कोई छोटा पुरुष भी भोजन नहीं करता। कहना ही पड़ता, आइये, पधारिये, विराजिये। और उनके फिर पैर भी

धुलायेगा। एक साधारण रिश्तेदार या अन्य की बात में भी चौके में चलियेगा, भोजन को, चलियेगा, भोजन की बात भी बतायेगा। फिर तो ये पात्र हैं— मुनि, क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिका ये सब पात्र हैं, योग्य हैं, धर्मगुरु हैं। इनको बड़े विनयपूर्वक श्रावक अपने घर ले जाता है। घर पहुँचने पर उच्च स्थान देता है। नवधा भक्ति प्राय: सबकी की जाती है, पर उसमें विशेषता पात्र के अनुसार होती है। आप अपने साधर्मी को, रिश्तेदारों को भी भोजन करायेंगे तो इतनी बातें सामने आती है। भले ही कोई विचार नहीं रखता भक्ष्य-अभक्ष्य का तो उसको यह नहीं कहा जाता कि यह भी शुद्ध है यह भी शुद्ध है, मगर बुलाना, ऊँचे आसन पर बैठालना। उनको पैर धोने को पानी देना आदिक साधारण बातें प्रत्येक के होती हैं। यहाँ मुनिराज नवधा भक्ति के बिना नहीं जाते आहार में। उसमें यह न समझना कि कोई अभिमान की बात है। मुनिराज मौन पूर्वक हैं, कुछ पूछ सकते नहीं हैं, सो वे नवधा भक्ति से ही जानते हैं कि यह आहार शुद्ध है। जो जैनशासन की विधि को नहीं जानता उससे कैसे आशा की जा सकती है कि उसने आहार शुद्ध बनाया है। नवधा भक्ति देखकर मुनिराज यह ज्ञान करते हैं। यह धर्मात्मा है, दान की विधि जानता है, आहार तो शुद्ध होगा ही सब बातों की परीक्षा श्रावक की नवधा भक्ति देखकर होती है।

पात्र को आहार देने के प्रसंग में कृत्य नवधा भक्ति में वर्णित प्रतिग्रह के अतिरिक्त शेष आठ भक्तियाँ—(2) दूसरी भक्ति है— पड़गाहने के बाद उच्च आसन पर बैठाना। (3) तीसरी भक्ति है— प्रासुक जल से हाथ पैर धुलाना है। (4) चूँकि ये धर्मात्माजन हैं, इनके चरण बहुत पानी से न धुलेंगे, इतना जानना आवश्यक है इतने ही पानी से धोना ताकि पानी अधिक बहे नहीं और जीवों को बाधा न पहुँचे यह चौथी भक्ति में है। जैसा अवसर देखा, जैसा पात्र हुआ उसके योग्य पूजन स्तवन पूज्यपना के वचन कहना। थोड़ा समय है तो अर्घ ही दे दिया, विशेष समय है तो पूरी पूजा ही पढ़ ली। तो अवसर और पात्रता के अनुसार पूजन विनय आदिक करना। (5) पांचवीं भक्ति है मुनि श्रावक की योग्यतानुसार नमस्कार आदिक करना। जैसे मुनि को अष्टांग नमस्कार है। क्षुल्लक, ऐलक, अर्जिका आदिक को पञ्चाङ्ग नमस्कार है तो यह प्रणाम नाम की भक्ति है। (6) छठवीं भक्ति है मन की शुद्धि रखना—देखिये पड़गाहने के समय जो मन शुद्धि वचन शुद्धि कायशुद्धि कहा है, जो अपनी शुद्धि का निवेदन किया है उसमें केवल शब्द कहने मात्र से बात न बनेगी। मन से शुद्धि रखना, सातवीं वचन से शुद्धि

रखना, अयोग्य वचन न बोलना (8) काय से शुद्धि रखना अर्थात् यत्नाचार से इस काय की प्रवृत्ति करना, जिसमें किसी जीव को बाधा न हो। (9) एषणा शुद्धि—यत्न से उठना, देखकर ही चलना जिसमें किसी जीव को बाधा न हो सके। ऐसी नवधा भक्ति पूर्वक श्रावक मुनिजनों को आहारदान करता है। मायने भोजन शुद्ध होना, जैसा पात्र के लिए योग्य चाहिए दिन में ही बनाना, शोधकर बनाना, शुद्ध होकर बनाना ऐसा भोजन एषणाशुद्धि कहलाता है।

पं. सदासुखदास जी ने भी मुनिराज ओर क्षुल्लक जी की चर्या के विषय में कहा भी है—

नवधा भक्ति : पात्र को दान देनेवालों को मुनि तथा श्रावक का जैसा पद हो उसके अनुसार नवधा भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये।

नव प्रकार की भक्ति के नाम— संग्रह 1. उच्च स्थान 2. पादोदक 3. अर्चन 4. प्रणाम 5. मनशुद्धि 6. वचनशुद्धि 7. काय शुद्धि 8. भोजन शुद्धि। 9।

मुनिराज को तथा क्षुल्लक को—'हे स्वामी! तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ' इसका अर्थ है— कृपा कर खड़े रहें, रुक जावें- ऐसा तीन बार कहना चाहिये। जिनका अति पूज्यपना देखकर जिसके चित्त में उनके प्रति अति अनुराग होगा, वही तीन बार आदरपूर्वक कहेगा। अन्य श्रावक आदि योग्य पात्र भी घर आवें तो— आईये, पधारिये, विराजिये इत्यादि आदर के वचन कहना, वह संग्रह या प्रतिग्रह है। 1।

बुलाकर उच्चस्थान पर आसन देना 2, प्रासुक प्रामाणिक जल से पैर धोना, धुलाना 3, जैसा समय जैसा पात्र हो उसके योग्य स्तवन पूज्यपना के वचन कहना 4, मुनि श्रावक की योग्यता अनुसार नमस्कार आदि करना 5, मन की शुद्धता करना तथा बोलना 6, वचन की शुद्धता करना, कहना, अयोग्य वचन नहीं बोलना 7, काय की शुद्धि करना व कहना, यत्नाचार सहित चलना, उठना इत्यादि 8, भोजन शुद्धि करना व बोलना, पात्र योग्य शुद्ध भोजन देना। 9।

यहाँ कोई प्रश्न करे—वर्तमान में कोई आचार्य, मुनि एवं इन्हीं के अनुसार चलने वाले विद्वान, श्रावक आदि ऐसा कहते हैं कि वस्त्रधारी की अष्ट द्रव्य से या अर्घ्य से पूजा नहीं करना चाहिए अन्यथा मिथ्यात्व का दोष आता है?

इसका समाधान यह है— आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द देव ने दर्शनपाहुड गाथा-18 में तीन लिंग जिनशासन में कहे हैं चौथा लिंग जिनशासन में नहीं कहा गया, ऐसा कथन किया है। वह जिनशासन वर्णित तीन लिंग इस प्रकार हैं।

1. जिनरूप अर्थात् जिनमुद्राधारी मुनिराज का लिंग।

2. उत्कृष्ट श्रावक ऐलक-क्षुल्लक जी का लिंग।

3. उपचार महाव्रती आर्यिका का लिंग।

इन जिनशासन मान्य तीन लिंगों में मुनिलिंग वस्त्ररहित तथा उत्कृष्ट श्रावक एवं आर्यिका लिंग वस्त्राच्छादित है ऐसा सूत्रपाहुड गाथा-22 में कहा है।

साथ ही प्रथम शताब्दी के सर्वमान्य आचार्य कार्तिकेयस्वामी ने गाथा-360 में तीन प्रकार के पात्रों को नवधाभक्ति पूर्वक दान देने का कथन किया है एवं परवर्ती अन्य आचार्यों ने भी नवधाभक्ति पूर्वक तीन प्रकार के पात्रों को दान देने का उल्लेख किया है, तब मुनि, आर्यिका, उत्कृष्ट श्रावक, श्राविका की नवधाभक्ति में अष्ट द्रव्य से अथवा अर्घ्य से पूजा का कथन आगम प्रमाण से सिद्ध ही होता है।

अत: वर्तमान के जो आचार्य, मुनि, विद्वान अथवा श्रावक आगम प्रमाण को बाधित कर स्वयं के आगमविरुद्ध स्वतंत्र चिंतन को मान्यता देते है अथवा आगम प्रमाणित कहते हैं, उनका वह स्वतंत्र चिंतन ही मिथ्या ठहरता है। अत: आचार्य, मुनि, विद्वान या श्रावक यदि इस वर्तमानकाल में अपने आगमविरुद्ध स्वतंत्र चिंतन को प्रसिद्ध करते हैं तो उनके द्वारा जिनशासन मलिन ही किया जाता है।

अत: सभी को चाहिए आगम परंपरा को ही मान्यता देकर अनादि मिथ्यात्व को गलित करें। आगमविरुद्ध स्वतंत्र चिंतन को महत्व देकर मिथ्यात्ववर्द्धन न करें।

यहाँ पुनः प्रश्न किया—वर्तमान में कोई आचार्य, मुनि, विद्वान आदि कहते हैं कि वस्त्रधारी आर्यिका की नवधाभक्ति न करके सात भक्ति करना चाहिए अर्थात् पादप्रक्षालन एवं पूजा नहीं करना चाहिए, अन्यथा मिथ्यात्व का दोष आयेगा।

इसका समाधान इस प्रकार है— जिनागम की श्रद्धा करनेवाला तो सम्यग्दृष्टि होता है। हाँ, जिसे जिनागम देखकर भी श्रद्धा न हो उसे मिथ्यात्व का दोष आता है अर्थात् वह मिथ्यादृष्टि होता है।

वर्तमान में जो कोई आचार्य, मुनि, विद्वान ऐसा कहते हैं कि आर्यिका माताजी वस्त्रधारी हैं अतः नवधाभक्ति न करके सात भक्ति करना चाहिए, पादप्रक्षालन एवं पूजा नहीं करना चाहिए, उन्हें सर्वप्रथम तो कार्तिकेयानुप्रेक्षा का आगम प्रमाण देखना चाहिए, फिर भी यदि अपना आगमविरुद्ध स्वतंत्र चिंतन ही प्रसिद्ध या मान्य करते हैं तो उन्हें उसी समय से जैन मुनि आदि के रूप में जैनाभासी जानना चाहिए। क्योंकि ये भव भीरू नहीं हैं, श्रुत का अवर्णवाद करते हुए स्वतंत्र निजमत के पोषक हैं, ये जिनमत के पोषक नहीं हैं।

इस पंचमकाल में पूर्व में भी ऐसे पुण्य प्राप्त किन्तु स्वतंत्र निजमत के पोषक जैनाचार्य, मुनि, विद्वान हुए हैं जो स्वतंत्र निजमत के पोषक होने से जैनाभासी कहलाये। और उन्होंने मूलसंघ की परंपरा के विरुद्ध कथन लोक में प्रसिद्ध किया। अरे रे! वे श्रावक भी पुण्यहीन हैं जिन्होंने आगमविरुद्ध वचन स्वीकार कर अपना संसार दीर्घ कर लिया, किंतु धन्य हैं वे श्रावकगण जिन्होंने जिनागम की श्रद्धा कर अपना संसार विच्छेद किया है और कर रहे हैं।

स्वतंत्र निजमत के पोषक विद्वान एवं तपस्वियों के विषय में कहा भी है—

पण्डितै-र्भ्रष्टचारित्रै-र्बठरैश्च तपोधनैः।
शासनं जिनचन्द्रस्य निर्मलं मलिनीकृतम्।।

अर्थात् चारित्रभ्रष्ट पण्डितों ने और बनावटी तपस्वियों ने जिनचन्द्र के निर्मल शासन को मलिन कर दिया।

अहो! विचार करो, जब जिनेन्द्र देव ने जिनशासन में तीन लिंग मान्य किये हैं, और यह तीनों लिंग सम्यग्दर्शन पूर्वक व्रतों को स्वीकार करनेवाले हैं, गुणों को प्रगट करनेवाले हैं यथायोग्य दीक्षा से प्रगट होते हैं, तो उनके स्वरूप में एवं पूज्यता में भेद करना अज्ञानता है।

फिर बोलो— वस्त्र की अपेक्षा यदि पूज्यता या अपूज्यता है, तो क्या वस्त्ररहित पूज्य होता है? नहीं, वस्त्ररहित पूज्य नहीं होता अपितु जो सकल संयम, रत्नत्रय गुण से सुशोभित वस्त्ररहित मुनिलिंग है वह गुणों की अपेक्षा पूज्य है। इसी तरह आर्यिका उपचार महाव्रत से

अर्थात् सम्यग्दर्शन पूर्वक व्यवहार व्रतों से वस्त्रसहित लिंग की धारी है। वह भी अपने गुणों से पूज्य है।

यहाँ वस्त्ररहित एवं वस्त्रसहित लिंग तो मुनि, आर्यिका की पहिचान है, वास्तव में इन लिंगों में प्रगट गुण पूज्य होने से सहचारी लिंग भी पूज्यता को प्राप्त हैं। इसमें कोई दोष नहीं है।

अहो! जिस तरह वस्त्र वेष्टित शास्त्र, जिनागम मुनिजन के द्वारा भी पूज्य हैं, यहाँ प्रयोजन में जिनवाणी है नाना प्रकार के वेष्टन नहीं, उसीप्रकार आर्यिका माताजी भी उनसे निम्न पद धारियों के द्वारा पूज्य हैं, यहाँ पूज्यता आर्यिका पद में स्थित गुणों की है वस्त्र की नहीं।

अहो! बड़ी चिंता की बात है कहीं आर्यिका माताजी के विषय में स्वतंत्र चिंतन की प्रसिद्धि के निमित्त से जैनाभासी जीव यह न कहने लग जायें कि वस्त्राच्छादित जिनागम पूज्य नहीं है अत: सत्पात्रों के विषय में हम आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी की सर्वार्थसिद्धि में कथित सूक्ति सतत् स्मरण रखें—

पूज्येषु गुणानुरागो भक्तिः।

अर्थात् पूज्यजनों के गुणों में अनुराग होना ही भक्ति है।

अत: भो भव्यजीवो! सत्पात्रों की नवधाभक्ति कर अपना जीवन, अपनी पर्याय सफल करना चाहिए।

अब पात्रदान का फल क्या है? सर्वप्रथम इसकी गाथा देखते हैं—

सुकुल-सुरूव सुलक्खण, सुमदि सुसिक्खा सुसील सुगुणसुचरितं।
सयलं सुहाणु-भवणं, विहवं जाणह सुपत्त-दाणफलं।।21।।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि उत्तम कुल, उत्तम रूप, उत्तम लक्षण, उत्तम बुद्धि, उत्तम शिक्षा, उत्तम स्वभाव, उत्तमगुण, उत्तम चारित्र, सकल सुखों का अनुभव और वैभव यह सब '**सुपत्तदाणफलं जाणह**' इन सबको सुपात्रदान का फल जानो।

जब तक यह संसारी जीव संसार में रहेगा तब तक उसे किसी न किसी कुल में अवश्य जन्म लेना पड़ेगा। जीवों के एक सौ साढ़े निन्यानवे लाख करोड़ कुल होते हैं। इन कुलों में अनेकों जीव जन्म

लेते हैं लेकिन इन समस्त कुलों में जो श्रेष्ठ, सम्माननीय, लोकपूजित, लोक प्रतिष्ठित कुल कहलाता है ऐसे उत्तम कुल में जन्म मिलना अत्यंत दुर्लभ है।

विचार कीजिएगा, संसार में ऐसे कितने जीव हैं जिन्हें श्रेष्ठ कुल की प्राप्ति हुई है। सबसे उत्तम कुल जैनकुल कहा गया है क्योंकि जैनकुल में आचार-विचार विशेष है। जहाँ आचार-विचार अच्छा होता है उस कुल को ही श्रेष्ठ कुल कहा जाता है। हमारे अरिहंत भगवंतों ने प्रत्येक जैनी के लिए श्रेष्ठ आचार-विचार की शिक्षा दी है उन्होंने जीवन जीने की आचार-संहिता बतलाई है। आप जीवन जियें लेकिन आचार-संहिता का पालन करते हुए जीवन जियें। आचरणविहीन जीवन जीनेवाले तो बहुत होते हैं लेकिन आचरणवान जीवन जीनेवाले विरले ही होते हैं।

भगवान महावीर ने कहा- जैनधर्म को माननेवाले प्रत्येक जैनी के लिए अपनी आचार-संहिता के अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये। जो जीव पुण्यात्मा होते हैं उनका जन्म उस कुल में होता है जहाँ श्रेष्ठ आचरण का पालन किया जाता है। आज देखिएगा, जो जीव जिस कुल में जन्म लेता है उस कुल के संस्कार उस जीव में अपने आप ही आ जाते हैं। कहीं बाहर से लाना नहीं पड़ते। यदि आप श्रेष्ठ कुल में जन्मे हैं तो आपको श्रेष्ठ कुल के संस्कार मिलेंगे, और यदि आप निम्न कुल में जन्मे होते तो आपने बचपन से निम्न कुल में जो देखा होता वह संस्कार आप में आ जाता। मान लीजिए कोई व्यक्ति है जिसके कुल में शिल्पकला का कार्य होता है अब उस कुल में जिसका जन्म होगा वह बचपन से ही शिल्पकला का कार्य होते देखेगा तो उसके अंदर भी वैसे ही संस्कार बनने लग जायेंगे। वह छोटी उम्र में ही यह भलीभाँति सीख जाता है कि हमें कैसा प्रस्तर चाहिये? कैसे शिल्पकारी करनी चाहिये? आदि। यदि किसी का जन्म कुंभकार के यहाँ हुआ तो वह मिट्टी के विभिन्न बर्तन कैसे बनाये जाते हैं यह सीख जायेगा?

कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति जिस कुल में जन्मता है उस कुल के संस्कार उसके अंदर स्वयमेव आ जाते हैं। ऐसे ही अगर कोई श्रेष्ठ कुल में जन्मा हो जहाँ जीवरक्षा का आचार-विचार धारण किया जाता हो। जैसे किसी भी जीव की विराधना नहीं करना चाहिये। किसी भी जीव को सताना मारना नहीं चाहिये। सभी से अच्छा मीठा बोलना चाहिये। अपने से बड़ों

की विनय करना चाहिये। सम्मान, गरिमा, मर्यादा बनाकर रखनी चाहिये। छोटों के प्रति प्रेम-वात्सल्य का भाव रखना चाहिये। ये सब अपने कुल से प्राप्त किया है। श्रेष्ठ कुल में जन्म लेने से उस कुल के संस्कार अंदर आ जाते हैं।

यह क्यों कहा जाता है, कि श्रेष्ठ कुलवालों को अपना संबंध श्रेष्ठ कुलवालों के साथ ही रखना चाहिये और श्रेष्ठकुल वालों को श्रेष्ठ कुलवालों की ही संगति करना चाहिये? इससे क्या होगा? इससे उनके श्रेष्ठ कुल के संस्कार बने रहेंगे। और श्रेष्ठ कुलवालों की संगति यदि निम्न कुलवालों के साथ हुई तो क्या होगा? किसकी हानि होगी? श्रेष्ठ कुलवालों की या हीन कुलवालों की? ध्यान रखना, हानि तो श्रेष्ठ कुलवालों की होगी।

कोई व्यक्ति शुद्ध वस्त्र पहनकर सोले में खड़ा है और किसी अशुद्ध वस्त्र पहने व्यक्ति ने उसे छू लिया, तो हानि किसकी होगी? ऐसा तो होता नहीं है कि शुद्ध वस्त्र पहने हुए सोलेवाले व्यक्ति को अशुद्ध वस्त्रधारी व्यक्ति ने छू लिया तो वह अशुद्ध व्यक्ति शुद्ध हो गया हो। ऐसा तो नहीं होता। क्या होता है फिर? उस अशुद्ध वस्त्रधारी व्यक्ति से अगर कोई शुद्ध वस्त्रधारी व्यक्ति स्पर्शित हो जाता है तो उसका भी सोला बिगड़ जाता है वह भी अशुद्ध वस्त्रधारी हो जाता है। इसको समझते हो न, इसलिये कहा जाता है कि श्रेष्ठ उच्च कुलवालों को अपने समकक्ष कुल वालों के साथ ही व्यवहार रखना चाहिये। अन्यथा कुल का सब श्रेष्ठ आचार-विचार धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा। सुभाषित सहस्रम् ग्रंथ में कहा भी है-

हीयते हि मतिस्तात् हीनैः सहु समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्।। 1005।।

अर्थात् हीन मनुष्यों की संगति से बुद्धि हीन हो जाती है, समान मनुष्यों की संगति से बुद्धि समरूप बनी रहती है और विशिष्ट लोगों की संगति से विशिष्टता को प्राप्त हो जाती है।

बंधुओ! आर्ष मार्ग का विचार करने की, उसरूप प्रवृत्ति करने की बहुत आवश्यकता है। आप परिवार में रहते हैं तो उस परिवार को संस्कारित करना आपका कर्तव्य है। बचपन से ही आपको अपने बच्चों को यह समझाने की आवश्यकता है कि आप श्रेष्ठ कुलवंश में जन्मे हो। आपको अपने कुल के संस्कारों और मर्यादाओं को बनाए रखने के लिये श्रेष्ठ लोगों की संगति करनी चाहिए। जब बच्चा बिल्कुल नासमझ हो तब से आप उसे ये संस्कार देना शुरु कर

दीजिए। इससे उसके अंदर यह बात आ जायेगी कि हमें श्रेष्ठ कुलवालों के साथ ही अपना व्यवहार रखना चाहिए।

बंधुओ! आज स्थितियाँ बिगड़ती चली जा रही हैं। उच्च, श्रेष्ठ, कुल-वंश, घर, परिवार के लोग निम्न कुलवालों के सम्मुख होते जा रहे हैं। आधुनिकता के नाम पर धर्म, समाज और संस्कृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। पहले के समय में ऐसा था कि जब व्यक्ति अपने बच्चे-बच्चियों के संबंध करते थे तो अपनी बराबरी वालों के साथ किया करते थे। श्रेष्ठ कुलवाले श्रेष्ठ कुलवालों के साथ संबंध आदि रखा करते थे। और जो जैसा होता था उसके अनुरूप उनका यह सामाजिक व्यवहार चलता रहता था। इसमें किसी को किसीप्रकार की कोई बुराईवाली बात नहीं थी। क्यों? क्योंकि यह सामाजिक व्यवहार है मर्यादित व्यवहार है। जो अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार चलता था। किंतु आज उच्चकुलों के घरों के संस्कार बिगड़ रहे हैं। अपने ही बच्चों के लिये, युवा वर्ग के लिये हम अच्छे संस्कार नहीं दे पा रहे हैं। हम उन्हें इस तरह की शिक्षायें नहीं दे पा रहे जिससे वे अपने कुल की प्रतिष्ठा और गरिमा को बनाकर रख सकें। फलस्वरूप वे बच्चे आज के इस आधुनिक वातावरण में पलते हुए बढ़ते हुए अपने कुल के संस्कारों का ज्ञान न होने के कारण अपने कुल की प्रतिष्ठा को नष्ट कर देते हैं।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को यह विचार करना चाहिये कि हमने किस कुल में जन्म लिया है? जिस कुल में त्रिलोक पूज्य महान तीर्थंकर भगवंतों का जन्म हुआ है। ऐसे महान जैनकुल में हमने जन्म लिया है। ऐसे पवित्र कुल में हम दाग कैसे लगा सकते हैं? सोचिए, अगर आपका पुत्र अथवा पुत्री निम्न कुलवालों के साथ संबंध बना लें तब आपको कैसा लगेगा? आपके कुलवंश की क्या मान मर्यादा रहेगी? समाज में आपकी क्या प्रतिष्ठा रहेगी? क्यों? क्योंकि जो जिस कुल में जन्मता है उसके साथ उस कुल का संस्कार अवश्य रहता है।

आज के समय में इस विषय पर गहन चिंतन करने की आवश्यकता है। अगर अपने कुल की श्रेष्ठता को बनाये रखना है। कुल को प्रतिष्ठित लोकपूजित बनाकर रखना है तो इस बात का अवश्य चिंतन करें की आज की युवा पीढ़ी कहाँ जा रही है? क्या हम अपना स्वाभिमान बिल्कुल ही खो चुके हैं? पहले आदमी अपने स्वाभिमान के लिये अपना सब कुछ न्यौछावर कर देता था। वह अभिमान नहीं रखता था लेकिन स्वाभिमान अवश्य रखता था। आज आदमी के पास स्वाभिमान नहीं रहा।

जो स्वाभिमानी व्यक्ति होता है उसका आचरण कैसा होता है जानते हो? किसी उत्तम कुल का एक मुखिया है। वह जब घर में प्रवेश करता है तो सीधा प्रवेश नहीं करता। जैसे ही वह घर के द्वार पर पहुँचता है प्रवेश करने के पहले ही वह खाँसना शुरु कर देता है। यह खाँसना क्या है? यह मात्र संकेत है इशारा है कि मैं आ चुका हूँ अगर घर में रहनेवाली बहू- बेटियाँ अस्त व्यस्त बैठी हों तो व्यवस्थित हो जायें। यह संकेत उस उत्तम कुल की एक मर्यादा का हुआ करता था। घर के मुखिया, बड़े बुजुर्गों का यह अपना स्वाभिमान हुआ करता था। घर परिवार के लोग भी उनकी पूरी-पूरी मर्यादा सम्मान को बनाये रखते थे। घर के मुखिया की एक गरिमा रहती थी। पिताजी आ गये हैं यह समझते ही सब सतर्क हो जाते थे। पिताजी का इतना भय रहता था। वह भय उनकी विनय व सम्मान गरिमा को बनाये रखता था।

किंतु आजकल घर-परिवार के बड़े, बुजुर्ग, मुखिया इस विषय में खुद ही विचार नहीं करते, तो घर के लोग भी उनका सम्मान नहीं रखते हैं। यह स्वाभिमान होता है इसे हमेशा बनाकर रखना चाहिए। **अपनी गरिमा, मर्यादा, स्वाभिमान को बनाकर रखोगे तो आपको हमेशा घर-परिवार में सम्मान मिलता रहेगा और जहाँ आपने यह मान लिया कि अरे ये सब तो पुराने समय की बाते हैं। नई पीढ़ी को समझने के लिये हमें भी नये जमाने के अनुसार चलना होगा तो आप भूल कर रहे हैं। कुरीतियों को छोड़ा जाता है आदर्श और मान मर्यादाएँ छोड़ देने से आपका जो मान सम्मान था वह भी समाप्त हो जायेगा।** जब आपकी उम्र थोड़ी और बढ़ेगी तब आपको पता चलेगा कि ओ हो! काश, मैंने अपनी बहू-बेटियों के लिये मर्यादा और संस्कारों में रहना सिखाया होता तो आज शायद मुझे इनकी ये बातें न सुननी पड़ती।

बंधुओ! उत्तमकुल का अर्थ ही यह होता है कि जहाँ सम्यक् आचार-विचार हो, शिक्षा, संस्कार हो। आदर्श रहनसहन और गरिमामय आपसी व्यवहार हो। यदि आपके घर-परिवार में उत्तम कुलवंश के श्रेष्ठ संस्कारों से रहित, निम्न कुलवंश के हीन संस्कारवाली बहू आ गयी, तो तुम्हारे कुल में वह बहू श्रेष्ठ संस्कारवान् संतान को जन्म नहीं दे सकती।

श्रेणिक चरित्र में आता है- महाराज उपश्रेणिक ने भील राजा यमदण्ड की पुत्री तिलकवती से विवाह किया और वचन दिया कि तिलकवती के पुत्र को ही राजसिंहासन दिया जायेगा।

वचनानुसार महाराज उपश्रेणिक ने इन्द्राणी माता के सुयोग्य पुत्र श्रेणिक को राज्य न देकर भीलपुत्री तिलकवती के पुत्र चिलाती को राज्य दिया। राजा चिलाती दुष्ट, पापी एवं राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ था। पीड़ित प्रजा ने राज्य से निष्कासित कुमार श्रेणिक को बुलाया। सुयोग्य श्रेणिक का समाचार सुनकर राजा चिलाती कुछ धनसंपदा लेकर राज्य से भाग गया।

सिद्धान्त में भी एक कथानक आता है कि एक शेरनी थी। उसने बच्चों को जन्म दिया। वहीं पर एक सियारिनी भी रहती थी। उसके भी बच्चा हुआ। लेकिन अपने-अपने पुण्य-पाप की बात होती है। उस सियारिनी ने बच्चे को जन्म दिया और कहते हैं कि उसका मरण हो गया। वह जो शेरनी थी वह पशु जरूर थी किंतु मातृत्वभाव से वात्सल्यभाव से ओत प्रोत थी। जहाँ आजकल माताएँ अपनी संतानों को नौकरों के भरोसे छोड़ देती हैं अपने ऐशोआराम के आगे जिन्हें अपने ही बच्चों का पालन-पोषण भारभूत प्रतीत होता है वह शेरनी सियारनी के बच्चे का पालन-पोषण करने लगी। कभी-कभी ऐसी अद्‌भुत घटनाएँ भी देखने को मिल जाती हैं कि कोई शूकरी एक कुत्ते के बच्चे को दूध पिला रही है तो कोई कुतिया एक शूकरी के बच्चे को दूध पिला रही है दुनिया में कई बार ऐसे उदाहरण भी देखे जाते हैं।

उस सिंहनी ने जैसे अपने बच्चों का पालन-पोषण किया वैसे ही उस सियारनी के बच्चे का पालन-पोषण किया। जो संस्कार अपने बच्चों को दिए वही संस्कार उसने सियारनी के बच्चे को दिए। सब कुछ बराबर का दिया। कहीं कोई भेदभाव नहीं किया। जब बच्चे बड़े हुए तो बड़े होने के बाद सिंह के बच्चे तो सिंह ही होंगे। एक दिन वे सभी बच्चे जंगल में घूमने के लिए गये। सामने से एक हाथी आ रहा था। जैसे ही उन लोगों ने सामने से आते हुए हाथी को देखा तो आपस में प्लानिंग (Planning) करने लगे कि आज तो हम इस हाथी का शिकार करेंगे। जिसके कुलवंश में जो होता आया है उसमें वे संस्कार अपने आप आ जाते हैं।

जब शेरनी के बच्चों ने यह निर्णय लिया कि आज हम इस हाथी का शिकार करेंगे, तो जो सियारनी का बच्चा था वह उन्हें समझाने लगा कि भैया! भैया! सुनो, मेरी बात सुनो। शेरनी के बच्चों को कुछ भेदभाव पता नहीं था। वे उसे अपना भाई ही मानते थे। शेरनी के बच्चों ने कहा-बोलो भैया! क्या कहना चाहते हो? वह बोला- सुनो भैया! हाथी बहुत बड़ा है और हम लोग बहुत छोटे हैं अगर हम लोगों ने हाथी को छेड़ा तो वह हम लोगों को मार डालेगा। इसलिये

मेरी सलाह तो यह है कि हम लोगों को हाथी का शिकार नहीं करना चाहिए। अन्यथा हमको मृत्यु देखनी पड़ेगी।

शेर के बच्चे तो शेर के बच्चे थे। उनको यह बात सुनते ही क्रोध आ गया। उनकी आँखें एकदम लाल हो गयीं। सियारनी के बच्चे ने देखा कि ये तो क्रोध में आ गये हैं कहीं मुझे ही ना पीट दें तो बेचारा वहाँ से भाग निकला। उधर जो शेरनी के बच्चे थे उन्होंने कहा— आज तो चाहे कुछ भी हो जाये हम इस हाथी का शिकार करके रहेंगे। यह उनके कुल के संस्कार थे।

वह सियारनी का बच्चा जंगल से भागकर सीधा शेरनी के पास पहुँचा। उसे वह अपनी माँ समझता था। जाकर कहने लगा— माँ! माँ! अभी कोई काम मत करो, पहले मेरी बात सुनो। माँ! सब भैया जंगल में एक विशाल भीमकाय हाथी का शिकार करने की योजना बना रहे हैं माँ! तुम जल्दी चलो नहीं तो वह हाथी सबको मार डालेगा।

शेरनी ने सियारनी के बच्चे की बात सुनी और कहने लगी-बेटा! वो जो बच्चे हैं वो मेरे बच्चे हैं और तू सियारनी का बच्चा है। जब तेरा जन्म हुआ था उसी समय तेरी माँ की मृत्यु हो गयी थी। मैंने तुझे सिर्फ पाला है। तू मेरा बेटा नहीं है। जिस कुल में उन्होंने जन्म लिया उस कुल में हाथियों का शिकार किया जाता है। वे सभी तेजस्वी हैं। अपने तेजस्व, बल, वीर्य से वे उस हाथी का शिकार कर लेंगे। लेकिन जिस कुल में तू जन्मा है उसमें कभी हाथियों का शिकार नहीं किया गया इसलिए तू डर के मारे वहाँ से भाग आया है। अब तू एक काम कर, इसीसमय यहाँ से भी कहीं और भाग जा अन्यथा वे शेर के बच्चे आते ही होंगे।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि जो जिस कुल में जन्म लेता है उस कुल के संस्कार उसमें अवश्य ही आते हैं। यदि आपके कुल में जिसके कुलवंश का कुछ भी पता नहीं ऐसी बहू आ गयी तो आपके कुल की क्या संस्कृति रहेगी? मर्यादा, उच्चता रहेगी क्या?

आजकल आदमी बहुत बड़ी अशिक्षा में जी रहा है। पहले के लोगों के पास भले ही ऊँची-ऊँची डिग्री (Degree), उच्च लौकिक शिक्षा नहीं थी लेकिन आचरण और व्यावहारिकता की शिक्षा बहुत थी। इसलिये वे अशिक्षित होते हुए भी शिक्षित थे। और आज के लोग शिक्षित होते हुए भी अशिक्षितों जैसा जीवन जी रहे हैं। एक जगह की सत्य घटना है किसी ने बताया कि महाराज श्री! आजकल के युवा 30-30, 40-40 साल के हो जाते

हैं फिर भी उनकी शादी विवाह नहीं हो पाते। अब क्या करें? शादी नहीं हो पा रही है तो वे सोचते हैं जैसे भी बने, येन केन प्रकारेण अपने कुल की संस्कृति, मर्यादा, प्रतिष्ठा की परवाह किये बिना दलालों के माध्यम से अपनी शादी निश्चित कर लेते हैं। अब ये आज का समय आ गया है कि मुखिया को कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। आज की पीढ़ी या तो स्वयं अपना कार्य पूरा कर लेगी और अगर न कर पाई तो किसी दलाल के माध्यम से अपनी खानापूर्ति अवश्य कर लेगी।

ऐसा ही हुआ जब उस लड़के का विवाह नहीं हो पा रहा था तो किसी दलाल ने कहा—आप निश्चिंत रहिए शीघ्रातिशीघ्र आपका कार्य हो जायेगा। आप संपर्क में बने रहें हम आपको बता देंगे। कहीं दूर दराज से, बैंगलौर साइड (Bangalore Side) से आपका काम बन सकता है लेकिन इतना धन देना पड़ेगा। उसने कहा—हम सब कुछ देने को तैयार हैं। विचार करना, लड़के से जो माँगा गया वह सब दिया। शादी हो गई। घर में बहू आ गयी। सभी प्रसन्न थे। सासु माँ ने नई नवेली बहू का खूब ध्यान रखा। उस नई बहू को कोई भी कार्य नहीं करने दिया। यही तो चलन रहता है कि नई-नई बहू है तो वो क्यों कोई काम करे? ये तो हम ही कर लेंगे। धीरे-धीरे पुरानी हो जायेगी फिर सारे काम सौंप दिये जायेंगे।

सासू माँ ने शुरु-शुरु में तो उससे कोई कार्य नहीं करवाया लेकिन जब कुछ दिन व्यतीत हो गये तो सासू माँ ने एक दिन बहू से कहा-बेटा! मैं मंदिर जा रही हूँ तब तक तुम भोजन तैयार कर लेना। मैं जरा मंदिर जाकर पूजा कर आऊँ। बहू बोली-हाँ माँ! आप चले जाओ। बहू ने भोजन तैयार किया। सासू माँ मंदिर से लौटी। देखा, बहू ने भोजन तैयार कर रखा है। सासू माँ ने बड़े प्रेम से भोजन किया। बहू के हाथ का पहली बार भोजन कर रही थी। सासू ने कहा-बेटा! तुम तो बहुत अच्छा भोजन बनाती हो। अब से तुम्हीं भोजन बनाया करना। बहू ने खुश होते हुए कहा, ठीक है माँ।

शाम हुई। सासू माँ ने देखा, बहू ने अभी तक भोजन तैयार नहीं किया। सासू ने पूछा-बेटा! तुमने सुबह का तो भोजन बड़ा अच्छा बनाया था, शाम का क्यों नहीं बनाया? बहू बोली—माँ! शाम को तो आप थैला लेकर के जाओगी और घर-घर से रोटी माँगकर लाओगी ना। इसलिये अब मुझे बनाने की क्या आवश्यकता है? सासू माथे पर हाथ रखकर बैठ गयी। उसे यह समझते देर न लगी कि घर में कौन आया है?

बंधुओ! विचार करने की आवश्यकता है कि आज घर की मर्यादाएँ उत्तमकुल की श्रेष्ठ मर्यादाएँ किसतरह से तहस नहस हो रही हैं ? श्रेष्ठ कुल के संस्कार, घरों के संस्कार किस तरह से नष्ट हो रहे हैं ? भविष्य में इसका क्या फल होगा ? इस विषय में आज की युवा पीढ़ी को, समाज के प्रत्येक व्यक्ति को चिंतन करना ही होगा अन्यथा जिस आचार-विचार का तुम्हें बहुत गौरव बहुमान रहता है वह सब आचार-विचार समाप्त हो जायेगा।

वर्तमान युवा पीढ़ी को यह सोचना चाहिये कि हम श्रेष्ठकुल में जन्मे हैं तो हमारा विवाह भी श्रेष्ठकुल में होना चाहिये। श्रेष्ठ कुलवालों का संबंध श्रेष्ठकुल से ही होना चाहिये। पहले के लोग तो इसमें भी यहाँ तक विचार करते थे कि यदि कोई धनपति है तो वह अपनी बेटी-बेटे के लिये अपने समकक्ष परिवार को खोजता था। मध्यम वर्गवाला व्यक्ति अपने ही कुल के किसी मध्यम वर्गीय परिवार को संबंध के योग्य समझता था। और कोई श्रेष्ठ कुलवाला भी सामान्य खाते-पीते परिवार का होता था तो वह भी अपनी ही बराबरी वाले के साथ रिश्ता जोड़ता था। क्योंकि यदि किसी धनपति के घर में उसने अपनी बेटी को दे दिया तो वह जानता था कि उसकी बेटी सुखी नहीं रह पायेगी। वह धनपति पुत्र और उसके परिवार वाले हमेशा हमारी बेटी के लिये ताने सुनायेंगे कि जब तू इस घर में आयी थी तब तेरे पिता ने दिया ही क्या था? हमारे लिए तो इतने बड़े-बड़े घरों के रिश्ते आ रहे थे। वे पहले से ही भविष्य में बननेवाली परिस्थितियों को भाँप लेते थे। इतने अनुभवी होते थे। और वे सोचते थे कि हमारे मध्यम वर्ग में अथवा सामान्य खाते-पीते घर में कोई बड़े घर की बेटी आ गयी तो वह हमेशा हमारे पुत्र पर हावी रहेगी। और हमेशा अपने मायकेवालों के गुण गायेगी। अमीर होने का रौब दिखायेगी। क्यों? क्योंकि वह ऐसे कुल में जन्मी है जिस कुल के संस्कार उसमें जन्मजात हैं।

बंधुओ! आज के समय में परिवार क्यों बिगड़ जाते हैं क्यों परिवारों में झगड़े शुरु हो जाते हैं? पहले जहाँ आपस में प्रेम, विश्वास, समर्पण रहता था आज उन रिश्तों के बीच स्वार्थ और अविश्वास ने जन्म ले लिया है। इसलिये अब संयुक्त परिवार नहीं देखे जाते। और अब तो वैसे भी एकल परिवार की संस्कृति प्रारंभ हो गयी है। घर में रहते ही कितने लोग हैं? बमुश्किल चार प्राणी रहते हैं पति-पत्नी और बेटा-बेटी। ये चार प्राणी यानि परिवार।

पहले संयुक्त परिवार होता था तो एक दूसरे को देखनेवाले, ख्याल रखनेवाले, रूठने-मनानेवाले, एक-दूसरे के काम में हाथ बँटानेवाले बहुत लोग रहते थे। कभी किसी को काम से कहीं बाहर भी जाना पड़ता था तो वह अपना कार्य किसी अन्य को सौंपकर आराम से चला जाता था। वह भी निश्चिंत रहता था और उधर घर और व्यापार की सारी व्यवस्था चलती रहती थी। धर्मकार्य करने पूजापाठ करने की भी फुरसत रहती थी।

अब सुख से रहने के लिये एकल परिवार बनाया जिसमें केवल चार प्राणी हैं। उनमें से एक प्राणी सुबह उठा, हाथ-मुँह धोया, नाश्ता किया और निकल गया। दूसरा प्राणी भी नौकरी करता था। वह भी उठा। हाथ-मुँह धोया। नाश्ता किया, तैयार होकर वह भी चला गया। दो प्राणी घर में हैं तो उनके लिये नौकर-नौकरानी लगा रखे हैं। वे उन्हें उठाकर, नहला-धुलाकर तैयार कर देंगे। टिफिन (Tiffin) आदि सब पैक (Pack) करके स्कूल (School) भेज करके वे नौकर नौकरानी भी फ्री (Free) होकर चले गये। अब पूरा मकान खाली है। आपके मकान की कोई भी सुरक्षा करनेवाला नहीं है। कभी भी कोई भी आ-जा सकता है।

ऐसे घरों में बच्चे नौकर-नौकरानियों के भरोसे बड़े होते हैं। बड़े-बड़े शहरों में तो ऐसे बच्चों का पालन-पोषण करना एक व्यवसाय बन गया है। माता-पिता कमाते हैं और बच्चों को ऐसे स्थान पर छोड़कर निश्चिंत हो जाते हैं। लेकिन **वह माँ भी क्या माँ है जो अपने नवजात शिशु के लिये दूध भी ना पिला सकी। उन्हें संस्कार भी न दे सकी।** ऐसे बच्चे उन नौकर नौकरानियों के संस्कारों को लिए बड़े होते हैं। उनके लिये जैसी संगति मिलेगी वे वैसा ही अपना जीवन बनायेंगे।

ऐसे बच्चों को क्या उत्तम कुल के संस्कार मिल सकते हैं? नहीं मिल सकते। जैसे-तैसे बड़े हुए तो आपने अपने से भी ज्यादा योग्य बनाने के लिये उन्हें पढ़ने के लिये बाहर भेज दिया। बच्चे अपने माता-पिता से जुड़ ही न पाये। किसी को समय ही नहीं मिला एक दूसरे को समझ पाने का। आपने सपने सँजोए। दिनरात एक करके धन कमाया। बच्चों को पढ़ाया लिखाया। उनकी शादी करा दी। अब सोचने लगे, शेष जीवन उनके साथ सुख से जियेंगे। लेकिन जो अपने ही बच्चों के सच्चे माँ-बाप न बन सके वो बच्चे भी अपने माता-पिता के सच्चे पुत्र कैसे बन सकते हैं? आपने उनको पढ़ने भेजा। कुछ तो पढ़ते-पढ़ते ही पराये हो जाते

हैं और कुछ इतना पढ़ जाते हैं कि अपने माता-पिता को ही पढ़ा देते हैं। अपनों से अलग निश्चिंत होकर जीवन जीने लगे। जब उन्हें आपकी जरूरत थी तब आपने उनको छोड़कर धन को, अपने करियर, अपनी स्वतंत्रता को प्राथमिकता दी थी। और आज जब आपको उनकी जरूरत है तो वे भी अपनी स्वतंत्रता को प्राथमिकता देते हैं।

माता-पिता जिन्होंने अपने बच्चों का पालन-पोषण किया। पढ़ाया-लिखाया। कोई नौकरी करने चला गया। कोई व्यापार करने बाहर निकल गया। अब घर में बचा कौन? जैसे घौंसले में चिरुआ-चिरैया रहते हैं ऐसे ही घर में बचे दो बूढ़े प्राणी अपना जीवन जी रहे हैं।

आजकल माता-पिता यह सोच रखते हैं कि हमारे बच्चे तो पढ़ लिखकर विदेश चले जायें। अगर आपके बेटे की ऑस्ट्रेलिया में नौकरी लग जाये। फिर कभी आपसे मिलने आये। और जब आप उसे लेकर सत्संगति में आते हो, तो कहते हो-आचार्यश्री! ये ऑस्ट्रेलिया से आया है। ऑस्ट्रेलिया से आया है तो कौन सी बड़ी बात हो गई ? अरे गर्व की बात तो तब थी जब ये कहते कि ये भारतदेश में पला बढ़ा और बाहर उच्च शिक्षा भी प्राप्त की किंतु फिर भी अपने देश की संस्कृति, सभ्यता को, अपनी मातृभूमि को छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं गया।

अब बच्चे को ऐसी जगह भेज दिया जहाँ न कोई जैनधर्म के संस्कार, न मंदिर, न अभिषेक पूजा, न स्वाध्याय, न संयम, न तप, न दान, सिर्फ भोग की संस्कृति उच्छृंखलता इसके अलावा कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन आप कितना सीना चौड़ा करके कहते हो कि महाराज श्री! ये ऑस्ट्रेलिया से आये हैं। आज अगर आये हैं तो कल उड़ान भरकर चले भी जायेंगे और आप रह जाओगे अकेले के अकेले ही। यहाँ घर में कोई रोग हो गया, बीमारी हो गई तो कोई पूछनेवाला नहीं देखनेवाला नहीं, कि कम से कम आपके लिये कोई एक गिलास पानी ही पिला दे। इसलिये अपने उत्तम कुल के संस्कारों को बनाकर रखिए। अपने बेटे-बेटियों को खूब शिक्षित करो लेकिन साथ ही अच्छे संस्कार भी दो जिससे वे अपने जैनत्व से विमुख न होने पायें।

जैनधर्म कोई जाति नहीं है जैनधर्म तो आचार-विचार की मर्यादा है। जो उस आचार-विचार का पालन करनेवाला है बस वही जैनी है। और जो उस आचार-विचार से नीचे गिर गया वह जैनत्व से बाहर हो गया। इसलिये उत्तम कुल का मिलना बहुत दुर्लभ है।

आप देखना, कोई आत्मा बंदर की पर्याय में पैदा हुआ है। अब बंदर से आप यह अपेक्षा रखो कि वह ऊधम न मचाये, तो क्या वह बिना ऊधम मचाये रह सकता है? नहीं रह सकता। क्योंकि उसके कुल में ऐसा ही होता आ रहा है। उसके कुल की यही विशेषता है उसने यही संस्कार पाये हैं। उछल कूद किये बिना वे नहीं रह सकते। यदि अपनी पूर्व पर्याय में उस जीव ने नीचगोत्र का बंध न किया होता तो आज उसे इस तिर्यंचकुल में जन्म न लेना पड़ता। उच्च गोत्र, उत्तम कुल में जन्म मिलना बड़ा दुर्लभ है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि उत्तमकुल में जन्म उसे मिलता है जो सुपात्र को भावपूर्वक दान देता है ऐसे जीव को उच्चगोत्र का बंध होता है। श्रेष्ठ कुल की प्राप्ति होती है। **उत्तम कुल में जन्म हुआ लेकिन संस्कार खराब हैं आचरण खराब है हीनकुलों जैसा आचरण है विचार गिरे हुए हैं तो ध्यान रखना, उत्तम कुल में जन्म लेकर भी वह जीव भावों से निम्न-कुलीन ही है। भले ही वह जाति से कुछ भी हो। जाति मायने नहीं रखती आचरण मायने रखता है।**

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कहते हैं कि उत्तम कुलवान् और रूपवान कौन कहलाता है? खूब धन संपत्ति ऐश्वर्य जहाँ हो वह उत्तम कुल हो ही ऐसा नहीं है गोरेपन का नाम उत्तमरूप और कालेपन का नाम कुरूपता नहीं है। यदि कोई सोचता है कि कोई व्यक्ति अच्छा गोरा चिट्टा है तो वह सुंदर है तो यह उसकी भूल है क्योंकि **जिस व्यक्ति का आचरण अच्छा है वह सुरूप है और जो आचरणहीन है वह कुरूप है।** तीन खण्ड का अधिपति प्रतिनारायण पद को प्राप्त रावण कैसा था? बहुत सुंदर था, लेकिन आज उसका पुतला जलाते हैं उसे अच्छा नहीं मानते हैं। क्यों? क्योंकि बाहरी रूप से कोई रूपवान नहीं हो जाता। जिसे अपने स्वरूप का बोध है वही रूपवान है। इसलिये उत्तम रूप का मिलना यानि श्रेष्ठ आचरण से युक्त जीवन का मिलना बहुत दुर्लभ है।

उत्तम लक्षणों की प्राप्ति भी सुपात्रदान का फल समझना चाहिये। क्योंकि उत्तम लक्षणों की प्राप्ति होना भी अत्यंत दुर्लभ है। उत्तम लक्षण वाला व्यक्ति पालने से ही अपने आप नजर आने लग जाता है। हम कहते हैं न कि 'पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं' ज्ञानी जीव जान जाते हैं कि आगे चलकर यह जीव कितना महान बनेगा। **जब रत्नश्रवा और केकसी के यहाँ**

रावण का जन्म हुआ तो जन्म से ही उसके लक्षण भयावह थे। कभी वह अपने होंठ डसने लगता, तो कभी मुट्ठी बाँध लेता, तो कभी भौहें चढ़ाने लगता। केकसी ने अपने पति रत्नश्रवा से कहा- स्वामिन्! अपने पुत्र के लक्षण इतने क्रूर क्यों है? रत्नश्रवा ने कहा- भो प्रिये! चिंतित न होओ। सभी जीव अपने-अपने कर्मों के साथ जन्म लेते हैं। जो जैसे कर्म लेकर आता है उसका जीवन वैसा बनने लग जाता है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी संतान को अच्छे संस्कार दें। उसे अच्छी शिक्षा और अच्छा ज्ञान करायें। बाकी सब तो जीव के कर्म और पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। इसलिये ध्यान रखना! यदि उत्तम लक्षणवान बनना है तो सुपात्रों को दान देना। क्योंकि उत्तम पात्रों को दान देने से जीव को ऐसे पुण्य का संचय होता है कि वह श्रेष्ठ लक्षणों से सम्पन्न होकर श्रेष्ठ कुलवाला बनता है।

जिनागम में एक कहानी आती है कि इसी भरतक्षेत्र में चारणयुगल नाम का एक नगर था। जहाँ पर सुयोधन नाम का राजा अपनी अतिथि नामक रानी के साथ राज्य करता था। उन दोनों की एक अतीव सुंदरी सुलसा नाम की पुत्री थी। जब वह कन्या विवाह योग्य हुई तो उसका स्वयंवर रचाया गया। उस समय अयोध्या का राजा सगर था वह भी सुलसा के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर उसके स्वयंवर में जाने को उद्यत हुआ। किंतु अपने सिर में एक सफेद बाल देखकर सोचा कि इतने सारे नवयौवन से सम्पन्न राजकुमारों के सामने सुलसा मेरा वरण क्यों करेगी? उसकी यह चिंता जब सगर की धाय और मंत्री को पता चली तो उन्होंने कहा-राजन्! आप निश्चिंत हो जाइये। सुलसा निश्चित रूप से आपका ही वरण करेगी।

उस समय पोदनपुर का राजकुमार मधुपिंगल था जो अत्यंत रूपवान और समस्त शुभ लक्षणों से युक्त था। जब सगर के मंत्री को यह पता चला कि उस स्वयंवर में मधुपिंगल भी आ रहा है तो निश्चित रूप से सुलसा उसका ही वरण करेगी। लेकिन ऐसा न हो इसके लिये हमें कोई युक्ति खोजनी चाहिए।

मंत्री ने राजा सगर से कहा-राजन्! आप चिंता न करें। हम सब व्यवस्था कर देंगे। आप तो अब बस स्वयंवर का इंतजार कीजिए। उस मंत्री ने एक ऐसे लक्षणशास्त्र सामुद्रिक शास्त्र की रचना करवायी जिसमें मधुपिंगल राजकुमार में जितने भी शुभ लक्षण थे उन्हें अशुभ लक्षणों के अंतर्गत रखा और राजा सगर में जितने लक्षण थे उन्हें एक श्रेष्ठ वर में होने वाले लक्षणों के

अंतर्गत रखा गया। और लक्षणों का विपरीत व्याख्यान करनेवाला वह ग्रंथ उस मंत्री ने जमीन के अंदर गड़वा दिया। फिर पूरे नगर में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि एक निमित्तज्ञानी के द्वारा ज्ञात हुआ है कि नगर के उपवन के अंदर भूमि में एक अत्यंत प्राचीन सामुद्रिक शास्त्र रखा हुआ है। राजाज्ञा से वह शास्त्र निकाला गया और उस ग्रंथ को अत्यंत प्राचीन और उपयोगी बतलाकर सुलसा के स्वयंवर सभा में प्रस्तुत कर पढ़वाया गया। उस स्वयंवर सभा में राजा सगर, राजकुमार मधुपिंगल, अन्य-अन्य राजकुमार और राजा गण विराजमान थे।

जैसे ही शास्त्र वाचन शुरु हुआ उसमें कहा गया कि जिसकी आँखें सफेद और पीली हों उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिये अन्यथा कन्या की अथवा वर की मृत्यु होना निश्चित है। मधुपिंगल को एहसास हुआ कि जो अवगुण यहाँ कहे जा रहे हैं वे सभी उसमें हैं इसलिये उसने विचार किया कि अब मुझे विवाह नहीं करना अपितु तप धारणकर अपना कल्याण करना है। मधुपिंगल के स्वयंवर सभा से बाहर निकलते ही राजा सगर अत्यंत हर्षितचित्त हो उठा। सुलसा ने भी सब कुछ सुनकर राजा सगर को ही वर के रूप में चुन लिया।

उधर कुमार मधुपिंगल निर्ग्रंथ मुनिराज बनकर धरा पर विचरण करने लगे। एक दिन किसी यथार्थ सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञानी पुरुष की दृष्टि उन मधुपिंगल मुनिराज पर पड़ी। वह उन मुनिराज को देखकर आश्चर्यचकित हो उठा और कहने लगा, ओ हो! इतने श्रेष्ठ लक्षणोंवाला यह ज्ञानी पुरुष और तपस्वी बनकर इसतरह से साधना कर रहा है। जैसे ही मुनि मधुपिंगल के कानों में ये शब्द पड़े कि श्रेष्ठ लक्षणोंवाला तो उसने उस पुरुष को पास बुलाकर पूछा कि आप कौन हैं और हमारे विषय में आप क्या जानते हो?

वह पुरुष बोला-मुनीश्वर! मैं सामुद्रिक शास्त्र का जानकार हूँ और आपमें तो ऐसे श्रेष्ठ लक्षण हैं कि आपका एक-एक लक्षण यह बता रहा है कि आप कोई श्रेष्ठ सम्राट रहे होंगे। अब मुनिराज को समझते देर न लगी कि सुलसा के स्वयंवर में वह सामुद्रिक शास्त्र का पढ़ा जाना एक षड़यंत्र था। वह सामुद्रिक शास्त्र खोटा था।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिन श्रेष्ठ लक्षणों को पाने के लिये हर कोई लालायित रहता है ऐसे श्रेष्ठ लक्षणों की प्राप्ति सुपात्रदान के फल से होती है। श्रेष्ठ लक्षणों वाला पुरुष कहीं भी चला जाये वह सदैव प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। सभी के द्वारा सम्मान को प्राप्त होता है।

सुपात्रदान के फल से जीव ऐसी बुद्धि को प्राप्त होता है जिससे वह हिताहित के विवेक को प्राप्त हो सके। उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर सके। **उत्तम शिक्षा यानि जिसमें नैतिक ज्ञान, व्यवहारिक ज्ञान के साथ-साथ धार्मिक ज्ञान एवं पारिवारिक दायित्वों का बोध हो ऐसी शिक्षा का नाम ही उत्तम शिक्षा है।**

आज वर्तमान में जो शिक्षा चल रही है वह शिक्षा किसी भी विद्यार्थी का नैतिक, धार्मिक, चारित्रिक और व्यवहारिक कोई भी विकास नहीं करती। मैं कभी सोचता हूँ कि जब मैं कॉलेज (College) में पढ़ता था तो मैंने बायलॉजी (Biology) ली थी। उसमें बॉटनी जूलॉजी (Botany & Zoology) में जो विषय थे मैं उन पर विचार करता था कि इनका हमारे वर्तमान जीवन में क्या उपयोग है? इसलिये प्रैक्टीकल के पीरियड (Period of Practical) में अक्सर मैं कम जाता था। इसकी स्लाइड (Slide) बनाओ, उसकी स्लाइड (Slide) बनाओ घंटों परेशान होते रहो। मैंने सोचा, अपना समय खराब करना है।

मैं सोचता हूँ कि इस शिक्षा का व्यवहारिक जीवन में कोई उपयोग नहीं है। ऐसे विषयों का ज्ञान उन बच्चों के लिये विशेष रूप से कराना चाहिये जिन्हें डॉक्टर (Doctor) अथवा वैज्ञानिक बनना हो। जिनकी ऐसे विषयों के प्रति विशेष रुझान हो रुचि हो। ऐसे विद्यार्थियों को यदि वह शिक्षा दी जाये तो वे आगे जाकर बहुत बड़े डॉक्टर (Doctor) अथवा वैज्ञानिक बन सकते हैं।

लेकिन जिन बच्चों की उस ओर कोई रुचि नहीं है उनको जबरन उस तरह की शिक्षा दी जाये तो वह विद्यार्थी उस शिक्षा के द्वारा अपने जीवन में कोई विकास नहीं कर सकता है। जिसकी रुचि गणित में है उसे गणित पढ़ाया जाये तब तो ठीक है लेकिन उसकी रुचि तो है गणित में और आप पढ़ा रहे हो इतिहास। पानीपत की लड़ाई कब हुई? अब उसे पानीपत की लड़ाई से क्या प्रयोजन? कहने का तात्पर्य यह है कि जिसकी जिस विषय में रुचि है आप उस विषय का उसे ज्ञान करायें तो अवश्य ही वह आगे बढ़ेगा।

उत्तम शिक्षा का तात्पर्य यह है कि जिसमें परिवार के दायित्वों की शिक्षा हो। अगर ऐसी शिक्षा आज की पीढ़ी को मिले तो वर्तमान में जिस तरह का वातावरण देखा जा रहा है, जिसके दुष्परिणामों से सारा देश चिंतित है, उसमें काफी हद तक सुधार हो सकता है। आज श्रेष्ठ शिक्षा

का अभाव हो गया और अनेक प्रकार के ऐसे साधन उपलब्ध हो गये जिनके माध्यम से युवा पीढ़ी अपने संस्कारों को नष्ट करती चली जा रही है। आज माता-पिता के पास भी अपने बच्चों के भविष्य के विषय में विवेकपूर्वक सोचने विचारने का समय ही नहीं है। बच्चे अच्छे से अच्छे मोबाइल (Mobile) की अपने माता-पिता के सामने डिमांड (Demand) रखते हैं और माता-पिता भी कहते हैं कि हाँ इसबार अगर तुम अच्छे अंक लाओगे तो हम तुम्हें 20, 000 का मोबाइल (Mobile) दिलायेंगे और अगर टॉप (Top) करोगे तो 30, 000 का अच्छे से अच्छा मोबाइल (Mobile) दिलायेंगे।

बच्चे के अच्छे अंक आये तो दिलवा दिया मोबाइल (Mobile)। अब मोबाइल (Mobile) में तो दुनिया भर के फंक्शन (Function) रहते हैं इंटरनेट (Internet) रहता ही है अब बच्चे क्या कर रहे हैं? रात-रात भर इंटरनेट (Internet) देख रहे हैं। उस पर न जाने कैसी-कैसी चीजें पड़ी हुई हैं जो देखने योग्य नहीं हैं, ऐसी चीजें बच्चों को देखने को मिल रही हैं। कोई रोकने टोकनेवाला नहीं है ऐसी कुसंस्कार बढ़ानेवाली संस्कारहीनता लानेवाली चीजें वे देख रहे हैं। इससे उनके मनो-मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

मोबाइल (Mobile), लैपटॉप (Laptop), इंटरनेट (Internet) ये वो चीजें हैं जिनका अगर सही उपयोग किया जाये तो आप अपने जीवन में विकास कर सकते हैं आगे बढ़ सकते हैं और यदि उनका दुरुपयोग किया तो वर्तमान में जो वातावरण खड़ा हुआ है वह इंटरनेट (Internet) के दुरुपयोग का ही परिणाम है। वे माता-पिता जिनकी बेटी बाहर पढ़ने गयी है उनसे पूछो कि वे कितनी चिंता में जीते हैं। क्यों? क्योंकि उन्हें उसकी असुरक्षा का भय लगा रहता है। कहीं कोई अवांछनीय घटना ना घट जाये। कितना डर भय बना रहता है। अगर आप उनके लिये शुरु से ही अच्छे संस्कार दें। उन्हें भले-बुरे का बोध करायें। वर्तमान परिवेश में वे अपनी रक्षा करते हुए, अपने मान-सम्मान को, अपने कुल की प्रतिष्ठा मर्यादा को कैसे बनाये रखें? ऐसी शिक्षायें आप उन्हें समय-समय पर देते रहें तो संभवतः आपका वह डर काफी हद तक कम हो सकता है।

आपको अपने बच्चों को मोबाइल (Mobile) देना है आप अवश्य दीजिए। मैं मना नहीं कर रहा कि आप उन्हें मोबाइल (Mobile) न दें। आपको आवश्यकता महसूस हो आप

अवश्य दें। समय के अनुसार आपको चलना होगा। मैं ये नहीं कहता कि आप अतीत में जीवन जियें। आप वर्तमान को देखिए और वर्तमान में जीना सीखिए। बच्चों की सुरक्षा का आपको चिंतन करना होगा। आप उन्हें मोबाइल (Mobile) दीजिये लेकिन ऐसा दीजिए जिसमें इंटरनेट (Internet) आदि फंक्शन (Function) न हों। और यदि आप उन्हें सब कुछ प्रदान कर रहे हैं तो आप ही अपनी पीढ़ी को बिगाड़ रहे हैं और दोष दूसरों को दे रहे हैं। इसके लिये आप भले ही दूसरों को दोष दें लेकिन गलती आपकी है। आपने स्वयं उनका भविष्य बिगाड़ा है। माता-पिता बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के निर्माता होते हैं। इसलिये उन्हें अवश्य ही उत्तम शिक्षा देनी चाहिये।

उत्तम स्वभाव, उत्तम चारित्र, सकल सुख का अनुभव, वैभव ये सारी चीजें कैसे प्राप्त होती है? सत्पात्रों को दान देने के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं। आज की इस भौतिकवादी संस्कृति में आज भी कुछ ऐसे बच्चे जन्म ले रहे हैं जिन्होंने पूर्व में दान-पूजा रूप श्रेष्ठ धर्म का पालन किया है। ऐसे जीव आज भी आपके बीच से ही निकल निकलकर आते हैं जिन्हें आप देखते हैं और देखकर कहते हैं कि अहो! इतनी छोटी सी उम्र में आप निकल आये। ये आज के संस्कार नहीं हैं ये तो पूर्व भव के संस्कार हैं क्योंकि आजकल तो संस्कारों की जगह बच्चों को मोबाइल (Mobile) लैपटॉप (Laptop) दिये जाते हैं। बच्चा या तो इंटरनेट (Internet) पर बैठा हुआ है या फेसबुक (Facebook) व्हाट्स ऐप (Whats App) चलाने में लगा हुआ है। और ऐसे वातावरण में से आज अगर कोई श्रेष्ठ मार्ग पर निकल रहा है वो यह निश्चित है कि पूर्व में यह सुपात्र दानादि धर्म का पालन करनेवाला रहा होगा।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव ने हमारे लिये यह उत्तम सलाह दी है कि हमारे घरों में धर्ममय आचरण अवश्य होना चाहिये। जिससे आपके घर में जन्म लेनेवाली संतानें ऐसे उत्तम संस्कारों को पाकर आपकी कुल प्रतिष्ठा को बढ़ानेवाली बनें। आपके कुल को लोकपूजित बनायें। जिन घरों में सत्पात्रों का आगमन बना रहता है उन लोगों को आचरण की शिक्षायें मिलती रहती हैं। विचार करना, आपके घर में मुनिराज अथवा कोई भी सत्पात्र आते हैं तो वे क्या पूछते हैं गुटखा खाते हो? हाँ महाराज! चलो, इसका त्याग करो। मुनिराज ने अगर त्याग करा दिया, तो ये बताइए उन्होंने आपके परिवारजनों की, आपके कुलदीपक की रक्षा की अथवा नहीं? क्योंकि ऐसी चीजों को खानेवाले लोग असाध्य रोगों से ग्रस्त हो अक्सर

अस्पतालों में देखे जाते हैं। परिवार के किसी सदस्य को कैंसर (Cancer) जैसी असाध्य बीमारी यदि हो जाये तो उस परिवार की क्या दशा होती है यह आप भलीभाँति समझ सकते हैं।

संतजन, त्यागीव्रती जब हमारे घर आते हैं तो वे हर किसी को एक छोटे से छोटा नियम कोई संस्कार देने का प्रयास अवश्य करते हैं। उन्हें समझाते हैं कि बेटा! कोई न कोई नियम अपने जीवन में अवश्य होना चाहिये। आप लोग ऐसी-ऐसी वस्तुओं को खाते हैं उनको खाने के क्या-क्या दुष्परिणाम होते हैं यह बतलाते हैं? बच्चों का हृदय निर्मल होता है वे तुरंत गुरु की आज्ञा को मान लेते हैं। हमारे पास शाम को छोटे-छोटे बच्चे आते हैं मैंने उनके लिये पेन (Pen) रख रखे हैं बच्चे आकर रोज नियम लेते हैं, महाराज श्री! आज हमारा एक महीने का आलू का त्याग। इतने समय के लिये प्याज का त्याग। रात्रि भोजन का त्याग। मैगी (Maggy) का, पिज्जा (Pizza) का त्याग। बच्चों को बताना चाहिये कि इन मैगी (Maggy) पिज्जा (Pizza) में सुअर की चर्बी होती है। लेज कंपनी (Lay's Company) के जितने भी प्रोडक्ट्स (Products) हैं उन सभी में सुअर की चर्बी का प्रयोग होता है किंतु अज्ञानता में आप बड़े चाव से उनको खाते हैं खिलाते हैं।

आपको शायद पता नहीं कि आपके हाथ में जो पार्ले जी का बिस्कुट (Biscuit) आता है। उस के पैकेट (Packet) के ऊपर बहुत बारीक अक्षरों में ई. नं. (E.No.) पड़ा होता है। यह ई. नं. (E.No.) एक यूरोपियन पद्धति है। इसी पद्धति को भारत सरकार ने भी स्वीकार किया हुआ है। आपके प्रोडक्ट (Product) पर ग्रीन सिम्बल (Green Symbol) लगा हुआ है। आप ये सोचते हैं कि यह तो शाकाहारी है क्योंकि इस पर तो ग्रीन मार्क (Green Mark) है लेकिन, ध्यान रखना, उस वस्तु में अंडा भी हो सकता है। जानवरों के नाखूनों का पाउडर (Powder) भी हो सकता है। उसमें जानवरों के बालों और चमड़ी का प्रयोग भी किया गया हो ऐसा हो सकता है। और उस पर लगा क्या? ग्रीन मार्क (Green Mark)। क्यों? क्योंकि भारत सरकार ने इन चमड़ी, बाल, नाखून आदि को माँसाहार से बाहर रखा है शाकाहारी कहा है।

अगर उस वस्तु के पैकेट (Packet) पर उसमें यह घटक मिले हुये हैं साफ-साफ लिख दिया जायेगा तो शाकाहारी लोग उसे नहीं खरीदेंगे। इसलिये सरकार ने क्या प्रबंध कर दिया कंपनीज (Companies) को, कि ई. नं. (E.No.) डालें। उन पर ई 7777 या 477 इस तरह

के बहुत सारे नम्बर पड़े रहते हैं जब आप उस ई. नं. (E.No.) के विषय में इंटरनेट (Internet) पर जानकारी प्राप्त करेंगे। और जैसे ही आप उस ई. नं. (E.No.) को डालकर देखेंगे तो उस ई नं. (E.No.) धारक वस्तु में क्या-क्या पड़ा है वह सारे घटक सामने आ जायेंगे। लेकिन समाज में जागरूकता का अभाव होने के कारण आज हम बड़े चाव से बच्चों को ऐसी वस्तुएँ खिलाते हैं। लेज कंपनी के प्रोडक्ट्स (Products of Lay's Company) में सुअर की चर्बी मिली रहने के कारण इन उत्पादों का विरोध पाकिस्तान से शुरु हुआ। तब यह बात अन्य देशों में पहुँची।

इसलिये जब साधुजन आपके नगर में आते हैं वे बच्चों को बताते हैं बेटा! हमको ये चीजें नहीं खानी चाहिये। बच्चे भी उनकी बातों को तुरंत मान लेते हैं और ऐसी अभक्ष्य वस्तुओं का खुशी-खुशी त्याग करने के लिए तैयार हो जाते हैं। कहने लगते हैं महाराज श्री! आज से हमारा मैगी (Maggy) खाने का त्याग। पिज्जा (Pizza) खाने का त्याग। जब वे ऐसे नियम लेकर जाते हैं तो मैं उन्हें प्रोत्साहन स्वरूप एक पेन (Pen) दे देता हूँ। बच्चे खुश हो जाते हैं। किंतु इतना ही नहीं इस माध्यम से उन्हें यह ज्ञान मिला, यह संस्कार मिला कि ये सब गंदी चीजें हैं हमें नहीं खानी चाहिये। ये बातें आप अपने पूरे परिवार में बतायें, अपने परिवार को अच्छा बनायें, स्वयं सँभलें अपने परिवार को सँभालें। सुपात्र दान करके अपने इस भव को भी सुंदर बनायें और परभव भी सँवारें।

उत्तम-कुल-बुद्धि-लक्षण, उत्तम-शिक्षा उत्तम-गुण।
उत्तम रूप-स्वभाव-चरित-सुख-अनुभव-वैभव चिंतन।।
सत्पात्र दानी, हो-हो-2, सब ही फल पाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

पृष्ठ 144 का शेष

जिनागम बाह्य स्वतंत्र चिंतन की मान्यता वाले जैनाभासी संघ

आयमसत्थपुराणं पायच्छित्तं च अण्णहा किं पि।
विरइत्ता मिच्छत्तं पवट्टियं मूढलोएसु।।36।।

उसने मयूरपिच्छि को त्यागकर चमरी गाय के बालों की पिच्छी ग्रहण करके सारे बागड़ प्रान्त में उन्मार्ग का प्रचार किया। स्त्रियों को दीक्षा देने का, क्षुल्लकों को वीरचर्या का, मुनियों को कड़े बालों की पिच्छी रखने का और रात्रि भोजन नामक छठे गुणव्रत का विधान किया। इसके सिवाय उसने अपने, आगम, शास्त्र, पुराण और प्रायश्चित ग्रन्थों को कुछ और ही प्रकार से रचकर मूर्ख लोगों में मिथ्यात्व का प्रचार किया।

5. निष्पिच्छ संघ (माथुर संघ)— आचार्य देवसेन ने दर्शनसार में कहा है—

तत्तो दुसएतीदे महुराए माहुराण गुरुणाहो।
णामेण रामसेणो णिप्पिच्छं वण्णियं तेण।।40।।

काष्ठासंघ के दो सौ वर्ष बाद विक्रम की मृत्यु के 953 वर्ष बाद मथुरा नगरी में माथुर संघ का प्रधान गुरु रामसेन हुआ। उसने निःपिच्छक रहने का उपदेश दिया। उसने पीछी का सर्वथा ही निषेध कर दिया।

सम्मत्तपयडिमिच्छंतं कहियं जं जिणिंदबिंबेसु।
अप्पपरणिट्ठिएसु य ममत्तबुद्धीए परिवसणं।।41।।
एसो मम होउ गुरु अवरो णत्थित्ति चित्तपरियरणं।
सग गुरुकुलाहिमाणो इयरेसु वि मंगकरणं च।।42।।

उसने अपने और पराये प्रतिष्ठित किये हुए जिनबिम्बों की बुद्धि द्वारा न्यूनाधिक भाव से पूजा-वन्दना करने, मेरा गुरु यह है दूसरा नहीं, इस प्रकार के भाव रखने, अपने गुरुकुल (संघ) का अभिमान करने और दूसरे गुरुकुलों (संघों) का मानभंग करने रूप सम्यक्त्वप्रकृति मिथ्यात्व का उपदेश दिया।

अहो! स्वतन्त्र चिंतन को मान्यता देने से ये संघ जैनाभासी कहलाये।

वर्तमान में तेरहपंथ, बीसपंथ, शुद्ध तेरह पंथ, तारण पंथ, साढ़े सोलह पंथ, आदि संज्ञाएँ जो जिनागम बाह्य स्वतंत्र चिंतन की उपज हैं एवं समाज को, श्रमण-श्रावक को आपस में बाँट रही हैं, रागद्वेष करा रही हैं, वास्तव में कितनी घातक हैं, स्वयं चिंतन करें।

हम सब क्यों न '**आगम चक्खु साहु**' अर्थात् साधु की आँख जिनागम है, इस प्रवचन को सार्थक करते हुए जिनागम पंथी बनें।।

'जयदु जिणागम पंथो'

जिनागम पंथ जयवंत हो।

गाथा - 22
(प्रवचन)

●

सुपात्रदान पश्चात् भोजन ही श्रावकचर्या

04.09.2013

भिण्ड

(आहार-दान के बाद बचे शेषान्न का महत्त्व)

जो मुणि-भुत्तवसेसं, भुंजदि सो भुंजदे जिणुद्दिट्ठं।
संसारसारसोक्खं, कमसो णिव्वाणवर सोक्खं।।22।।

*** अन्वयार्थ ***

(**जो**) जो भव्यात्मा (**मुणि-भुत्त-वसेसं**) मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को पवित्र मानकर (**भुंजदि**) खाता है (**सो**) वह (**संसार-सार-सोक्खं**) संसार के सारभूत सुखों को और (**कमसो**) क्रमश: (**णिव्वाण-वर-सोक्खं**) मोक्ष के उत्तम सुख को (**भुंजदे**) भोगता है- ऐसा (**जिणुद्दिट्ठं**) जिनेन्द्र देव ने कहा है।

अर्थ- जो भव्यात्मा, मुनियों के आहारदान के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को पवित्र मानकर खाता है, वह संसार के सारभूत सुखों को और क्रमश: मोक्ष के उत्तम सुखों को भोगता है, ऐसा जिनेन्द्र देव का वचन है। अत: हमें मुनियों के आहार के बाद उसी चौके में भोजन अवश्य करना चाहिये।

प्रतिदिन सुपात्रदान जैन श्रावक का कर्तव्य

सुपात्रदान पश्चात् भोजन श्रावक की चर्या
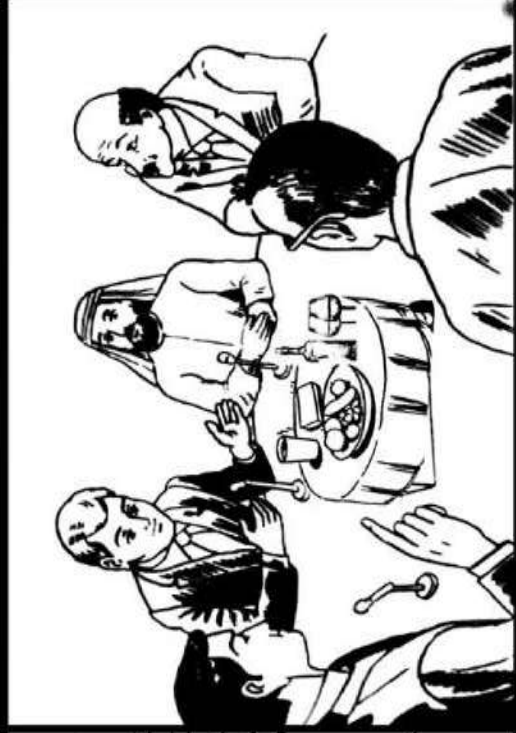
जैन कुलाचार एवं धर्माचार से हीन पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण

32

रयणोदय

जो भवि मुनि को दे आहार, फिर भोजन करता स्वीकार।
सारभूत भवसुख पाता, पाता मुक्ति सौख्य अपार।।
जिनवर वाणी यह, हो-हो-2, कर्तव्य सिखाये रे..
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

हम सभी विगत दिनों से श्री रयणसार जी ग्रंथ के माध्यम से यह समझने का प्रयास कर रहे हैं कि हमारा जीवन कैसा होना चाहिये। क्योंकि जीवन जीने को सभी जी लेते हैं लेकिन उनमें कुछ लोग ऐसे होते हैं जो केवल जीते जी जिंदा रहते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो मरने के बाद भी जिंदा रहते हैं।

जो लोग जीते जी जिंदा कहलाते हैं ऐसे लोग भोजन आश्रित जीवन जीते हैं। और कुछ लोग ऐसे होते हैं जो जीते जी तो जीवित रहते ही हैं मरने के बाद भी जिंदा रहते हैं। वे दुनिया की यादों में बने रहते हैं। सारी दुनिया उन्हें याद करती है उनके आदर्शों के लिये उनकी कर्तव्यनिष्ठा के लिये।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव प्राणिमात्र के लिये कर्तव्यबोध करा रहे हैं। उन्हें जीवन जीने की कला सिखला रहे हैं। वे हमें समझा रहे हैं कि मानव जीवन प्राप्त करने के बाद आपके लिये करने योग्य क्या है? क्योंकि **जिसे यह बोध हो जाता है हमारे कर्तव्य क्या हैं ? हमें क्या करना चाहिये क्या नहीं ? वह इंसान फिर अपने जीवन में कभी मानवीयता से गिर नहीं सकता। वह कभी धर्म के विरुद्ध नहीं जा सकता। वह प्रत्येक जीवात्मा की भलाई एवं आदर्शों के लिये जिया करता है।**

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव हम सभी के लिये उन आदर्शों की, कर्तव्यों की शिक्षा दे रहे हैं। जिन कर्तव्यों के माध्यम से हम अपने जीवन में गौरवान्वित होते हैं आदर्शवान बनते हैं। अपनी संस्कृति से परिचित होते हैं और हमेशा श्रेष्ठ, अच्छे कार्यों को करने में अग्रणी रहते हैं। आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव निर्ग्रंथ मुनिराजों के प्रति हमारे क्या दायित्व होना चाहिये? गाथा के माध्यम से समझाने का प्रयास कर रहे हैं।

जो मुणि भुत्तवसेसं भुञ्जदि सो भुञ्जदे जिणुद्दिट्ठं।
संसार सार सोक्खं कमसो णिव्वाण वर सोक्खं।।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि जो भव्यजीव '**मुणि भुत्तवसेसं**' मुनि के आहार के पश्चात् जो शेष बचा हुआ भोजन है उसको '**भुञ्जदि**' भोगता है स्वीकार करता है '**सो**' वह '**संसारसारसोक्खं**' अर्थात् सारभूत संसार सुख को प्राप्त करता है और '**कमसो**' क्रमशः '**णिव्वाण वर सोक्खं**' निर्वाण रूपी उत्तम सुख को भी '**भुञ्जदे**' भोगता है। ऐसा '**जिणुद्दिदट्ठं**' जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

मनुष्य को अपने जीवन में दो चीजें अवश्य धारण करना चाहिये। (1) कर्तव्य का पालन (2) अपने अधिकारों की रक्षा। ये दो चीजें ऐसी हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने गंतव्य तक

पहुँचने में कामयाब होता है अगर इन दो चीजों के प्रति आदमी का समर्पण नहीं है तो आदमी जी तो सकता है लेकिन एक श्रेष्ठ इंसान एक श्रेष्ठ नागरिक बनकर नहीं जी सकता।

इसके लिये व्यक्ति को कर्तव्यशील होना चाहिये। उसे यह बोध होना चाहिये कि हमारा कर्तव्य क्या है? चाहे नैतिक कर्तव्य हो या धार्मिक, पारिवारिक कर्तव्य हो या सामाजिक, व्यापारिक कर्तव्य हो या राजनैतिक। आदमी को अगर अपने इन कर्तव्यों का ज्ञान हो तो वह कर्तव्यशीलता की ओर बढ़ता चला जाता है। अन्यथा उन कर्तव्यों के प्रति सजग न होने के कारण कर्तव्यविमुख होने लग जाता है।

विचार करना, किसी परिवार का मुखिया अपने कर्तव्यों से विमुख है तो उस परिवार का क्या होगा? वह परिवार निश्चित रूप से बिखर जायेगा। वह परिवार एक प्रतिष्ठित परिवार के रूप में समाज में गौरवान्वित नहीं हो सकता। इसलिये कर्तव्य का बोध होना चाहिये।

यदि व्यक्ति व्यापार करता है तो उसे यह बोध होना चाहिये कि एक व्यापारी के रूप में हमारे क्या-क्या कर्तव्य हैं? यदि वह अपने उन कर्तव्यों का पालन करता है तो निश्चित रूप से सफलताओं को प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस घर में व्यक्ति ने जन्म लिया है उस घर के प्रति, जिन लोगों ने उसे पाला पोसा जिनके बीच रहकर वह बड़ा हुआ उस परिवार के प्रति हमारा क्या दायित्व है? धर्म के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है? जिस समाज के बीच रहकर हम अपना सामाजिक जीवन जीते हैं उस समाज के प्रति हमारे क्या कर्तव्य हैं? जिस भारतदेश में हम रहते हैं उस भारतदेश के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध न हो तो हम कभी भी अपने देश के प्रति समर्पित नहीं कहला सकते। **जो अपने देश के प्रति अपने कर्तव्यों को जानता है वही देशभक्त राष्ट्रभक्त हो सकता है।**

विचार करना बंधुओ! आप जिस प्रदेश में रहते हैं उस प्रदेश को प्रमुख मान करके अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हैं अथवा नहीं? क्या आप यह चिंतन करते है कि हमारे प्रदेश के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है? आप जिस जिले में रहते हैं उस जिले के प्रति और वहाँ रहनेवाले नागरिकों के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है? अगर आपको यह कर्तव्य बोध है तो आप निश्चित रूप से अपने जिले के प्रति समर्पित हो सकते हैं। जिले के भी अंदर आते हैं तो नगरपालिका आती है। नगरपालिका से भी अंदर आते हैं तो समाज आती है। हम समाज में रहते हैं लेकिन अपनी ही समाज के हित के विषय में हम कितना सोचते हैं?

मैं तो यह कहता हूँ कि जो व्यक्ति जिस समाज में जन्मा है उसे अपने समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वहन अवश्य करना चाहिये। क्यों? क्योंकि वह समाज का ऋणी है। व्यक्ति सर्वप्रथम दो जगह जन्म लेता है एक तो परिवार में दूसरा समाज में। उसका जब भी नाम रखा जाता है तो उसके साथ कोई न कोई सामाजिक संबोधन अवश्य जुड़ा होगा। अगर कोई जैन है तो जैन संबोधन अवश्य जुड़ा होगा। कोई शर्मा है तो शर्मा और अगर गुप्ता है तो गुप्ता जुड़ेगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि आपने जिस समाज में जन्म लिया है। आपका ये दायित्व बनता है कि आप उस परिवार एवं समाज के प्रति समर्पित रहने का भाव रखें। अपने कर्तव्य को पहचानें कि हमने जिससमाज में जन्म लिया है उसके प्रति हमारे क्या कर्तव्य बनते हैं?

अक्सर लोग यह सोचने लग जाते हैं कि 'समाज में हैं तो मुखिया, वो जाने और करें।' अरे भाई! अगर कोई समाज का मुखिया है तो उसे मुखिया बनाया किसने? समाज ने बनाया न। और समाज ने अगर मुखिया बनाया है तो आपका यह कर्तव्य है कि आप अपने उस मुखिया का हमेशा साथ देने का प्रयास करें। क्योंकि आपके एकजुट सहयोग से आपका मुखिया आपकी समाज को बहुत आगे ले जा सकेगा।

हाँ, समाज का मुखिया भी देव शास्त्र गुरु का भक्त होना चाहिए। धर्म विमुख एवं कर्तव्य विमुख नहीं होना चाहिए।

फिर यदि आप अपने कर्तव्य से विमुख हो गये और किसी को मुखिया बनाने के बाद निश्चिंत हो गये तो ध्यान रखना, वह व्यक्ति तो समाज को आगे ले जाने का प्रयास करेगा लेकिन समाज सहयोग की भूमिका में नहीं होगी तो यह तो आप जानते हैं कि 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।'

ये जो सूक्तियाँ हैं बहुत महत्व की हैं। ये अनुभवी लोगों के द्वारा उनके अनुभव से प्रगट हुई बातें हैं। समाज का यह दायित्व बनता है कि जिसको आपने मुखिया बनाया है अग्रणी किया है आप हमेशा उसका साथ देने का प्रयास करें। इस विषय में अवश्य चिंतन करना। समाजवालो! यह बात में आप सभी से कह रहा हूँ। आप सभी अपने कर्तव्यों को समझें, पहचानें कि आपका कर्तव्य क्या है? परिवार में रहते हुए आप अपने कर्तव्यों को समझ लेते हो। समाज भी एक परिवार है ऐसा स्वीकारना चाहिये।

समाज भी एक परिवार है और समाज से ऊपर जब आप जाते हो तो नगरपालिका एक परिवार है उससे ऊपर जाते हैं तो जिला एक परिवार है उससे ऊपर जाते हैं तो प्रदेश एक परिवार है और उससे भी ऊपर उठते हैं तो हमारा राष्ट्र हमारा परिवार है।

हमें ऊपर उठना होगा। अपने दायित्वों कर्तव्यों को समझना होगा। और जो व्यक्ति ऐसा कर्तव्यशील होता है वह अपनी समाज को, तहसील को, जिले को, प्रदेश को, देश को हमेशा मजबूतियाँ प्रदान करता है उनको मजबूत बनाता है अपनी भूमिका को समझता है।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि आज हम अपनी समाज को कर्तव्यबोध की शिक्षा दे रहे हैं। क्यों? क्योंकि कहीं न कहीं समाज ने अपने कर्तव्य को भुलाया हुआ है इसलिये मैं कर्तव्यबोध की शिक्षा दे रहा हूँ कि अपने कर्तव्यों को भुलाना मत।

आप सभी को पता है कि भिण्ड नगर से मैं सन् 1997 से परिचित हुआ। इससे पहले मैं भिण्ड नहीं आया था। जब प.पू. आचार्य गुरुदेव श्री 108 विरागसागर जी मुनिराज टीकमगढ़ में ससंघ विराजमान थे तब मैं देखता था कि भिण्ड वाले बस की बस लेकर पहुँचते थे। जिनमें सुखानंद जी, छोटेलाल जी नेता आदि हुआ करते थे। बच्चे वृद्धजन भी होते थे। समाज के प्रबुद्धवर्ग भी पहुँचते थे। निवेदन करते थे गुरुदेव आपको भिण्ड चलना है। उस समय मैं संघ में नया-नया आया था। मैं सोचता था कि भिण्डवालों की पूज्य गुरुदेव के प्रति कितनी श्रद्धा भक्ति है कितना अद्भुत समर्पण है। तभी तो ये लोग अपने सारे कार्य छोड़कर हर 2, 4 दिन में गुरुदेव से निवेदन करने हेतु आते हैं।

पूज्य गुरुदेव सन् 1997 में चातुर्मास के लिये भिण्ड पधारे थे। उस समय उनके साथ मैं भी भिण्ड आया था। उस समय का चातुर्मास चैत्यालय मंदिर में हुआ था। उसके बाद परेट मंदिर के जीर्णोद्धार के लिये अगला चातुर्मास हुआ। उसके बाद विहार का पूरा-पूरा विचार बन गया कि भिण्ड में दो चातुर्मास हो चुके हैं अब तो अन्यत्र विहार करना है। लेकिन इन दो चातुर्मासों से समाज में कुछ जागरुकता आयी और उसे अपनी ऐसी धरोहर का ख्याल आया जिसके विषय में सभी विचारमग्न थे कि हम इसकी रक्षा कैसे करें? तब सभी समाजवालों ने पुनः मिलकर गुरुदेव के चरणों में निवेदन किया कि गुरुदेव हमें आपके मार्गदर्शन की आवश्यकता है आप चले जायेंगे तो हमारी इस धरोहर की रक्षा कौन करेगा? आप कीर्तिस्तंभ के विकास के लिये अपने एक चातुर्मास का समय हमारे लिये और प्रदान कीजिए।

बंधुओ! गुरुदेव ने जागी हुई कर्तव्यशील समाज को देखा। अपने कर्तव्य पर डटने के लिये तैयार होती हुई समाज को देखा। और जहाँ तक मुझे याद है गुरुदेव ने अपने आज तक के दीक्षाकाल में लगातार तीन चातुर्मास कहीं नहीं किये। यह सौभाग्य केवल भिण्डवालों को ही मिला है। गुरुदेव ने तीसरा चातुर्मास भी दे दिया और योग संयोग ऐसा बना कि कीर्तिस्तंभ जो कि अपने लक्ष्य को लेकर धीरे-धीरे बढ़ रहा था आचार्य श्री की प्रेरणा से वह कार्य चार महीनों में ही बहुत ऊँचाईयों को प्राप्त हो गया। कीर्तिस्तंभ का विकास हुआ। श्री पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जैसा महा महोत्सव हुआ।

उस समय तो समाज ने अपना कर्तव्य समझा। लेकिन जैसे ही गुरुदेव का विहार हुआ उसके बाद समाज चिंतित तो रही लेकिन कर्तव्यशील न रही। क्यों? क्योंकि जब आचार्यश्री पुष्पदंतसागर जी का भिण्ड में पूज्य गुरुदेव से मिलन हुआ और उनका बीसवाँ दीक्षा दिवस यहाँ मनाया गया था उस अवसर पर यह बात आयी थी कि यह जो कीर्तिस्तंभ परिसर है वह जैन समाज को हस्तांरित किया जायेगा। उस समय यह चर्चा सामने तो आयी लेकिन चर्चा आने के बाद कौन पीछे रह गया समाज या सरकारी व्यवस्था। यह मैं नहीं कह सकता और न कहना चाहता हूँ लेकिन इस बात के लिये समाज को जरूर आगाह करना चाहता हूँ कि हमें कर्तव्यशील बनने के साथ-साथ अपने अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व भी निर्वाह करना आना चाहिये।

व्यक्ति को अपने अधिकारों की रक्षा के लिये कभी पीछे नहीं रहना चाहिये। हम जानते हैं कि जैन समाज एक शिक्षित और अहिंसक समाज है। अहिंसा में विश्वास रखती है कोई विशेष आंदोलन आदि नहीं करती। जिनधर्म अहिंसा का मार्ग दिखाता है लेकिन आपको अपने अधिकारों से वंचित होकर जीने का मार्ग नहीं दिखाता। जिनधर्म कहता है कि आप अपने अधिकार को माँगने में अग्रणी रहिये। यह आपका कर्तव्य है। नागरिकों के, समाज के, अधिकारों की रक्षा करने के लिये ही शासन-प्रशासन होता है। लेकिन हमें भी जागना होगा अपने कर्तव्यों को समझना होगा और अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिये आगे आना होगा।

भिण्ड में कितनी जैन समाज है? चालीस हजार। यह बहुत बड़ी शक्ति है। आप कमजोर नहीं हैं लेकिन आपको अपने कर्तव्य और अधिकार के प्रति समर्पित रहना होगा। यदि आप

इनके प्रति समर्पित बने रहे तो निश्चित रूप से आपके अधिकार की रक्षा होगी यह मैं आपसे कहता हूँ।

लेकिन आप अपने अधिकार के प्रति जागें। कहने का तात्पर्य इतना है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का परिज्ञान होना चाहिये। अपने अधिकारों के लिये आवाज बुलंद करना भी आना चाहिये। अपनी शक्ति को समझें, उसका सदुपयोग करें। भगवान महावीर ने एक सूत्र दिया **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** परस्पर में एक दूसरे का उपकार करना यह जीव का कर्तव्य है। आपके अधिकारों की जो रक्षा करे आप उसकी सहायता सहयोग करें। लेकिन यदि कदाचित् कोई आपके अधिकारों के प्रति उपेक्षा का भाव रखता हो तो आप उसके प्रति विद्वेष मत करना। लेकिन जो आपके अधिकारों की रक्षा करें आप उसकी रक्षा करें। स्वयं आगे बढ़ें और बढ़ायें।

जीवन में कौन व्यक्ति आगे बढ़ता है? जो व्यक्ति कर्तव्यशील होता है। अपने अधिकारों के लिये जीना जानता है। संघर्ष करना जानता है। वह व्यक्ति हमेशा आगे बढ़ता है। चाहे जैन समाज हो या अन्य कोई, वही समाज आगे बढ़ती है जो अपने कर्तव्य को जानती है और अधिकारों की माँग रखना जानती है। उनके प्रति समर्पित होकर जीना जानती है। कीर्तिस्तंभ जैन समाज तक पहुँचे। नगरपालिका से जो भी यहाँ पर आये हुए हैं मेरा सभी के लिये यही आशीर्वाद है कि आपको भी एक सहयोग की भावना के साथ इस कार्य को अवश्य सम्पन्न करना और कराना चाहिये। जिससे कि जैनसमाज का जो अधिकार है वह उन तक पहुँच सके। आप सभी अपने-अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करें। अपने अधिकारों का सदुपयोग करें। अपने जीवन में मेरी इन तीन बातों का अवश्य ध्यान रखना- कर्तव्य, अधिकार और अपनी शक्ति का परिज्ञान। ठीक है ना। आपको अपने अधिकार की प्राप्ति हो आप सभी के लिये मेरा आशीर्वाद है।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव का हम सभी पर महान उपकार है जो आज भी इस ग्रंथ के माध्यम से हमें हमारे कर्तव्यों की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। एक श्रावक का क्या कर्तव्य होता है? वह किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करता है? भरत की इस भारत भूमि में भारतीय संस्कृति में पहले भौतिकता का इतना बोलबाला नहीं था अपितु आध्यात्मिकता की सुगंध उठा

करती थी। लेकिन समय परिवर्तित हुआ और समय के साथ-साथ आदमी की सोच, दिनचर्या और जीवनशैली में भी परिवर्तन आया। एक समय ऐसा था कि जब इस भारतदेश में सुबह होती थी तो घंटों की आवाज सुनायी देने लग जाती थी। अजान सुनायी देती थी। हर धर्म का अनुयायी अपने आपको सबसे पहले धर्मक्षेत्रों में समर्पित करता था। रामायण में कहा गया-

'प्रातः काल उठकर रघुनाथा, मात पिता गुरु नावहिं माथा।'

राम उठकर सबसे पहले अपने माता पिता और गुरु के लिये नमस्कार करते थे। ये तीन हमारे ऐसे महान आदर्श होते हैं जिनका सम्मान हमें हमेशा बनाकर रखना चाहिये। लेकिन आज हम इन बातों का कितना ध्यान रख पाते हैं? अपने कितने कर्तव्यों का पालन करते हैं? अपनी माँ का, पिता का, गुरुजनों का, कितना मान-सम्मान का भाव बनाकर रख पाते हैं? हमें अपनी आदर्श संस्कृति से दूर नहीं जाना अपितु उसे बहुत आगे ले जाना है।

पहले के समय में प्रातःकाल होते ही मंदिर के घंटों की मांगलिक आवाजें सुनायी देती थीं। ब्रह्ममुहूर्त में घर के बड़े बुजुर्गों के मुख से मांगलिक भक्ति स्तोत्र आदि सुनकर नींद खुल जाती थी। मन प्रफुल्लित हो उठता था। प्रसन्नचित्त हो अपने समस्त कर्तव्यों का पालन होता था। लेकिन अब आपको सुबह होते ही क्या सुनायी देता है? मोबाइल रिंगटोन (Mobile Ringtone)। जिसे सुनते ही आपके सिर में दर्द शुरु हो जाता है। झुँझलाहट पैदा हो जाती है। सुबह होते ही आपका मोबाइल (Mobile) आपको जगाता है। सोचो जरा, एक वह समय था जब माँ सिर पर हाथ फेरकर जगाती थी कि बेटा! उठो, सुबह हो गयी है। माँ के हाथ का वह स्पर्श कितना सुखद होता था। और एक तरफ मोबाइल (Mobile) की हानिकारक तरंगों का संकेत जिस पर आप जागते हो।

आज आदमी अपने माता-पिता, गुरु के संकेतों पर इतना नहीं जी रहा जितना मोबाइल (Mobile) के संकेतों पर जी रहा है। समय की खोज है मोबाइल (Mobile)। हर आदमी को समय के अनुसार भी चलना पड़ता है लेकिन आदमी यदि कर्तव्यों को भूलकर जियेगा तो कभी भी सफलता को प्राप्त नहीं होगा। धन-सम्पदा आदि का मिलना सफलता नहीं कहलाती अपितु आपको कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है आपकी प्रतिष्ठा ही आपकी सफलता की निशानी है। अगर आपका पुण्य होगा तो धन मिलेगा ही मिलेगा लेकिन समाज अथवा अन्य क्षेत्रों में

आपको कितनी प्रतिष्ठा मिली है यह प्रतिष्ठा ही सबसे बड़ा धन है। यह वह धन है जिसे मात्र परिवारजन ही नहीं अपितु समस्त समाज व नगरवासी देखते हैं। यह तुम्हारा वह धन है जिसे कोई लेता नहीं अपितु गुणगान गाता है और प्रेरणा को प्राप्त होता है कि काश हम भी इनकी तरह आदर्शवान बन पाते।

बंधुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि आदर्शवान बनने के लिये हमें अपने कर्तव्यों को समझना होगा। **आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि जो श्रावक मुनिराजों के लिये भोजन देने के बाद फिर जो बचा हुआ भोजन है उसे प्रसाद मानकर स्वीकार करता है वही सच्चा श्रावक है।** आज की पीढ़ी को न देखकर हम अपने बुजुर्ग लोगों को, पुराने लोगों को देख लें। उनके नियम होते थे कि जब तक हम देवदर्शन नहीं कर लेंगे तब तक भोजन पानी ग्रहण नहीं करेंगे। निर्ग्रंथ मुनिराजों की आहार बेला टालकर भोजन करेंगे। नगर में मुनिराज नहीं होते थे तो श्रावक नियम बना लेते थे कि जो आहारचर्या का समय है उसे टालकर ही मैं भोजन करूँगा। भाव होता था कि यह तो निर्ग्रंथ साधकों की चर्या का समय है यदि मैं उन्हें आहार नहीं दे पा रहा हूँ तो मैं उतने समय तक भोजन का त्याग करता हूँ और उन सभी निर्ग्रंथ साधकों की आहारचर्या निर्विघ्न सम्पन्न हो ऐसी भावना करता हूँ। यह उनका अपने गुरुजनों के प्रति समर्पण और आदर का भाव हुआ करता था। वे अपने कर्तव्यों और दायित्वों को समझते थे कि पात्रदान करना और तदुपरांत ही भोजन करना यही श्रावक की चर्या और धर्म है।

आज स्थिति क्या है? सुबह होते ही आप किसे याद करते हैं? माँ को, पिता को, गुरु को या चाय को? सच्ची बात बताना। चाय माँगते हो या नहीं? आप लोग कहते हैं ना बेड टी (Bed Tea) बेड (Bed) माने बिस्तर होता है और बैड (Bad) माने बुरा होता है। तो बेड टी (Bed Tea) का मतलब जो होता हो, सो हो, लेकिन यहाँ तो बैड टी Bad Tea सुनना और मतलब निकालना बुरी चाय। बुरी चाय क्यों? क्योंकि जिसके कारण हम अपने माता, पिता, भगवान, गुरुजनों का सम्मान करना भूल गये। अपनी भारतीय संस्कृति को भूल गये। वह चीज अच्छी कैसे हो सकती है? आपकी दिनचर्या कहाँ से कहाँ पहुँच गयी? बताइए, भगवान महावीर ने चाय पी थी क्या? भगवान राम ने चाय पी थी क्या? नहीं ना। तुम उनके वंशज हो अनुयायी हो फिर तुम उस चाय को क्यों पीते हो?

चाय औषधि है या बीमारी, बताओ क्या है? बोलो ना। औषधि है या बीमारी? जब आदमी को चाय पीने की आदत पड़ जाती है और उसके लिए किसी दिन चाय न मिले तो क्या होता है? जो महिलाओं को ज्यादा होता है। क्या? सिरदर्द।

एक बहन आयी, बोली— महाराज श्री! मैं भी सोचती हूँ कि पर्व के दिनों में एक उपवास कर लिया करुँ लेकिन मैं कर नहीं पाती।

मैंने कहा-क्यों नहीं कर पाते हो?

बोली— आप आशीर्वाद दे दीजिए।

मैंने कहा-मेरा तो आशीर्वाद है। हम तो हर जीवात्मा को धर्ममार्ग पर श्रेष्ठ मार्ग पर बढ़ने का ही आशीर्वाद देते हैं।

कहने लगी—महाराज श्री! मैं उपवास तो करना चाहती हूँ लेकिन मैं चाय पीती हूँ। उपवास वाले दिन मैं चाय पी सकती हूँ क्या? आप बता दीजिए?

हमने कहा-अगर आप चाय पीओगे तो वह उपवास कैसे रह सकता है? जैनों का उपवास तो चारों प्रकार के आहार त्याग रूप रहता है जिसमें चौबीस घंटों में पानी की एक बूँद भी नहीं पी सकते हैं चाय तो बहुत दूर की बात है।

कहने लगी— महाराज श्री! यही सोचकर तो मैं रह जाती हूँ कि अपने उपवासों में तो पानी भी नहीं पी सकते तो फिर चाय पीने की छूट कैसे मिल सकती है?

हमने कहा-चाय को छोड़ दो।

बोली- महाराज श्री! मैं चाय छोड़ दूँगी तो मेरा सिरदर्द करने लग जायेगा।

अब आप ही बताइए चाय औषधि है या बीमारी। चाय एक नशा है बीमारी है। चाय पीनेवाले इतने बीमार लोग होते हैं कि इन्हें भोजन मिले न मिले लेकिन चाय जरूर चाहिये। जैसे कभी कोई बीमारी हो जाती है तो डॉक्टर (Doctor) कहते हैं कि भोजन भले ही मत करना लेकिन औषधि जरूर लेना। ऐसी ही हालत चाय पीनेवालों की हो जाती है भोजन भले ही छोड़ देंगे लेकिन चाय की लत नहीं छोड़ सकते।

यह भारतीय संस्कृति नहीं है यह कुसंस्कृति है जो आपको बीमार बना रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि जबसे यह चाय आयी है तबसे लोगों का धर्म छूट गया है। क्योंकि आज उठते ही सबसे पहले क्या चाहिये? चाय। और पहले के लोग सर्वप्रथम उठकर क्या करते थे? स्नान करते थे। शुद्ध वस्त्र पहनकर हाथों में अष्टद्रव्य का थाल लेकर जिनमंदिर जाते थे। जिनपूजन अर्चन का कर्तव्यपालन करते थे। फिर यदि नगर में कोई साधुसंघ विराजमान होता था तो उनके लिये शुद्ध प्रासुक आहारदान करते थे। आहार कराने के पश्चात् जो शेष भोजन बचता था अत्यंत प्रमुदित चित्त होकर उसे स्वीकार करते थे। यह भारतीय परंपरा है धार्मिक परंपरा है।

भारतीय महिलायें जो होती हैं वे क्या करती हैं? आज की महिलाओं का तो मुझे पता नहीं लेकिन मैंने जो देखा है कि जब तक उनका पति भोजन न कर ले तब तक वे भी भोजन नहीं करती थीं। आप लोगों के बीच खुसुर-फुसुर होने लगी इसका तात्पर्य यह है कि आजकल की महिलाएँ पहले ही भोजन कर लेती हैं। आपकी खुसुर-फुसुर ही इस बात की सूचक है। मैं बचपन में देखता था कि माँ जब तक अपने स्वामी पतिदेव को भोजन नहीं करा देती थी तब तक भूखी बैठी रहती थी। भले ही दोपहर के डेढ़ बज जायें, दो बज जायें तो भी कुछ नहीं लेती थी। बच्चों को भोजन करा दिया, अब किसका इंतजार कर रही हैं? बैठी रहती थी कि पहले पति को भोजन करायेंगे इसके बाद स्वयं स्वीकार करेंगे।

यह परिवार में रहनेवाली भारतीय आर्य नारी का अपना एक कर्तव्य है। लेकिन अब क्या रहता है? अब तो सीधे मोबाइल फोन (Mobile Phone) लगाती हैं आप कहाँ पर हो? कितने बजे तक आओगे? अच्छा इतना लेट (Late) हो जाओगे तो मैं भोजन कर लूँगी और आपके लिये बनाकर रख दूँगी। आप ले लेना क्योंकि फिर हमारा सीरियल (Serial) देखने का समय हो जायेगा। आजकल की महिलायें कहती हैं कि हम अपने आर्य संस्कारों को तो छोड़ सकते हैं लेकिन अपने सीरियल (Serial) नहीं छोड़ सकते। आप आराम से आइए और भोजन करिये।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कहते हैं कि श्रावक का यह कर्तव्य होता है कि वह पहले अपने से पूज्य मुनिराजों को आहार कराये तत्पश्चात् स्वयं भोजन करे। ऐसा वह कर्तव्यशील श्रावक '**संसारसारसोक्खं**' संसार के सारभूत सुखों को प्राप्त होता है और क्रमशः '**णिव्वाणवरसोक्खं**' निर्वाण यानि मुक्ति, मोक्ष के भी सुख को वह प्राप्त कर लेता है।

बंधुओ! अपने धार्मिक कर्तव्यों को भी समझें। पारिवारिक कर्तव्यों को भी समझें। और सामाजिक कर्तव्यों को भी समझें। हमने आपको चार बातें बतायी हैं भूल मत जाना। कल मैं आपसे पूछूँगा। ध्यान रखना। पहली बात यह बताई थी कि समाज अपने कर्तव्य को समझे। आगे बढ़ना है तो समय के साथ आगे बढ़ना होगा। धर्म यह नहीं सिखाता कि आप अपने अधिकारों की माँग न करें। दूसरा मैंने बताया था कि अपने अधिकार के लिये लड़ना सीखे। तीसरा- अपनी शक्ति को पहचानें। चौथी बात क्या कही थी **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** अर्थात् जो आपके अधिकार की रक्षा करें आप उसकी रक्षा अवश्य करें। उसकी सहायता सहयोग करें। लेकिन साथ ही यह भी कहा था कि जो सहयोग न कर पाये उसके प्रति द्वेष का भाव भी न रखें। यही धर्म है जिनधर्म है।

आप सभी के जीवन में सच्ची सीख आये और आप बहुत आगे बढ़ें, खूब अच्छा विकास करें, समृद्ध-सम्पन्न बनें। मेरा आप सभी के लिये यही आशीर्वाद है।

जो भवि मुनि को दे आहार, फिर भोजन करता स्वीकार।
सारभूत भव सुख पाता, पाता मुक्ति सौख्य अपार।।
जिनवर वाणी यह, हो-हो-2, कर्तव्य सिखाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा – 23
(प्रवचन)

सुपात्र की प्रकृति जान आहारदान श्रावक विवेक

05.09.2013

भिण्ड

(आहारदान में विवेक)

सीदुण्ह-वाय-पिउलं, सिलेसिम्मं तह परीसमं वाहिं।
कायकिलेसुववासं, जाणिच्चा दिण्णदे दाणं।।23।।

* अन्वयार्थ *

(**सीदुण्ह**) शीत व उष्णकाल (**वाय-पिउलं-सिलेसिम्मं**) वात-पित्त-कफ (**परीसमं**) परिश्रम (**तह**) तथा (**वाहिं**) व्याधि (**काय-किलेसुववासं**) कायक्लेश, उपवास (**जाणिच्चा**) जानकर (**दाणं**) दान (**दिण्णदे**) दिया जाता है।

अर्थ- शीत या उष्ण (काल-ऋतु) मुनि की प्रकृति-वात, पित्त या कफ- प्रधान है। गमनागमन या ध्यान-आसनों में होने वाले-परिश्रम, रोग, कायक्लेश तप और उपवास आदि का विवेक रखते हुए जानकर दान दिया जाता है।
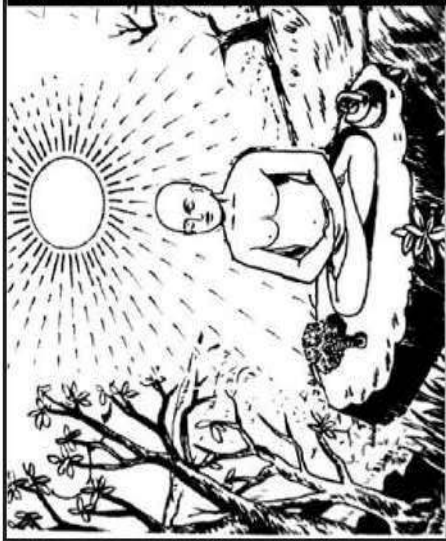
ग्रीष्म ऋतु में तप लीन मुनिराज

वर्षा ऋतु में साधनारत मुनिराज
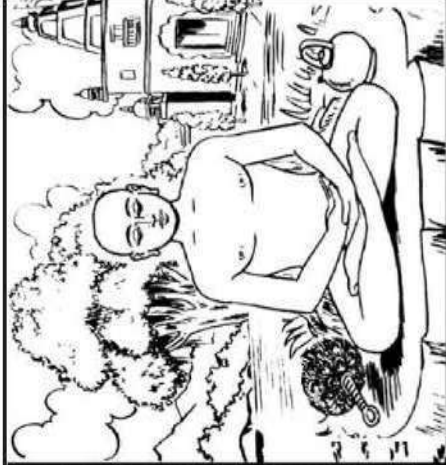
शीतकाल में ध्यान लीन मुनिराज
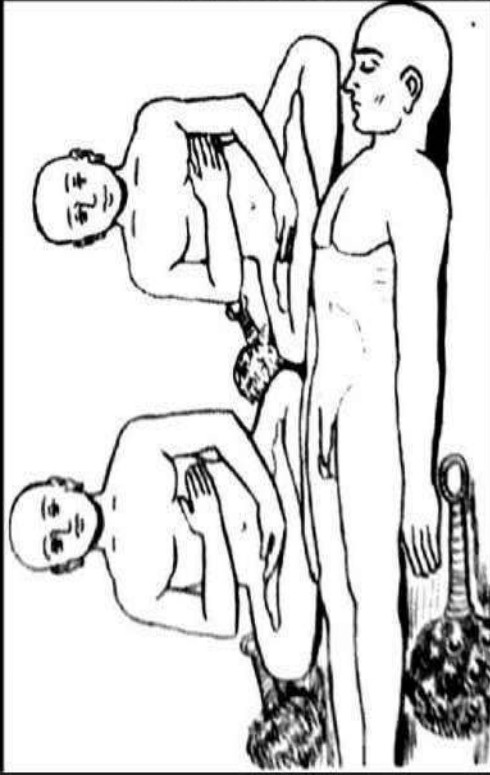
परिषह जयी मुनिराज की वैयावृत्ति करते मुनिजन

मुनिराज की प्रकृति जान ऋतु के अनुसार विवेक पूर्वक आहार देते श्रावक-श्राविकायें

33

रयणोदय

शीत-उष्ण ऋतु पहचानो, वात-पित्त प्रकृति जानो।
परिश्रम व्याधि कायक्लेश, या उपवास किया जानो।।
दानी श्रावक यह, हो-हो-2, सुविवेक लगाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव श्रावकों को कर्तव्य सिखा रहे हैं। यदि आप मुनिराजों की तरह उत्कृष्ट तप धारण नहीं कर सकते । उपवास धारण नहीं कर सकते तो इतना त्याग करना जरूर सीख जाओ कि जब तक मुनिराज का आहार नहीं हो जायेगा मैं भोजन नहीं करूँगा।

इतना त्याग भी आपके जीवन में पापकर्म की निर्जरा का कारण बन जायेगा। श्रावक धर्म का भी पालन होगा। मैंने कहा था कि ऐसे श्रावक होते हैं जब तक मंदिर के दर्शन-पूजन नहीं कर आयेंगे तब तक मुख में पानी भी नहीं डालेंगे। जब तक मुनिराज को आहार नहीं करा देंगे तब तक के लिये हमारा अन्न जल का त्याग रहेगा।

इस तरह श्रावकधर्म का अगर आपने पालन किया तो आपका धर्म भी पलेगा और जीवन भी चलेगा। अगर आप सुबह से कुछ खायेंगे पीयेंगे नहीं तो आपके प्राण ही कंठ में आ जायेंगे ऐसा कुछ नहीं होता। यह तो मात्र अपनी आसक्ति होती है जिस कारण हम एक छोटा सा नियम भी धारण नहीं कर पाते। अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर पाते।

सुबह उठते ही चाय नाश्ता याद आने लगता है। आज क्या खाना है, क्या बनाना है उसकी तैयारियाँ शुरु हो जाती हैं? लेकिन मंदिर जाने की अपने कर्तव्य निभाने की तैयारी हम कितनी कर पाते हैं? जीवन गुजर गया भोजन करते करते, लेकिन भूख कितनी मिटी? यह नहीं कहा जा रहा है कि आप उपवास करिए। शक्ति नहीं है तो मत करिये लेकिन इतना तो कर ही सकते हैं कि जब तक मुनिराज आहार नहीं लेंगे तब तक हम भोजन ग्रहण नहीं करेंगे। उस समय यह भावना करेंगे कि मुनिराजों के निरंतराय आहार हो जावें। इतना सा त्याग आपको दुर्गति में जाने से बचा सकता है। इसतरह धर्म का पालन भी हो जाएगा और सच्चे देवशास्त्रगुरु के प्रति भक्ति प्रगट करने का अवसर भी मिल जायेगा। जो श्रावक अतिथि संविभाग व्रत का धारी होता है वह नितप्रति अपने कर्तव्य का पालन करके ही भोजन ग्रहण करता है। कदाचित् आहार न भी दे पाये तो आहार की बेला को टालकर ही भोजन ग्रहण करता है। यथा— छहढाला ग्रंथ में श्री दौलतराम जी एक व्रती श्रावक के स्वरूप के विषय में कहते हैं-

'मुनि को भोजन देय फेर निज करहिं आहारा'

हमने सुना था, एक ब्रह्मचारी जी थे। वे नित्य अपना भोजन बनाते और द्वार के बाहर खड़े हो जाते थे। मन में यही भावना भाते थे कि कोई मुनिराज आयें तो पड़गाहन कर लेंगे। और उन्हें आहार करवा कर फिर स्वयं भोजन लेंगे। एक बार उनके नगर में आचार्य भगवन् तपस्वी सम्राट श्री सन्मतिसागर जी का संघ पहुँचा। ब्रह्मचारी जी रोज अपने द्वार पर पड़गाहन के लिये खड़े होते कि महाराजश्री हमारे यहाँ भी आयें, हमारा भी सौभाग्य जगे। ऐसे तपस्वी साधक

को हम भी आहार प्रदान करें। यह हमारा बड़ा पुण्य होगा। आचार्य महाराज भी आते लेकिन विधि न मिल पाने के कारण निकल जाते। एक दिन ब्रह्मचारी जी ने भोजन बनाया। चार रोटियाँ तैयार कीं और 2-4 टमाटरों का भुर्ता बना कर रख दिया। उन्होंने सोचा कि आज पड़गाहन न करके भोजन कर लेते हैं उधर महाराज ने भी नियम ले लिया कि आज ब्रह्मचारी जी के चौके में ही जायेंगे। कभी-कभी साधुजन भी ऐसे नियम ले लेते हैं।

आचार्य महाराज विधि लेकर निकले लेकिन ब्रह्मचारी जी पड़गाहन करने नहीं खड़े थे। अब महाराज श्री सब चौके छोड़ते हुये ब्रह्मचारी जी के द्वार तक जायें और वापिस लौट आयें। लोगों को लगा कि महाराज श्री यहाँ तक आते हैं किन्तु ब्रह्मचारी जी आज दिखायी नहीं दे रहे हैं। उन लोगों ने अंदर जाकर ब्रह्मचारी जी से कहा-भैया! आचार्य श्री की विधि नहीं मिल रही है आप देखो जरा। ब्रह्मचारी जी ने अपने हाथ भी नहीं धो पाये और ऐसे ही पहुँच गये पड़गाहन करने। देखा, सामने से महाराज श्री आ रहे थे। ब्रह्मचारी जी पड़गाहन करने लगे। महाराज श्री खड़े हो गये। अरे! आज तो भाग्य खुल गया। ऐसे प्रमुदित भाव से उन्होंने महाराज श्री की परिक्रमा लगायी और उन्हें बड़े आनंदपूर्वक चौके में ले जाने लगे।

हे स्वामिन्! मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि आहार जल शुद्ध है मम् गृह में प्रवेश करिये। जब गृह प्रवेश हो गया तो विनयपूर्वक बोले- हे स्वामिन्! भोजनशाला में प्रवेश कीजिए। लेकिन कभी-कभी श्रावक गृहप्रवेश के समय भोजनशाला में प्रवेश कीजिए ऐसा बोलने लगते हैं जबकि भोजनशाला तो अभी आई ही नहीं। अभी तो घर में आने की अनुमति दीजिये। जैसे ही आचार्यश्री भोजनशाला में पहुँचे, उन्होंने उच्चासन दिया और पूरी नवधा भक्ति करने के बाद थाली दिखायी। श्रावक मुनिराज को थाली यह बताने के लिये नहीं दिखाता कि देखिए हमने क्या-क्या बनाया है अपितु इसलिये दिखता है कि आपका किस चीज का त्याग है उसका पता चल जाये।

ब्रह्मचारी जी ने थाली दिखायी। आचार्य महाराज ने देखा कि चार रोटियाँ और चार टमाटर रखे हैं। उन्होंने कहा ठीक है। अब ब्रह्मचारी जी को ऐसा लगे कि हे भगवान्! हमारे पुण्य का उदय भी है जो तपस्वी सम्राट गुरुदेव हमारे चौके में आये और आज हमने इतना ही बनाया है और कुछ बना नहीं पाये। लेकिन आचार्य महाराज प्रसन्न थे, यही तो साधु की साधना है

कि वह अपने आप की परीक्षा करता है। **चौके में श्रावक के थाली दिखाने के बाद यदि साधु के मन में यह भाव आये कि अरे इस श्रावक ने तो कुछ भी नहीं बनाया तो समझ लेना वह साधु उस समय साधु नहीं रहा स्वादु हो गया है। साधु चौके में जाने के बाद कभी क्रोध नहीं करता कि कैसा श्रावक है कुछ भी नहीं बनाया। साधु तो समता स्वभावी होता है। जो होता है उसे शांत और सहज भाव से स्वीकार करता है।**

तपस्वी सम्राट गुरुदेव ने देखा कि वाह! चार रोटी और चार टमाटर हैं आज तो आनंद आ गया। उन्होंने जैसे ही आहार लेना शुरु किया तो मात्र दो रोटी और दो टमाटर लिये और आहार करके अपनी अंजली को खोल दिया। ब्रह्मचारी जी कहते रह गये महाराजश्री! और लीजिये और लीजिये लेकिन साधु विवेकी होता है वह संयम की वृद्धि के लिये क्षुधा को तृप्त करता है साथ ही श्रावक का भी ध्यान रखता है। ऐसा नहीं करता कि जितना भी श्रावक ने बनाया वह सब खा-पीकर आ गये। नहीं भईया, साधु को इतना विवेकी होना चाहिये कि श्रावक ने जो बनाया है उसमें से थोड़ा सा लेवे और शेष श्रावक के लिये छोड़ दे, अन्यथा कुछ नहीं बचेगा तो श्रावक क्या खायेगा?

आचार्य महाराज ने ऐसा ही किया। थोड़ा सा आहार लिया और शेष ब्रह्मचारी जी के लिये छोड़ दिया। ब्रह्मचारी जी बोले— महाराज श्री! आज तो आपका आहार पूर्ण रूप से नहीं हो पाया। आपने थोड़ा सा आहार लिया और शेष छोड़ दिया। आचार्य महाराज बोले- बेटा! मैंने तो अपना धर्म निभाया है। ब्रह्मचारी जी बोले-महाराज श्री! आज मेरा ऐसा पुण्योदय होगा मैंने सोचा ही न था। महाराज ने कहा-बेटा! आज मैंने नियम ले लिया था कि जहाँ तुम खड़े होगे आज मैं वहीं जाऊँगा।

भिण्ड की ही घटना है विश्वकीर्ति सागर जी महाराज थे। उस समय संघ चैत्यालय मंदिर में ही विराजमान था। एक बालिका दर्शन के लिये आती और हर गुरुवार के दिन एक श्रीफल लाकर चढ़ा देती। हमने उससे पूछा—बेटा! तुम हर गुरुवार को यहाँ श्रीफल क्यों चढ़ाती हो। वह छोटी सी बालिका बोली—महाराज श्री! आप हमारे गुरु हैं इसलिये गुरुवार के दिन मैं आपको श्रीफल चढ़ाती हूँ। हम और विश्वकीर्तिसागरजी महाराज एक ही कक्ष में रहते थे। एक दिन विश्वकीर्ति सागर जी महाराज ने नियम ले लिया कि यदि वह बालिका आज पड़गाहन

करेगी तो मैं जाऊँगा अन्यथा नहीं। वह बालिका रोज पड़गाहन करती थी किन्तु योग- संयोग ऐसा बना कि उसी दिन वह बालिका पड़गाहन करने नहीं आयी। अब महाराज निकले लेकिन बालिका को न देखकर वापस आ गये।

अगले दिन मुनिराज फिर निकले तो वह बालिका पड़गाहन कर रही थी। मुनिराज की विधि मिल गयी। महाराज का आहार हो गया। जब शाम को वह बालिका आयी तो महाराज ने पूछा—बेटा! तुम कल कहाँ चले गये थे ? हमने तुम्हारा ही नियम लिया था। उस बालिका ने कहा- महाराज श्री! हम ग्वालियर चले गये थे। तो कभी-कभी साधुजन ऐसे भी नियम ले लेते हैं।

यहाँ आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव कह रहे हैं कि श्रावक को विवेकी होना चाहिये। पहले गाथा देख लेते हैं-

सीदुण्ह वायपिउलं सिलेसिम्मं तह परीसमं-वाहिं।
कायकिलेसुववासं जाणिच्चा दिण्णदे दाणं।। 23।।

निर्ग्रंथ मुनिराज तप साधना करते हैं। श्रावक उनकी साधना में साधक बनता है। उनकी साधना निर्विघ्न हो इसकी पूरी जिम्मेदारी श्रावक की रहती है। इसलिये वह आहारदान करता है लेकिन वह किस विधि से आहारदान करे? तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि विवेकपूर्वक् दान करे। उसे यह पता होना चाहिये कि **'सीदुण्ह'** यह शीतकाल चल रहा है या उष्णकाल। **'वायपिउलं सिलेसिम्मं'** अर्थात् जो मुनिराज हैं उनके शरीर की प्रकृति कैसी है? वात, पित्त अथवा कफ प्रकृति में से कौन सी प्रकृति वाले हैं। **'तह परीसमंवाहिं'** और मुनिराज ने अधिक परिश्रम तो नहीं किया है विहार करते हुए तो नहीं आये हैं अथवा उन्होंने कोई ध्यान आसन आदि लगाकर तपस्या तो नहीं की है। **'वाहिं'** उन्हें कोई व्याधि तो नहीं है। **'कायकिलेसुववासं'** मुनिराज ने कोई कायक्लेश नाम का तप तो नहीं किया है उपवास आदि तो नहीं किया है। **'जाणिच्चा'** जो किया है उसे जानकर। **'दाणं दिण्णदे'** दान देना चाहिये। दान-देनेवाले श्रावक को इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिये।

इसप्रकार उत्तम पात्र मुनिराज या अन्य भी मध्यम-जघन्य पात्रों की प्रकृति में अर्थात् वात-पित्त-कफ में से किसकी प्रधानता है? अभी कौन सा काल/ऋतु चल रही है- शीत या

उष्ण? मुनिराज ने कायोत्सर्ग या अन्य आसनों से वैय्यावृत्ति में या गमनागमन क्रिया में कितना श्रम किया है? पात्र के ज्वर, संग्रहणी आदि कोई व्याधि की पीड़ा तो नहीं है? कायक्लेश व उपवास की अधिकता से उनके कंठ में शुष्कता तो नहीं है? इत्यादि समस्त बातों का विवेक रखते हुए पात्र की प्रकृति और ऋतु के अनुकूल संयमवर्धक आहार देना चाहिये।

यदि शीतकाल सर्दी का मौसम चल रहा है और आपने मुनिराज को आहारदान में शीत बढ़ानेवाले पदार्थ दे दिये तो बताइये वह आहार उनके अनुकूल होगा या प्रतिकूल? मुनिराज की ऐसे आहारदान से साधना बढ़ेगी या उसमें विघ्न आयेगा? उष्णकाल चल रहा है गर्मी की ऋतु में कैसा आहार हमें देना चाहिये इसका विचार विवेक श्रावक को अवश्य होना चाहिये। काल और प्रकृति के अनुकूल आहार यदि मुनिराज को दिया जायेगा तो उनकी साधना में निरंतर वृद्धि होती जायेगी अन्यथा प्रतिकूल आहारदान से निश्चित रूप से उनकी साधना में विघ्न उत्पन्न हो जायेंगे।

श्रावक को इस बात का भी बोध होना चाहिये कि मुनिराज की प्रकृति कैसी है? किसी की वात प्रकृति होती है तो किसी की पित्त अथवा कफ प्रकृति होती है। अब मान लीजिये किसी मुनिराज की पित्त प्रकृति है और गर्मी का काल चल रहा है। आपने बिना विचारे पित्त बढ़ानेवाला आहार दे दिया, तो क्या होगा? हो सकता है मुनिराज को तुरंत वमन हो जाये। उनका पित्त अस्थिर हो जाये। आपके दान ने उनके संयम में वृद्धि की अथवा विघ्न खड़ा कर दिया? इसलिये श्रावक को चाहिये कि वह इन सभी बातों का ध्यान रखे और विवेकी बनकर पहले यह पता लगाये कि मुनिराज की प्रकृति कैसी है? फिर प्रकृति के अनुसार आहारदान दे क्योंकि वे 24 घंटे में एक ही बार आहार करते हैं और उसमें भी अगर श्रावक ने अनुकूल आहार नहीं दिया तो हो सकता है उनके लिये परेशानी उत्पन्न हो जाये। उनकी साधना में विघ्न आ जाये। इसलिये काल और प्रकृति को ध्यान में रखकर विवेकपूर्वक् अनुकूल आहारदान ही पात्र की संयमवृद्धि के लिये श्रावक को देना चाहिये।

'परिसमं' मुनिराज ने कोई परिश्रम गमनागमन किया हो तो ऐसा आहारदान दें जिससे उनकी परिश्रमजन्य पीड़ा दूर हो जाये। **'वाहिं'** मुनिराज के लिये कोई रोग बीमारी है। मान लीजिये किन्हीं मुनिराज का ब्लडप्रैशर (Blood Pressure) बढ़ता है। वैद्यजी ने उन्हें नमक आदि लेने से मना कर रखा है अब आप उनके लिये नमक चलायेंगे तो क्या होगा? हो सकता

है महाराज श्री भी मना करें तो क्या आपको चलाना चाहिये? नहीं। आपको विवेक का परिचय देते हुए अनुकूल आहार ही कराना चाहिये जिससे उनकी व्याधि बढ़े नहीं।

कई बार ऐसा भी हो जाता है। हम चंदेरी में थे उस समय एक महाराज का स्वास्थ्य थोड़ा बिगड़ गया। वैद्यजी ने कहा कि इनके लिये इस-इस वस्तु का परहेज करना है। हमने कहा ठीक है लेकिन महिलायें तो मातृत्वभाव से भक्तिभाव से भरी होती हैं। चौके में कहने लगीं **ऐ महाराज! अब लै तो लो चौबीस घण्टा में एक ही बार तो आहार लेत हैंगे। थोड़े में थोड़े ही कछु बिगड़ जायेगो।** वो आहारदान में उनके लिये चुपचाप वह वस्तु दे देती। बाद में जब हमें पता चला तो हमने कहा कि भैया पहले उनका रोग ठीक हो जाये फिर आप खूब अच्छे से सब चला लेना। लेकिन जब तक रोग लगा रहेगा वे भी परेशान होते रहेंगे और फिर हमारे साथ-साथ पूरा संघ उनकी व्यवस्था में लगता है। उनकी स्वाध्याय आदि की क्रियायें छूटने लगती हैं। इसलिये अच्छा है कि जब तक उनका रोग ठीक नहीं हो जाता तब तक आप विवेकपूर्ण वही आहार दीजिये जो उनके लिए देना चाहिये।

श्रावक को इस विषय मे थोड़ी कठोरता भी बरतनी पड़े तो बरतना चाहिये। हम कहते हैं कि आपका बेटा हो, उसके लिए कोई बीमारी हो जाये और डॉक्टर (Doctor) कहे कि इनके लिये फलानी वस्तु नहीं देनी है तो क्या आप देंगे? भले ही वह उस वस्तु के लिये कितना भी रोए, जिद करे फिर भी आप यही कहेंगे कि बेटा! अभी नहीं। पहले आप जल्दी से ठीक हो जाओ फिर हम आपको अच्छे से अच्छा बनाकर खिलायेंगे। इसलिये अभी अच्छे मन से ये खालो और जल्दी से ठीक हो जाओ। ऐसे प्रेम से समझाते हो न, इसीतरह साधुओं के लिये उनकी रोग बीमारी को ध्यान में रखकर विवेकपूर्वक ही आहार देना चाहिये।

मुनिराज ने कायक्लेश तप किया, उसके बाद उनके लिये कैसा आहार देना है इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान श्रावक को रखना चाहिये। आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव श्रावकों को संबोधित करते हुए कह रहे हैं कि मुनियों को आहार देते समय विवेक धारण करें। ऐसा भाव न रखें कि यह तो मैंने बड़े भावों से बनाया है ये तो मैं अवश्य ही चलाऊँगी। अरे महाराज श्री! थोड़ा सा ले लीजिये, बहुत फायदा करता, इससे कुछ नहीं होगा। आप जबरदस्ती दे देंगे लेकिन इससे उनका स्वास्थ्य भी खराब हो सकता है। आप अपनी वस्तु देने में भले ही सफल हो जायें

लेकिन आपका वह दान निष्फल ही जायेगा क्योंकि ऐसे आहार से उनके संयम में वृद्धि नहीं हुई अपितु विघ्न ही उत्पन्न हो गया। इसलिये आपका कर्तव्य है कि उनके लिये सावधानी से विचार विवेकपूर्वक आहार करायें।

आपको इस बात का भी ज्ञान होना चाहिये कि किस वस्तु के ऊपर क्या चीज चलनी चाहिये और क्या नहीं। जैसे, कई बार क्या होता है मुनिराज ने फल लिये और श्रावक जल चलाने के लिये तैयार हो गये। अब फल के ऊपर यदि जल देंगे तो निश्चित रूप से उनके स्वास्थ्य में अंतर आयेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रावक को इतना विवेक रखना चाहिये कि कौन सी वस्तु चली है और उसके साथ क्या चलाना योग्य है और क्या अयोग्य है इन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

अगर आप विवेकपूर्वक दान देंगे तो आपका वह दान सफल होगा। मुनिराज की साधना भी निर्विघ्न सम्पन्न होगी। अगर उनकी साधना निर्विघ्न होगी तो उनके माध्यम से आपके लिये भी धर्मध्यान करने का अवसर मिलेगा। यदि उनका स्वास्थ्य खराब होगा तो उनकी साधना और आपके धर्मध्यान में भी विघ्न आयेगा। इसलिये श्रावक को चाहिये कि वह काल, प्रकृति और अनुकूलता को देखते हुए पात्रजनों के लिये दान दे।

शीत-उष्ण ऋतु पहचानो, वात-पित्त प्रकृति जानो।
परिश्रम व्याधि कायक्लेश या उपवास किया जानो।।
दानी श्रावक यह, हो-हो-2, सुविवेक लगाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

गाथा - 24
(प्रवचन)

●

मोबाइल-लैपटॉप साधु उपकरण नहीं

06.09.2013

भिण्ड

(आहारदान के लिए देय वस्तु में विवेक)

हिद-मिद-मण्णं पाणं, णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं।
सयणासणमुवयरणं, जाणिच्चा देदि मोक्खमग्गरदो।। 24।।

* अन्वयार्थ *

(**मोक्ख-मग्ग-रदो**) मोक्षमार्ग में रत व्यक्ति (**हिदमिदं**) हितकर, मित (**अण्णं**) अन्न को (**पाणं**) पेय पदार्थों को (**णिरवज्जोसहिं**) निर्दोष औषधि को (**णिराउलं**) निराकुल (**ठाणं**) स्थान को (**सयणा-सणं-उवयरणं**) शयन और आसन/बैठने के उपकरण/ (**जणिच्चा**) आवश्यकता जानकर (**देदि**) देता है।

अर्थ- मोक्षमार्ग में अनुरक्त जीव, सुपात्रों में हितकारी और मित भोजन-पानी-पेय पदार्थों, निर्दोष औषधि, निराकुल स्थान, शयनोपकरण (चटाई, पाटा आदि) और आसनोपकरण [आसन पाटा आदि] आदि उनकी आवश्यकता को जानकर देता है।

संयमोपकरण पिच्छी भेंट करता श्रावक।
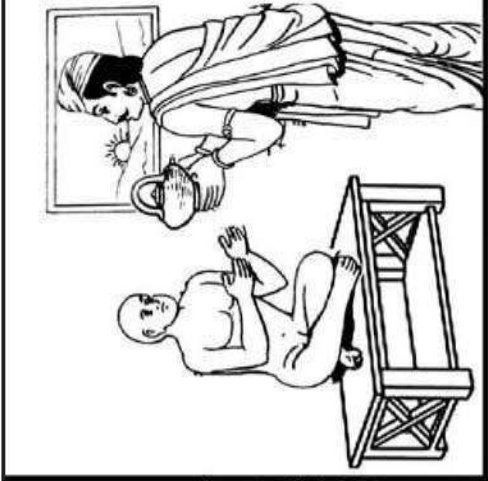
शौचोपकरण कमण्डलु भेंट करता श्रावक।

ज्ञानोपकरण शास्त्र भेंट करता श्रावक ।
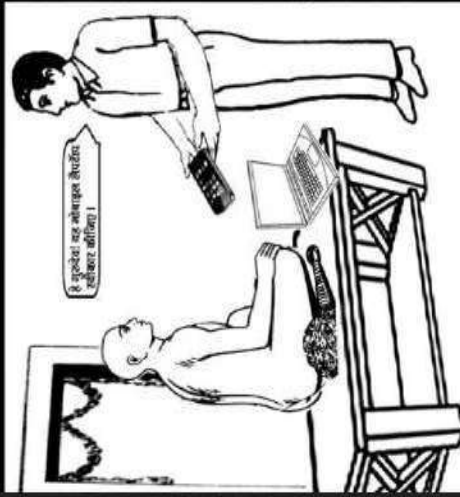
भो भव्य ! मोबाइल,लैपटाप साधु योग्य उपकरण नहीं हैं।
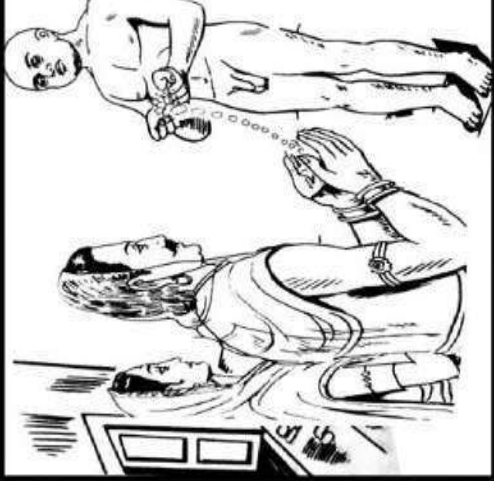
श्रावक के हाथों में अंजुली से वस्तु गिराना साधु की अयुक्तचर्या।

अहो!निज आत्मज्ञान बिना दीक्षित साधु अयोग्य चर्या करते हुये।

34

रयणोदय

मोक्षमार्ग अनुरागी जो, पाता मुनिजन त्यागी को।
हित मित अन्नपान औषधि, देता है बड़भागी वो।।
स्थान शयनासन, हो-हो-2, उपकरण दिलाये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

जब तक यह पंचमकाल है तब तक मुनिधर्म और श्रावकधर्म अनवरत रूप से चलता रहेगा। यदि मुनिधर्म है तो यह इस बात का सूचक है कि श्रावकधर्म भी है। कदाचित् मुनिधर्म के अभाव में श्रावक धर्म की कल्पना तो की जा सकती है लेकिन श्रावकधर्म के अभाव में मुनिधर्म की कल्पना करना बहुत मुश्किल है। मुनिधर्म की साधकता में श्रावकों की अहम

भूमिका होती है। श्रावक जब मुनिधर्म पालन में सहयोगी बनता है तब मुनिधर्म निखरता हुआ उर्ध्वमान होता चला जाता है। यदि श्रावक सहयोगी न बने तो मुनिधर्म इस पंचमकाल में बाधा को प्राप्त हो जायेगा।

आज हमें मुनिधर्म दिखायी दे रहा है तो यह बात पक्की है कि वर्तमान में श्रावकधर्म भी है। मोक्षमार्ग की साधना श्रावक के सहयोग से ही संपादित होती है। जो श्रावक निर्ग्रंथ मुनिमार्ग मोक्षमार्ग इनका अनुरागी होता है वह अपने कर्तव्यों का पालन अवश्य करता है। श्रावक यह भावना भाता है कि मैं साक्षात् मोक्षमार्ग पर अभी नहीं चल पा रहा हूँ लेकिन जो मोक्षमार्गी हैं मैं उनका सहयोग करके श्रावकधर्म का पालन तो कर ही सकता हूँ। इसतरह मुनिधर्म भी चलता रहेगा और हमारा श्रावकधर्म भी पलता रहेगा। फिर जिसे जिसकी चाह होती है वह उसकी सेवा-वैयावृत्ति अवश्य करता है उसकी शरण में अवश्य जाता है।

जैसे किसी व्यक्ति को राजनीति में रुचि हो, राजनेता बनना चाहता हो, तो ऐसा नहीं होता कि वह सोचते विचारते ही राजनेता बन जाता हो। हमें राजनीति में जाना है इतना सोच लेने मात्र से वह राष्ट्रीय नेता नहीं बन जाता है। राष्ट्रीय नेता का दर्जा प्राप्त करने के लिये नेताओं के साथ रहकर पहले नेतागिरि सीखनी पड़ती है फिर धीरे-धीरे वह अपने नेतृत्व को बढ़ाता चला जाता है और एक समय ऐसा आता है कि वह भी फिर एक दिन राष्ट्रीय नेता बन जाता है। ऐसे ही एक श्रावक होता है जो मोक्षमार्ग का नेता बनना चाहता है। वह भावना भाता है-

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्वानां, वन्दे तद् गुण लब्धये।।

मोक्षमार्गस्य नेत्तारं-जो मोक्षमार्ग के नेता हैं। अब जो मोक्षमार्ग के नेता हैं वे तो हैं ही। लेकिन तुमको भी मोक्षमार्ग का नेता बनना है कि नहीं? यदि धर्मात्मा जीव होगा तो अंदर से यही आवाज आयेगी कि मैं भी मोक्षमार्ग का नेता बनना चाहता हूँ। यदि मोक्षमार्ग का नेता बनना है तो मोक्षमार्ग के नेता की शरण में भी जाना पड़ेगा। उनकी आज्ञा का पालन करना ही होगा। उनकी सेवा वैयावृत्ति करनी होगी।

संसार में कोई भी व्यक्ति अकारण ही कोई कार्य नहीं करता। उसके पीछे कोई न कोई प्रयोजन अवश्य ही होता है। उसका कोई न कोई व्यक्तिगत स्वार्थ छिपा रहता है। अगर वह लौकिक जीवन में है तो लौकिक स्वार्थ होगा और यदि पारलौकिक जीवन में है तो उसका पारलौकिक स्वार्थ होगा, लेकिन स्वार्थ अवश्य होगा।

यदि आज निर्ग्रंथ मुनिराज अरिहंतों की उपासना कर रहे हैं तो अकारण नहीं कर रहे हैं वे अरिहंत जैसी अवस्था को प्राप्त होना चाहते हैं इसलिये अरिहंतों की भक्ति आराधना करते हैं। कहते हैं कि तीर्थंकर कभी भी पाँचों परमेष्ठियों को नमस्कार नहीं करते। लेकिन जब केशलौंच करते हैं तब सिद्धों को नमस्कार करते हैं। 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर दीक्षा ग्रहण करते हैं। वे साधु आदि अवस्थाओं को नमस्कार नहीं करते क्योंकि अब सिद्धत्व की प्राप्ति ही उनका एकमात्र प्रयोजन है। उन्हें सिद्ध बनना है इसलिये वे सिद्धों को नमस्कार करते हैं। हमको भी सिद्ध बनना है लेकिन अभी अपना मार्ग सीधा नहीं है। अभी तो हमको सच्चे देव चाहिये इसलिये हम अरिहंतों की उपासना करते हैं। जिन्हें मुनि बनना है साधुता को प्राप्त करना है वे निर्ग्रंथ साधुओं की भक्ति उपासना करेंगे। उनकी सेवा वैयावृत्ति करेंगे। क्यों? क्योंकि, हे भगवन्! आप जैसी पर्याय हमारी भी हो। मैं भी आप जैसा निर्ग्रंथ तपस्वी साधक बन सकूँ। इस भावना के साथ श्रावक साधुओं की सेवा वैयावृत्ति करते हैं। मुनिराज की आहारचर्या कराते हुए श्रावक यह भावना भाता है कि मैं आपको आहार दे रहा हूँ आप मुझे रत्नत्रय प्रदान करना। क्यों? क्योंकि आप रत्नत्रय के धारक हैं। और जिसके पास जो होता है उससे वही माँगना चाहिये। क्योंकि जिसके पास जो है ही नहीं आप उससे बार-बार डिमांड (Demand) करेंगे तो वह कहाँ से दे पाएगा?

जैसे किसी परिवार के मुखिया की इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह अपने लिये कोई साइकिल भी खरीद सके और उससे उसका पुत्र कहने लगे कि पिताजी मुझे एक बाइक (Bike) दिला दो तो वह कहाँ से लाकर देगा? इसलिये जिसके पास जो देने की योग्यता हो उससे वही वस्तु माँगनी चाहिये। निर्ग्रंथ मुनिराज के पास रत्नत्रय है। एक श्रावक मुनिराज के चरणों में बैठकर यह भावना करता है कि हे भगवन्! जैसा रत्नत्रय आपने प्राप्त किया है वैसा ही रत्नत्रय मुझे भी प्राप्त हो। ऐसी भावना के साथ दिया गया आहारदान सार्थक हो जाता है। लेकिन वह दान

तो दे, रत्नत्रय की भावना न करे तो वह दान के फल पुण्य को तो प्राप्त करेगा लेकिन मोक्षमार्ग की भावना के अभाव से मोक्ष प्राप्ति नहीं कर सकता।

बंधुओ! आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव इस 24 वीं गाथा में यह बता रहे हैं कि श्रावकों के लिये साधुओं को क्या देना चाहिये और क्या नहीं। क्योंकि यदि आप योग्य वस्तु मुनिराज को देंगे तो उनकी साधना बढ़ेगी और यदि आपने उन्हें कोई अयोग्य वस्तु प्रदान कर दी तो उनका संयम परिवर्धित नहीं हो पायेगा अपितु उनकी साधना का ह्रास हो जायेगा। इसलिये आचार्य भगवन् इस 24वीं गाथा में कह रहे हैं कि-

हिदमिदमण्णं पाणं णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं।
सयणासण-मुवयरणं जाणिच्चा देदि मोक्ख मग्गरदो।।

मुनिराज आपके आराध्य हैं उपास्य हैं आपके लिए शरणभूत हैं। और जो आपके लिये शरण प्रदान करें आप भी उनके प्रति हमेशा अपना समर्पण का भाव रखें। उनकी संयम साधना को वृद्धिंगत करने में सहायक बनने का भाव रखें। आचार्य भगवन् कहते हैं कि **'मोक्खमग्गरदो'** जो श्रावक है और मोक्षमार्ग में रत है अर्थात् अपने श्रावक धर्म का पालन करते हुए रत्नत्रयधर्म को अंगीकार करने की भावना रखता है सोचता है कि मैं भी एक दिन निर्ग्रंथ मुनि बनूँगा, श्रेष्ठ साधक बनूँगा, तप करूँगा, कर्मों की निर्जरा करूँगा, एक दिन भगवान बनूँगा।

यदि श्रावक अपने मन में ऐसा चिंतन मनन करता है और साथ ही अपने योग्य आचरण का पालन करता है ऐसा वह मोक्षमार्ग में अनुरक्त श्रावक मुनिराजों की साधना के लिये, शरीर की स्थिति के लिये, उनकी संयमवृद्धि के लिये **'हिदमिदमण्णंपाणं'** हित मित अन्नपान देता है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि हित और मित इन दो बातों का ध्यान रखना चाहिये। उनके लिये यह अन्नपान हितकर है अथवा नहीं इसका विचार करना चाहिये। मैंने कल बताया था कि मुनिराज की प्रकृति को ध्यान में रखना चाहिये, उनके शरीर की वात, पित्त अथवा कफ इनमें से कौन सी प्रकृति है? और उन्हें कोई रोग बीमारी तो नहीं है?

अब पता चला कि मुनिराज के असाता वेदनीय का उदय आ गया, डायबिटीज (Diabetes) हो गई। रोग बीमारी लग गयी। और तुम खूब मिठाईयाँ खिला रहे हो। बताइए, क्या

ऐसा आहार उनके लिये हितकारी हो सकता है? आप क्या सोचने लगते हैं कि अरे ये तो महाराज हैं। 24 घंटे में एक बार आहार करते हैं। हमको तो अच्छे से अच्छा भोजन बनाकर आहार कराना चाहिये। अरे! अच्छे से आहार कराने का तात्पर्य क्या होता है? इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि आप अच्छे से अच्छे व्यंजन बनाकर खिलायें। अच्छे से अच्छे आहार का तात्पर्य है जो मुनिराज के लिये साधना में हितकारी हो। ऐसा आहार उनके लिये अच्छे से अच्छा आहार है। मान लीजिये, किन्हीं मुनिराज के लिये कोई बीमारी है और वैद्य ने उनके लिये रूखा भोजन देने के लिये कहा है अब आप बताइए उनके लिये सरस आहार अच्छा है अथवा रुखा आहार अच्छा है? कौन सा आहार अच्छा है? रूखा आहार।

यदि आपने ऐसा विचार कर लिया कि मुनिराज को तो रसगुल्ले बहुत अच्छे से चल जाते हैं और आप रोज उनको खूब रसगुल्ले बना-बनाकर खिलायें। आपका यह दान विवेकपूर्वक दिया हुआ नहीं कहलायेगा। यह उनके लिये हितकारी नहीं हो सकता। आपने यदि उन्हें सरस आहार करा दिया और पता चला उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया तो आपका दिया हुआ आहार उनके लिये हितकारी हुआ या अहितकारी? इसलिये श्रावक को चाहिये कि वह ऐसा आहार मुनिराज को दे जो उनकी साधना को बढ़ानेवाला हो। उन्हें स्वस्थ रखनेवाला हो। उनके संयमवृद्धि में कारण बननेवाला हो। ऐसा आहार यदि आपने मुनिराज के लिये प्रदान किया है तो वह आपके लिये भी मोक्षमार्ग में कारण है और उनके लिये भी मोक्षमार्ग की साधना में साधक बनेगा। ऐसा दान विवेकपूर्वक दिया हुआ दान कहलाता है अत: हितकारी दान होना चाहिए।

दूसरा मित होना चाहिए। मित माने सीमित। कितना देना चाहिए? जितना उनकी अंजुली में आ सके। साधुजन हाथ में आहार लेते हैं। क्यों लेते हैं? जिससे कि जितना उनके लिए उपयोगी हो उतना ही ले सकें, उससे ज्यादा न ले सकें। लेकिन आजकल बहुत से श्रावक लोभी, अज्ञानी, स्वाध्याय विहीन हैं, उनको मोक्षमार्ग का परिज्ञान नहीं है इस कारण वे अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए साधु को भी साधना विहीन कर देते हैं।

अब देखिएगा, एक लोभी श्रावक है वह क्या करता है- हे गुरुदेव! हे गुरुदेव! आप मुझे भी कुछ दे दीजिएगा। सोचो, क्या यही दिगम्बर धर्म की साधना है? जिसमें एक श्रावक के लिए

साधु इस तरह दान दे। साधु की भी अपने दान देने की एक सीमा है मर्यादा है वो क्या दान में दे सकता है और क्या नहीं दे सकता। साधु कभी किसी को आहारदान नहीं करता, आहारदान की भावना करता है लेकिन स्वयं नहीं कराता। कई बार कहीं-कहीं कोई-कोई चौके में देखा जाता है कि चौके में मुनिराज आहार ले रहे हैं, श्रावक भी खड़ा है, अब श्रावक ने बहुत सारे काजू या किशमिश आदि ऐसी सामग्री ली और मुनिराज की अंजुली में रख दी। अब मुनिराज को कोई वस्तु लेनी नहीं है तब आचार्य भगवन कुंदकुंददेव ने श्रावक को भी यह विवेक बताया है कि उतनी सामग्री देना जितना उनके लिए उपयोगी हो।अब मुनिराज क्या कर रहे हैं उन्हें भी आगम की कोई परवाह नहीं है, मोक्षमार्ग की कोई परवाह नहीं, कोई चिन्ता नहीं, जिनागम क्या कह रहा है हमें कैसी चर्या करना चाहिए इसकी परवाह न करते हुए उन्होंने अपनी अंजुली में से थोड़ा-थोड़ा एक-एक करके देना शुरु कर दिया। सब हाथ फैला रहे, हमको दे दो, हमको दे दो। विचार करना, **साधु अपनी अंजुली में से किसी को भी कुछ दे नहीं सकता, अगर देता है निकालता है तो साधु का उसी समय अंतराय हो जाता है।**

आप सभी को पता है पंचमकाल का अंत कैसे होगा? काल के अंत में एक मुनिराज होंगे वीरांगज नाम के। और वहाँ का जो अंतिम कल्की राजा होगा वो यह कहेगा कि इस समय प्रजा में ऐसा कौन है जो अपने लिए टैक्स (Tax) नहीं देता है? बाकी सबके ऊपर टैक्स (Tax) लगाया गया है। क्या कोई ऐसा है जो अपने लिए टैक्स (Tax) नहीं देता हो, कर नहीं देता हो? मंत्रीगण कहेंगे कि हे राजन्! इस समय एक मात्र निर्ग्रंथ मुनिराज ही ऐसे बचे हैं, जो कभी कोई टैक्स (Tax) नहीं देते।

बंधुओ! ये पंचमकाल है आगे जाकर टैक्स (Tax) बढ़ते चले जाऐंगे। हर चीज पर टैक्स (Tax) बढ़ेगा, हर चीज पर कर लगेगा। ध्यान रखना, ऐसा मैं नहीं कह रहा ऐसा आचार्य भगवन भद्रबाहु स्वामी कहकर चले गये। आज हम सभी देख रहे हैं। आचार्य भगवन् ने अपने निमित्तज्ञान से यह बात पहले ही जान ली इसलिए वो बताकर गए। अंतिम राजा कहेगा उनसे भी टैक्स (Tax) लेकर के आओ। मुनिराज आहार-चर्या के लिए जायेंगे उस समय सम्राट के वह सेवक मुनिराज से कहेंगे कि आप टैक्स (Tax) नहीं देते इसलिए आप आहार करते समय एक ग्रास हमारे लिए टैक्स (Tax) के रूप में प्रदान कीजिए ये राजा का आदेश है और मुनिराज

जिस समय अपनी अंजुली में आये हुए ग्रास को निकालकर उस सेवक के लिए देंगे उसी समय मुनिराज अन्तराय करके नीचे बैठ जायेंगे। फिर आकर संघ से कहेंगे पंचमकाल का अंत आ गया है। **ध्यान रखो, मुनिराज अपनी अंजुली में से निकालकर कुछ देते नहीं हैं। क्यों ? क्योंकि श्रावक ने उनके संयम साधना के लिए दिया है, प्रसाद बाँटने के लिए नहीं दिया है। प्रसाद बाँट-बाँटकर भक्त और सेवक बनाने के लिए एक श्रावक साधु के लिए कोई वस्तु दान में नहीं देता इसलिए यह निर्ग्रंथ मार्ग है अगर ऐसा होता है तो वे मुनिराज लोभी मुनिराज हैं, वे भक्त के लोभी हैं।** इसलिए भक्तों के लोभी मुनिराज क्या करते हैं एक-एक काजू उनके हाथ में गिरायेंगे।

ये भगवान आदिनाथ का जिनलिंग धारण किया हुआ है महावीर का जिनलिंग धारण किया हुआ है। ऐसे लिंग में ऐसी चर्या नहीं होती। ध्यान रखना, भगवान आदिनाथ के साथ 4000 राजा दिगम्बर होकर बैठ गए और जब उन्होंने मुनिपद के प्रतिकूल आचरण करना प्रारंभ किया तो देववाणी हुई। क्योंकि आदिनाथ तो बैठ गये ध्यान में। उनको तो वैराग्य हुआ था बाकी जो 4000 राजा थे वे इस सोच से कि हमारे स्वामी हमको छोड़ के जा रहे हैं इसलिए हम भी राजपाट को छोड़ते हैं, तो वे भी उनके साथ हो लिये।

आदिनाथ तो निर्ग्रंथ दीक्षा लेकर वस्त्र आदि सब अलंकरण त्यागकर धर्मसाधना आत्मसाधना करने लगे। तब राजाओं ने भी अपने वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिए। उन्होंने कहा—जैसे स्वामी वैसे हम। लेकिन आदिनाथ ने तो दीक्षा लेते ही 6 महीने का योग धारण कर लिया और इन सबको भूख प्यास-सताने लगी। अब वे बार-बार आदिनाथ की ओर देखते, लेकिन वे तो आँखें बंद किए बैठे थे। अब वे सब उनकी ओर देखें कि ये आँखें खोल रहे कि नहीं खोल रहे। ये उठ रहे कि नहीं उठ रहे। लेकिन आदिनाथ तो बैठे थे आत्मा के ध्यान में। और इनको कोई ज्ञान ही नहीं था। ये तो बार-बार उनकी ओर देखते फिर सोचते अब तो भूख लगने लगी, प्यास लगने लगी, अब क्या करें? आखिरकार एक उठा, फिर दूसरा उठा, फिर तीसरा उठा, इसतरह वे सब उठ-उठ कर जाने लगे और जाकर के कोई पानी पीने के लिए सरोवर के पास पहुँचा, कोई फल खाने के लिए वृक्षों के पास पहुँचा।

देववाणी हुई, ध्यान रखो इस मार्ग में इस भेष में इस तरह की चर्या करना अपराध है, दण्ड है इसलिए यदि आप इसतरह की चर्या करते हैं तो आपको दण्डित किया जायेगा। उन्होंने सोचा ओह! ऐसा करना अपराध है। तो फिर उन्होंने क्या किया। अनेक प्रकार के भेष धारण करके और अपनी क्षुधा-तृषा को मिटाना प्रारंभ कर दिया।

कहने का तात्पर्य मात्र इतना है कि निर्ग्रंथ मुनिदीक्षा में निर्ग्रंथ मुनिमार्ग में इसतरह से साधुजन अपनी अंजुली में से कोई भी वस्तु, निकालकर श्रावक के हाथ में देता है तो मार्ग को मलिन करता है। यदि प्रसन्न होता है तो इसमें कोई प्रसन्नता की बात नहीं है साधना की दरिद्रता की बात है कि तू साधना से दरिद्र हो गया। प्रसन्न किस बात पर हो रहा है? मोक्षमार्ग की साधना से तू स्खलित हो रहा है। तू आगम का पालन नहीं कर रहा है।

ध्यान रखो, कभी किसी साधु के सामने आहारचर्या के समय हाथ मत फैलाना। तुम उससमय साधु से भी श्रेष्ठ हो। क्योंकि उस काल में साधु का हाथ नीचे है और तुम्हारा हाथ साधु के हाथ से ऊपर है। देनेवाला श्रेष्ठ होता है। इसलिए उससमय तुम दानी हो दानी। साधु के सामने लेकिन कभी ऐसा मत करना।

और क्या कहा? मित देना, सीमित देना, जितना उनके लिए लेने योग्य हो उतना ही देना। कई बार श्रावक क्या करता है महाराज श्री ले तो लो..... ले तो लो, और आप तो डाल देते हो लेकिन कई बार आप जल्दबाजी में कोई वस्तु डाल देते हो, अंजुली तो उतनी ही है। वह वस्तु उनकी अंजुली से बाहर निकलकर गिरने लग जाती है तो यह आपका भी विवेक नहीं हुआ। आपको चाहिए कि उतनी ही वस्तु दें जो अंजुली के अन्दर रहे। उसका अपव्यय नहीं होना चाहिए, बरबाद नहीं होनी चाहिए, कोई वस्तु गिरनी नहीं चाहिए। मुनिराज की अंजुली में से यदि कोई वस्तु गिरती है तो उसका भी प्रतिक्रमण करना पड़ता है, उसका वे कदाचित प्रायश्चित भी ग्रहण करते हैं। आज मुझको ऐसा-ऐसा करना पड़ा। आज ऐसी वस्तु गिरानी पड़ी। इसलिए ध्यान रखो, देते समय बहुत सावधानी से आपको वह वस्तु देनी चाहिए। जबरदस्ती दिए आहार से साधु को वमन आदि हो गया, उनकी तो चर्या बिगड़ गई न, इसलिए जितना योग्य हो उतना ही देना। जो हितकारी हो सीमित हो ऐसा अन्नपान देना चाहिए।

दूसरा है '**णिरवज्जोसहिं**' निर्दोष औषधि देना चाहिए। साधुजन एक तो औषधि से दूर रहते हैं और कदाचित औषधि भी उन्हें देना पड़े तो वो औषधि कैसी होनी चाहिए? निर्दोष। जिसमें किसीप्रकार से चर्या में दोष न हो। ऐसी निर्दोष, प्रासुक, शुद्ध औषधि मुनिराज के लिए बनाकर देना चाहिए। ये एक श्रावक का धर्म है।

सर्वप्रथम जान लिया मुनिराज को इसप्रकार की पीड़ा हो रही है, वैद्य को बुलाया दिखा दिया। दिखाने के बाद धीरे से वैद्यजी से पूछ लिया, क्या औषधि चलेगी? उन्होंने बताया यह चलेगी। शुद्ध औषधि लाओ। लाकर अपने हाथों से बड़े भक्तिभाव से श्रद्धा से तैयार करके जहाँ भी मुनिराज पहुँचें, वहाँ विशुद्धिपूर्वक वह औषधि पहुँचा दी तो उनका वह रोग शीघ्र दूर हो जायेगा। और अगर आपने सोचा कि अब दे तो दो, बहुत कष्ट हो रहा, बहुत पीड़ा हो रही। चाहे वह सदोष हो पापसहित हो। ध्यान रखो, ऐसी औषधि देने से तो अच्छा है कि आप औषधि दान ही न दें। जिस औषधि से साधु की चर्या में दोष लगे ऐसी औषधि देने की अपेक्षा तो आपका न देना ही श्रेयस्कर है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं '**णिरवज्जोसहिं**' निर्दोष औषधि अर्थात् जिसमें कोई सावद्य नहीं है, पाप नहीं है, ऐसी निर्दोष औषधि पात्रों के लिए देना चाहिए। यह औषधि दान कहलाता है।

और क्या कह रहे हैं '**णिराउलं ठाणं**'। मुनिराज के लिए निराकुल स्थान प्रदान करना यह श्रावक का धर्म है। कैसा स्थान? निराकुल, शांत स्थान, रम्य वातारण, शांत वातावरण, जिसमें मुनिराज को किसी भी प्रकार का व्यवधान न हो। अब मुनिराज हैं वे मुनिराज किसलिए बने हैं। एक बात ध्यान रखो, कोई तुम्हें आशीर्वाद देने के लिए साधु नहीं बने हैं। हम साधु बने हैं अपनी आत्मा का हित करने के लिए। वो बात अलग है कि मुनिराज सहजभाव से विराजमान हैं, आप आये और मुनिराज उससमय अपने स्वाध्याय आदि से निवृत्त हो चुके थे। आपने नमोस्तु किया और मुनिराज ने उससमय आपको '**सद्धर्मवृद्धिरस्तु**' का आशीर्वाद दे दिया। पर कभी-कभी मुनिराज स्वाध्याय कर रहे हैं। आप पहुँच गए जोर से बोलने लगे, नमोस्तु महाराज, नमोस्तु। मुनिराज अपने स्वाध्याय में लीन हैं उन्होंने नहीं देख पाया। अरे, शायद महाराज आपने हमें पहचान नहीं पाया, नमोस्तु महाराज। इसप्रकार बोलकर आप क्या

कर रहे हैं? आप उनकी साधना में साधक बन रहे हैं अथवा बाधा डाल रहे हैं? आप उनकी साधना में साधक नहीं बाधक बन रहे हैं।

आपका कर्तव्य था कि मुनिराज उससमय स्वाध्याय कर रहे हैं तो आप बिल्कुल शांतभाव से बैठते। महाराज को अपनी क्रिया ठीकप्रकार से कर लेने दो उसके बाद हम अपनी बात कर लेंगे। अभी मुनिराज अपनी साधना में लीन हैं ऐसे साधनाशील मुनिराज मिल जायें तो समझना कि पंचमकाल में भी चतुर्थकाल दिखायी दे रहा है। ऐसे ही साधक हुआ करते हैं जो अपने कर्तव्यों में लीन-तल्लीन, उन्हें इस जगत से कोई लेना देना नहीं।

यदि मुनिराज क्लास (Class) ले रहे हैं, स्वाध्याय, सामायिक या कोई भी क्रिया आदि कर रहे हैं और उससमय दो व्यक्ति आकर बात करने लगें। तब आपका कर्तव्य क्या है? उन्हें निराकुल स्थान देना। आप तुरंत कह दीजिए, भाई साहब! थोड़ी देर आप शांत हो जाइए अभी मुनिराज अपनी सामायिक आदि क्रिया कर रहे हैं। उनकी सामायिक में विघ्न पड़ेगा, हम बाहर बैठ जाते हैं यहाँ शोरगुल होगा तब हमें ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होगा। आपने अगर निराकुल स्थान दे दिया तो आपने मुनिराज पर बहुत बड़ा उपकार कर दिया।

एक श्रावक मुनिराज के लिए आहार देता है, औषधि देता है और निराकुल स्थान देने का तात्पर्य क्या है, वसतिका देना। वसतिका दान माने यह नहीं कि एक मुनिराज आये और आपने उनको वसतिका दान में दे दी कि यह वसतिका आज से आपकी। यह दान नहीं है, मुनिराज आपकी वसतिका नहीं लेंगे। केवल ठहरने के लिए स्थान देना ही वसतिका दान कहलाता है। **अगर कोई श्रावक मुनिराज को वसतिका दान में देवे कि आप इसे स्वीकार कीजिए तो वह श्रावक विवेकी नहीं है और यदि कोई मुनिराज किसी वसतिका को दान में लेवे कि आज से इसका स्वामी मैं, तो वह साधु भी विवेकहीन है। वह साधु भी साधु पद में स्थित नहीं रहा।** क्यों? क्योंकि वह तो मकान आदि का पहले से त्यागी होता है। वसतिका दान का तात्पर्य क्या है? साधना के लिए निराकुल स्थान देना। उसका नाम वसतिका दान है।

बन्धुओ! निराकुल स्थान में कैसा निराकुल? मुनिराज की साधना में बाधा न पड़ जाये। दो मित्र थे। बड़े घनिष्ट मित्र और दोनों मित्रों ने एक विश्रामगृह बनवाया। मुनिराजों के लिए कहा गया सार्वजनिक स्थान पर मुनिराज ठहर सकते हैं जो किसी के स्वामित्व से रहित हो।

अब एक मुनिराज विहार करते हुए चले आ रहे थे, उनने सोचा कि अभी वहाँ कोई और स्थान तो है नहीं, ये विश्रामगृह बना है तो वे मुनिराज उसी में ठहर गए। इतने में उन दोनों मित्रों को पता चला कि मुनिराज विश्रामगृह में ठहरे हैं, दोनों मित्र पहुँच गए। एक मित्र ने देखा और कहने लगा- आप उठिये यहाँ से, आप निकलिए यहाँ से, आप बाहर जाइये यहाँ से, आप यहाँ क्यों ठहरे हैं? ये आपका स्थान थोड़े ही है। और दूसरा मित्र क्या बोला- मेरा तो अहोभाग्य है हमने जिस विश्रामगृह का निर्माण कराया उसमें आज आप जैसे तपस्वी साधक यहाँ आकर ठहर गए। ये तो मेरा परम सौभाग्य है। आप रहकर के साधना करिये। देखो वस्तु एक है, परिणाम दो जीवों के अलग-अलग हैं।

एक मित्र मुनिराज की स्तुति कर रहा है और दूसरा मित्र मुनिराज के लिए अपशब्द कह रहा है। तो जो उनकी स्तुति कर रहा है उसने कहा-मित्र! क्यों महाराज के लिए आप व्यर्थ में इसतरह के शब्द बोलते हो? ये तो अपने लिए बड़े सौभाग्य की बात है। उसने कहा- अरे! सौभाग्य छोड़िये, आ गए नंगे साधु, उठो यहाँ से। उस मित्र को भी सहन न हुई। उसने कहा— साधुजनों के लिए वसतिका दान देना ये तो बहुत बड़ा धर्म माना गया है, लेकिन वो अज्ञानी था। दोनों में वाद-विवाद हो गया। बहुत वाद विवाद हुआ और वाद विवाद इतना बढ़ गया कि दोनों मित्र आपस में लड़ने लग गए। ऐसे लड़े कि दोनों का प्राणान्त हो गया। मुनिराज को कुछ पता ही नहीं चला। वे तो अपनी ध्यान साधना कर रहे थे। लड़ाई-झगड़ा तो उन्होंने वहाँ से दूर जाकर किया होगा।

मुनिराज अपनी साधना करके प्रातः आगे निकल गए। उनमें से दोनों मरने के बाद अपने परिणति अनुसार, परिणाम के अनुसार शूकर और सिंह बने। जैसा पूर्व में उन्होंने कर्म बाँधा होगा वैसा उनको फल मिला। एक सिंह बन गया एक शूकर बन गया। वही मुनिराज तपस्या करते हुए जंगल से चले जा रहे थे, तो उन्होंने अपनी साधना के लिए एक गुफा को निराकुल स्थान जानकर उसमें प्रवेश कर लिया। और उस निराकुल स्थान में बैठकर अपनी तप-साधना करने लगे। मुनिराज तो मुनिराज उन्हें तो निराकुल स्थान चाहिए। जंगल में गुफा के अन्दर बैठ गए। उससमय मुनिराज को अन्दर जाते हुए शूकर ने देख लिया। यह वही शूकर का जीव है जो दूसरा मित्र था जिसने मुनिराज को वसतिका दान देने में स्तुति की थी, भावना की थी। उसने

देख लिया कि अरे यह तो वही मुनिराज हैं और ये मुनिराज इस गुफा के अन्दर चले गए हैं, लेकिन यह गुफा तो शेर की है। अब शेर भी कौन है वही प्रथम मित्र का जीव जो मुनिराज को अपशब्द कह रहा था। जो सिंह बना था। वही सिंह बनकर गुफा में रह रहा था। उसने विचार किया- अहो! ये शेर की गुफा है और मुनिराज अन्दर अपनी साधना करने के लिए पहुँच गये हैं। मुझे मुनिराज की रक्षा करनी चाहिए। देख लो एक शूकर के अन्दर भी इतने उत्कृष्ट परिणाम हैं कि हमें मुनिराज की रक्षा करनी चाहिए।

उसने सोचा, मुनिराज से तो हम कुछ कह नहीं सकते, ये तो वीतरागी साधक हैं, अपनी आत्मसाधना कर रहे हैं। कोई बात नहीं, मैं गुफा के द्वार पर बैठकर मुनिराज की रक्षा करूँगा। कोई भी अन्दर नहीं जा सकता। और इतने में गुफा में रहनेवाला सिंह आ गया। मुनिराज अन्दर अपनी साधना कर रहे हैं। शूकर दरवाजे पर बैठा था रक्षा करने के लिए। शूकर और सिंह में फिर से विवाद हो गया। सिंह को मनुष्य की गंध आ गई वह अन्दर जाना चाहता था। शूकर उसे अन्दर जाने नहीं दे सकता था। दोनों में फिर से लड़ाई हो गई। दोनों का पुन: प्राणान्त हो गया एक स्वर्ग में जाकर देव हुआ और दूसरा नरक को प्राप्त हुआ।

ध्यान रखना, कहने का तात्पर्य यह है कि एक श्रावक का धर्म है वह मुनिजनों के लिए, तपस्वीजनों के लिए, तप साधना करने के लिए निराकुल स्थान प्रदान करे। कैसा स्थान? निराकुल। आया न समझ में, अगर कभी ऐसा अवसर आ जाये तो श्रावक बन जाना। क्या बन जाना? श्रावक। अगर कोई मुनिराज की साधना में बाधा डाल रहा हो तो अपनी बुद्धि अपनी प्रज्ञा का सही उपयोग करना और मुनिराज की साधना में साधक बनना, निराकुल स्थान देना। ये श्रावक का धर्म है।

'सयणासण-मुवयरणं' और मुनिराज के लिए उपकरण भी दान में देना। कौन से उपकरण? शयनोपकरण और आसनोपकरण। ध्यान रखना! मुनिराज के लिए मूलत: उपकरण दान में दिए जाते हैं—**शास्त्र दान** ज्ञान वृद्धि में कारण हो। **पिच्छी दान** जीव रक्षा और संयम वृद्धि में कारण हो, और **कमण्डलु** उनके लिए शुद्धि में शुचिता में कारण हो। ये तीन उपकरण मुनिराजों के लिए प्रदान किए जाते हैं। अब कदाचित् मुनिराज विहार करते हुए आ रहे। आप

उन्हें क्या देंगे? बैठने के लिए आसन। इसलिए कहा गया है, आसनोपकरण आवश्यकता जानकर देता है। अहो! मोक्षमार्ग में स्थित रहनेवाला या मोक्षमार्ग की चाह करनेवाला श्रावक आसनोपकरण देता है अर्थात् उनके बैठने के लिए आसन लगा देता है ये श्रावक का कर्त्तव्य है। ध्यान रखना, क्या देना चाहिए? मुनिराज को मूलत: तो पिच्छी, कमण्डलु और शास्त्र देना चाहिए। इसके अलावा और भी चीजें देना चाहिए क्या? भो पंचमकाल के श्रावक! और क्या-क्या दोगे मुनिराज को? लैपटॉप (Laptop), मोबाइल (Mobile) देना चाहिए क्या?

ध्यान रखना, साधुजनों के लिए कभी लैपटॉप (Laptop) आदि मत देना। साधुजनों के लिए कभी दान में मोबाइल (Mobile) मत देना। अन्यथा फिर दान और बढ़ाने पड़ेंगे। चार दान तो होते ही थे, पर अब उसमें और जोड़ना पड़ेगा मोबाइल (Mobile) दान करना, लैपटॉप (Laptop) दान करना, रंगीन टी.वी. (Colour T.V.) दान करना। ध्यान रखो साधुजनों के लिये ऐसे कोई भी उपकरण न देना। यदि आप ऐसे उपकरण साधुजनों को दान में देते हो तब ये दान तो होता ही नहीं। सोचिए, अगर आप ऐसी वस्तुएँ साधुजनों को दान में भेंट करते हैं तो साधु तप-साधना करेगा क्या? **अगर साधु के पास लेपटॉप (Laptop) होगा तो वो क्या करेगा ? दिन भर उसी का उपयोग करेगा। मोबाइल (Mobile) होगा तो क्या करेगा ? जब देखो तब वार्ता में लगा रहेगा। और यदि उसके पास टी.वी. (Television) आदि है तो बैठा-बैठा आराम से टी.वी. (T.V.) देखता रहेगा। अब ये बताओ जो सामायिक आदि मुख्य क्रियायें है वह कब करेगा ?**

शयनोपकरण यानि चटाई आदि उनके लिए प्रदान करना ये श्रावक के लिए देने योग्य उपकरण हैं। संघ के लिए जितनी आवश्यकता हो आप उतनी वस्तु लाइए, विवेकपूर्वक् दीजिए उसका उपयोग हो।

सच्चे भावलिंगी दिगम्बर साधु आपको प्राप्त होते रहेंगे। उनके दर्शन-वंदन करने का अवसर आपको मिलता रहेगा। और यदि आपने व्यर्थ की वस्तुएँ साधुओं को देना शुरु कर दिया तो बाहर के साधु तो मिल जायेंगे लेकिन भावलिंगी साधु मिलना दुर्लभ हो जायेंगे।

मोक्षमार्ग अनुरागी जो, पाता मुनिजन त्यागी को।
हितमित अन्नपान औषधि, देता है बड़भागी वो।।
स्थान शयनासन, हो-हो-2 , उपकरण दिलाये रे.....
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

आहार के समय वर्ज्य विषय

विण्मूत्राद्यशुचौ जिनालयगते येनान्नदाने कृते।
साधुभ्यश्च स सप्त जन्मनि भवेच्छ्रिवत्रादि कुष्ठी स च।।
जैनं गेहमृषिर्विशेन्न मलिनी भाण्डादिकं न स्पृशेत्।
स्पृष्टे तत्र गृहं गतेऽधिकरुजो गच्छेदसौ दुर्गतिम्।।दा.शा.।।

अर्थ—मलमूत्र विसर्जनादि से उत्पन्न अशुचि की अवस्था में जिनालय में प्रवेश नहीं करना चाहिये। एवं उस हालत में साधुओं को आहार दान भी नहीं देना चाहिए। यदि उस अशोचावस्था में जिनालय में प्रवेश करें, एवं साधुओं को आहारदान देवें तो वह सात जन्म तक श्वेत कुष्ठादि भयंकर रोग से पीड़ित होता है। कोढी को सूतकी के समान जिनमंदिर व मुनिवास में प्रवेश करने को निषेध किया गया है। एवं वह जिन मंदिर के उपकरणों को बर्तन बगैरह को तथा मुनिदान के उपकरण व बर्तनों को स्पर्श नहीं कर सकता है। यदि वह इस आदेश की अवहेलना कर जिनमंदिर व मुनिवास में प्रवेश करे एवं उन उपकरण व बर्तनों को स्पर्श करे तो वह कोढ़ से सर्वांग व्याप्त होता है और बाद में नरक आदि दुर्गतियों का पात्र होता है। इसलिए मुनिदान एवं जिनपूजा में बहुत ही पवित्रता का व्यवहार करना चाहिये।

गाथा - 25
(प्रवचन)

साधु वैयावृत्ति निर्जरा का महामंत्र

07.09.2013

भिण्ड

(मुनियों की वैय्यावृत्य कैसे करें ?)

अणयाराणं वेज्जा - वच्चं कुज्जा जहेह जाणिच्चा।
गब्भब्भमेव मादा-पिदुच्च णिच्चं तहा णिरालसया।। 25।।

* अन्वयार्थ *

(**जहेह**) जैसे इस लोक में (**मादा-पिदुच्च**) माता और पिता (**गब्भब्भमेव**) गर्भ स्थित शिशु का सावधानी से पालन करते हैं (**तहा**) उसीप्रकार (**णिच्चं**) सदा (**णिरालसया**) आलस्य रहित होकर (**अणयाराणं**) मुनियों की (**जाणिच्चा**) प्रकृति आदि जानकर (**वेज्जा-वच्चं**) वैय्यावृत्य (**कुज्जा**) करनी चाहिये।

अर्थ- जैसे इसलोक में माता-पिता अपने गर्भ में होने वाले बालक का सावधानी से पालन करते हैं, उसीप्रकार सदा निरालसी होकर मुनियों की प्रकृति आदि जानकर वैय्यावृत्य करनी चाहिये।
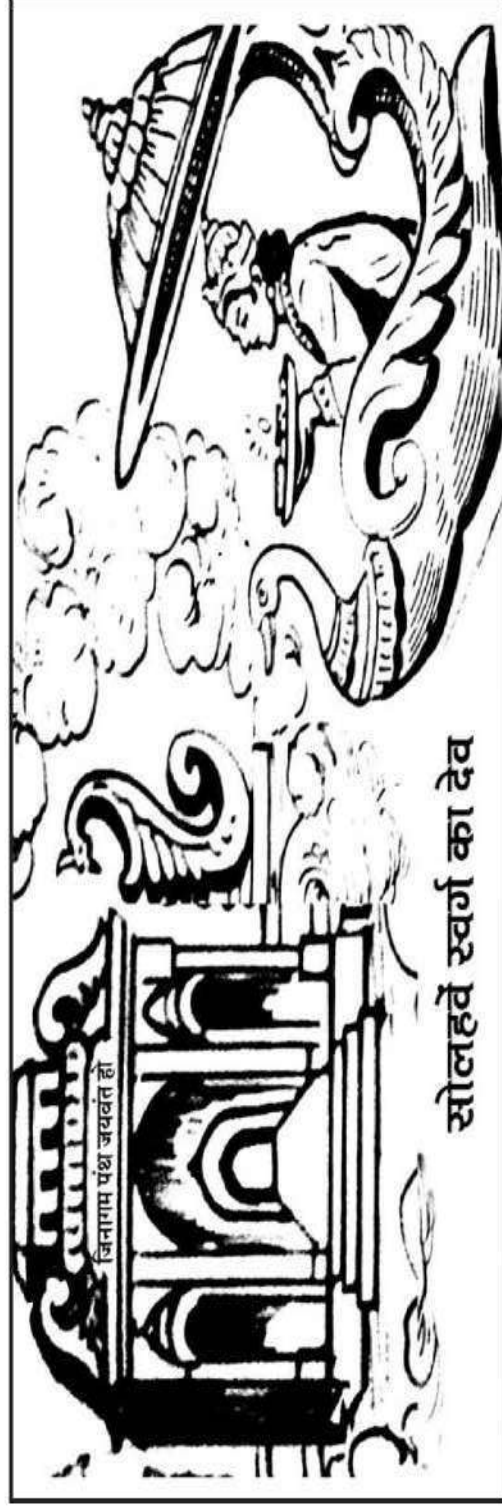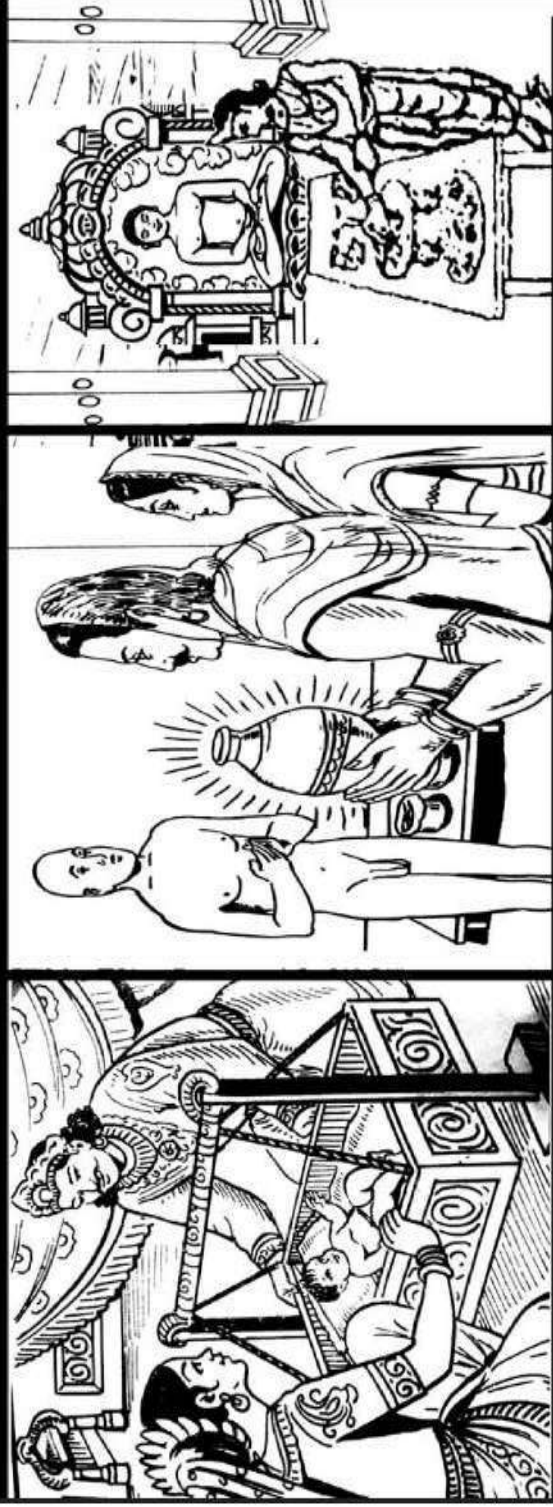
शिशु रक्षा के समान श्रावक द्वारा सुपात्रदान एवं पूजा से सोलहवें स्वर्ग की प्राप्ति।

35

रयणोदय

गर्भस्थित शिशु का पालन, करते मात-पिता परिजन।
आलस तज मुनिराजों की, सेवा करते श्रावकजन।।
मुनि वैयावृत्ति, हो-हो-2, भवसिंधु तिराये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

'जयदु जिणागम पंथो' अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

तीर्थंकर भगवंत की दिव्यध्वनि जिनश्रुत है जिनागम है। जिनागम में वर्णित आत्म-कल्याणकारी मार्ग, आत्महितकारी पंथ **'जिनागम पंथ'** है। परस्पर रागद्वेष को बढ़ाने वाले आगमबाह्य पंथ उन्मार्ग हैं। वीतरागता को देनेवाला, **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** का प्रतीक **'जिनागम पंथ'** सन्मार्ग है।

हम सभी जीवन जीने की कला सीख रहे हैं। इस जीवन को कैसे अच्छा बनाया जाये? कैसे सफल बनाया जाये? वह विद्या यहाँ आचार्य भगवन कुंदकुंद देव की वाणी सुनकर सीखने का प्रयास कर रहे हैं। जन्म से कोई सीखकर नहीं आता। जन्म लेने के बाद ही सब सीखा जाता है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जो अपने जीवन के लिए श्रेष्ठ आदर्शों को स्वीकार करते

हैं और कुछ ऐसे लोग होते हैं जो अपने जीवन के लिए बुरे आचरण को स्वीकार करते हैं। जींते दोनों हैं श्रेष्ठ आचरण करनेवाला भी, कर्त्तव्यों का पालन करनेवाला भी जीवन जीता है। खोटे आचरण, बुरे आचरणवाला भी अपना जीवन जीता है। लेकिन अन्तर इतना है कि श्रेष्ठ आचरण करनेवाला हमेशा सम्मानपूर्वक जीता है और बुरे आचरणवाला हमेशा अपमान व तिरस्कार का घूँट पीकर जीता है।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव हमें आदर्शवान जीवन जीने की कला सिखा रहे हैं। बुरा आचरण करने के लिए आपको कुछ भी सीखने की आवश्यकता नहीं है यदि आप सद्मार्ग पर नहीं हैं तो आप स्वयं ही खोटे मार्ग पर चलने लग जायेंगे। अगर आपको अपना जीवन श्रेष्ठ आचरणवान बनाना है तो आपको श्रेष्ठ आदर्शों की शिक्षा ग्रहण करनी होगी। आपको समझना होगा कि हमारे कर्त्तव्य क्या हैं? यदि कर्त्तव्य बोध नहीं है तो आप कभी श्रेष्ठ और महान नहीं बन सकते।

आचार्य भगवन् कुंदकुंददेव एक श्रावक का आचरण कैसा होना चाहिए? उसे किन कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए? यह शिक्षा हमारे लिए प्रदान कर रहे हैं। श्रावक धर्म के अन्तर्गत उन्होंने कल बताया था कि एक **श्रावक के द्वारा मुनि के लिए कौन सी वस्तु देने योग्य है। यदि इसका ज्ञान है तो हम मुनिधर्म की रक्षा करनेवाले हैं। इसका तात्पर्य मुनिराजों के लिए आहारदान देना, उपकरण-आसन प्रदान करना ये मुनिधर्म की रक्षा करनेवाला है। आप कहते हैं कि हम मुनिधर्म के रक्षक हैं तो आप बताइए कि आपने आज तक कितने मुनिराजों को आहारदान देकर मुनिधर्म के रक्षक बनने का कर्त्तव्य निभाया है। यदि आपने आज तक दान ही नहीं दिया तब आप कैसे मुनिधर्म के रक्षक कहला सकते हैं?**

यदि कोई माँ अपने बेटे से कहे—बेटा! मैं तुम्हारी रक्षा करनेवाली माँ हूँ। और माँ कभी अपने बेटे को भोजन न दे, तब क्या वह अपने बेटे की रक्षिका कही जा सकती है? जैसे एक माँ अपने बेटे को भोजनादि कराके उसका रक्षण करती है। मुनिराजों के चरण छू लेना, पूजा

कर लेना, मुनिधर्म की रक्षा नहीं है, हमें उनके लिए क्या आवश्यक है इसका परिज्ञान करना जरूरी है और केवल परिज्ञान ही जरूरी नहीं है उस कर्त्तव्य का आपको निर्वाह भी करना होगा। जो श्रावक विवेकपूर्वक उपकरण दान देता है उस व्यक्ति को मुनिधर्म का रक्षक जानना चाहिए।

श्रावक हो अपने कर्त्तव्य को समझो। अपने शिशु के लिए आप विद्यालय भेजते हो। पूरा बैग (Bag) पुस्तकों से भरकर आप देते हो। इसी तरह श्रावक कहता है वह विनय करता कि हे गुरुवर! यदि आपके लिए किसी शास्त्र की जिनवाणी की आवश्यकता हो तो आप वह अवसर हमें प्रदान करें। अवसर लिया जाता है, अवसर दिया नहीं जाता। आचार्य भगवन् कहते हैं **'जिओ तो धर्म के लिए जिओ।'**

एक श्रावक होता है, मुनिराज के पास आकर कहता है—गुरुदेव! आप हमारे नगर में आकर भी चातुर्मास करना। और एक श्रावक वह होता है जो कहता है कि हे गुरुवर! हमारे लिये भी कभी आप चातुर्मास कराने का अवसर प्रदान करें। एक तो कह रहा है आप हमारे नगर में भी चातुर्मास करना यानि आ जाना, आप खुद आ जाना, मैं तो नहीं आ पाऊँगा। और एक वह है जो यह भाव प्रगट कर रहा है कि हे गुरुदेव! मैं आपके चरणों में बराबर निवेदन प्रार्थना करता हूँ ऐसा सुअवसर आप कभी मुझे भी प्रदान करें। अवसर लिया जाता है अवसर दिया नहीं जाता है।

कुछ लोग कहते हैं कि महाराजश्री ने तो कुछ बताया ही नहीं, अब हम क्या करें? आपने कुछ मुनिराज से कहा ही नहीं मुनिराज आपको कैसे बतायें। पहले तो आप अपने श्रावकत्व को प्रगट कीजिए। आप अपनी भावना को प्रगट कीजिए। फिर यदि उनके लिए कोई आवश्यक होगा तो वह अवसर आपको मिलेगा, नहीं होगा तो कोई बात नहीं आशीर्वाद तो मिलेगा। कहने का तात्पर्य यह है अगर आप मुनिधर्म के रक्षक हैं तो मुनिराजों के प्रति आपके क्या कर्त्तव्य हैं उन कर्त्तव्यों का पालन भी आवश्यक है केवल चरण छू लेने से आप मुनिधर्म के रक्षक नहीं हो सकते।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव 25वीं गाथा में अब बता रहे हैं कि मुनियों की वैयावृत्ति करनी चाहिए। वैयावृत्ति श्रावक का विशेष धर्म है और श्रावक का ही नहीं मुनिराजों का भी धर्म है श्रावक और मुनि दोनों का धर्म है। वैयावृत्ति करनेवाला श्रावक अनेक प्रकार के गुणों

को अपने जीवन में प्रगट कर लेता है। ध्यान रखना, वैयावृत्ति छोटा धर्म नहीं है वैयावृत्ति बहुत बड़ा धर्म है इसका अर्थ है- अपने कर्मों की निर्जरा करना। अगर आपके पापकर्मों का उदय चल रहा है तो आप साधुजनों की वैयावृत्ति करना शुरु कर देना। कामना लोभ से वैयावृत्ति मत करना कि मैं महाराज की सेवा वैयावृत्ति करूँगा तो महाराज कोई मंत्र दे देंगे। **ध्यान रखना, साधु की वैयावृत्ति ही मंत्र है, महामंत्र है। जो निर्जरा आप एक मंत्र से नहीं कर सकते वह निर्जरा आप साधुजनों की वैयावृत्ति से कर सकते हैं।**

'निशिदिन वैयावृत्य करैया सो निहचै भव नीर तिरैया'

जो नित प्रति मुनिराज आदि पात्रों की वैयावृत्ति सेवा करता है, वह नियम से भव सिंधु को पार कर लेता है। इसलिए आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव बता रहे हैं कि मुनिराजों की हमें वैयावृत्ति अवश्य करनी चाहिए। वैयावृत्ति करने का अर्थ क्या है? वैयावृत्ति करने का अर्थ यह नहीं है कि केवल हाथ-पैर दबाना। लोग क्या समझते हैं वैयावृत्ति यानि साधुजनों के हाथ-पैर दबाना। मुनिराज सामायिक कर रहे हैं और वैयावृत्ति का समय हो चुका है। मुनिराज अपने स्वाध्याय में लगे हुए हैं। आप दरवाजे खट्खटा रहे हैं। आप बोल रहे हैं जयकार लगा रहे हैं। गुरुदेव वैयावृत्ति का समय हो चुका है, दरवाजे खोलिये। नमोस्तु गुरुदेव। आपके जयकारे, आपका निवेदन, ये सब मुनिराज के सामायिक साधना में बाधक है। आपने वैयावृत्ति नहीं की। अगर मुनिराज स्वाध्याय कर रहे हैं और आप शांत भाव से बैठे हुए हैं तो भी आपकी वैयावृत्ति चल रही है।

वैयावृत्ति के अन्तर्गत आचार्यों ने अनेक प्रकार के गुणों को समाहित किया है। जो विनयशील होता है वही वैयावृत्ति कर सकता है। जो विनय गुणों से भरा होगा वैयावृत्ति वही कर सकता है। जो अहंकारी होगा वो वैयावृत्ति नहीं कर सकता। क्यों? क्योंकि उसको सेवा करने में, झुकने में, चरणों को पकड़ने में, दबाने में, बहुत बड़ी बाधा मालूम पड़ेगी। एक तो साधुजनों की सेवा वैयावृत्ति करने से व्यक्ति के अंदर विनयगुण का विकास होता है। अहंकार प्रक्षालित हो जाता है और वह एक विनयगुण को विकसित करता हुआ अपनी आत्मा को मृदु बना लेता है।

ध्यान रखना, वैयावृत्ति करनेवाला श्रावक बहुत ही विवेकी होता है। कितना विवेकी होता है? इसके लिए 25वीं गाथा देखते हैं-

अणयाराणं वेज्जावच्चं कुज्जा जहेह जाणिच्चा।
गब्भब्भमेव मादा पिदुच्च णिच्चं तहा णिरालसया।। 25।।

आचार्य भगवन कह रहे हैं कि '**जहेह**' जिसप्रकार इसलोक में। '**मादा पिदुच्च**-' माता और पिता। '**गब्भब्भमेव**-' गर्भ स्थित शिशु का परिपालन, रक्षा, सेवा करते हैं। '**तहा**-' उसीप्रकार '**अणयाराणं**-' अनगारों की। '**जाणिच्चा**-' प्रकृति आदि जानकर। '**णिच्चं णिरालसया**-' हमेशा सदा निरालसी होकर के। **वेज्जावच्चं कुज्जा**- वैयावृत्ति करना चाहिए।

अर्थात् जैसे माता-पिता अपने गर्भ से उत्पन्न बालक का भरण-पोषण, लालन-पालन और सेवा-सुश्रूषा, एकाग्रता और प्रेमभाव से करते हैं वैसे ही सुपात्र की सेवा, वैय्यावृत्य, आहार-पान व्यवस्था, निवासस्थान आदि के द्वारा पात्र की वात-पित्त-कफ-प्रकृति और द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के उपसर्गों को विचार कर करें।

अभी मैं कह रहा था श्रावक विवेकी होता है। कितना विवेकी होता है? जितने माता-पिता विवेकी होते हैं। शिशु गर्भ में स्थित है माता को पता है कि मुझे कैसा भोजन करना है? पिता को जानकारी है कि इससमय कैसा भोजन देना चाहिए? किस तरह से उठना, बैठना, रहना, खाना, पीना? किसतरह के विचार रखना चाहिये? इन सब की जानकारी माता-पिता को होती है। तो जिसतरह गर्भ स्थित बालक की रक्षा की जाती है, पालन किया जाता है आचार्य भगवन कुंदकुंददेव कह रहे हैं उसीप्रकार मुनिराजों की भी प्रकृति जानकर आलस्यरहित होकर वैयावृत्ति करना चाहिए।

संतान को जन्म देना सामान्य कार्य नहीं है। एक किसान होता है वह भूमि में फसल पैदा करना चाहता है। भूमि को सबसे पहले वह योग्य बनाता है। भूमि योग्य होगी तो फसल श्रेष्ठ होगी। अगर भूमि योग्य नहीं है तो फसल भी अच्छी नहीं हो सकती। इसलिए वह किसान भूमि को कैसा बनाता है? उर्वरा बनाता है।

उर्वरा भूमि अपनी नहीं कर सके, तो मानव जनम व्यर्थ हो जायेगा।

ध्यान रखना, ये जो मानव जीवन अपने लिए प्राप्त हुआ है ये इसलिए प्राप्त हुआ है कि हम सबसे पहले अपनी भूमि को योग्य बनायें। संतान को जन्म देना ये कार्य तो संसार में जितने भी जीव हैं सब जानते हैं। इसमें कोई महानता नहीं है, महानता तो इसमें है कि आप योग्य भूमि तैयार करके फिर संतान को जन्म दें तो वह संतान श्रेष्ठ, योग्य, आचरणवान होगी। भूमि को श्रेष्ठ कैसे बनायें? श्रावक का धर्म है दान और पूजा। ये वो धर्म है, जिनके माध्यम से श्रावक अपनी भूमि को श्रेष्ठ बनाता है। संतान को जन्म देने के पहले श्रावक के जीवन में दान और पूजन का धर्म पालन होना चाहिए। कर्त्तव्यों का पालन होना चाहिए। यदि ऐसा होगा तो आपकी जो भूमि है वह कैसी होगी? श्रेष्ठ भूमि होगी।

जानते हो, जिस समय सीता के गर्भ में दो शिशु आये। कौन? लवणांकुश, मदनांकुश। कहते हैं—श्रेष्ठ संताने, श्रेष्ठ जीव, श्रेष्ठ भूमि में ही जन्म लेते हैं। तीर्थंकर किसी गरीब, बदहाल, कुसंस्कारी माता-पिता के घर में जन्म नहीं लेते। हमेशा ऐसी माताओं और ऐसे पिताओं के बीज से वे जन्म लेते हैं जिन्होंने अपने जीवन में बहुत ही महान और श्रेष्ठ आचरण किया हो। और उनके जैसे श्रेष्ठ माता-पिता और कोई भी इस भूमि पर न हों, इतने श्रेष्ठ आचरणवान, श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा तीर्थंकर जैसे महापुरुषों का जन्म होता है। यदि आप श्रेष्ठ संतान को जन्म देना चाहते हैं तो आपको सबसे पहले अपनी भूमि ठीक करना चाहिये। भूमि ठीक करना चाहिए यानि मन, वचन और काय की जो चेष्टायें हैं वे आपकी सबसे पहले धर्मानुकूल होनी चाहिए। जो दान और पूजा जैसे श्रेष्ठ धर्म निरंतर पालन करने से होती हैं।

सीता के गर्भ में जब संतानें आयीं तब उसके परिणाम उत्तम होने लगे, कि मैं जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक कराऊँ। मैं तीर्थों की वंदना करने जाऊँ। वृहद् पूजा यानि जिसे हम विधान कहते हैं। मैं ऐसे वृहद् पूजा के आयोजन मनाऊँ। ऐसे परिणाम सीता के होते हैं। आप विचार करना, जिसकी भूमि श्रेष्ठ है उसके विचार भी हमेशा श्रेष्ठ होते हैं। और जो दान, पूजा इन क्रियाओं को जानते ही नहीं, समझते ही नहीं, पालन करने से सदैव दूर भागते हैं इनके घर

में कभी श्रेष्ठ संतान का जन्म होनेवाला नहीं है। संतान तो पैदा हो जायेंगी लेकिन ऐसी संतान जन्म लेगी जिसके बाद माता-पिता को सुकून नहीं मिलेगा। सुख शान्ति नहीं मिलेगी।

आज वर्तमान में यह इतना विकराल भयावह वातावरण क्यों बन रहा है? क्योंकि आदमी ने अपने श्रेष्ठ धर्माचरण को, अनुकूल आचरण को, संस्कारों को छोड़ दिया है। वे समझते हैं संतान को जन्म देना तो एक सामान्य बात है। अरे! एक इन्द्रिय को जन्म देने के लिए किसान इतनी मेहनत करता है। फसल कितने इन्द्रिय होती है? एकेन्द्रिय। इस जीव को जन्म देने के लिए किसान इतनी मेहनत करे कि खेत को जोतता है, खरपतवार को नष्ट करता है, उसको उर्वरक डाल करके और भी उपजाऊ बनाता है फिर जब वह देख लेता है कि यह बीज के योग्य भूमि है तब वह अपने श्रेष्ठ बीज को भूमि में वपन करता है। केवल वपन ही नहीं करता जिस दिन से उसमें बीज डालता है उसी दिन से वह उस खेत की रखवाली करना प्रारंभ कर देता है। कि कहीं कोई पक्षी आ करके खेत में डाले गए दानों को चुगकर नष्ट न कर दें। रक्षक बन जाता है और ज्यों-ज्यों बीज अंकुरित होकर ऊपर आते हैं त्यों-त्यों किसान के लिए और अधिक चिंता बढ़ती चली जाती है। वह और भी अनेक प्रकार की रक्षा के उपाय करना प्रारंभ करता है। जब बीज बिल्कुल अंकुरित होकर फसल बनकर तैयार होने लग जाये, लहलहाने लग जाये इस तरह से एक किसान रक्षा करता है।

एकेन्द्रिय जीव के लिये इतने उपाय और तुम्हारे गर्भ से जो पंचेन्द्रिय जीव, पंचेन्द्रिय संतान का जन्म हो रहा है उसकी रक्षा के लिये कितने उपाय करने चाहिए। विचार करना, एक किसान एकेन्द्रिय जीव की उत्पत्ति होने पर अपने को पुण्यात्मा मानता है कि आज मेरे पुण्य का उदय हो गया है जो मेरा खेत लहलहा रहा है। माता के गर्भ में, परिवार में अगर कोई पंचेन्द्रिय संतान का जन्म होने का अवसर आ जाये तो ध्यान रखना इतनी खुशियाँ होनी चाहिए, हमें अपने पुण्य का इतना महात्म्य ज्ञात होना चाहिए, कि अहो! हमारे घर में एक किलकारी भरनेवाला ऐसा शिशु जन्म लेनेवाला है, मेहमान आनेवाला है। किसान को इतनी खुशी होती है तो तुम्हें कितनी खुशी होनी चाहिए। विचार करना, एक किसान खेती के बाद उसमें से थोड़ा सा धन निकाल करके जो जिस मान्यता वाले होते हैं वे उन देवी देवताओं की मनौती करते हैं। तुम तो जैनधर्म

का पालन करनेवाले हो। संतान जन्म के बाद महोत्सव मनाना चाहिए। धर्मोत्सव मनाना चाहिए। क्यों? क्योंकि घर में एक ऐसी खुशी का अवसर आया है।

मैं ये बता रहा था कि जिसकी भूमि शुद्ध है उस भूमि में श्रेष्ठ संतानें स्वयमेव आकर जन्म लेती हैं। अब आपकी भूमि अशुद्ध, अपवित्र हो और आप सोचें कि हमारे घर में भी ऐसी संतान का जन्म हो, जो हमारे परिवार, धर्म की कुल प्रतिष्ठा को बढ़ानेवाला हो, तो कभी नहीं हो सकती। पहले अपने कर्त्तव्य का पालन करो।

श्रावक को अपने श्रावक धर्म का ज्ञान होना चाहिए। यदि आपको पूजन करना नहीं आता है मुनिराज को पड़गाहन कर घर ले गये। अष्टद्रव्य से पूजन करना है अब क्या करोगे? पीछे-पीछे बैठोगे हाथ जोड़कर, कहोगे नमोस्तु महाराज। महाराज कहते हैं आगे आओ। अब वे इधर देखते हैं, उधर देखते हैं। आ जाये कोई देवता जो इस संकट से उबार ले मुझे। अरे भाई! यदि तूने श्रावक धर्म का पालन किया होता तो तुझे आज अगल-बगल में तांकना नहीं पड़ता। तू खुद भारी उत्साह के साथ रोमांचित होकर थाली को सामने रखता और बड़े भक्तिभाव से मुनिराज की पूजन करके अपने कर्मों का प्रक्षालन करता। लेकिन हम अपने कर्त्तव्य से विमुख होकर जीते रहे। आप अपनी भूमि को उर्वरा नहीं बना सके और जिसकी भूमि उर्वरा नहीं है उसकी भूमि में संतान तो जन्म लेगी। जैसे बुन्देलखण्ड में एक बेशरम होती है, जानते हो कि नहीं? सब जानते हैं।

पौधे का नाम ही पड़ गया, बेशरम। उसका नाम है 'आइपोनिया' लेकिन वो ऐसा पौधा है कि उसे कहीं भी डाल दो, कैसी भी भूमि में डाल दो तो भी उग आता है। कुछ ऐसे भी पौधे होते हैं जिन्हें बिना योग्य भूमि के उत्पन्न नहीं किया जा सकता। ऐसे ही घर में जो संतानें जन्म लेती हैं। अब आप समझ जाओ, वे कौन सी हैं? कहीं भी किसी भी गर्भ से जन्म ले लेंगी। लेकिन ये वो संतानें नहीं हैं, जिनके द्वारा इस धरती पर जन्म लेने के बाद महान कार्य सम्पादित किया जाये। ऐसे श्रेष्ठ महान आत्माओं के जन्म लेने के लिए श्रेष्ठ भूमि की आवश्यकता होती है।

अब बेशरम के पौधे हरयाते रहते हैं, फूल देते हैं लेकिन किसी के काम नहीं आते। किस काम आती है बेशरम की लकड़ी, फूल, पत्ती? आते हैं किसी काम? कहीं पूजा के काम आते हैं? श्रेष्ठ कार्यों में उनकी कोई उपयोगिता नहीं है। ऐसे ही जिन्होंने ऐसी संतानों को जन्म दिया है वे भी इस धरती पर कोई श्रेष्ठ कार्यों में कोई भूमिका निभानेवाले नहीं हैं। ठीक है, जी रहे हैं तो जीते रहेंगे। ऐसी संतानें सभी के पैदा हो जाती हैं। कंस भी तो पैदा हुआ था। वो भी तो किसी के काम आया होगा। संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो किसी न किसी काम न आये। विष भी काम आता है। क्या? विष भी काम आता है। लेकिन सबके काम नहीं आता। जो सबके काम आये वो वस्तु ही वस्तु है और जो एकाध जगह किसी के काम आ भी जाये और बाकी सबके लिये हानिकारक हो ऐसा वह जीव अथवा वह वस्तु अयोग्य ही कहलायेगी।

ध्यान रखना, आचार्य भगवन कुंदकुंद देव कहते हैं, कि जिस तरह गर्भ में स्थित बालक की रक्षा माता-पिता परिजन करते हैं। कैसे करते हैं? सबसे पहले भूमि को शुद्ध बनाते हैं। जिन्होंने जन्म देने के पहले नितप्रति जिनेन्द्रदेव की पूजा, आराधना, मुनिराजों के लिये दान, ऐसे कार्य करके, श्रावक धर्म का पालन करके, अपने परिणामों को शुद्ध बनाया है वह अपनी भूमि को शुद्ध रखनेवाला है। और जिसने ऐसा तो कोई भी विचार नहीं किया। कई बार तो कोई संतान को जन्म देना ही नहीं चाहता। संतान जन्म ले लेती है। अब क्या कहा जाये ऐसी संतान को? न माता चाहती थी न पिता चाहता था, दोनों ही नहीं चाहते थे कि घर में आये अभी। और वह आ गयी। क्या करोगे? अगर पापी माता पिता हैं, तो पाप करेंगे। पाप कार्य करेंगे। वे यह सोचेंगे, अभी तो हम चाहते ही नहीं थे किन्तु संतान आ गयी है। लेकिन अभी आवश्यकता नहीं है। अरे मूर्ख! मूढ! तू पंचेन्द्रिय जीव के गर्भ में आने के प्रति इतने खोटे परिणाम कर रहा है। आज तो जो जीव आया सो आया, तूने उसके निमित्त से अपने लिए ये खोटे परिणाम करके परभव में जन्म लेने में बाधा डाल दी। आज तू आती हुई संतान के जन्म पर पाप कर रहा है। तू ऐसा कर्म बाँध रहा है, कि जब तू कहीं जन्म लेगा तो तू जन्म लेने के पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इसलिए अच्छा तो यही है कि जब जन्म नहीं देना हो तो स्वयं संयम का पालन करो। और यदि संतान चाहिए तो फिर भूमि को पहले शुद्ध बनाओ और भाव-शुद्धिपूर्वक संतान को जन्म दो। तुम्हारे घर में महावीर, आदिनाथ ऐसी श्रेष्ठ संतानों का जन्म होगा। लेकिन पुण्यात्मा जीव कभी पापियों के घर में पैदा नहीं होते।

अब विचार करना, एक किसान किसकी रक्षा कर रहा है एकेन्द्रिय जीव की। माता पिता गर्भ में आयी हुई संतान की कितनी रक्षा करते हैं। कैसे उत्सव महोत्सव मनाते हैं। उसीप्रकार एक श्रावक मुनिराजों की वैयावृत्ति करे। सेवा करे। परिचर्या में अपना सहयोग करे।

मेरी भावना में कहा है—

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।

ऐसी भावना करनी चाहिए। क्या कहा गया है 'अस्सी साल के मुनिराज और आठ साल की बालिका। 80 साल के मुनिराज किसी चौके में आहारचर्या के लिये गये हुए हैं और वहाँ पर एक 8 साल की बालिका मुनिराज को आहारदान देने को खड़ी है। आचार्य भगवन कहते हैं जिस समय मुनिराज को आहार दिया जा रहा है उससमय मुनि पुत्र के समान होता है और आहार करानेवाला माता के समान होता है। 8 साल की बालिका माता है और 80 साल के मुनिराज पुत्र हैं। अहो! कैसा सौभाग्य? विचार करना! अगर मन में आ जाये कि मैं भी चाहती हूँ कि ऐसे श्रेष्ठ मुनिराज जैसे हमारे लिए भी पुत्र प्राप्त हों, तो पहुँच जाना किसी चौके में मुनिराज को आहार दे आना और भावना कर लेना। क्यों? क्योंकि उस समय तू माता है और मुनिराज तेरे पुत्र की तरह हैं। तेरे घर में ऐसी ही संतान आयेगी। लेकिन यदि आपको अपने कर्त्तव्य का बोध नहीं है तो ध्यान रखना–

उर्वरा भूमि अपनी नहीं कर सके, ये मानव जनम व्यर्थ खो जायेगा।

इसलिए मुनिराज की प्रकृति को जानकर आहार आदि देना चाहिए। आहार आदि दान को वैयावृत्ति कहा गया है। कोई महिला आकर के पूछती है—गुरुदेव! मैं भी वैयावृत्ति करना चाहती हूँ पुरुषजन तो आपके पास आते हैं आपके हाथ-पैर दबाते हैं आपका सिर दबाते हैं आपकी सेवा वैयावृत्ति करते हैं हम लोग भी आपकी सेवा-वैयावृत्ति करना चाहते हैं हम भी इस सौभाग्य को प्राप्त करना चाहते हैं कैसे प्राप्त करें?

सुनो, श्राविका ने विशुद्ध भावों से चौका लगाया, और मुनिराज के लिये उसने निरंतराय आहार करा दिया। उस महिला ने एक पुरुष से भी ज्यादा वैयावृत्ति के फल को प्राप्त कर

लिया। पुरुष तो केवल हाथ-पैर ही दबा रहा है, लेकिन महिला ने निरंतराय आहार कराने के कारण उनको स्वास्थ्य भी दिया है, उनको संयम भी दिया है, उनके लिये आवश्यक क्रियाओं के पालन करने में अपनी सहभागिता प्रदान की है इसलिये उसने महान पुण्य का अर्जन किया है।

वैयावृत्ति के विषय में आचार्य भगवन् शिवार्य महाराज भगवती आराधना में कहते हैं—

आहारोसहवायण।। 307।।

योग्यस्य आहारस्य औषधस्य वा दानं।

अर्थात् निर्दोष आहार, निर्दोष औषधिदान वैयावृत्ति है।

इसी ग्रंथ में और भी कहा है—

वैयावृत्यं भक्तिमापादयति अर्हदादिष्वित्युक्तं।। 319 टी.।।

वैयावृत्य तप अर्हदादि पंचपरमेष्ठियों में भक्ति उत्पन्न करता है ऐसा कहा है।

मुनिराज के लिये आहारदान, अतिथि संविभाग व्रत का पालन करना भी वैयावृत्ति है। तीर्थंकरों की पूजन करना भी वैयावृत्ति है। कई बार श्रावक लोग क्या बोलते हैं? कोई उनसे पूछे आप कहाँ गए थे? हम भगवान की सेवा करने गए थे। कोई बोलता है, मैं पूजन करने गया था। ये पूजा सेवा भी वैयावृत्ति है। आचार्य भगवंतों ने पूजा को भी वैयावृत्ति के अन्तर्गत रखा है। यानि एक पूजन करनेवाला भगवान की पूजन का फल प्राप्त कर रहा, सो कर ही रहा है, वैयावृत्ति के फल को भी प्राप्त कर रहा है। इसलिए बंधुओ! साधुजनों की वैयावृत्ति करना। मुनिराजों की वैयावृत्ति करना। लेकिन कैसे? आलस्य रहित होकर। अब चले जायेंगे 5 मिनिट बाद। चले जायेंगे, पहले थोड़ा आराम कर लें।

आराम तो आराम ही है। नींद लग गई अब पहुँच ही नहीं पाये। क्यों नहीं पहुँच पाये भाई? ये आपका पुण्य का अवसर था। पहले शुरु-शुरु में जिस समय मोबाइल (Mobile) आये थे उस समय सिम (Sim) बँटती थी और आज भी सिम (Sim) को खरीदने के लिए आधी रात को लाइन में लग जाते हैं ऐसा मुझे बताया था किसी ने, आधी रात से लाइन में लगे हैं। किसलिए? एक सिम (Sim) के लिये। और मुनिराजों की वैयावृत्ति करने से क्या मिलता है

पुण्य। आपने आलस्य कर लिया। आपको मिलनेवाला उतना पुण्य छूट गया। अब लौट कर तो नहीं आयेगा।

गर्मी का मौसम हो और आपके कुएँ या ट्यूबवैल (Tubewell) से पानी उतना ही आता हो, इसके बाद दो घण्टे पानी नहीं आता हो तो आप क्या करोगे? आप सब पहले पहुँचेंगे, पानी भर लो फिर दो घण्टे तक कुछ नहीं मिलनेवाला। ये आपका विवेक है, आपका सम्यक् विचार है। ध्यान रखना, जो चीज हमारे लिए अभी उपलब्ध होती है वह हमें अभी ले लेनी चाहिए। क्यों? क्योंकि मुनिराज आपके पास हमेशा नहीं रहते हैं अवसर मिला है, श्रावक धर्म का पालन करने का।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद देव कह रहे हैं कि मुनियों की वैयावृत्ति करना चाहिये। आलस्य रहित होकर करना चाहिए। लेकिन लोभ और स्वार्थ को लेकर वैयावृत्ति न करें।

एक जगह पर किसी श्रावक ने चौका लगाया। पड़गाहन करने आये। महाराज तो विधि लेकर के निकलते हैं। मिल गई तो बढ़िया नहीं मिली तो भी बढ़िया। अपने को तो शुद्ध भोजन करने को मिल रहा है न। लेकिन श्रावक तो घबरा जाता है। अब 1 दिन, 2 दिन, 3, 4.....8 दिन हो गए महाराज तो आये ही नहीं। पत्नी ने पति की क्लास (Class) लगाई। सुनिये, सबके चौके में महाराज के आहार हो रहे हैं अपने चौके में 8 दिन हो गए, अभी तक आहार नहीं हुए। सब लोग महाराज की वैयावृत्ति करने जाते हैं। आप जाते हो? अब आपको वैयावृत्ति करने जाना है। गृहदेवी का फरमान। बात भी समझ में आयी क्योंकि तर्क के साथ बात कही गयी थी। स्त्रियाँ बात करने में बहुत माहिर होती हैं। उनके तर्क बहुत अकाट्य होते हैं। अब उन्होंने तर्क लगा दिया, देख लो जितने लोग वैयावृत्ति करने जाते हैं उन सबके यहाँ आहार हो गए। तुम नहीं जाते हो न, इसलिए नहीं हुए। पति ने सोचा बात तो बिल्कुल कायदे की है।

पतिदेव पहुँच गए। अब उन्हें कुछ अता-पता ही नहीं, कि कितने बजे वैयावृत्ति होती है? कितने बजे क्या होता है? श्रीमती का आदेश मिला है तो पालन तो करना ही है। जब पहुँचे, उस समय तक तो वैयावृत्ति समाप्त हो चुकी थी। मुनिराज उस समय लेटे थे। लोगों ने कहा— भाईसाहब! अब तो समय हो चुका है। महाराजश्री लेट चुके हैं। बोला-अरे! क्या समय हो गया? पहुँचते ही उसने वैयावृत्ति शुरु कर दी। जोर-जोर से ऐसी वैयावृत्ति की जिससे महाराज

श्री समझ जाएँ की कौन आये हैं। तुम इतने जोर-जोर से दबाओगे। श्रावक ने कहा—भाईसाहब! थोड़ा धीरे-धीरे करलो। महाराज की नींद लग गई है। बोला—क्या धीरे-धीरे कर लो? आठ दिन हो गए, अभी तक आहार नहीं हुए। आज तो पूरी करके ही जाऊँगा।

ध्यान रखना, स्वार्थभाव को लेकर लोभभाव को लेकर साधुओं की वैयावृत्ति नहीं की जाती। कैसे करना? भावपूर्वक। अगर आप भावसहित मुनिराजों की वैयावृत्ति करोगे, तो आपको फल स्वयमेव प्राप्त होगा। ऐसे भाव भी मत करना कि मुनिराज तो अमीरों के यहाँ ही जाते हैं हम गरीबों की कुटिया को भैया कौन देखता है? जैसे महाराज को पता है कि तुम गरीब हो, वे अमीर हैं। तुम बता के गये थे कि महाराज हम गरीब हैं।

ध्यान रखो, ये परिणाम कभी आत्मा में मत लाना। अगर आप भक्ति कर रहे हैं तो हमेशा शुद्ध परिणाम रखिये, विशुद्ध परिणाम रखिये, और ये भाव रखिए कि मैं तो सेवा कर रहा हूँ। सेवा का फल मुझे अवश्य मिलेगा। इसीलिए तो कहा है मुनिराजों की वैयावृत्ति कैसे करे? थोड़ा विवेकपूर्वक करें। कुछ लोग तो ऐसा सोचते हैं कि वैयावृत्ति यानि अच्छे जोर से मालिश करो। जितनी ताकत हो पूरी ताकत झौंक दो। थोड़ी काया का भी ध्यान रखो भैया, एक तुम अपने को देखो और मुनिराज को भी देखो। तुम आये और तुमने दोनों हाथों को रगड़-रगड़ कर सेवा कार्य कर दिया। पता चला, जितना दर्द वैयावृत्ति से पहले नहीं हो रहा था उससे भी ज्यादा वैयावृत्ति के बाद प्रारंभ हो गया। बिना वैयावृत्ति के आराम था और वैयावृत्ति के बाद रातभर परेशानी। वाह! आज तो महाराज की अच्छी वैयावृत्ति कर आये। इसलिये ध्यान रखो, भैया! वैयावृत्ति विवेकपूर्वक की जाती है।

कैसे करना? विवेकपूर्वक करना। मैं कोटा में था। मुझे बालतोड़ हो गया। श्रावक मुनिराजों के उपदेश तो सुनता ही है साधु की सेवा करनी चाहिए। वैयावृत्ति औषधिदान करना चाहिए। तो दिन में कम से कम 10 श्रावक आते। एक आया, अपनी औषधि लगाकर चला गया। दूसरा आया, बोला—इससे क्या होगा महाराज? ये हटाकर दूसरी औषधि लगाते हैं वह लगाकर चला गया। फिर तीसरा श्रावक आया, बोला— इससे क्या होगा? पेटेंट (Patent) औषधि लाया हूँ। उनके पेटेंट (Patent) में जो जल्दी ठीक होने वाला था सो महीना भर लग गया। पैर सूज गया। परेशानी ही परेशानी हो गयी पेटेंट (Patent) लोगों से। भैया! ऐसे पेटेंट (Patent) लोग वैयावृत्ति न करें, विवेकपूर्वक करें।

साधुजनों की वैयावृत्ति प्रकृति को जानकर करें कि कौन से मुनिराज की कैसी प्रकृति है? वात प्रकृति, पित्त अथवा कफ प्रकृति है। उस प्रकृति के अनुसार मुनिराज के लिए दान आदि देकर के उनकी सेवा, परिचर्या, वैयावृत्ति कर अपने श्रावकधर्म का पालन करना चाहिए।

'सो निहचै भव नीर तिरैया' ऐसे श्रावकगण एक न एक दिन नियम से मुनिराजों की वैयावृत्ति करते हुए भी इस भवसागर, संसार सागर से छूट जाते हैं और भगवत् दशा को प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए बंधुओ! जीवन में वैयावृत्ति गुण को विवेकपूर्वक पालन करना।

कोई महिला आती है महाराज को आहार देना है। आये, सोचे-विचारे बिना, समझे बिना, आप अशुद्ध कपड़े पहने हैं। फिर भी आहार देने के लिए चले जा रहे हैं अंदर घुसे जा रहे हैं। विचार करना, अशुद्ध वस्त्रादि में आहारदान करने में क्या फल होगा? जिस वस्तु को तुमने छू लिया वो वस्तु भी अशुद्ध हो गयी अपवित्र हो गई। वह वस्तु तुमने मुनिराज को आहार में दे दी इसका फल कुभोगभूमि में जन्म होता है। श्रावक को अपने कर्त्तव्य को समझते हुए विवेकपूर्वक कार्य करना चाहिए। छहढाला में इसका फल निम्न प्रकार कहा है—

यौं श्रावकव्रत पाल स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तैं चय नर-जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै।।

इसप्रकार श्रावकव्रत का पालन करके सोलहवें स्वर्ग तक श्रावक का जन्म होता है, वहाँ से चयकर नर जन्म पाकर, मुनिव्रत धारणकर मुक्ति प्राप्त हो जाती है, अतः श्रावक धर्म मुक्ति का कारण होता है।

गर्भ स्थित शिशु का पालन, करते मात पिता परिजन।
आलस तज मुनिराजों की, सेवा करते श्रावकजन।।
मुनि वैयावृत्ति, हो-हो-2, भव-सिंधु तिराये रे...
रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु-श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

अनादि अनिधन जिनागम पंथ जयवंत हो।

❑❑❑

रयणसार पद्यानुवाद

(आचार्य विमर्शसागर)

रयणसार चारित्र प्रधान, ग्रंथ कहाये रे।
साधु - श्रावक की, हो-हो-2, संहिता दिखलाये रे।।

- ग्रंथ पढ़ो निर्ग्रंथ बनो, मोक्षमार्ग को सभी चुनो।
गुरुमुख से जिनवाणी को, सुनो-सुनो सब भव्य सुनो।।
जिनवाणी सच्चा, हो-हो-2, सुखमार्ग दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

1. (i) वर्द्धमान जिन नमन-नमन, मन-वच-काया से वंदन।
रयणसार को कहता हूँ, सुनलो श्रावक और श्रमण।।
जिनवर की स्तुति, हो-हो-2, सब विघ्न नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(ii) प्रथम मंगलाचरण करो, फिर आहार - विहार करो।
मोक्षमार्ग अपनाओ या, कोई लोक - व्यवहार करो।।
मंगल से जीवन, हो-हो-2, मंगल बन जाये रे - ऽऽ। रयणसार...

2. जिनवर ने जिसको बोला, गणधर ने जिसको खोला।
सभी पूर्व आचार्यों ने, अन्तरंग से जो तोला।।
आगमवाणी ही, हो-हो-2, समदृष्टि सुनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

3. जो कोई मति-श्रुतज्ञानी, बोले गर स्वछंद वाणी।
मिथ्यादृष्टि कहलाता, है यह कुंदकुंद - वाणी।।
जिनमार्गी का, हो-हो-2, नहिं वचन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

4. (i) सम्यग्दर्शन सार कहा, शिवतरु का आधार कहा।
यह सम्यग्दर्शन भैया, निश्चय व व्यवहार कहा।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, रत्नों को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(ii) मोक्षमार्ग अपनाना है, सम्यग्दर्शन पाना है।
आतमरुचि जगाने को, भेदज्ञान प्रगटाना है।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, सच्चा सुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(iii) सच्चे - गुरु को पहचानो, कुगुरु को कुगुरु जानो।
सद्गुरु की शरणा पाकर, मोक्षमार्ग सच्चा मानो।।
सद्गुरु बिन कोई, हो-हो-2, भवपार न जाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(iv) देव - शास्त्र - गुरु को ध्याओ, सम्यग्दर्शन को पाओ।
तत्त्वों का श्रद्धान करो, स्वात्माभिमुख हो जाओ।।
स्वसंवेदन ही, हो-हो-2, सम्यक्त्व कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(v) अपनी भूल सँभालोगे, सम्यग्दर्शन पा लोगे।
देह बसे निज आतम में, परमातम प्रगटा लोगे।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, प्रभु नजर न आये रे - ऽऽ। रयणसार...

(vi) तत्त्वों का श्रद्धान करो, सम्यग्दर्शन - ज्ञान वरो।
जो आतमहित का हेतु, वह वैराग्य महान वरो।।
रागी-द्वेषी बन, हो-हो-2, क्यों दुख उपजाये रे - ऽऽ। रयणसार...

5. (i) भव-तन-भोग विरक्त कहा, आत्म-गुणों से युक्त अहा।
भय-मल-व्यसन-रहित होता, पंचगुरु का भक्त कहा।।
वह सम्यग्दृष्टि, हो-हो-2, निर्दोष कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(ii) व्यसन सदा दुःख देते हैं, सबका सुख हर लेते हैं।
इसीलिए सम्यग्दृष्टि, व्यसन त्याग कर देते हैं।।
व्यसनों में फँसकर, हो-हो-2, क्यों पुण्य नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(iii) स्वारथ का संसार कहा, तन को अशुचि असार कहा।
भोग सदा दुख के कारण, चिंतन यह सुविचार कहा।।
सम्यक्त्वी इनमें, हो-हो-2, वैराग्य दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(iv) पंच - महागुरु को वंदन, चरण धूलि इनकी चंदन।
निःशंकित वसु अंगों का, करो भाव से अभिनंदन।।
सम्यक्त्वी इनमें, हो-हो-2, भक्ति दिखलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

6. सम्यग्दर्शन जब आता, मिथ्यादर्शन खो जाता।
सम्यग्दृष्टि जीव सदा, निज शुद्धातम को ध्याता।।
सम्यग्दर्शन ही, हो-हो-2, भव दुक्ख नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

7. षट्-अनायतन तजो-तजो, मद छोड़ो मूढ़ता तजो।
शंका-दोष-व्यसन-भय को, अतिचारों को तजो-तजो।।
सम्यग्दृष्टि में, हो-हो-2, नहिं दोष दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

8. वसु - द्वादश मूलोत्तर गुण, भय, अनुप्रेक्षा, सप्त व्यसन।
पच्चीस मल, अतिचार रहित, विघ्नरहित-भक्ति पावन।।
सतहत्तर श्रावक, हो-हो-2, के गुण कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

9. देव-शास्त्र-गुरु भक्त कहा, भव-तन-भोग विरक्त अहा।
रत्नत्रय संयुक्त सदा, शिवसुख में अनुरक्त अहा।।
सम्यग्दृष्टि ही, हो-हो-2, सच्चा सुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

10. दान, शील, पूजा, उपवास, व्रत से होता कर्म विनाश।
सम्यग्दर्शन साथ अगर, अहो! मोक्ष सुख होता पास।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, संसार बढ़ाये रे - ऽऽ। रयणसार...

11. श्रावक पूजा - दान करे, साधु अध्ययन - ध्यान करे।
कर्तव्यों का पालन कर, सुख का अनुसंधान करे।।
इस बिन न श्रावक, हो-हो-2, न साधु कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

12. श्रावक होकर दान नहीं, हृदय धर्म सम्मान नहीं।
न्यायपूर्वक भोग नहीं, त्याग नहीं बहिरात्म वहीं।।
लोभी पतंगा, हो-हो-2, मृत्यु दुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

13. जो मुनियों को दान करे, जिनपूजा बहुमान करे।
सम्यग्दृष्टि धर्मातम, श्रावक ऐसा नाम धरे।।
शिवमार्ग में रत, हो-हो-2, श्रावक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

14. श्रावक शुद्ध - हृदयवाला, जिनपूजा करनेवाला।
प्रभु - पूजा का फल पाता, सुरगण से पूजा जाता।।
उत्तम दानी ही, हो-हो-2, शिवसुख को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

15. श्रावक भोजन - दान करे, जीवन धन्य महान करे।
पात्रापात्र विचार नहीं, जिनलिंग का श्रद्धान करे।।
जिनमुद्रा लखकर, हो-हो-2, श्रद्धा दिखलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

16. जो सुपात्र को दान करे, अतिशय पुण्य महान करे।
स्वर्ग - भोगभूमि पाकर, क्रमशः सुख निर्वाण वरे।।
जिनवर ही ऐसा, हो-हो-2, सद्मार्ग दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

17. उत्तम-भूमि उत्तम-काल, बोया उत्तम बीज सँभाल।
जैसे बहु - फलदायी है, वैसे पात्र - दान फल ख्याल।।
सम्यग्दृष्टि यह, हो-हो-2, कर्तव्य निभाये रे - ऽऽ। रयणसार...

18. बोता जो धन-बीज महान, जिनवर कथित सप्त स्थान।
त्रिभुवन का साम्राज्य फले, फलता सौख्य पंचकल्याण।।
तीर्थंकर जैसा, हो-हो-2, सुख वैभव पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

19. मात-पिता धन-धान्य सुपुत्र, वाहन, विभव, मकान, कलत्र।
पात्रदान से मिलते हैं, जग के उत्तम सौख्य सुमित्र।।
पुण्यात्मा ही, हो-हो-2, यह शुभ फल पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

20. राज्य-निधि-भंडार-रतन-सेना-स्त्री-वैभव-धन।
पात्रदान का फल जानो, कहते कुन्दकुन्द भगवन्।।
सत्पात्र दानी, हो-हो-2, चक्री सुख पाये रे - ऽ ऽ। रयणसार...

21. उत्तम कुल-बुद्धि-लक्षण, उत्तम-शिक्षा उत्तम-गुण।
उत्तम रूप-स्वभाव-चरित, सुख-अनुभव वैभव-चिंतन।।
सत्पात्र दानी, हो-हो-2, उत्तम फल पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

22. जो भवि मुनि को दे आहार, फिर भोजन करता स्वीकार।
सारभूत भवसुख पाता, पाता मुक्ति सौख्य अपार।।
जिनवर वाणी यह, हो-हो-2, कर्तव्य सिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

23. शीत-उष्ण ऋतु पहचानो, वात - पित्त प्रकृति जानो।
परिश्रम, व्याधि, कायक्लेश, या उपवास किया जानो।।
दानी श्रावक यह, हो-हो-2, सुविवेक लगाये रे - ऽऽ। रयणसार...

24. मोक्षमार्ग अनुरागी जो, पाता मुनिजन त्यागी को।
हित-मित अन्नपान, औषधि, देता है बड़भागी वो।।
स्थान शयनासन, हो-हो-2, उपकरण दिलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

25. गर्भस्थित शिशु का पालन, करते मात-पिता परिजन।
आलस तज मुनिराजों की, सेवा करते श्रावकजन।।
मुनि वैयावृत्ति, हो-हो-2, भवसिंधु तिराये रे - ऽऽ। रयणसार...

26. सत्पुरुषों का दान सदा, कल्पवृक्ष फल सम शोभा।
लोभी-जन का दान कहा, जैसे अर्थी की शोभा।
लोभीजन उत्तम,हो-हो-2 नहिं पुण्य कमाये रे - ऽऽ। रयणसार...

27. यश: कीर्ति मिल जाये, पुण्य लाभ कुछ फल जाये।
लोभी दे कुपात्र को दान, शायद किस्मत खुल जाये।।
समकित गुणधारी, हो-हो-2, सत्पात्र न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

28. यंत्र-मंत्र-तंत्रादि मिले, मान-प्रतिष्ठा खूब मिले।
पक्षपात प्रियवचन-सहित, करता सेवा दान अरे।।
मुक्ति का कारण, हो-हो-2, नहिं दान कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

29. जैसा कर्म सजायेगा, वैसा जीवन पायेगा।
शुभ कर्मों का शुभ फल है, अशुभ, अशुभ फल लायेगा।।
दानी दारिद्री, हो-हो-2, लोभी ऐश्वर्य पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

30. करलो आगम ज्ञान जरा, कर सुपात्र को दान जरा।
जैसे धन से जीव सुखी, वही दान से मान जरा।।
मुनिदान बिन तू, हो-हो-2, दुख ही दुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

31. है सुपात्र बिन निष्फल दान, बिन सुपुत्र धन-जमीं-मकान।
उसी तरह व्रत-गुण-चारित्र, शुद्धभाव बिन निष्फल जान।।
भावों से जीवन, हो-हो-2, में सुख-दुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

32. जीर्णोद्धार प्रतिष्ठा का, तीर्थ - वंदना पूजा का।
जिनवर कहते, जो मानव बचा हुआ धन भोग रहा।।
वो नरकों जाकर, हो-हो-2, दुख ही दुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

33. कौन दरिद्री होता है, स्त्री, पुत्र को रोता है।
मूक, बधिर, पंगु, अन्धा, हो कुजाति को ढोता है।
जो दान-पूजा, हो-हो-2, का द्रव्य चुराये रे - ऽऽ। रयणसार...

34. अतिशय इच्छा करता है, किन्तु न फल को वरता है।
इच्छित फल गर मिल जाये, किन्तु भोग बिन मरता है।
धर्मद्रव्य भोगी, हो हो-2, व्याधि ही पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

35. पूजा-दान द्रव्य हरता, अहो! तीव्र दुख को वरता।
नाक-कान-छाती-अंगुली-दृष्टि-हीन हुआ करता।।
हाथों पैरों से, हो-हो-2, विकलांग दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

36. लूता-रोग भगंदर - रोग, नेत्र - जलोदर - सिर के रोग।
कुष्ठ-मूल-क्षय-शूल सभी, शीत-उष्ण से व्याधि रोग।।
पूजा दानादि, हो-हो-2, में विघ्न से पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

37. देव-शास्त्र-गुरु वंदन में, विघ्न करें श्रुत-अध्ययन में।
नरक-पशु दुर्गति अपंग, दुख, हानि हो जीवन में।।
श्रुतभेद का फल, हो-हो-2, दारिद्र दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

38. सम्यग्दर्शन की शुद्धि, सम्यक् ज्ञान-चरित शुद्धि।
भरतक्षेत्र पंचम युग में, हीन-हीन होती बुद्धि।।
तप-दान-गुण में, हो-हो-2, हीनता दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

39. पूजा दान नहीं करता, शील-मूलगुण नहिं धरता।
मानव जीवन पाकर भी, सम्यक् चारित न वरता।।
नारक कुमानुष, हो-हो-2, पशुगति को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

40. कार्य-अकार्य नहीं जाना, पुण्य-पाप नहिं पहिचाना।
तत्त्व-अतत्त्व व धर्म-अधर्म, सेय-असेय नहीं माना।।
सम्यग्दर्शन से, हो-हो-2, वह रहित कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

41. योग्य-अयोग्य नहीं जाने, नित्य-अनित्य न पहिचाने।
हेय-उपादेय सत्य-असत्य, भव्य-अभव्य नहीं जाने।।
सम्यग्दर्शन से, हो-हो-2, वह रहित कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

42. लौकिक - जन का संग करे, दुर्भावों के रंग भरे।
होकर अति वाचाल कुटिल, योगी व्रत को भंग करे।।
योगी को लौकिक, हो-हो-2, संगति न भाये रे - ऽऽ। रयणसार...

43. उग्र - तीव्र जो दुर्भावी, दुष्ट - दुश्रुत जो दुर्भाषी।
मिथ्यामत में अनुरक्ति, धर्म - विरुद्ध महा रागी।।
सम्यग्दर्शन से, हो-हो-2, वह रहित कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

44. रुष्ट-अनिष्ट या हो गायक, क्षुद्र रौद्र या हो याचक।
चुगलखोर या अभिमानी, ईर्ष्यालु कलही श्रावक।।
परदोष दाता, हो-हो-2, सम्यक्त्व न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

45. हाथी, गधा, बाघ, बंदर, कच्छप, जौंक, श्वान, सूकर।
मक्खी सम स्वभाव वाले, होते हैं जो नारी-नर।।
जिनधर्म के ये, हो-हो-2, नाशक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

46. जब सम्यग्दर्शन होगा, ज्ञान तभी सम्यक् होगा।
सम्यग्दर्शन से सम्यक्-चारित का उद्‌भव होगा।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, बोधि न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

47. कोई मिथ्या-भेष धरे, मिथ्या - तप - व्रत - ज्ञान करे।
मिथ्याशील-शास्त्र-दर्शन, संस्तुति - स्तुति खूब करे।।
निश्चित ही उसका, हो-हो-2, समकित नश जाये रे - ऽऽ। रयणसार...

48. तन कुष्टी कुल नाश करे, चाहे खूब प्रयास करे।
वैसे ही मिथ्यादृष्टि, सद्‌गुण सद्‌गति नाश करे।।
मिथ्यात्व जग में, हो-हो-2, दुखप्रद कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

49. देव-धर्म-गुरु-गुण-चारित्र, तपाचार जो करे पवित्र।
मोक्षगति का भेद तथा, जिनवाणी जो सबकी मित्र।।
सम्यग्दर्शन बिन, हो-हो-2, कोई जान न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

50. शिवलब्धि का जो कारण, निज आतम स्वभाव इक क्षण।
चिंतन में नहिं लाता है, करे पाप का ही चिंतन।।
पर के चिंतन में, हो-हो-2, मन को भरमाये रे - ऽऽ। रयणसार...

51. मद की मोह की पी मदिरा, बोले ज्यों भूला विसरा।
नहीं जानता शुद्धातम, साम्यभाव रस जहाँ भरा।।
मिथ्यादृष्टि को, हो-हो-2, सन्मार्ग न भाये रे- ऽऽ। रयणसार...

52. उपशम भाव को धर लो जी, कर्मों का क्षय कर लो जी।
संवर और निर्जरा से, मुक्ति - वधु को वर लो जी।।
इसभव-परभव क्यों, हो-हो-2, तू दुःख उठाये रे - ऽऽ। रयणसार...

53. दृष्टि सम्यक् करो - करो, ज्ञान और वैराग्य धरो।
कलह कांक्षा आलस इन, दुर्भावों को हरो-हरो।।
मिथ्यादृष्टि ही, हो-हो-2, दुर्भाव बनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

54. आर्तरौद्र यह ध्यान करें, अशुभ लेश्या हृदय धरें।
अवसर्पिणि पंचम युग में, नष्ट दुष्ट यह बुद्धि करें।।
पापी दुखी मानव, हो-हो-2, हर ओर दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

55. अवसर्पिणि पंचम युग में, सम्यग्दृष्टि दुर्लभ हैं।
मिथ्यादृष्टि सुलभ सदा, कहते ज्ञानी गणधर हैं।।
भव-भव परिवर्धक, हो-हो-2, मिथ्यात्व कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

56. क्यों तू संयम खोता है, व्यर्थ अरे क्यों रोता है।
अवसर्पिणि पंचमयुग में, धर्मध्यान तो होता है।।
जो न माने वो, हो-हो-2, मिथ्यात्व बढ़ाये रे - ऽऽ। रयणसार...

57. अशुभ भाव जो करता है, नरक आयु को धरता है।
जो करता शुभ भाव अहा! स्वर्ग सुखों को वरता है।।
जैसा हो चाहे, हो-हो-2 वह भाव बनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

58. हिंसादि क्रोधादि में, मिथ्याज्ञान मदादि में।
दुरभिनिवेश अशुभ लेश्या, पक्षपात विकथदि में।।
मात्सर्य आदि, हो-हो-2, सब अशुभ कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

59. आर्त - रौद्र ध्यानादि में, ईर्ष्या मान-बढ़ाई में।
माया-मिथ्या - निदानादि शल्यों में दंडादि में।।
जो वर्तन होता, हो-हो-2, सब अशुभ कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

60. सात-तत्त्व छह-द्रव्य दिखाय, नौ-पदार्थ पंचास्तिकाय।
बंध - मोक्ष - अनुप्रेक्षायें, रत्नत्रय जब हृदय समाय।।
इनमें प्रवृत्ति, हो-हो-2, शुभभाव कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

61. अनुप्रेक्षाओं का चिंतन, रत्नत्रय की लगी लगन।
आर्यकर्म में उत्साही, दयाधर्म का हो पालन।।
शुभभाव सुख का, हो-हो-2, साधन कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

62. सम्यग्दर्शन से सुगति, मिथ्यादर्शन से दुर्गति।
जहाँ लगे तुझको अच्छा, वहीं लगाले अपनी मति।।
इक है सुखदाई, हो-हो-2 दूजी दुःख बढ़ाये रे - ऽऽ। रयणसार...

63. करता व्रत उपवास मगर, नहीं छोड़ता मोह डगर।
वह कैसे तिर सकता है, निश्चय से यह भवसागर।।
यह मूर्ख फिर क्यों, हो-हो-2, बहु दुःख उठाये रे - ऽऽ। रयणसार...

64. द्रव्यलिंग को धारणकर, इन्द्रिय विषयों को तजकर।
व्रताचरण पालन करता, बहिरातम बुद्धि धरकर।।
जामन मरण को, हो-हो-2, वह छोड़ न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

65. होने को परलोक सुखी, काय-क्लेश सह हुआ दुखी।
हृदय मोक्ष की चाह मगर, रहता नित मिथ्यात्व मुखी।।
ऐसा मानव क्या, हो-हो-2, कभी मोक्ष को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

66. दण्ड देह को देता है, पर क्रोधादि चहेता है।
बहिरातम कर्मों का क्या, ऐसे क्षय कर लेता है।।
बामी मर्दन से, हो-हो-2, क्या सर्प नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

67. जब जब उपशम तप आता, भावसंयमी कहलाता।
जब कषायवश रहता है, तब असंयमी बन जाता।।
काषायिक व्याधि, हो-हो-2, क्या ज्ञानि नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

68. जहाँ ज्ञान की शक्ति है, वहाँ कर्म से मुक्ति है।
ज्ञानी कभी नहीं कहता, अज्ञानी की उक्ति है।।
औषध का ज्ञाता, हो-हो-2, क्या व्याधि नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

69. मिथ्यामल का शोधन कर, सम्यक् औषधि सेवन कर।
कर्म रूप व्याधि हरने, चारित्र औषधि सेवन कर।।
कर्मों का नाशक, हो-हो-2, यह क्रम कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

70. जो विषयों का त्यागी है, अज्ञानी वैरागी है।
विषयासक्त कषायरहित, ज्ञानी फिर भी त्यागी है।।
जिनदेव ऐसा, हो-हो-2, यह भेद दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

71. भक्ति बिना विनय से क्या, बिना विरक्ति त्याग से क्या।
नेह बिना महिलाओं का, रोदन करना व्यर्थ कहा।।
प्रतिषिद्ध ऐसे, हो-हो-2, सद्गुरु बताये रे - ऽऽ। रयणसार...

72. कोई शूरता रहित अरे, योद्धा बन क्या विजय धरे।
जो सौभाग्यरहित महिला, शोभा से क्या प्राप्त करे।।
संयम बिन मुनि भी, हो-हो-2, परमार्थ न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

73. पाया धन-वैभव भारी, लोभी न फल का अधिकारी।
विषयलीन अज्ञानी भी, नहीं अतीन्द्रिय का धारी।।
अज्ञानी सुख का, हो-हो-2, कभी लेश न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

74. है जो वैभववान अरे, नित सुपात्र को दान करे।
वे ज्ञानी फल पाते हैं, नहीं लोभ अभिमान करे।।
विषयों का त्यागी, हो-हो-2, ज्ञानी फल पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

75. भूमि-स्त्री-सोना-धन, लोभ-सर्प का करे शमन।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित, औषध मंत्र बसा जिस मन।।
यह सब जिनवर का, हो-हो-2 उपदेश कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

76. पहले पंचेन्द्रिय तन-मन-वचन पैर कर का मुण्डन।
जो पश्चात् मुंडाता सिर, करता केशों का लुंचन।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नेता कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

77. पति - भक्ति से रहित सती, जिनभक्ति बिन जैनमती।
गुरुभक्ति बिन शिष्य अरे, पाता निश्चय ही दुर्गति।।
भक्ति बिन सुगति, हो-हो-2, कभी कोई न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

78. गुरुभक्ति बिन शिष्य अरे, क्यों सब परिग्रह त्याग करे।
ऊसर भूमि में जैसे, श्रेष्ठ बीज को वपन करे।।
जप तप व्रत आदि, हो-हो-2, निष्फल कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

79. राज्य अगर नृपहीन रहे, सेना स्वामी विहीन रहे।
राष्ट्र देश ग्रामादि सभी, नशते स्वामी-हीन अरे।।
गुरु की भक्ति बिन, हो-हो-2, नहिं शिष्य कहाये रे- ऽऽ।रयणसार...

80. रुचि भी है सम्यक्त्व बिना, दानभाव भी भक्ति बिना।
धर्म - क्रिया का पालन भी, करता कोई दया बिना।।
गुरुभक्ति बिन तप, हो-हो-2, निष्फल कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

81. निंद्य ग्राह्य का नहीं विचार, लगता इन्द्रिय सुख ही सार।
क्या है त्याज्य ग्राह्य क्या है, क्या है मोक्ष शान्ति का द्वार।।
अज्ञानी ऐसा, हो-हो-2, कभी जान न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

82. कायक्लेश उपवास करो, दुर्धर तप आचरण धरो।
शुद्ध आत्मा की रुचि हो, अष्ट कर्म का नाश करो।।
शुद्धात्म रुचि बिन, हो-हो-2, तू पुण्य कमाये रे - ऽऽ। रयणसार...

83. परमब्रह्म का ज्ञान नहीं, निजस्वरूप श्रद्धान नहीं।
कर्मों का क्षय नहिं करता, इसभव परभव जीव कहीं।।
जिनलिंग धरके, हो-हो-2 बोलो क्या पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

84. नहीं देखता आतम को, नहीं चिंतता आतम को।
न श्रद्धान किया करता, नहीं भावता आतम को।।
वह बाह्यभेषी, हो-हो-2, मुनि क्या सुख पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

85. नहीं जानता आतम को, नहीं मानता आतम को।
वह दुख को ही पाता है, कहलाता बहिरातम वो।।
इक सुख स्वभावी, हो-हो-2, आतम कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

86. दृष्टि में निजतत्त्व नहीं, हो सकता सम्यक्त्व नहीं।
गर सम्यक्त्व नहीं पाया, मिल सकता शिवतत्त्व नहीं।।
सम्यक्त्व सुख का, हो-हो-2, साधन कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

87. दुर्ग बिना शोभा नृप की, दान-दया बिन श्रावक की।
ज्ञान बिना शोभा तप की, जीव बिना शोभा तन की।।
कैसे हो सकती, हो-हो-2, नहिं शोभा पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

88. अगर परिग्रह होता है, साधु साधुता खोता है।
श्लेषम में मक्खी जैसा, काय क्लेश पा रोता है।।
लोभी अज्ञानी, हो-हो-2, क्यों क्लेश उठाये रे - ऽऽ। रयणसार...

89. अगर ज्ञान अभ्यास नहीं, तत्त्वज्ञान उल्लास नहीं।
ध्यान कहाँ से हो सकता, जिस बिन कर्म विनाश नहीं।।
मुक्ति चाहे भी, हो-हो-2, पर मुक्ति न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

90. स्वाध्याय ही ध्यान कहा, इन्द्रिय सुख अवसान कहा।
काषायिक परिणतियों का, निग्रह कार्य महान कहा।।
आतम अभ्यासी, हो-हो-2, ज्ञानी कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

91. पापारंभ निवृत्ति का, पुण्यारंभ प्रवृत्ति का।
सम्यग्ज्ञान ही कारण है, एक मात्र शुभवृत्ति का।।
सम्यग्ज्ञानी ही, हो-हो-2, धर्मध्यान को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

92. आगम का अभ्यास नहीं, सम्यक् तप आगाज नहीं।
श्रुताभ्यास के बिन भैया, तप बनता सरताज नहीं।।
अज्ञानी इन्द्रिय, हो-हो-2, सुख में भरमाये रे - ऽऽ। रयणसार...

93. तत्त्वविचार किया करते, दुख परिहार किया करते।
मोक्षमार्ग आराधन में, गुरु नित लीन रहा करते।।
धर्म कथायें, हो-हो-2, गुरुदेव सुनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

94. जो विकथा से मुक्त रहें, अधः कर्म से मुक्त रहें।
बारह अनुप्रेक्षाओं के, चिंतन में संयुक्त रहे।।
मुनि सम्यग्ज्ञानी, हो-हो-2, प्रवचन कुशल कहाये रे-ऽऽ। रयणसार...

95. निंदा से जो दूर रहें, कभी वंचना नहीं करें।
परिषह को उपसर्गों को, और दुखों को सहन करें।।
परिग्रह त्यागी मुनि, हो-हो-2, ध्यानाध्ययन पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

96. निर्विकल्प निर्बन्ध सदा, निष्कलंक निर्मोह सदा।
निर्मल नियत स्वभावी जो, वह योगी मुनिराज सदा।।
निर्ग्रंथ दर्शन, हो-हो-2, कर मन हर्षाये रे - ऽऽ। रयणसार...

97. करते कायक्लेश बहुत, होकर मिथ्याभाव सहित।
सुन सर्वज्ञ देशना भी, मोक्ष - सौख्य से रहे रहित।।
मिथ्यात्व दुख का, हो-हो-2, कारण कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

98. रागादि मन सहित रहे, आत्मस्वरूप दिखाई न दे।
जैसे दर्पण मलिन रहे, निज चेहरा भी नहीं दिखे।।
जो राग त्यागी, हो-हो-2, निज रूप दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

99. तीन दण्ड वश नहीं करे, तीन शल्य को हृदय धरे।
ईर्ष्या कलह याचना की, परिणतियाँ अभिमान करे।।
ऐसा साधु ही, हो-हो-2, संसार बढ़ाये रे - ऽऽ। रयणसार...

100. साधु देहासक्त अगर, हो विषयों में मस्त अगर।
काषायिक परिणति सहित, आत्म स्वभाव प्रमत्त अगर।।
सम्यग्दर्शन से, हो-हो-2, वह रहित कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

101. जो धनधान्य उपकरण में, रखे कांक्षा आरंभ में।
व्रत-गुण-शील सहित होकर, ईर्ष्या रखते हैं मन में।।
कषाय कलह प्रिय, हो-हो-2, वाचाल कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

102. संघ विरोध किया करते, जो स्वच्छंद रहा करते।
गुरु के निकट नहीं रहते, राजा की सेवा करते।।
जिनधर्म नाशक, हो-हो-2, वह साधु कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

103. ज्योतिष - वेद्यक - मंत्रादि, वात - विकार या भूतादि।
जो धन आदि ग्रहण करके, चला रहे जीवन आदि।।
सच्चे श्रमणों के, हो-हो-2, ये दोष कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

104. पापाचार किया करते, जो कषाय में रत रहते।
रहें लोक व्यवहार रहित, परिग्रह आसक्ति रखते।।
ऐसे साधु ही, हो-हो-2, श्रद्धा हीन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

105. नहिं पर का गौरव सहते, अपनी महिमा खुद कहते।
अपनी स्तुति स्वयं करें, जिव्हा लोलुपता धरते।।
ऐसे साधु ही, हो-हो-2 श्रद्धाहीन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

106. चर्म माँस अस्थि लोभी, श्वान भोंकता देख मुनि।
वैसे धर्मीजन को देख, कलह करें पापी निर्गुणि।।
निज स्वार्थवश ही, हो-हो-2, वह कलह कराये रे - ऽऽ। रयणसार...

107. ध्यान और अध्ययन सिद्धि, ज्ञान और संयम वृद्धि।
यथालाभ भोजन करता, साम्यभाव की समृद्धि।।
ऐसा साधु ही, हो-हो-2, शिवपथ लीन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

108. मुनि करते उदराग्नि शमन, कोई मुनि अक्षमृक्षण।
मुनि गोचरी करते हैं, कोई मुनि श्वभ्रपूरण।।
मुनिराज भ्रामरि, हो-हो-2, चर्या अपनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

109. तन रस-रुधिर-माँस-मेदा, अस्थि-शुक्र-मल-मूत्र भरा।
पीव कृमि दुर्गन्धसहित, अशुचि अनित्य चर्ममय हा।।
यह तन अचेतन, हो-हो-2, नशनीय कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

110. तन बहु दुःख का भाजन है, कर्मास्रव का कारण है।
आत्मतत्त्व से भिन्न मगर, अनुष्ठान का साधन है।।
यह मान भिक्षु, हो-हो-2, पोषण भी दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

111. संयम तप अध्ययन विज्ञान, मुनिजन करते आतमध्यान।
करते हैं आहार ग्रहण, तन पुष्टि का नहीं निदान।।
संयम कारण तज, हो-हो-2, दुख छोड़ न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

112. जो साधु याचना करे, क्रोध धरे व कलह करे।
रौद्र क्लेश परिणामों से, रुष्ट हुआ आहार करे।।
वह क्या साधु है, हो-हो-2, व्यंतर कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

113. तपे लोह सम शुद्ध कहा, करगत पिण्ड विशुद्ध कहा।
नौका के जैसा भैया, भवतारक अविरुद्ध कहा।।
शुद्धाहारी हो, हो-हो-2, शुद्धातम पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

114. अविरत-दृष्टि देशव्रती, आगम-रुचिधर महाव्रती।
तत्त्व-विचारक भेदों से, पात्र हजारों जैनमती।।
जिनवर देवों ने, हो-हो-2, यह भेद बताये रे - ऽऽ। रयणसार...

115. उपशम निरीहता अध्ययन, ध्यान आदि शुभ महान गुण।
जिन मुनि में देखे जैसे, पात्र कहें वैसे मुनिजन।।
वे पात्र उत्तम, हो-हो-2, आदि कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

116. श्री जिन अर्हत् सिद्धस्वरूप, निज आतम त्रय भेद स्वरूप।
नहीं जानता, करता है तीव्र महातप नाना रूप।।
वह चिर संसारी, हो-हो-2, परिभ्रमण को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

117. अहो! शुद्ध सम्यग्दर्शन, परिग्रह-शल्यरहित मुनिजन।
धर्मध्यान में लीन सदा, पात्रविशेष कहें गुणिजन।।
इन गुण बिन वेषी, हो-हो-2, विपरीत कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

118. जिनमें समकित गुण प्रगटें, जिनवर पात्र विशेष कहें।
पात्र विशेष जानकर जो, सम्यक् दान प्रदान करें।।
वह मोक्ष पथ में, हो-हो-2, लवलीन कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

119. जो निश्चय व्यवहार स्वरूप, नहिं जाने रत्नत्रय रूप।
वह जो कुछ भी करता है, कहलाता सब मिथ्यारूप।।
ऐसा जिनवर का, हो-हो-2, उपदेश कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

120. तत्त्व जानकर भी क्या लाभ, बहु तप करके भी क्या लाभ ?
समकित शुद्धि रहित ऐसे, ज्ञान और तप से क्या लाभ ?
संसार का ही, हो-हो-2, वह बीज कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

121. व्रत, गुण, शील, परीषह-जय, चारित्र, तप, षट्-आवश्यक।
ध्यान और अध्ययन सभी, समकित बिन सब भवकारक।।
संसार का ही, हो-हो-2, वह बीज कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

122. ख्याति - लाभ पूजा सत्कार, क्यों चाहे करता स्वीकार।
हे योगी! यदि चाह रहा, तू परलोक आत्म - उद्धार।।
ख्याति से क्या तू, हो-हो-2, परलोक को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

123. जो मुनि कर्मज सर्व विभाव, और आत्मज सर्व स्वभाव।
भावपूर्वक भा करके, करता रुचि निज शुद्धस्वभाव।।
उसका नियम से, हो-हो-2, निर्वाण दिखाए रे - ऽऽ। रयणसार...

124. मूल-प्रकृति, प्रकृति-उत्तर, द्रव्य-प्रकृति उत्तर-उत्तर।
भावकर्म से मुक्तातम, बन्धास्रव - संवर - निर्जर।।
सब जानता है, हो-हो-2, 'बहुणा किं' पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

125. योगी विषयासक्त कहा, योगी विषय-विरक्त कहा।
एक कर्म से बँधता है, एक कर्म से छूट रहा।।
तिविहातम जानो, हो-हो-2, 'बहुणा किं' पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

126. अहो! निजातम ज्ञान और ध्यान, अध्ययन सुख-अमृत रसपान।
छोड़ जो इन्द्रिय सुख भोगे, निश्चय से बहिरातम जान।।
सर्वज्ञवाणी, हो-हो-2, कभी इसे न भाये रे - ऽऽ। रयणसार...

127. पका हुआ किंपाक फलं, विष मोदक इन्द्राणफलं।
दिखने में सुन्दर प्रिय है, जीभ सुखं परिणाम खलं।।
ऐसा इन्द्रिय सुख, हो-हो-2, दुःख को उपजाये रे - ऽऽ। रयणसार...

128. स्त्री, पुत्र, मित्र तन को, निज वैभाविक चेतन को।
आत्मस्वरूप मानता है, नहीं जानता निज धन को।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, बहिरात्म कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

129. इन्द्रिय विषयों में रमता, तत्त्वभावना नहिं करता।
विषय महादुखदायी है, कभी विचार नहीं करता।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, बहिरात्म कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

130. होते इन्द्रिय सुख जितने, देते हैं बहु-दुख उतने।
तीव्र दुखी होता आतम, नहीं विचार किया जिसने।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, बहिरात्म कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

131. जीव जन्मता विष्टा में, रुचि रखता उसी विष्टा में।
त्यों बहिरातम की बुद्धि, रहे विषय - सुख विष्टा में।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, निज सुख न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

132. खाद्य-अखाद्य, क्षार-अमृत, भक्ष्य-अभक्ष्य विवेकरहित।
ज्यों म्लेच्छ मानव जाति, भेद न करती ज्ञानरहित।।
बहिरात्मा भी, हो-हो-2, अज्ञान दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

133. तन से आतम भिन्न अहा, नहीं स्वप्न में विषय लहा।
आत्मस्वरूप करे अनुभव, नित शिवसुख में लीन रहा।।
ऐसा वह मध्यम, हो-हो-2, आतम कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

134. समकित जल से धोने पर, ज्ञानामृत भी होने पर।
चिर वासित मलमूत्र भरे, घट सम गंध संजोने पर।।
दुर्वासना को, हो-हो-2, वह छोड़ न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

135. ज्ञानी सम्यग्दृष्टि अरे, सुख अनुभूति अनिच्छ करे।
रोगी रोग मिटाने ज्यों, कड़वी औषधि ग्रहण करे।।
उससे वह औषधि, हो-हो-2, छोड़ी न जाये रे - ऽऽ। रयणसार...

136. 'किं बहुणा' हे भव्य सुनो, बहिरातम सब भाव तजो।
अन्तर - आतम परमातम, इन संबंधी भाव भजो।।
वस्तुस्वभावी, हो-हो-2, परिणति उपजाये रे - ऽऽ। रयणसार...

137. बहिरातम के वस्तुस्वभाव संबंधी जो होते भाव ।
चतुर्गति संसारभ्रमण, दुख के कारण हैं सब भाव।।
ऐसा अज्ञानी, हो-हो-2, निज सुख न पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

138. अन्तरात्म के वस्तुस्वरूप, परमातम के वस्तुस्वरूप।
संबंधी जो होते भाव, हैं शिवगति के कारणरूप।।
शुभ पुण्य के भी, हो-हो-2, कारण कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

139. जो स्वसमय परसमय के, द्रव्य और गुण-पर्यय से।
भेद जानता, वह अपना आतम जाने आतम से।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

140. बहिरातम परसमय कहा, अन्तरात्म परसमय कहा।
गुणस्थान क्रम से जानो, परमातम स्वसमय कहा।।
जिनवर देवों ने, हो-हो-2, यह भेद दिखाये रे - ऽऽ। रयणसार...

141. प्रथम तीन हैं बहिरातम, चौथा जघन अंतरातम।
ग्यारहवें तक मध्यम हैं, बारह परम अंतरातम।।
परमातम तेरह, हो-हो-2, चौदह सिद्ध कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

142. तीन मूढ़ताएँ छोड़े, तीन शल्य से मुख मोड़े।
तीन दोष जो योगि तजे, तीन दण्ड-गारव छोड़े।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

143. रत्नत्रय संयुक्त अरे, तीन-करण से युक्त अरे।
तीन-योग त्रय-गुप्ति की, जो विशुद्धि से युक्त अरे।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

144. जो जिनमुद्रा का धारक, परमोपेक्षा आराधक।
जो विराग सम्यक्त्व सहित, है सच्चा ज्ञानी साधक।।
वो योगी शिवपथ, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

145. बहि-अभ्यन्तर ग्रंथ-रहित, अहो! शुद्ध-उपयोग सहित।
मूलगुणों से पूर्ण अहा! योगी उत्तर-गुणों सहित।।
वो ही शिवपथ का, हो-हो-2, नायक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

146. जो समकित कहलाता है, शिवसुख लाभ कराता है।
उसको सुनता-साधता है, साधु उसी को ध्याता है।।
जन्मादि दुःख अरि, हो-हो-2, के विष को नशाये रे- ऽऽ। रयणसार...

147. जो परमात्म नरेन्द्रों से, देवेन्द्रों नागेन्द्रों से।
समकित गुण प्रधान जानो, पूजित गणधर इन्द्रों से।।
हे भवि 'बहुणा किं', हो-हो-2, रुचि श्रेष्ठ कहाये रे - ऽऽ। रयणसार...

148. अवसर्पिणी काल का दोष, मिथ्यात्व का उदय प्रदोष।
जीवों का उपशम - समकित, हो जाता है नष्ट ये दोष।।
काषायिक परिणति, हो-हो-2, फिर से उपजाये रे - ऽऽ। रयणसार...

149. गुण-व्रत-तप-सम-प्रतिमा-दान, जलगालन शुभधर्म महान।
सूर्य अस्त के बाद न भोज, सम्यग्दर्शन-चारित्र-ज्ञान।।
श्रावक की त्रेपन, हो-हो-2 किरिया कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

150. ज्ञान-ध्यान की सिद्धि दे, ध्यान कर्म-निर्जरा करे।
मोक्ष निर्जरा का फल है, अतः ज्ञान - अभ्यास करे।।
ज्ञानाभ्यासी ही, हो-हो-2, मुक्ति को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

151. कुशल व्यक्ति के तप जानो, निपुण के संयम पहिचानो।
समताभावी के वैराग्य, श्रुतभावना से त्रय मानो।।
इससे श्रुत की ही, हो-हो-2, भावना जगाये रे - ऽऽ। रयणसार...

152. जीव पंच संसार भ्रमण, मिथ्यादर्शन है कारण।
बीता काल-अनंत अरे, किन्तु न समकित हुआ वरण।।
यह भव-परिभ्रमणा, हो-हो-2, इसलिए दिखाये रे-ऽऽ। रयणसार...

153. प्राप्त शुद्ध सम्यक्त्व करे, जीव तभी सुख वरण करे।
जब तक समकित शुद्ध नहीं, जीव तभी तक दुखी रहे।।
समकित ही सुख का, हो-हो-2, कारण कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

154. समकित बिन सब है दुःखरूप, समकित सहित सभी सुखरूप।
अरे, बहुत कहने से क्या ? जानो निश्चय के अनुरूप।।
समकित की महिमा, हो-हो-2, जिनदेव सुनाये रे - ऽऽ। रयणसार...

155. नय निक्षेप प्रमाण अरे, नव छन्दादि पुराण अरे।
नाट्यशास्त्र शब्दालंकार, किया सभी का ज्ञान अरे।।
समकित बिन किरिया, हो-हो-2, संसार बढ़ाये रे - ऽऽ। रयणसार...

156. वसति प्रतिमोपकरणादि, शास्त्र संघ गण-गच्छादि।
पुत्र-पौत्र जाति कुल शिष्य, प्रतिशिष्य पुस्तक आदि।।
ममकार इनमें, हो-हो-2, बाधक कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

157. पिच्छी में वा संस्तर में, इच्छाओं को अंतर में।
जब तक लोभ ममत्त्व करे आर्त-रौद्र के अनुभव में।।
तब तक न मुक्ति, हो-हो-2, न सुख को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

158. रत्नत्रय गण-गच्छ अहा, गुण समूह ही संघ अहा।
मोक्षमार्गी साधु का, निर्मल आतम समय अहा।।
निश्चय से जाने, हो-हो-2, तो कर्म नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

159. जैसे सूरज आता है, गहन तिमिर हट जाता है।
वायु मेघ, अग्नि वन को, गिरि को वज्र नशाता है।।
वैसे ही समकित, हो-हो-2, कर्मों को नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

160. मिथ्यात्व अंधकार रहित, रत्नदीप सम जो समकित।
अपने शुभ अंतरमन में, भावसहित करता प्रजलित।।
तिहुँलोक देखे, हो-हो-2, यह जिनवर गाये रे - ऽऽ। रयणसार...

161. ज्यों जल शुध निर्मली करे, स्वर्ण कालिमा रहित अरे।
निर्मल सम्यग्दर्शन को, भव्य - जीव जो प्राप्त करे।।
समकित से निर्मल, हो-हो-2, आतम को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

162. समयसार अभ्यास करे, परमध्यान निज पास करे।
जहाँ ध्यान परमातम का, वहीं कर्मक्षय नाश करे।।
कर्मों के क्षय से, हो-हो-2, मुक्ति को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

163. योग शुद्ध जो करता है, भाव - विशुद्धि धरता है।
धर्मध्यान का अभ्यासी, परमध्यान को वरता है।।
परमात्म ध्यानी, हो-हो-2, कर्मों को नशाये रे - ऽऽ। रयणसार...

164. जो अति शोधन क्रिया करे, शुद्ध स्वर्ण हो लिया करे।
आतम काल-लब्धियों से, परमातम पद लिया करे।।
शुद्धात्मज्ञानी, हो-हो-2, शिवपद को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

165. कामधेनु ज्यों चिन्तामणि, कल्पवृक्ष ज्यों पारसमणि।
मनुज प्राप्तकर रासायन, इच्छित सुख भोगता गुणि।।
समकित से इस भव, हो-हो-2, परभव सुख पाये रे-ऽऽ। रयणसार...

166. रयणसार यह ग्रंथ महान, देता सम्यग्दर्शन-ज्ञान।
तपोभाव, वैराग्य, चरित्र, निरीहता, गुण, शील महान।।
निजभाव को यह, हो-हो-2, उत्पन्न कराये रे - ऽऽ। रयणसार...

167. नहीं मानता सुनता जो, चिन्तन-पठन न करता जो।
रयणग्रंथ जिनवर वर्णित, नहीं भावना करता जो।।
वह मिथ्यादृष्टि, हो-हो-2, जग में कहलाये रे - ऽऽ। रयणसार...

168. रयणसार यह ग्रंथ महान, सज्जनजन से पूजित जान।
जो निरालसी पढ़ता नित, सुनता भाता प्रतिदिन जान।।
वो भवि ही शाश्वत, हो-हो-2, स्थान को पाये रे - ऽऽ। रयणसार...

(रयणोदय संदर्भ ग्रंथ)

ग्रंथ का नाम	ग्रंथ कर्ता	रयणोदय पृष्ठांक
ज्ञानार्णव	आचार्य शुभचन्द्र	5
ज़ाहिद की ग़ज़लें	आचार्य विमर्शसागर	5, 30, 31, 32
लाटी संहिता	पं. राजमल्ल	8
चारित्रसार	चामुण्डराय	9
रत्नकरण्ड श्रावकाचार	आचार्य समन्तभद्र	10, 50, 80, 89, 118, 159
यशस्तिलक चम्पू	आचार्य सोमदेव	10, 14
सागार धर्मामृत	पं. आशाधर	11
विरागांजलि	सं. आ. विमर्शसागर	15
महाभारत	मर्हिष वेदव्यास	16, 24
पद्मनंदी पंचविंशतिका	आचार्य पद्मनंदी	19
जिनशास्त्र श्लोकार्णव		22
उत्तर मीमांसा	महर्षि बादरायण	22
आइना	आचार्य विमर्शसागर	31
इष्टोपदेश	आचार्य पूज्यपाद	37, 62, 101, 179, 180
गीतांजलि	आचार्य विमर्शसागर	38, 41, 236, 241
छहढाला	पं. दौलतराम	42, 63, 79, 154, 178, 286, 330, 356, 368
सर्वार्थसिद्धि	आचार्य पूज्यपाद	43, 293

ग्रंथ का नाम	ग्रंथ कर्ता	रयणोदय पृष्ठांक
जीवंधर चम्पु	महाकवि हरिचंद्र	50
सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह	आचार्य अजितसागर	51, 88, 150, 201
समयसार	आचार्य कुंदकुंद	52, 102
तत्त्वार्थसूत्र	आचार्य उमास्वामी	57, 78, 79, 186, 202, 340
बारह भावना	मंगतराय	59
आदिनाथ पूजा	आचार्य विमर्शसागर	60
मोक्षमार्ग प्रकाशक	पं. टोडरमल	64
नियमसार	आचार्य कुंदकुंद	72
दर्शनपाहुड	आचार्य कुंदकुंद	75, 118, 239, 285
प्रवचनसार	आचार्य कुंदकुंद	79, 80, 118
उमास्वामी श्रावकाचार	आचार्य उमास्वामी	81
मोक्षप्राभृत	आचार्य कुंदकुंद	96, 156
समाधि तंत्र	आचार्य पूज्यपाद	96
कार्तिकेयानुप्रेक्षा	आचार्य कार्तिकेयस्वामी	100, 282
कार्तिकेयानुप्रेक्षा (टीका)	आचार्य शुभचन्द्र	100, 283
पद्मपुराण-2	आचार्य रविषेण	119
दर्शन स्तुति	अमरचन्द	122
समाधि भक्ति	आचार्य पूज्यपाद	124, 185
उपासक संस्कार	आचार्य पद्मनंदी	127
सुभाषित रत्नसंदोह	आचार्य अमितगति	152